कलशामृत-२

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी समयसार कलश टीका के सन् १९७७-७८ के प्रवचन)

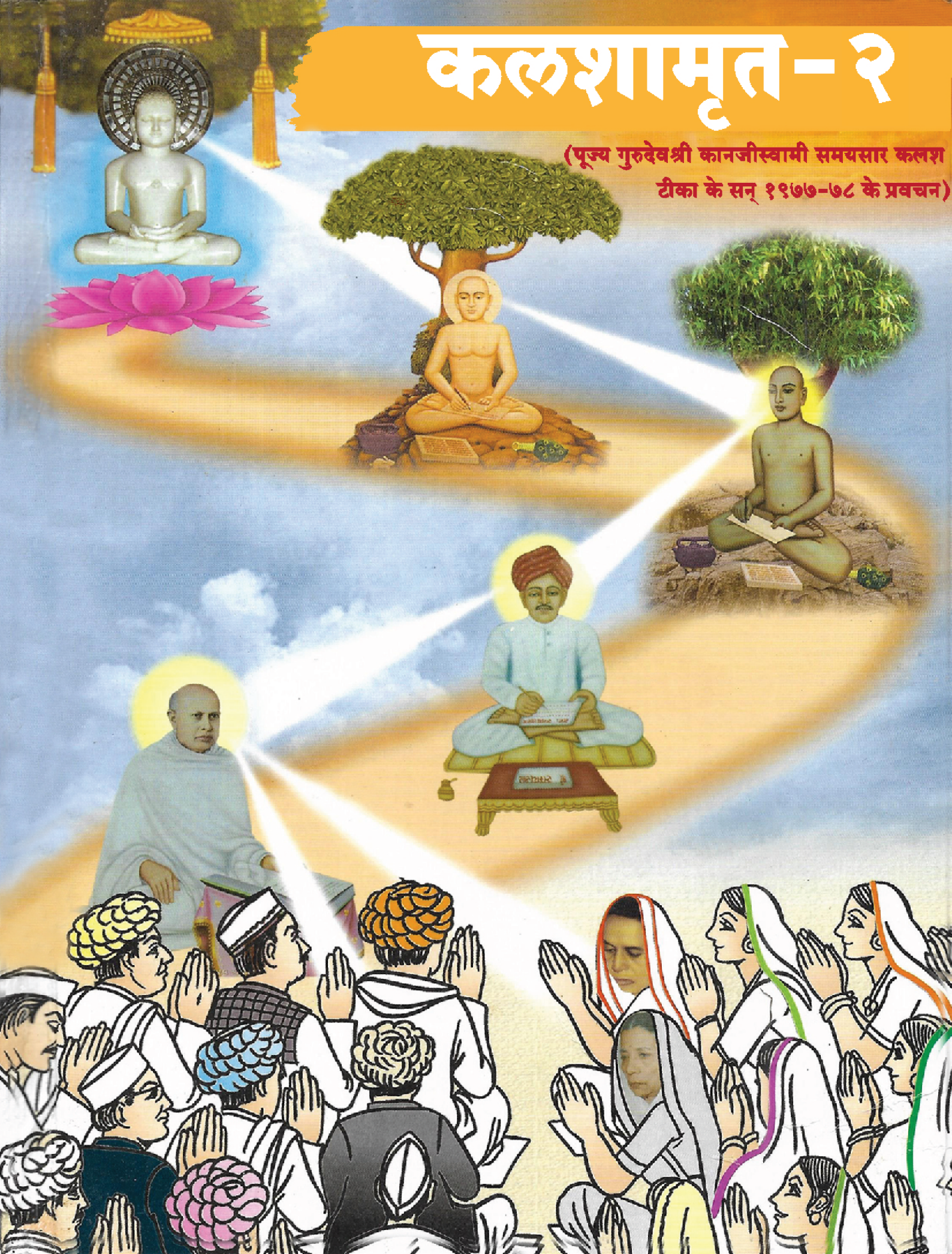

ॐ

परमात्मने नमः

कलशामृत

(समयसार कलशटीका प्रवचन)

भाग-2

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **परमागम समयसार** की **श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव** रचित **आत्मख्याति टीका** में समागत **समयसार कलश** की **पाण्डे राजमलजी** कृत टीका पर **परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के स्वानुभव मुद्रित आध्यात्मिक शब्दशः प्रवचन

कलश 33 से 60 तक, प्रवचन नं. 41 से 74 तक

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2077	2547	2021

—: प्रकाशन :—

वात्सल्य पर्व : मुनिरक्षा दिन, श्रावण शुक्ल पूर्णिमा

एवं

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की

108वीं जन्म-जयन्ती (भाद्र कृष्ण दूज)

के पावन अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय

अहो! उपकार जिनवर का कुन्द का ध्वनि दिव्य का,
जिन कुन्द ध्वनि दाता अहो! श्री गुरु कहान का॥

वर्तमान चौबीसी के, मोक्षमार्ग के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव से महावीरस्वामी पर्यन्त समस्त तीर्थंकरों की अचल तीर्थधरा पर जैनदर्शन की अनमोल सम्पत्ति को प्रदान करनेवाले, द्वितीय श्रुतस्कन्ध को लिपिबद्ध कर अलभ्य जैन वाग्धारा को जयवन्त करनेवाले चारणऋद्धिधारी आचार्यवर श्री कुन्दकुन्ददेव हुए। इस जैन संस्कृति की अनवरत प्रवाह की परिपाटी में आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव हुए। उनके द्वारा अविच्छिन्नरूप से प्रवाहित जैनधारा की शृंखला में पण्डित श्री राजमल्लजी पाण्डे हुए। उत्तरोत्तर चली आयी अस्खलित धारा में अपने मुक्तिदूत पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी हुए। इन सर्व सन्तों की स्वानुभवरूप यात्रा के अन्तर्गत उपलब्ध परमागमों का प्रबुद्ध दर्शन मिला। इस बहुमूल्य आत्मदर्शन की चरम सौख्यधारा अक्षुण्ण बहती हुई भव्य जीवों के अन्तरांचल में स्थित होने के साथ ही अनादि से चली आयी विकृतियों का विसर्जन हुआ।

श्री अमृतचन्द्रदेव ने स्वयं रचित काव्यरूप कलशों में अध्यात्म गूढ़ रहस्यों को समाविष्ट किया है। उस गम्भीर्य अर्थ को टीकाकार पण्डितश्री राजमल्लजी पाण्डे ने अपनी निज स्वानुभवमयी सूक्ष्म प्रज्ञा के बल से सरल भाषा में प्रकाशित किया है।

उन्होंने शुद्धात्मा की अतिशयता को तो मुखरित किया ही है परन्तु उसके साथ शुद्धात्मा को अनुभव करने की सम्यक् कला भी बतायी है। टीका में वाक्य... वाक्य में... शुद्धता को प्रत्यक्ष आस्वादो.... प्रत्यक्ष आस्वादो का नाद प्रमुखरूप से ध्वनित होता है। अनेक रहस्यों को विशदता से उद्घाटित करनेवाली उनकी टीका में शुद्ध जीव वस्तु को आत्मसात् करानेवाली प्रेरणात्मक शैली का तो सहज दर्शन होता है, तदुपरान्त प्रयोगात्मक विधि को सर्वांग हृदयंगम करानेवाली सचोट, सरल और मधुर टीका के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं।

बालावबोध टीका के रचियता द्रव्यदृष्टिवन्त, सम्यक् प्रज्ञावन्त श्री राजमल्लजी साहेब का चित्रपट जो श्री राजकोट दिगम्बर जिन मन्दिर के स्वाध्याय भवन में अंकित है, वही फोटो इस कलशामृत में लिया गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री अर्थात् निज ध्येय के ध्यानी, आत्मज्ञानी, अध्यात्म के योगी, और अतीन्द्रिय आनन्दरस के भोगी, ऐसे आदर्श विश्व विभूति हुए। उनके द्वारा जो शुद्धात्म तत्त्व का वास्तविक विश्लेषण हुआ, वह पूर्व के सैकड़ों वर्षों में नहीं हुआ था, वैसा स्पष्टीकरण मिला है।

श्री कलशटीका में अजीव अधिकार में सन्त अस्ति-नास्तिपरक अनेकान्तमयी शैली के माध्यम से परसन्मुख झुकी हुई परिणति को आत्मसन्मुख कराते हैं। परलक्ष्यी भावों में स्वामित्वबुद्धि छुड़ाकर ध्रुवस्वभाव में एकत्व स्थापित कराते हैं।

जीव अधिकार से भी किसी अपेक्षा से अजीव अधिकार को ऊँचा कहा है, क्योंकि अनादि से अजीव में जीवपने की भ्रान्ति रही है, इसलिए जीव की सत्ता से अजीव की सत्ता का भेदज्ञान कराकर अजीव में से जीवपने की मान्यता छुड़ाते हैं। इस अधिकार में राग से, विकल्प से और पर्याय के भेदों से भिन्न अपना शुद्धात्मा कैसा है, उसका स्पष्ट दर्शन कराया है।

कलश 35 में कहते हैं कि **'चित् दत्ती व्याप्त सर्वस्व सारः'** जानना देखना ऐसा त्रिकाल चेतना शक्तिमयी स्वभाव है, वह एक ही सर्वस्व सार है। **'अमी सर्वेपि पौदगलिकाः भावाभावा अतः अतिरिक्ताः'** शुद्ध चैतन्य से भिन्न जितने भाव हैं, वे समस्त पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं। वह पुद्गल का चित्राम है। और वह चैतन्यस्वभाव से खाली है। इस प्रकार भेद अजीव, अचेतन, अशुद्ध और पुद्गल कहे गये हैं। अखण्डानन्द त्रिकाली भगवान है, उसे जीव, चेतन शुद्ध और ज्ञानमय कहा गया है। यह सब भेद जीव तो नहीं, परन्तु वे जीव की अनुभूति में भी समाहित नहीं होते। 39 कलश में कहा है कि **'एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं'** हे भव्यों! यह भेदरूप भावों को एक पुद्गल की रचना है, ऐसा निःसन्देहरूप से जानो। इस प्रकार उत्कृष्ट भेदज्ञान का रसायन दिया है। कलश 37 में शुद्धस्वरूप के अनुभवशील को यह भेद दृष्टिगोचर नहीं होते। यह भेदरूप भाव भिन्न तो है, परन्तु वे वस्तुरूप हैं या अवस्तुरूप? कहते हैं, वे अवस्तुरूप हैं। इस प्रकार जीव-अजीव के भेदज्ञान की पराकाष्ठा बतायी है।

आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव ने समयसार में जीवाजीव अधिकार के पश्चात् तुरन्त ही कर्ताकर्म अधिकार लिखा है। इस अधिकार की उनकी दृष्टि में कितनी महत्ता है, यह सहज ज्ञात हो जाता है। दिगम्बर शास्त्रों में कर्ताकर्म अधिकार सबसे बड़ा और स्पेशल अधिकार है। कर्ताकर्म के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् बात तो बहुत जगह देखने को मिलती है परन्तु इस अधिकार को अलग से और सविस्तारपूर्वक लिखा हो तो वह समयसार में है। अपने को प्रश्न हो कि इस अधिकार को अलग किसलिए लिखा? तो कहते हैं—नौ तत्त्वों में कर्ताकर्म नाम का तत्त्व अलग से नहीं आता था, इसलिए लिखा है। और जीव को अनादि से कर्ताकर्म सम्बन्धी भूलरूप भ्रान्ति है। जब तक कर्ताबुद्धि का पक्ष हो, तब तक ज्ञाता के पक्ष में भी नहीं आता। इसलिए इस अधिकार में आचार्यदेव ने जिनागम का हार्द प्रगट किया है।

विश्व के अन्य दर्शन भी जीव और अजीव की सत्ता को भिन्न-भिन्न तो स्वीकार करते हैं परन्तु उन दो द्रव्यों के बीच कर्ताकर्म सम्बन्ध को अबाधित रखते हैं। जबकि जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है कि दो द्रव्यों के बीच कर्ताकर्म सम्बन्ध को उत्थापित करता है। इस प्रकार दो द्रव्यों के बीच कर्ताकर्मपने की भ्रान्ति का अवसान कराकर... अकर्ता / ज्ञातास्वभाव में आमन्त्रित करते हैं।

नोकर्म-कर्म और चेतन के बीच कर्ताकर्म सम्बन्ध तब ही शक्य होता है कि उन दोनों की सत्ता

एक हो तो! जबकि वस्तु स्वतन्त्रता के सिद्धान्त से दो द्रव्यों का एक होना अशक्य है। इसलिए कर्ताकर्म की व्यवस्था एक पदार्थ में ही घटित होती है। कर्तापना एक पदार्थ में, कर्मपना दूसरे पदार्थ में और तीसरे पदार्थ में उसका फल आवे, ऐसा किस प्रकार शक्य हो सकता है? इस प्रकार अनादि से चली आ रही कर्ताकर्म सम्बन्धी विपरीतता का परिहार कराकर, कर्ताकर्म स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में सम्यक् अवलोकन कराया है—

1. इस अधिकार में छहों द्रव्यों की वस्तु स्वतन्त्रता बतलाकर परद्रव्य में कर्तृत्वबुद्धि की मान्यता का नाश कराया है।

2. आत्मा अपने परिणाम का कर्ता है परन्तु परद्रव्य के परिणाम का कर्ता नहीं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने परिणाम को करे परन्तु भिन्न द्रव्य के परिणाम को किस प्रकार करे! इस प्रकार स्वद्रव्य के परिणाम ही स्वद्रव्य का कर्म है, इस बात को सिद्ध करते हैं।

3. जैसे एक परिणाम के दो कर्ता नहीं, तथा दो द्रव्य साथ मिलकर एक परिणाम को करते नहीं। प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय क्रमबद्ध अपने परिणामों को ही करता है और उस समय का परिणाम उस द्रव्य का कर्म है। इसलिए जहाँ कर्ताकर्म भाव घटित होता है, वहाँ ही व्याप्य व्यापकभाव होता है।

4. कर्ताकर्म भाव दो द्रव्यों के बीच कभी होता ही नहीं, परन्तु एक द्रव्य में ही होता है। अब जीव के अज्ञान का निमित्त पाकर कार्मणवर्गणा कर्मरूप बँधी; उस पुराने कर्म का निमित्त पाकर जीव में रागादि परिणाम हुए। जीव और कर्म के बीच निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताकर परस्पर अकर्तापना बताकर और ज्ञाताभाव में पदार्पण कराते हैं। निष्कर्ष यह है कि दो पदार्थों के बीच कर्ताकर्म सम्बन्ध न घटित कर एक द्रव्य में ही कर्ताकर्म सम्बन्ध घटित कर वस्तु स्वतन्त्रता की मर्यादा को अखण्डित रखा गया है।

5. जब परद्रव्यों से पृथक्ता और अकर्तृत्व दर्शाना हो, तब अपने परिणाम का जीव ही कर्ता है, ऐसा दृढ़ रूप से स्थापित करते हैं। आगे जाने पर कहते हैं कि जीव रागादि भावों का कर्ता नहीं, क्योंकि जहाँ तत्पना हो, वहाँ ही कर्ताकर्म भाव सम्भव है। इस कर्ताकर्म भाव में मात्र समव्याप्ति ही स्वीकार्य है, जबकि रागादिभावों के साथ विषम व्याप्ति होने से उनके साथ कर्ताकर्म भाव का परिहार किया गया है। इस प्रकार इस अधिकार में कर्ताकर्म के स्थूल भेदज्ञान के प्रकार से लेकर चरम सीमा तक का सूक्ष्मतर भेदज्ञान कराया है।

इस अधिकार की श्रेष्ठता और मौलिकता यह है कि स्थूल अज्ञान का ज्ञान कराकर और वह अज्ञान सूक्ष्म रीति से कहाँ तक विस्तरित है, इसका विशदता से दर्शन कराया है। एक बार भी अज्ञान का ज्ञान हो तो फिर वह अज्ञान नहीं रहता। भेदज्ञान के स्थूलता से सूक्ष्मता तक के प्रकार :—

1. आत्मा और नोकर्म से भेदज्ञान।

2. आत्मा और जड़कर्म से भेदज्ञान।

3. आत्मा और विकारी भावों से भेदज्ञान।

4. आत्मा और आत्मा सम्बन्धी के विकल्प से भेदज्ञान और

5. आत्मा निर्मल परिणाम का भी उपचार से-व्यवहार से कर्ता है। निश्चय से तो निर्मल परिणाम का कर्ता निर्मल परिणाम ही है। आत्मा स्वभाव से अकर्ता है, उसे कर्ता कहना, वही व्यवहार हुआ। इस प्रकार शुरुआत से लेकर ठेठ मूल तक का तलस्पर्शी भेदज्ञान करानेवाला जिनागम का सर्वोत्कृष्ट, सम्पूर्ण और महान अधिकार है।

आध्यात्मिक सन्तपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा इस दूसरे भाग में के कुल 34 प्रवचन अजीव अधिकार तथा कर्ताकर्म अधिकार के अक्षरशः प्रकाशित करते हुए हम धन्यता का अनुभव करते हैं।

इन समग्र प्रवचनों को सी.डी. से गुजराती में अक्षरशः कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा सुनकर चैक करने का कार्य ईलाबहिन, राजकोट द्वारा किया गया है। समग्र प्रवचनों को पढ़कर कोष्ठक भरने और चैक करने का कार्य स्व. चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर आत्महित साधे इस उद्देश्य से प्रस्तुत कलशामृत भाग - 2 का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। हम सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में आत्मा अकर्ता है, यह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है। ऐसे अकर्तास्वभाव को दृढ़रूप से भव्य जीवों के हृदय में स्थापित कराकर, अनादि के कर्तृत्व के भार से निर्भार होने का इस ग्रन्थ में सम्यक् बोध प्रदान किया गया है। सभी जीव अकर्ता-ज्ञाता स्वभाव में स्थिरता करके आत्मा के अकलुष श्रोत में स्नान कर पावन हों, इसी मंगल भावना के साथ....

प्रस्तुत ग्रन्थ www.vitragvani.com पर उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से

तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	कलश	दिनांक	पृष्ठ सं.
४१	३२-३३	१५-०७-१९७७	००१
४२	३३	१७-०७-१९७७	०१८
४३	३४	१८-०७-१९७७	०३४
४४	३५-३६	१९-०७-१९७७	०५१
४५	३६	२०-०७-१९७७	०६९
४६	३७	२१-०७-१९७७	०८५
४७	३८-३९	२२-०७-१९७७	१०१
४८	३९-४०	२४-०७-१९७७	११९
४९	४० से ४२	२५-०७-१९७७	१३७
५०	४२-४३	२६-०७-१९७७	१५५
५१	४३	२७-०७-१९७७	१७२
५२	४४	२८-०७-१९७७	१८८
५३	४४-४५	२९-०७-१९७७	२०७
५४	४५-४६	३१-०७-१९७७	२२४
५५	४६-४७	०१-०८-१९७७	२४१
५६	४७	०२-०८-१९७७	२५७
५७	४८	०३-०८-१९७७	२७४
५८	४८	०४-०८-१९७७	२८९
५९	४८	०५-०८-१९७७	३०६
६०	४९	०७-०८-१९७७	३२१
६१	४९	०८-०८-१९७७	३३८
६२	५०	०९-०८-१९७७	३५५

৬৩	৫০	১০-০৮-১৯৭৬	৩৬১
৬৪	৫০	১১-০৮-১৯৭৬	৩৮৬
৬৫	৫০-৫১	১২-০৮-১৯৭৬	৪০১
৬৬	৫১	১৪-০৮-১৯৭৬	৪১৯
৬৭	৫১-৫২	১৫-০৮-১৯৭৬	৪৩৬
৬৮	৫৩	১৬-০৮-১৯৭৬	৪৫৫
৬৯	৫৪-৫৫	১৬-০৮-১৯৭৬	৪৬৪
৭০	৫৫	১৮-০৮-১৯৭৬	৪৯৩
৭১	৫৬-৫৬	১৯-০৮-১৯৭৬	৫০৮
৭২	৫৬-৫৮	২০-০৮-১৯৭৬	৫২৬
৭৩	৫৮-৫৯	২১-০৮-১৯৭৬	৫৪৩
৭৪	৫৯-৬০	২৩-০৮-১৯৭৬	৫৬০

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

कलशामृत

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
श्री समयसार कलश पर प्रवचन)
(भाग - २)

आषाढ़ वद १४, शुक्रवार, दिनांक १५-०७-१९७७
कलश-३२-३३, प्रवचन-४१

भावार्थ इस प्रकार है कि अखाड़े में तो शुद्धांग दिखाता है। क्या कहते हैं ? नाचनेवाले स्वयं अपना परिणमन दिखाते हैं, ऐसा यहाँ भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य है, इसका शुद्धांग इसका पवित्र परिणमन, यह अखाड़े में दिखाते हैं। उपदेश में बाहर में दिखाते हैं, कि यह आत्मा तो शरीर, कर्म से तो रहित है, किन्तु देव-गुरु-शास्त्र से भी यह रहित है और इसमें जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग होता है, उससे भी यह भिन्न है। ऐसा शुद्ध चैतन्य पवित्र भगवान का आश्रय लेने से... जीव को क्या प्राप्त करना है, यह वह बात है।

यह शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसके सन्मुख होकर, उसका शुद्ध चैतन्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन होना, यह शुद्धांगपना है। जैसे शरीर के अवयव यह हैं। ऐसे शुद्ध भगवान की शुद्ध परिणति, वह इसका अवयव है। आहाहा! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप (है), उसे प्राप्त करने की पद्धति यह है, कि उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करना। यह शुद्ध चैतन्य परमात्मास्वरूप से (विराजता है)। आहाहा! उसका आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्मरूप दशा, सुखरूप दशा मोक्ष की

मार्ग की दशा (प्रगट होती है) इसको यहाँ शुद्धांग-शुद्ध के अंग इसकी परिणति, वह शुद्ध का अंग है। आहाहा!

यह **'शुद्धांग'** है? **दिखाता है।** सन्त जगत को दिखाते हैं कि यह आत्मा पवित्र परमात्मस्वरूप (है), इसका आश्रय करने से जो धर्म की निर्मलदशा होती है, वह ही शुद्धांग है, यह शुद्ध की दशा है, यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसा दिखाते हैं। **वहाँ जितने देखनेवाले हैं..** आहाहा! **वे सब एक ही साथ मग्न होकर देखते हैं..** यहाँ तो ऐसी बात लेना है। आहाहा! नाटक में देखते हैं तो हजारों व्यक्ति एक साथ देखते हैं न? आहाहा! ऐसे सन्तों ने, मुनियों ने, धर्मात्मा अथवा केवलियों ने शुद्धांगस्वरूप जगत को प्रसिद्ध किया। वस्तु तो शुद्ध है, किन्तु इसकी सन्मुखता की परिणति जिसने प्रगट की, ऐसी जिसने जगत को दशा बतायी, कि देखो भाई! मार्ग यह है। आहाहा! **देखनेवाले हैं, वे सब एक ही साथ ही...** आहाहा! **मग्न होकर देखते हैं...** अखाड़े में।

उसी प्रकार जीव का स्वरूप शुद्धरूप दिखलाया होने पर... आहाहा! यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, किन्तु पामरता में प्रभुता की इसको खबर नहीं। आहाहा! वर्तमान में अल्पज्ञदशा और रागादि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम (होते हैं), उनका माहात्म्य और महत्ता में भगवान की महत्ता भूल गया है। आहाहा! आत्मा सिवाय बाह्य चीजों की विशेषता भासित होने से... आहाहा! आत्मा की विशेषता क्या है, वह भूल गया है। आहाहा! या तो इसको लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति, सुन्दर शरीर, इसकी जिसको अन्दर विशेषता भासित होती है, उसने आत्मा को ढाँक दिया है। भगवान की जो परिणति की विशेषता है। यह वस्तु स्वरूप त्रिकाली सामान्य है किन्तु इसके आश्रय से होती शुद्ध परिणति यह धर्म। इसको इसने ढाँक दिया है। बाहर की विशेषता की।

मुनियों, केवलियों ने इस आत्मा को नाटक में बताते हैं ऐसे बता दिया, प्रभु! देखो। तुम आत्मा अतीन्द्रिय, ज्ञान और आनन्दस्वरूप (हो)। इसका भान होते, इसकी परिणति में, पर्याय में पवित्रता जो प्रगट होती है, वह आत्मा। ऐसा जगत के देखनेवालों को दिखाया। आहाहा! ऐसी बातें। आहाहा! जो देखनेयोग्य है, वह दिखाया। आहाहा! समझ में आया? बाहर के देखने में तुम अन्धे हो जाओ, कहते हैं। आहाहा! और अन्दर देखने

के लिए हजार नेत्र खोल दो। आहाहा! ऐसा जो खोल कर... कली जैसी खिले, वैसे ही भगवान शक्तिरूप जो था इसका भान करके खिल गया। पर्याय में यह कली खिली। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की शक्तिरूप कली तो थी। किन्तु उसकी एकाग्रता से उसकी कली खिली। यह यहाँ जगत को प्रसिद्ध किया। देखो, भाई! आत्मा खिले तब ऐसा होता है। आहाहा! ऐसी बातें। समझ में आया?

एक ही साथ मग्न होकर देखते हैं... आहाहा! यहाँ तो ऐसा जीव लिया। आहाहा! **उसी प्रकार जीव का स्वरूप शुद्धरूप दिखलाया होने पर सर्व ही जीवों के द्वारा अनुभव करने योग्य है।** सभी जीवों को। आहाहा! भाई! करने योग्य हो तो यह है। और यह इसकी पद्धति है, कि अन्तर स्वरूप है, उसके सन्मुख होना, यह इसकी पद्धति है और अन्तर्मुख चीज़ है, यह तो त्रिकाल है। समझ में आया? ऐसा उपदेश है, लो। आहाहा! भगवान चैतन्यशक्ति और आनन्दशक्ति का तो सागर है, परन्तु पर्याय के किनारे उसको लाये। समुद्र जैसे उछल कर किनारे बाढ़ आती है ऐसे भगवान आनन्दसागर, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, इसको अन्तर की एकाग्रता से पर्याय में इसकी बाढ़, उफान आया। ज्वार आया ज्वार। अरे.. रे..! ऐसी बात। यह शुद्धांग को जगत के सामने जाहिर किया है। बापू! आत्मा ऐसा है। समझ में आया? बाकी सब धूलधाणी है। आहाहा!

वह कल बारोट सेठिया को लेकर आये थे न? यह बारोट जब आये, तब एक कड़ी बोलता है। कि अभी साधु का आचरण कैसी हो गया है कि सुबह चाय और पानी, रोटी के समय माल और पानी, फिर तानकर सोना और अन्त में सब धूलधाणी। कल बारोट नहीं आया था? यह सेठ हो इसको यहाँ लाये। वहाँ बराबर पसन्द नहीं पड़े (इसलिए कहे) वहाँ चलो वहाँ। वह बेचारा वहाँ कच्छ में मुम्बई का। वह कहे हम तो कभी मुम्बई आये नहीं, महाराज! कहा, हम तो सालों साल आते हैं। जगत को कहाँ पड़ी है? अरे.. रे..! मेरा क्या होगा? और मैं कौन हूँ? और मैं हूँ जो है, उसका भान होय तो इसकी दशा में क्या हो? और यह भान दशा में होते इसको आनन्द आये। आहाहा! यह आनन्द के अंगों को यहाँ जगत के सामने जाहिर किया है। देखो! आत्मा ऐसा है। समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

सर्व ही जीवों के द्वारा अनुभव करने योग्य है। आहाहा! **कैसा है शान्तरस?** क्या कहा यह? बताया जो अंग। शान्तरस। वस्तु स्वयं शान्तरस से-अकषाय स्वभाव से भरी हुई है। इसके सन्मुख होते शान्तरस पर्याय में आया। अकषाय स्वभाव। जिसके साथ अनन्त आनन्द गर्भित है, ऐसा शान्तरस। आहाहा! **'आलोकमुच्छलंति' समस्त त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट है,..** पहले इतना अर्थ किया। यह आत्मा के आनन्द का रस है.. आहाहा! ऐसा शान्तरस कहीं इन्द्र के इन्द्रासन में भी नहीं। बेचारा कहा। बस! यह तुम सब सेठिया.. आहाहा! इनको शास्त्र में भिखारी कहा है। शास्त्र में भगवान ने भिखारी अर्थात् गरीब (कहा है)। ऐसा शब्द है। गरीब है, बरांक है, भिखारी है बेचारा। आहाहा! जिसको निज ऋद्धि की खबर नहीं और पर ऋद्धि की विशेषता में मोही होकर जो पड़ा है.. आहाहा! यह बेचारे बरांका-रांका है, भिखारी है-कहते हैं। देवीलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

जिसको तीन लोक के नाथ आनन्द सागर प्रभु! जिसकी दशा में शान्तरससहित प्रगट हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने पर उसको इसमें शान्तरस, आनन्दरस, गर्भित अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। मोक्षमार्ग में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। मोक्षमार्ग अर्थात् ऐसे के ऐसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र भाषा, ऐसे नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान के सन्मुख होते, वर्तमान दशा में-हालत में शान्तरस अनन्त आनन्द के गर्भित शान्तरस प्रगट होता है। आहाहा! इसका नाम धर्म है, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है, इसका नाम सुख के पन्थ में आया, ऐसा कहा जाए। बाकी सभी दु:ख के पन्थ पर दौड़ गये हैं। आहाहा! पुण्य और पाप, राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प.. आहाहा! इसके पन्थ पर दौड़ गया, वह दु:खी है। यह दु:ख को बटोर कर दु:ख का प्याला पीता है। आहाहा!

धर्मी जीव ने आनन्द का प्याला पिया, यह जगत को बताया। कि देखो भाई! धर्म इसको कहते हैं, भाई! शुद्धांग। आहाहा! इसमें तो ऐसे भी निषेध किया कि किसी निमित्त से वह शुद्धांग प्रगट हो, ऐसा नहीं। कोई देव-गुरु की कृपा से प्रगट हो या राग की मन्दता की क्रिया से प्रगट हो, यह वस्तु ऐसी नहीं। यह जीवस्वरूप का.. अन्तिम कलश है न? यह जीवस्वरूप जो भगवान पूर्ण आनन्द, पर से विमुख और स्व से सन्मुख होने पर वह

प्रगट होता है। और प्रगट होते इसको आनन्द और शान्तरस प्रगट होता है। आहाहा!

यहाँ तो '**आलोकमुच्छलति**' इसका अर्थ किया थोड़ा। कि **समस्त त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट है,..** एक तो यह अर्थ किया, कि आनन्द का रस जो आत्मा का शान्तरस, धर्मरस जो प्रगट हुआ, यह जगत में सर्वोत्कृष्ट है। इसके जैसी अधिकता और उत्कृष्टता कोई चीज़ जगत में है नहीं। **सर्वोत्कृष्ट है,..** और **'उच्छलति' उपादेय है..** एक बात यह कही। **अथवा लोकालोक का ज्ञाता है।** आहाहा! यह पर्याय में यह दशा ऐसी प्रगट हुई कि लोकालोक को जाने। आहाहा! समझ में आया?

लोकालोक का ज्ञाता है। ऐसा क्या कहा? कि इसकी पर्याय में इतनी ताकत प्रगट हुई... अन्तरशक्ति में तो थी, परन्तु पर्याय में प्रगट हुई कि जिससे लोकालोक जाने लोकालोक जाने यह तो इसकी एक महत्ता बताने के लिए। बाकी इसकी पर्याय इतनी उत्कृष्ट प्रगट हुई, कि जिसमें साधारण लोकालोक तो जानने में आ जाए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह किसी का कर्ता नहीं, परन्तु पूर्ण को जाने बिना रहता नहीं, ऐसी इसकी दशा है। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! तब लोगों को लगता है न कि (ऐसा) मार्ग यह सब 'सोनगढ़वाले' ने नया निकाला। बापू! नया नहीं बापू! अनादि का यह है, भाई! अरे..! तुझे तेरे भगवान की महत्ता नहीं। तेरे प्रभु की तुझे.. यह प्रभु, हों! भगवान प्रभु उनके पास रहे। तेरा परमात्मा, तेरा भगवान इसकी तुझे महिमा नहीं। इसकी महिमा पर में गयी। यह तो दया, दान, व्रत, भक्ति की और इससे होगा। यह महिमा पर में गयी। मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

अब अनुभव जिस प्रकार का है, उस प्रकार कहते हैं। 'निर्भरं' अति ही मग्नस्वरूप है। आहाहा! अन्तिम शब्द यह। भगवान आनन्द प्रभु आत्मा है। इसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, यह अतिशय मग्नरूप दशा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात लोगों को-व्यवहारवाले को कठिन लगे। इसलिए एकदम (कहे)। 'सोनगढ़' वाले ऐसा करते हैं। अरे..! प्रभु! ऐसा रहने दे, बापू! यह तो भगवान कहते हैं। समझ में आया? जीव का स्वभाव परिपूर्ण है, वैसा पर्याय में प्रगट होता है, यह जीव (अधिकार) के अन्तिम कलश में प्रसिद्ध किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह अनुभव में अतिशय मग्न है। ऐसा कहते हैं कि लोकालोक को जानते हैं। यह अपेक्षा से कहा। बाकी है तो अपनी पर्याय में मग्न। यह लोकालोक में मग्न नहीं। आहाहा! समझ में आया? श्रुतज्ञान में भी लोकालोक जानने में आता है, ऐसी उसकी ताकत है। आहाहा! एक ज्ञान की वर्तमान पर्याय में पूर्ण भगवान जानने में आये, ऐसी उसकी ताकत है। तो उस पर्याय में पूरा लोकालोक जानने में आये यह तो साधारण बात है। कारण कि लोकालोक जाने तो एक पर्याय है। ऐसी तो अनन्त पर्याय का पिण्ड सम्पूर्ण द्रव्य जब ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है... आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें लोकालोक जानने में आ जाए...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लोकालोक की बात। क्या कहते हैं? ऐसा करके अन्त में यह योगफल किया। यह लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहा। शान्तरस प्रगट हुआ है, किन्तु यह सब अन्तर्मग्न में अन्दर है। यह दशा कोई लोकालोक को जानने में बाहर नहीं गयी। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश इसलिए व्यक्ति को... सुना न होय ऐसा लगे। यह क्या निकाला? बापू! मार्ग यह है, भाई! तुम पहले हाँ तो करो। सुखी होने की, मोक्ष के मार्ग की यह रीति है और यही पद्धति है। यह बताया तुझे तो, हाँ तो करो। यहाँ तो सभी को अनुभव करने को कहा। समझ में आया? किन्तु यह मार्ग यह ही है, पद्धति यह ही है और इस रीति से ही प्राप्त होता है, इसकी हाँ तो... इसकी श्रद्धा तो कर। समझ में आया? आहाहा! **अति ही मग्नस्वरूप है।** लो, यह जीव अधिकार पहला पूरा किया।

अजीव अधिकार

कलश-३३

(शार्दूलविक्रीडित)

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा-
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत्।
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत्।।१-३३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'ज्ञानं विलसति' [ज्ञानं] जीव द्रव्य [विलसति] जैसा है, वैसा प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि अबतक विधिरूप से शुद्धांग तत्त्वरूप जीव का निरूपण किया अब आगे उसी जीव का प्रतिषेधरूप से निरूपण करते हैं। उसका विवरण-शुद्ध जीव है, टंकोत्कीर्ण है, चिद्रूप है - ऐसा कहना विधि कही जाती है। जीव का स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीव के नहीं, भावकर्म जीव का नहीं - ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है। कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है? 'मनो ह्लादयत्' [मनः] अन्तः करणेन्द्रिय को [ह्लादयत्] आनन्दरूप करता हुआ और कैसा होता हुआ? 'विशुद्धं' आठ कर्मों से रहितपनेकर स्वरूपरूप से परिणत हुआ। और कैसा होता हुआ? 'स्फुटत्' स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ। और कैसा होता हुआ? 'आत्मारामं' [आत्म] स्वस्वरूप ही है [आरामं] क्रीड़ावन जिसका ऐसा होता हुआ। और कैसा होता हुआ? 'अनन्तधाम' [अनन्त] मर्यादा से रहित है [धाम] तेजपुंज जिसका, ऐसा होता हुआ। और कैसा होता हुआ। 'अध्यक्षेण महसा नित्योदितं' [अध्यक्षेण] निरावरण प्रत्यक्ष [महसा] चैतन्यशक्ति के द्वारा [नित्योदितं] त्रिकाल शाश्वत है प्रताप जिसका ऐसा होता हुआ। और कैसा होता हुआ? 'धीरोदत्तां' [धीर] अडोल और [उदात्तं] सबसे बड़ा ऐसा होता हुआ। और कैसा होता हुआ? 'अनाकुलं' इन्द्रियजनित सुख-दुःख से रहित अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ। ऐसा जीव जैसे प्रगट हुआ उसे कहते हैं-

'आसंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसात्' [आसंसार] अनादि काल से [निबद्ध] जीव से मिली हुई चली आई है ऐसी [बन्धनविधि] ज्ञानावरणकर्म, दर्शनावरणकर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे हैं जो द्रव्यपिण्डरूप आठकर्म तथा भावकर्म हैं जो राग, द्वेष, मोह परिणाम इत्यादि हैं बहुत विकल्प, उनका [ध्वंसात्] विनाश से जीवस्वरूप जैसा कहा है, वैसा है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जल और कीचड़ जिस काल में एकत्र मिले हुए हैं, उसी काल जो स्वरूप का अनुभव किया जाये तो कीचड़ जल से भिन्न है, जल अपने स्वरूप है, उसी प्रकार संसार अवस्था में जीव कर्मबन्ध पर्यायरूप से एक क्षेत्र में मिला है। उसी अवस्था में जो शुद्ध स्वरूप का अनुभव किया जाये तो समस्त कर्म जीव स्वरूप से भिन्न हैं। जीव द्रव्य स्वच्छ स्वरूपरूप जैसा कहा वैसा है। ऐसी बुद्धि जिस प्रकार से उत्पन्न हुई, उसी को कहते हैं–'यत्पार्षदान् प्रत्याययत्' [यत्] जिस कारण से [पार्षदान्] गणधर मुनीश्वरों को [प्रत्याययत्] प्रतीति उत्पन्न कराकर। किस कारण से प्रतीति उत्पन्न हुई वही कहते हैं–'जीवाजीव विवेकपुष्कलदृशा' [जीव] चेतनद्रव्य, [अजीव] जड़कर्म–नोकर्म–भावकर्म उनके [विवेक] भिन्नभिन्नपने से [पुष्कल] विस्तीर्ण [दृशा] ज्ञानदृष्टि के द्वारा। जीव और कर्म का भिन्न–भिन्न अनुभव करने पर जीव जैसा कहा गया है, वैसा।।१–३३।।

कलश - ३३ पर प्रवचन

दूसरा अजीव अधिकार। ३३वाँ कलश। यह क्या अजीव अधिकार है? अन्दर कहेंगे। कि जीव अधिकार में आनन्द है, ज्ञान है, शान्ति है—ऐसा अपनी विधि से इसका वर्णन किया। अब इसमें निषेध से वर्णन (किया है) कि आत्मा में शरीर नहीं, वाणी नहीं, राग नहीं, गुणस्थान भेद नहीं। ऐसी निषेध से इसमें बात करेंगे। पहले में अस्ति से बात की थी कि आत्मा में आनन्द है, ज्ञान है, शुद्ध है, चैतन्य है, परिपूर्ण है। अब इसमें नहीं, ऐसी नास्ति से बात करते हैं। समझ में आया?

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा–
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत्।

आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो ह्लादयत्।।१–३३।।

जो अनन्त आनन्द का धाम भगवान आत्माराम है। आहाहा!

आहाहा! **'ज्ञानं विलसति' [ज्ञानं] जीव द्रव्य [विलसति] जैसा है, वैसा प्रगट होता है।** आहाहा! जैसा जिसका गम्भीर यह ज्ञान-दर्शन और आनन्दस्वरूप था, ऐसी ही पर्याय में आनन्द आदि गम्भीर दशा प्रगट हुई। आहाहा!

'चारित्रपाहुड' में कहा है न? कि यह प्रगट दशा जो है, मोक्ष का मार्ग, हों! अभी, उसको अक्षय और अमेय कहा है। वस्तु जो है, वह अक्षय और अमेय मर्यादा रहित तो है किन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में उसका भान हुआ, उस दशा को अक्षय और अमेय कहा है। 'चारित्रपाहुड', अष्टपाहुड में अक्षय... आहाहा! वह पर्याय अब नाश नहीं होती। आहाहा! और अमेय—जिसकी मर्यादा नहीं। ऐसी दशा हुई। यह तो मोक्ष के मार्ग की पर्याय की बात। आहाहा! वस्तु तो द्रव्य-गुण जो है, यह तो अक्षय अमेय है, (अ) मेय अर्थात् माप बिना की अमेय चीज़ है यह तो। आहाहा!

भगवान आत्मा का जो स्वसन्मुख की दशा का—सम्यग्दर्शन और ज्ञान-चारित्र का होना, यह अक्षय और अमेय है। आहाहा! यह भगवान राग और पुण्य की क्रिया से प्राप्त हो—ऐसा वह नहीं, ऐसा कहते हैं। अक्षय-अमेय वस्तु है, यह पर में नाश हो और रागादि क्रिया से कैसे प्राप्त हो? आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, बापू! आहा! अनन्त काल से कुछ किया नहीं इससे इसको ऐसा कठिन लगता है। और साधारण को तो ऐसा लगता है कि यह तो अकेली निश्चय की बात है। कोई व्यवहार से होता है, ऐसी बात तो आती नहीं। लेकिन यह तो ये कहते हैं कि व्यवहार से तीन काल में न हो, राग से नहीं हो, यह दशा जिसकी है। आहाहा! अक्षय-अमेय दशा अक्षय-अमेय चीज़ को आश्रय से हुई, वह राग के आश्रय से हो, यह तीन काल में है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

आबाल-गोपाल, शरीर छोटा हो, बड़ा हो, स्त्री का हो, पुरुष का हो, बालक का हो। भगवान तो अन्दर परिपूर्ण आनन्द से विराजमान है। आहाहा! इसमें यह सब नहीं। बाल, युवान, वृद्ध, स्त्री, कुटुम्ब, देह आदि उसमें नहीं। आहाहा! अजीव अधिकार है न? ये सब

अजीव हैं। अजीव अर्थात् यह जीव नहीं। आत्मा और अनात्मा नहीं आया था? आहाहा! यह आत्मा सिवाय दूसरी चीज़ें सब अनात्मा है। ये यह आत्मा नहीं। यह अनात्मा का प्रभु आत्मा में अभाव है। आहाहा! परमेश्वर, त्रिलोकनाथ, तीर्थंकरदेव यह भी अनात्मा। इस आत्मा की अपेक्षा से पर है। उनका इसमें अभाव है। पंकजभाई! मुम्बई में ऐसा मिले ऐसा नहीं। थोड़ा बहुत आये वहाँ। परन्तु इतना सब एक साथ बहुत सभी बात (नहीं आये)। आहाहा! क्या हो? मार्ग को... आहाहा! प्रभु साक्षात् विराजते हैं न। यह भगवान विराजते हैं और यह भगवान अन्दर साक्षात् विराजता है। आहाहा! इसका आश्रय लेते, जैसा है वैसा प्रगट होता है। यह वस्तु जैसी है ऐसी इसकी दशा में वीतरागपने, ज्ञानपने, आनन्दपने प्रगट होता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि अबतक विधिरूप से शुद्धांग तत्त्वरूप जीव का निरूपण किया... जीव अधिकार। विधि अर्थात् 'है'—ऐसा। जीव ऐसा है... जीव ऐसा है... जीव ऐसा है... **शुद्धांग तत्त्वरूप जीव का निरूपण किया...** उसकी पर्याय ऐसी हो, उसकी पर्याय ऐसी हो, पवित्र हो, वीतरागता हो... आहाहा! ऐसा कथन किया। यह तो पूरा संसार जिसमें नहीं। वास्तव में संसार है, यह मिथ्यात्व संसार है। मिथ्यात्व, वह संसार है। जो मिथ्यात्व, यह संसार (है), वह स्वरूप में नहीं। और जहाँ सम्यग्दर्शन होता है तो इसकी पर्याय में भी मिथ्यात्व और संसार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अबतक विधिरूप से शुद्धांग तत्त्वरूप जीव का निरूपण किया, अब आगे उसी जीव का प्रतिषेधरूप से निरूपण करते हैं। उसका विवरण... उसका कथन। **शुद्ध जीव है, टंकोत्कीर्ण है,...** शुद्ध वस्तु है। टंकोत्कीर्ण ऐसी की ऐसी वस्तु ऐसी शाश्वत ध्रुव पड़ी है। आहाहा! यह सब विधि से कहा जाता है। **चिद्रूप है...** ज्ञानरूप है... ज्ञानरूप है... अकेला जिसका स्वरूप ज्ञानरूप (है)। भगवान आत्मा का स्वरूप-स्व-रूप ज्ञानरूप। यह ज्ञानरूप है। ऐसा अस्ति से सिद्ध किया। आहाहा! **ऐसा कहना विधि कही जाती है।** है न? यह अस्ति से कहा। विधि अर्थात् अस्ति से। भगवान चिद्रूप है। जिसका स्वरूप ज्ञान है, त्रिकाली ज्ञान की ज्योतिस्वरूप है, शाश्वत है, टंकोत्कीर्ण ही, ऐसा जो कहा यह विधि। अस्ति से कहा, ऐसा। अरे! ऐसी कहाँ व्यक्ति को फुर्सत कहाँ है? आहाहा!

रात्रि में विकल्प आया था। यह बाईयाँ बनाती हैं न ? सेव को क्या कहा ? बड़ी और पापड़। अर..र..! इस समय जाने ऐसा... मूँग होती है न ? मूँग के, उड़द के, चावल के, और ज्वार के भी बनाते हैं। दो-चार बाईयाँ इकट्ठी होकर के पापड़... पापड़ (बनाती हैं)। आहाहा! तब सब सूख गए वहीं के वहीं। यह सब क्रिया जड़ की होती है, उसका जाननेवाला मैं भिन्न हूँ। यह नजर में नहीं रहा। नजर में वह क्रिया होती है और इसमें ऐसा हुआ... इसमें से ऐसा हुआ... इसमें से ऐसा हुआ... आहाहा! फिर यह पापड़ को बराबर सेंकना आना चाहिए। इस तरफ बहुत जल न जाए, इस तरफ जल न जाए। आहाहा! क्या है ? प्रभु! क्या है यह ? यह तो सब जड़ की क्रिया है। यह तेरा कर्तव्य नहीं और तुमने किया नहीं। तेरे में यह नहीं। यहाँ निषेध आता है न ? यह क्रियाएँ तेरे में नहीं। आहाहा! ऐसा अभिमान खिसक जाना.. कठिन काम। आहाहा! कहो, पंकजभाई! ऐसे हीरे को परखते हो न... आहाहा! इसमें फिर ऐसे हीरा माणिक की खपत (बिक्री) हुई दो दिन में हजार-दो हजार पैदा हो जाये। आहाहा! आज तो दिन कोई उगा था न... तुम्हारे सामने देखा इसने। आहाहा! यह तो दृष्टान्त है। एक को क्या सबके घर जो जिस जाति का हो, यह करता है न। आहाहा! करता नहीं, होता है। यह हुई क्रिया भगवान आत्मा में नहीं। आहाहा! ऐसे अजीव के द्रव्य और गुण और अजीव की पर्यायें और राग भी एक अजीव है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम इसमें (आत्मा में) नहीं, ऐसे निषेध से अब अस्ति करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है। आहाहा! क्या कहा ? देखो!

जीव का स्वरूप गुणस्थान नहीं,... आहाहा! रागादि तो फिर लेंगे। यह पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा गुणस्थान ऐसे भेद जीव में नहीं, यह जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! उसमें अस्ति से कहा, अब यहाँ नास्ति से कहते हैं। गुणस्थान के भेद, वह आत्मा में नहीं। आहाहा!

कर्म-नोकर्म जीव के नहीं,... यह जड़कर्म; शरीर और वाणी की क्रिया, यह नोकर्म। शरीर और वाणी की क्रिया आदि वह नोकर्म, यह जीव में नहीं। आहाहा! यह शरीर की हिलने-चलने की क्रिया होती है, यह जीव में नहीं। बोलने की क्रिया वाणी की होती है नोकर्म की... आहाहा! यह भगवान आत्मा में नहीं। यह तो अजीव में है। आहाहा!

पहले से यह कहा था न? जीव-अजीव विवेक। पहले है न, यह आगे आयेगा। **जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा** जीव-अजीव की। भिन्नता की विस्तीर्ण दशा, विशाल दशा, विवेक दशा। आहाहा! पहला पद है न? द्रव्यकर्म, नोकर्म जीव का नहीं, भावकर्म जीव का नहीं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम और शास्त्र के ओर की बुद्धि जो व्यभिचारिणी है... आहाहा! यह जीव में नहीं। आहाहा! ऐसा है।

ऐसा कहना प्रतिषेध कहलाता है। वह आया था न कि **चिद्रूप है, ऐसा कहना विधि कही जाती है।** ऊपर आया था। और यह कहना कि **प्रतिषेध कहलाता है।** आहाहा! **कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है?** भगवान जीवद्रव्य, ज्ञान अर्थात् जीवद्रव्य। जीवद्रव्य **कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है?** पर्याय में। समझ में आया? अरे! ऐसी बात कोई समय उपाश्रय में नहीं मिले, मन्दिर में मिले नहीं। ऐई! शान्तिभाई! हमारे ब्रह्मचारी शान्तिभाई हैं। आहाहा! ऐसी बात... आहाहा! अन्दर में आनन्द से समुद्र डोलता है इसमें ऐसा गुणस्थान के, विकार के, भावकर्म के भाव प्रभु! इसमें नहीं। आहाहा! ऐसा तेरा स्वरूप है। आहाहा! इसको तुम पहचानो, ज्ञान करो, श्रद्धा करो और रमो। तो तेरे सुख के पन्थ पर आते सुख प्राप्त होगा। पूर्ण सुख, यह मोक्ष। आहाहा!

कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है? आहाहा! ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा प्रगट होते कैसा होता है? **'मनो ह्लादयत्' अन्तः करणेन्द्रिय को आनन्दरूप करता हुआ...** आहाहा! कहते हैं कि यह भगवान आत्मा प्रगट होता है अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान में यह जानने में आता है, किन्तु इसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता हुआ प्रगट होता है। आहाहा! जो पुण्य-पाप के, रागादि के भाव थे, यह तो दुःखरूप भाव थे। इसमें उनका तो अभाव है। ऐसा जो स्वभावभाव जहाँ प्रगट हुआ, कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्दरूप करता हुआ प्रगट होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द आता है, कहते हैं।

लोग कहते हैं न कि भाई! चारित्र तो दुःखरूप है, महा कष्टदायक है, दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, ऐसा चारित्र है। ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता हुआ चारित्र प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें।

अब पूरी दुनिया में पड़ना। पूरे दिन यह होली सुलगती है। इसमें फिर यह। ऐई..! धर्मचन्दजी! दवाखाना, यह दवा। लड़का काम करता हो और बापूजी आये इसलिए ओहो! बापूजी मेरी सम्हाल तो लेते हैं। आहाहा! भगवान! किन्तु तुमने तुम्हारी सम्हाल नहीं की, हों! तेरी दुकान नहीं चलायी तुमने। तुम्हारी दुकान का व्यापार तो आनन्दगर्भित पर्याय यह तेरा व्यापार है। आहाहा! क्या कहा?

'मनो ह्लादयत्' अन्तः करणेन्द्रिय... यह तो निमित्त से बात की। आत्मा की दशा में आनन्दरूप करता हुआ यह जीव प्रगट होता है। आहाहा! जो शक्तिरूप से अतीन्द्रिय आनन्द था अर्थात् कि जिसको सामर्थ्य ही अतीन्द्रिय आनन्द था। ऐसी सामर्थ्य को जहाँ प्रगटपने पर्याय में आता है। आहाहा! धर्म होते अतीन्द्रिय आनन्द का गर्भित स्वाद साथ में होता है, कहते हैं। आहाहा! जैसे संसार का पैसा या आबरू, कीर्ति के स्वाद में विकल्प से जैसे सुख मानता है, यह दुःख है। वहाँ विकल्प से मानता है कि (सुख है)। यहाँ जाते कहते हैं कि... आहाहा! यह निर्विकल्प दृष्टि और अनुभव होने पर तो आत्मा पर्याय में आता है यह अनन्त आनन्द लेता आता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। बाहर में घिर गया है, इसलिए यह अन्तर चीज़ घिरे बिना की इसको सूझती नहीं है। आहाहा! घेरा डाल दिया है। नहीं आता? आहाहा! मोह तृष्णा ने घेरा डाला। चौथी गाथा में आता है न? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ आत्मा अस्ति वस्तुरूप से जो वर्णन किया, अब इसको कहते हैं कि नास्ति से वर्णन करते हैं। इसमें अभी दुःख नहीं। धर्म प्रगट होने पर उसको अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। ऐई..! समझ में आया? **आनन्दरूप करता हुआ...** प्रगट होता है। आहाहा! **और कैसा होता हुआ? 'विशुद्धं' आठ कर्मों से रहितपने...** एकदम पूर्ण दशा ली। आठ कर्मों से... विशुद्ध है न? विशेषरूप शुद्ध। **स्वरूपरूप से परिणत हुआ।** आहाहा! आठ कर्म से रहित और अपने शुद्ध स्वरूप से परिणमता हुआ-सहित। आहाहा! ऐसा होता प्रगट होता है।

और **'स्फुटत्' कैसा होता हुआ? 'स्फुटत्' स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ।** आहाहा! है न? स्फुट—प्रगट, स्पष्ट। आहाहा! **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ...** यह

अपने आया था, नहीं ? बन्धविनाशनार्थ। आनन्द की अनुभूति जिसका लक्षण, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान। स्वसंवेदनज्ञान उसे कहते हैं कि जिसमें अनुभूति—आनन्द की अनुभूति का भाव अन्दर इकट्ठा है और उस अनुभूति का आनन्दमात्र जिसका लक्षण है। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! समझ में आया इसमें ? सब बातें ऐसी हैं।

कहते हैं, **'स्फुटत्' स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ।** आहाहा! स्वयं स्व, अपना सं-प्रत्यक्ष वेदन। ऐसा प्रत्यक्ष होता हुआ प्रगट होता है। आहाहा! कली जैसी खिली और खिले और बाहर यह पूरी हो, ऐसी यह कली खिल गयी, कहते हैं। भगवान जो संकोचरूप से पर्याय में था, शक्ति में तो पूर्ण था किन्तु पर्याय में जो अवस्था में संकोच था, यह संकोच टूट कर कली का विकास हो गया। कमल का फूल आता है न ? हजार पंखुड़ी का। ऐसा तो वहाँ है। गुजरात में 'चीखली' नहीं ? गुजरात में 'चीखली' है। वहाँ एक बड़ा तालाब है। वहाँ हजार पंखुड़ी का गुलाब होता है। हम उस दिन वहाँ नहीं गये थे। सूख गया था। लेकिन कहे, यहाँ हजार पंखुड़ी का गुलाब होता है। एक गुलाब का फूल (इसकी) हजार पंखुड़ी। गुजरात में 'चीखली' है 'चीखली'। वहाँ गये थे। व्याख्यान वाँचा था। बहुत व्यक्ति इकट्ठे हुए थे। (संवत्) २०१३ की साल में 'मुम्बई' जाते चीखली (आता है)। वहाँ तो कोई ऐसा कहा था कि अमुक स्थान तो लाख पंखुड़ी का कमल है। वहाँ सुना है। तालाब के पास निकले थे तब बताया था कि इस तालाब में हजार पंखुड़ी का कमल होता है। वहाँ किसी ने ऐसा भी कहा कि लाख पंखुड़ी का कमल होता है। ऐसे खिले तब लाख पंखुड़ी से खिल निकले।

इसी प्रकार यह अनन्त आत्मा भगवान अनन्त शक्तियाँ, इसकी पर्याय में अनन्त-अनन्त शक्ति की विकासरूप से प्रगट होता है। आहाहा! वह तो लाख ही है। यहाँ तो अनन्त है। ऐसा मार्ग है।

अरे.. रे..! सुनने मिले नहीं इसको। इसकी रीति और पद्धति क्या है ? यह प्रगट हो, तब क्या दशा होती है ? आहाहा! मोक्षमार्ग प्रगट हो और पूर्ण प्रगट हो उसकी दशा कैसी होती है ? आहाहा! और प्रगट होने की रीति की पद्धति कैसी है ? यह पर के अभावस्वभाव से प्रगट होता है। आहाहा! इसको यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से भी प्रगट हो, ऐसा मानो

तो तुम्हारा अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं। नहीं तो एकान्त है, ऐसा कहते हैं। एकान्त है। एक 'ज्ञानमति' है न? यह फिर ऐसा कहती है, एकान्त है। अब यह पच्चीस-पच्चीस लाख के बनाते हैं, नहीं? जम्बू। वहाँ कहीं जम्बू दीप बनवाते हैं। दिल्ली-दिल्ली। एक मेरु बनवाती हैं बड़ा मेरु। इसमें क्या हुआ? बापू! भाई! आहाहा! इन लोगों का ऐसा मानना है कि यह जो व्रतादि (पालते हैं)... यद्यपि जो कि व्रत तो हैं नहीं, समकित बिना व्रत हो सकते ही नहीं, किन्तु यह माना हुआ व्रत है, इससे क्रम-क्रम से हमारा कल्याण होगा। प्रभु! उन लोगों को कठिन लगे, दुःख लगे। किन्तु यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं... आहाहा!

यह प्रत्यक्ष होते प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में भी अंश में प्रगट है। तेरहवें गुणस्थान में प्रत्यक्ष पूर्ण प्रगट है। आहाहा! दूज है, वह फिर पूर्णिमारूप होती है। यद्यपि दूज का अभाव होकर होती है, किन्तु भाषा तो ऐसी कही जाती है न? ऐसे आत्मा का स्व-संवेदन सुख आनन्द की अनुभूति जिसका एक ही लक्षण है। ऐसा स्वसंवेदनज्ञान, यह प्रत्यक्ष होता है, वहाँ साथ में आनन्द साथ है। आहाहा! अनुभव की मोहरछाप-ट्रेडमार्क, अतीन्द्रिय आनन्द का मार्क इसमें पड़ा हुआ है। इसका ट्रेडमार्क अतीन्द्रिय आनन्द है। आहाहा!

अपने पाँचवीं गाथा में आया है न? 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं। हमारा जिन वैभव। यह धूल का यह नहीं, पुण्य का नहीं। आहाहा! हमारे आनन्द का जो निज वैभव प्रगट हुआ है और हमको शान्ति आदि अनन्त शक्तियों का विकास हुआ है, ऐसा अनुभव की मोहरछाप क्या है? ट्रेडमार्क क्या है? कि प्रचुर जिसका (स्व) संवेदन आनन्द उसकी मोहरछाप है। आहाहा! यह पोस्ट (डाकखाने) में नहीं करते? ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वरूप का अनुभव और दृष्टि करे, वहाँ आगे अतीन्द्रिय आनन्द साथ में है, यह इसकी मोहरछाप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। ऐई..! अरे..रे..! मनुष्यपना मिला, जैन सम्प्रदाय में जन्म मिला। आहाहा! इसमें भी यह बात ऐसी सुनने न मिले तो फिर यह क्या करे? इसकी रीति क्या है, यह किस रीति से करे?

यहाँ तो कहते हैं, **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष... 'स्फुटत्'** है न? **'स्फुटत्'** प्रत्यक्ष? और इसमें ४७ शक्ति में प्रत्यक्ष गुण है न यह? १२वीं शक्ति, प्रकाशशक्ति-प्रकाशशक्ति। इसका

स्वभाव ही स्वसंवेदन होना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! प्रत्यक्ष आत्मा का आनन्द का स्वाद आना ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा!

और कैसा होता हुआ ? आहाहा! आत्मद्रव्य कैसे प्रगट हुआ ? कैसा होता हुआ प्रगट हुआ ? ऐसा कहते हैं। यह पर्याय में प्रगटता की बात है, हों! **'आत्मारामं' स्वस्वरूप...** आत्मा अर्थात् **स्वस्वरूप ही है... 'आरामं' क्रीड़ावन...** जिसकी दशा में आनन्द का रमना, यह उसकी क्रीड़ा है। आहाहा! बाग में खेलने / घूमने जाए ऐसे जहाँ फूल वृक्ष हों वहाँ। हजारों फूल वृक्ष होते हैं न ? इसमें मजा माने न फिर ? आहाहा! इसमें श्रीखण्ड, पूरी उड़ाता हो और बाग में बैठा हो। पतरवेलिया के भजिये (खाता हो), इसमें सिगरेट पीता जाए। दु:ख में जल गया है बेचारा।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **'आत्म' 'आरामं'** आत्मराम का आत्मा अनन्त धाम में इसको क्रीड़ावन है। उसकी आनन्द की दशा में जिसकी क्रीड़ा और विलास है। समझ में आया ? आहाहा! दिगम्बर सन्तों (सिवाय) ऐसी बात कहीं नहीं है। समझ में आया ? दूसरे को खोटा लगे, दु:ख लगे। क्या हो ? भाई! दिगम्बर सन्त सिवाय ऐसी बात कहीं है नहीं। दिगम्बर सन्तों ने जगत को थोड़े में बहुत कह दिया है। गागर में सागर भर दिया है। आहाहा! यह सर्वज्ञ का, परमात्मा के मार्गानुसारी थे। यह सर्वज्ञ के मार्ग में जाना हो तो यह मार्ग है, कहते हैं। आहाहा! क्या हो ? वाड़ा पड़ा, भंग पड़े सब। इसमें ऐसी बात को मानना और पहचानना कठिन पड़े। आहाहा!

देखो न! एक श्लोक तो देखो! अमृतचन्द्राचार्य यह कलश करते हैं। आहाहा! कैसा होते भगवान आत्मा प्रगट होता है ? है न ? **'आत्मारामं'** जिसका **क्रीड़ावन जिसका ऐसा होता हुआ।** अर्थात् जिसको अब अपना स्वरूप ही क्रीड़ावन है। आहाहा! राग में रमता आत्माराम तो हरामी है, कहते हैं। आहाहा! और आत्मा, आत्मा के आनन्द में रमे, उसको आत्माराम कहते हैं। राग में रमे उसको हरामी कहते हैं। समझ में आया ? ऐसी बात अभी।

जिसका क्रीड़ावन स्वस्वरूप ही है। **'आत्म' 'आरामं' 'आत्म'** अर्थात् स्वस्वरूप, **'आरामं'** अर्थात् क्रीड़ावन। आनन्द की दशा में रमना, यह इसका आराम है। आहाहा!

आराम करो... आराम करो... आराम करो... लोग नहीं कहते ? बहुत थक गए हो तो (कहते है), दो महीना आराम करो, नहीं तो... क्या कहा जाता है तुम्हारा ? हार्ट अटेक, हार्ट अटेक आता है न फिर दो महीना चलना नहीं। पलंग पर बैठे-बैठे खाना। आराम करो। यह आराम नहीं, आराम यह (है)। आराम करो, प्रभु! तुम्हारी आनन्ददशा में आराम करो, प्रभु! आहाहा! कहते हैं कि नहीं ? दो महीना, महीना उठना नहीं, बहुत बोलना नहीं, नहीं तो हार्ट के ऊपर असर होगा तो एकदम देह छूट जाएगी। आहाहा! यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तेरे आत्मा में आराम कर न। आहाहा! स्वस्वरूप ही जिसका क्रीड़ावन है। आहाहा!

और कैसा होता हुआ? 'अनन्तधाम' आहाहा! जिसका **'अनन्त'** अर्थात् **मर्यादा से रहित है... 'धाम'** अर्थात् **तेजपुंज...** आहाहा! पर्याय की बात है, हों! यह प्रगट हुआ, वह पर्याय ऐसी है। आहाहा! **मर्यादा से रहित है...** इसलिए कहा न ? अमेय कहा था न ? अमेय। आहाहा! चारित्र अधिकार में। **तेजपुंज जिसका ऐसा होता हुआ।** आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा स्वयं प्रगट जब स्वरूप की दृष्टि और अनुभव करके होता है, तब अपने में क्रीड़ावन आनन्द में रमता है यह। आहाहा! इसको आत्मा प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण सुद १, रविवार, दिनांक १७-०७-१९७७
कलश-३३, प्रवचन-४२

'कलश टीका' अजीव अधिकार का पहला कलश है। फिर से थोड़ा लेते हैं। यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा जो वस्तु है (यह) चैतन्यशक्ति की सम्पदा से भरा हुआ (है)। इसको प्रथम अधिकार में ऐसा वर्णन किया कि यह वस्तु है, शुद्ध है, पवित्र है ऐसा इत्यादि। इसमें अब (ऐसा वर्णन करेंगे कि) इसमें राग नहीं, गुणस्थान भेद नहीं, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म यह सब अजीव हैं, यह इसमें नहीं—ऐसा यहाँ सिद्ध करकेचैतन्य का प्रकाश प्रगट होता है, इसका इसमें वर्णन है।

पहला **'ज्ञान'** शब्द आया है न? **जीवद्रव्य जैसा है, वैसा प्रगट होता है।** जैसा चैतन्यस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द, जिसका त्रिकाली स्वभाव उसके सन्मुख दृष्टि और अनुभव करते यह जैसा स्वरूप में है, वैसा पर्याय में प्रगट होता है।

भावार्थ इस प्रकार है कि अब तक विधिरूप से शुद्धांग तत्त्वरूप जीव का निरूपण किया। अब, आगे उसी जीव का प्रतिषेधरूप से निरूपण करते हैं।... शुद्ध जीव है,... भगवान। आहाहा! **टंकोत्कीर्ण है, चिद्रूप है – ऐसा कहना विधि कही जाती है। जीव का स्वरूप गुणस्थान नहीं,...** आहाहा! जड़कर्म, नोकर्म शरीर आदि यह सब तो पर मिट्टी धूल... आहाहा! जिसमें नहीं, किन्तु जिसमें गुणस्थान भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जिसमें अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में। जिसमें अर्थात् आनन्दकन्द प्रभु। यहाँ नास्ति में कहेंगे। त्रिकाल शाश्वत चैतन्यशक्ति द्वारा प्रताप जिसका है। आहाहा! जिसकी चैतन्यशक्ति द्वारा त्रिकाल जिसका प्रताप है। आहाहा! इसका। आहाहा! यह तो अध्यात्म बात है, प्रभु! पूरी दुनिया से उदास होकर और गुणस्थान के भेद से भी उदास होकर और चैतन्यशक्ति द्वारा जो त्रिकाल प्रतापवन्त है, उसमें नजर डालकर अनुभव करना... आहाहा! इसका नाम प्रगट दशा होती है। जैसी शक्तिरूप यह था, ऐसा जो अनुभव से पर्याय में (जैसा) था, ऐसा

प्रगट हुआ। आहाहा! इसका नाम मोक्ष और इसका नाम अनन्त ज्ञान की व्यक्तता-प्रगटता। आहाहा! ऐसी बातें! चैतन्य भगवान आत्मा... है?

जीव का स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म-नोकर्म जीव के नहीं,... आहाहा! **भावकर्म जीव का नहीं...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, के जितने विकल्प उठते हैं, यह विकल्प भी भावकर्म हैं, अजीव हैं। यह जीव चैतन्यस्वरूप त्रिकाली, चैतन्य की शक्ति के प्रताप से त्रिकाल शोभित तत्त्व, उसमें यह हैं नहीं। आहाहा!

कैसा होता हुआ ज्ञान प्रगट होता है? 'मनो ह्लादयत्' 'मनः' अन्तः करणेन्द्रिय को आनन्दरूप करता हुआ... आहाहा! आत्मा प्रगट हुआ तब कहते हैं... आहाहा! कि जिसमें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप से त्रिकाल प्रताप से शोभित है। उसको जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान में अनुभव में लिया, तब उसको अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन प्रगट होता है। वह अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

है न? **'मनो ह्लादयत्'** यहाँ मन शब्द से ज्ञान की पर्याय लेना है। इसको आनन्दरूप करता। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। और इसकी पूर्णता। यह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान... आहाहा! जिसकी सत्ता के स्वीकार में पर का सब अभाव है, ऐसा भान होते उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का व्यक्तपना, प्रगटपना आनन्द का प्रगट था, वह प्रगट होता है। आहाहा! जो चैतन्य शक्तिरूप से, अनन्त आनन्दरूप से त्रिकाल प्रताप जिसका था, उसका आश्रय करने से उसके स्वभाव का स्वीकार, सत्कार करने से उसकी दशा में अन्तर अनन्त आनन्द का वेदन करते यह प्रगट होता है। आहाहा! अनादि से दुःख की दशा में जो था.. आहाहा! चाहे जो दया, दान के विकल्प हों किन्तु है दुःख। लोग चिल्लाते हैं। यद्यपि अभी धीरे-धीरे लोगों ने भी कबुलात करना शुरु किया है। भले यहाँ के लिए नहीं किन्तु शुभभाव वह हेय है, यह बातें आने लगी अभी। आहाहा! क्रमबद्ध है। यह भी बाहर में कबूलात होने लगी। आहाहा!

प्रभु! यह वस्तु ही ऐसी है, भाई! वस्तु है, यह त्रिकाली चैतन्य और आनन्द के प्रताप से शोभित थी, ऐसा इसका आदर होने से, इसका सत्कार करने से, इसका स्वीकार

करने से पर्याय में भी अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट दशा लेते यह चैतन्य प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? दु:ख का ध्वंस करते और अतीन्द्रिय आनन्द को उत्पन्न करते अर्थात् यहाँ व्यय-उत्पाद कहना है। ध्रुव तो ध्रुव है। किन्तु दु:ख की पर्याय का व्यय-नाश करता हुआ और आनन्द की पर्याय को प्रगट करते हुए आत्मा प्रगट होता है। आहाहा! अरे..! ऐसा उपदेश। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! अनजाने पंथ पर दु:ख से यह दौड़ गया है। सुख के पंथ पर जाना... यह प्रभु सुखस्वरूप आत्मा है। यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है। भगवान नहीं, हों! यह आत्मा। इसके सन्मुख होने से और भेद और राग के विमुख होने से यह अतीन्द्रिय आनन्द लेता प्रगट होता है। आहाहा! शशिभाई! आहाहा!

और कैसा होता हुआ? आहाहा! **'विशुद्धं' आठ कर्मों से रहितपने...** त्रिकाल स्वरूप है। और यहाँ प्रगट हुआ, वह भी आठ कर्मरहित ही (प्रगट) हुआ है। आहाहा! **और कैसा होता हुआ? 'स्फुटत्' स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ।** आहाहा! अपने स्वभाव को स्व नाम प्रत्यक्ष वेदन करता हुआ प्रगट होता है। आहाहा! स्वसंवेदन। अपन ने पहले कहा था न? अन्त में। स्वसंवेदन का लक्षण क्या? लक्ष्य यह है लक्षण (क्या?) अनन्त सुखानुभूति, आनन्द की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है, ऐसा स्वसंवेदन ज्ञान। आहाहा! क्या कहा यह? यहाँ स्वसंवेदन कहा न? अन्त में स्वसंवेदन प्रत्यक्षपने होता हुआ। तो स्वसंवेदन का लक्षण क्या? अनन्त आत्मा की अनुभूति मात्र जिसका लक्षण है, ऐसा स्वसंवेदन प्रगट हुआ। आहाहा! यह सुखानुभूति, अनन्त आनन्द के अनुभूति यह मात्र जिसका स्वसंवेदन लक्ष्य, उस ज्ञान से वह प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर शास्त्रज्ञान से अथवा दूसरे ज्ञान से अथवा परलक्ष्यी ज्ञान से यह प्रगट नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जो चैतन्य प्रताप से और आनन्द के प्रताप से त्रिकाल शोभित तत्त्व है, उसका अस्तित्व सिद्ध करके, पर का नास्तित्व सिद्ध करके प्रगट हुआ। आहाहा! **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता हुआ।** आहाहा! ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन होने पर भी स्वसंवेदनज्ञान से वहाँ प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! लोगों ने सम्यग्दर्शन की व्याख्या ऐसी साधारण कर डाली कि देव-गुरु की श्रद्धा करो, यह करो और बस अब व्रत ले लो। धूल भी नहीं। अभी

सम्यग्दर्शन कैसे हो और इसका क्या स्वरूप है ? (इसकी खबर नहीं होती) 'पंकज' और वह गये ? समझ में आया ? आहाहा !

'स्फुटत्' प्रगट प्रत्यक्ष। आहाहा ! जिसने चैतन्य के प्रताप की, आनन्द के प्रताप की शाश्वती सम्पदा की जिसने नजर डाली। आहाहा ! उसकी नजर में स्वसंवेदन प्रत्यक्षपने वह जानने में आता है। कहो, शशिभाई ! ऐसी बात है। आहाहा ! धर्म की पहली शुरुआत में भी अतीन्द्रिय आनन्द लेते प्रगट होता है। समझ में आया ? समकित को 'श्रीमद्' ने ऐसा कहा है कि 'सर्व गुणांश ते समकित' अपने यहाँ दूसरी भाषा है। संख्या में जितने गुण हैं, उन सभी का एक अंश व्यक्त प्रगट होता है। ज्ञानादि एकदेश प्रगट होता है, उसको स्वसंवेदन ज्ञान समकितदर्शन की दशा कहने में आता है। आहाहा ! स्वसंवेदन तो ज्ञान को लागू पड़ता है किन्तु उस काल में समकित भी इस जाति का होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

और कैसा होता हुआ ? 'आत्मारामं' [**आत्म**] **स्वस्वरूप...** आत्मा अर्थात् स्वस्वरूप। ज्ञान और आनन्द और शान्ति और स्वच्छता और ईश्वरता, ऐसा जो आत्मा अर्थात् स्वस्वरूप। [**आरामं**] **क्रीड़ावन जिसका ऐसा होता हुआ।** आहाहा ! यह स्वस्वरूप में ही जिसकी क्रीड़ा। बगीचे में जैसे खेलने जाते हैं न ? क्रीड़ा करने। ऐसे भगवान प्रगट होता है, तब अपने आत्मा के आराम में रमते हैं, क्रीड़ा करते हैं। आहाहा ! अरे ! ऐसा (उपदेश) है। **क्रीड़ावन जिसका ऐसा होता हुआ।** आत्मा की पर्याय में, आत्मआराम, स्वरूप का आराम। आराम लिया। लोग नहीं कहते ? यह डॉक्टर-बॉक्टर कहते हैं कि महीने का आराम लो, दो महीना आराम लो। ऐई ! यह कमर में कुछ हुआ हो। इसको कुछ हुआ था। मणका-बणका.. नहीं ? कि भाई ! महीने का आराम लो। बहुत चलना-फिरना नहीं। यहाँ कहते हैं कि भगवान आराम तो इसको कहते हैं... आहाहा ! कि जो स्वरूप चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु, इसकी पर्याय में आनन्द में रमत करना, क्रीड़ा करना, वेदना करना, यह इसका आराम है। आहाहा ! राग में रमना जिसको हराम है और आत्मा में रमना जिसको आराम है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है।

और कैसा होता हुआ ? 'अनन्तधाम' [**अनन्त**] **मर्यादा से रहित है** [**धाम**]

आत्माराम, अनन्त धाम। भगवान आत्मा अपनी निर्मल दशा में आराम करता है, क्रीड़ा करता है। कैसा है ? कि अनन्त धाम है। अनन्त गुण का ठिकाना-धाम यह आत्मा है। आहाहा! **मर्यादा से रहित है [धाम] तेजपुंज जिसका ऐसा होता हुआ।** कल यहाँ तक तो आया था। **और कैसा होता हुआ। 'अध्यक्षेण महसा नित्योदितं' [अध्यक्षेण] निरावरण प्रत्यक्ष...** निरावरण प्रत्यक्ष। आहाहा! यह पर्याय में हीनता के भाव से प्रत्यक्ष नहीं था, उस हीनता के भाव का हनन करके जिसने प्रत्यक्ष निरावरण ज्ञान प्रगट किया है। आहाहा! आवरण कर्मक्षय यह तो निमित्त से है। वास्तव में तो भाव आवरण, इसकी भावघाति तो इसकी पर्याय में अपने कारण से है। हीन दशा का स्वीकार, यह ही इसका आवरण है। क्या कहा ? हीन दशा और राग का स्वीकार, यह ही चैतन्य के स्वरूप का आवरण है। आहाहा! कर्म तो परद्रव्य है। इसके साथ कुछ भी (लेना-देना नहीं)। यह तो सब निमित्त के कथन हैं। कर्म तो यह है।

भगवान सर्वज्ञस्वभावी पूर्णानन्द प्रभु चैतन्य और आनन्द के प्रताप से त्रिकाल शोभित शाश्वत् वस्तु, इसको वर्तमान ज्ञान के अंश में और राग में स्वीकार करते, 'इतना मैं, यह मैं'—ऐसी दशा वह ही स्वरूप को आवरण है। इस आवरण के बिना आत्मा में आराम है, ऐसा कहा। ऐसा कहा न ? यह आवरण टलकर और सर्वज्ञस्वभावी पूर्णानन्द हूँ। अल्पज्ञ और राग का आवरण है, यह मैं नहीं, इतना मैं नहीं यह रुचि जाने पर... आहाहा! आत्मआराम हुआ इसको। इसके क्रीड़ा की दशा आत्मा में क्रीड़ावन हुई। आहाहा! ऐसा धर्म! यह जैनधर्म। लोगों ने तो दूसरी रीति से माना।

अपने यहाँ इस रीति से कहते हैं, हमारे 'ज्ञानचन्दजी' है न ? यह अस्ति से ही बात करते हैं। दस-दस हजार व्यक्ति हों। लोगों को ऐसा लगे कि यह दूसरे की बात करते हैं। ऐसा है.. ऐसा है.. समझ में आया ? यहाँ तो है ऐसा दूसरे कहीं नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अर्थात् कि दूसरा इसमें नहीं और दूसरा कहीं इसमें नहीं। मार्ग को फेरफार कर डाला है। आहाहा!

भगवान चैतन्यसूर्य अन्दर जागृत, जागती ज्योत भगवान विराजते हैं। आहाहा! जगमग ज्योति भगवान चैतन्य के स्वभाव के चमत्कार से जगमग ज्योति विराजती है।

इसका स्वीकार नहीं करके, अल्पज्ञ और दया, दान के विकल्प को यह मैं (ऐसा) स्वीकार करके इसको आवरण डाला है, इसको रोक लिया। इसको अब यह आवरण को टालकर निरावरण हुआ। ऐसा कहा न? आहाहा!

निरावरण प्रत्यक्ष... यह है निरावरण प्रत्यक्ष त्रिकाल, समझ में आया? देखो! **निरावरण प्रत्यक्ष चैतन्यशक्ति के द्वारा त्रिकाल शाश्वत है...** यह तो। आहाहा! वस्तु जो है, यह तो त्रिकाल निरावरण शाश्वत वस्तु है। आहाहा! ऐसी पर्याय में प्रगट हुई। ऐसी बातें, लो। करना क्या इसमें? कहा नहीं? बापू! तुम कौन हो? प्रभु! इसके स्वीकार में जाओ, अन्तर्मुख हो। आहाहा! इसके स्वीकार में जा, तब कहा जाये जबकि यह अन्तर्मुख हो तब। आहाहा! यह अन्तर्मुख होता है, वह चीज़ क्या है जो अन्तर में जाता है? यह चीज़, चीज़, हों!

निरावरण प्रत्यक्ष चैतन्यशक्ति के द्वारा... आहाहा! भगवान आत्मा की चैतन्यशक्ति, आनन्दशक्ति, शान्ति शान्त... शान्त... शान्त... शान्तरस की शक्ति से... आहाहा! चैतन्य की मुख्यता से बात की है, किन्तु इसके साथ शान्त अविकारी रस से... आहाहा! **त्रिकाल शाश्वत है...** त्रिकाल शाश्वत है यह। समझ में आया? **त्रिकाल शाश्वत है प्रताप जिसका ऐसा होता हुआ।** आहाहा! चैतन्यस्वभाव का प्रताप जिसका त्रिकाल निरावरण है, ऐसा प्रताप उसकी शोभा है। आहाहा!

और कैसा होता हुआ? तीन विशेषण देते हैं। धीर, उद्दात्त और अनाकुल। [**धीर**] **अडोल...** है। आहाहा! जो स्थिरता प्रगट हुई है, निरावरण जो चीज़ थी, इसको पर्याय में निरावरणपना वीतरागपने, पर्यायपने प्रगट किया, वह अडोल है। बदले नहीं ऐसी चीज़ है यह। जैसे ध्रुव नहीं बदलता, वैसे ध्रुव के आश्रय से हुई दशा भी अडोल है। आहाहा! समझ में आया?

'अष्टपाहुड' में चारित्र अधिकार में तो ऐसा भी कहा है कि जो चैतन्य के प्रताप और आनन्द के प्रताप से शोभित है शाश्वत् वस्तु (है), इसका जिसने दर्शन किया, ज्ञान किया और स्थिरता की, यह तीनों चीज़ अक्षय अमेय है। पर्याय स्वयं अक्षय अमेय है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा लेना है कि यह प्रगट हुई, यह फिर परिवर्तित नहीं होती। यह स्थिति लेनी

है। गिर जाता है, ऐसा हो जाता, वैसा हो जाता है, यह यहाँ बात नहीं, कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा के अन्तर में रमते आत्माराम क्रीड़ावन में रमत में चढ़ गया... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के क्रीड़ा वन में चढ़ा... आहाहा! कहते हैं कि यह दशा अडोल है। अब डोल जाये ऐसा नहीं, हिले ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जैसा भगवान ध्रुव है, अडोल है, ऐसी जो पर्याय प्रगट हुई है यह भी अडोल, अक्षय और अमेय है। क्षय नहीं होती और मर्यादा जिसकी नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय की भी मर्यादा नहीं। ऐसी पर्याय भी अमर्यादित दशा प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया?

[**धीर**] **अडोल और** [**उदात्तम्**] उदात्त है न? **सबसे बड़ा...** है। निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह सबसे बड़ी है। आहाहा! वस्तु तो बड़ी है परन्तु उसकी पर्याय बड़ी है। आहाहा! दो (विशेषण दिये) धीर और उदार। **और कैसा होता हुआ? 'अनाकुलं' इन्द्रियजनित सुख-दुःख से रहित अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ।** आहाहा! इन्द्रियों के ओर के झुकाववाली जो सुख-दुःख की कल्पना का भाव। सुख अर्थात् यह दुःख है। परन्तु माना है न कि हमको इन्द्रिय में सुख है, है तो सुख यह। आहाहा! किन्तु सुख-दुःख भाषा लोग कहते हैं, ऐसी रही है। सुख-दुःख से रहित भाषा ली है। भाषा देखो! समझ में आया? इसकी पर्याय में इन्द्रियजनित सुख-दुःख की कल्पना जो थी, यह आत्मा में नहीं और यह आत्मा का भान होते उसको अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। उसमें इन्द्रिय के सुख-दुःख के भाव का अभाव होता है। आहाहा!

धर्मी जीव को और धर्म की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, उसको अतीन्द्रिय सुख से... आहाहा! विराजमान होता हुआ। आहाहा! वस्तु में तो अतीन्द्रिय सुख था। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय सुख के प्रताप से अनादि शोभित ही है, किन्तु उसकी शरण लेते, सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने पर यह अतीन्द्रिय सुख से पर्याय में विराजमान होता है। आहाहा! अरे! हें! यह क्या लिखा है? **कैसा होता हुआ?** ऐसा होता हुआ। कैसा होता हुआ? है न? **'अनाकुलं' इन्द्रियजनित सुख-दुःख से रहित अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ।** आहाहा! इसमें है या नहीं? **कैसा होता हुआ?** है तो है वह का वह। यहाँ तो प्रगट (हुआ इसकी बात है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्र जो प्रगट होता है, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसा है ? और पूर्ण भी कैसा है ? कि पर्याय में अतीन्द्रिय ज्ञान से विराजमान है। ऐसा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से विराजमान (होता है), इसको धर्म कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! मार्ग सूक्ष्म है, भाई ! सूक्ष्म है। एक तो अरूपी और इसमें भी निर्विकल्पदशा। बहुत सूक्ष्म। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्पदशा है। समझ में आया ?

अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ। इन्द्रिय के सुख-दुःख की कल्पना से रहित। ऐसा आया न ? इन्द्रियजनित सुख। सुख तो किस समय धूल में था वहाँ ? माना है न ? इन्द्रिय के निमित्त से माना है कि इसमें सुख है और यह दुःख है। ऐसे सुख-दुःख की दशा, जो मान्यता है, यह गयी। यह आत्मा भगवान आनन्दस्वरूप है, इस रीति से पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द से विराजमान होता हुआ। पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द से विराजमान होता हुआ प्रगट होता है।

यह तो अजीव अधिकार शुरु करते हुए ऐसा मंगलाचरण करते हैं। हें ! यह तो मांगलिक करते हैं। आहाहा ! भगवान इस रीति से बाहर आता है। आहाहा ! एक गरीब व्यक्ति हो परन्तु राजा भर्तहरि का वेश पहना हो। बाहर आये वहाँ... आहाहा ! नाटक में एक बार ऐसा हुआ था। भर्तहरि का वेश लेकर आया। दूसरा राजा ऐसे देखने बैठा था। इसको दो-सौ, पाँच सौ की बक्षीश देने लगा। लेकिन भर्तहरि का वेश है, वह राजा का पैसा ले ? आहाहा ! नाटक में ऐसा बनाव बना, हों ! और एक अपने कथा में भी आता है। गाँव नहीं वह ? कोई है। 'ब्रह्मगुलाल' था रूपी, भाण्ड। भाण्ड था, यह इतने भिन्न-भिन्न वेश लेकर आता था। इसमें एक बार राजा ने हुकुम किया कि अरे ! 'ब्रह्मगुलाल' मुनि का वेश लेकर आओ अब। कुत्ता का वेश लेकर आओ तो कुत्ते की भाँति जैसे पैर ऊँचा करके पेशाब करे। सामने मेहमहान बैठा हो तो। ऐसे वेश में एक बार राजा ने कहा ब्रह्मगुलाल ! साधु का वेश बनाओ एकबार। आहाहा ! यह नग्नमुनि का वेश लेकर आया। पहले कहा इसलिए कहें, साहब ! दो-चार महीना लगेंगे। झट देकर... कारण कि मैं जो नग्नपने का वेश धारण करूँगा, यह छूटेगा नहीं अब। आहाहा ! यह बहुरुपिया हूँ परन्तु यह अब हो गया। नग्नपने का, दिगम्बर अन्दर आनन्द के कन्द के नाथ को साधते... आहाहा ! यह सहज नग्नदशा

हो जाती है, यह फिर नहीं बदलती। यह बहुरुपिया फिर संसार में नहीं जाता। आहाहा! यह दो-चार महीने लगेंगे, प्रभु! राजा को कहता है। कुटुम्ब-बुटुम्ब सबको सम्भाल कर कहे... भाई! देखो अभी मैं त्यागी हूँ। अब मुझे फिर से नहीं आना है। आहाहा! ऐलो! बहुरुपिया ऐसा कहते हैं। यह भाई साधु होकर आते हैं... राजा खुश हो जाते हैं। हम मुनि हैं, किसी से बक्षीश नहीं लेते। अरे! तुम्हें गाँव देते हैं। ऐसा वेश और यह...! हम मुनि हैं। आहाहा! यह चले निकले। वन में चल निकले। आहाहा!

उसी प्रकार यहाँ जहाँ आत्मा ने आनन्द का वेश अन्दर में से धारण किया... आहाहा! बहुरुपिया इसने अनादि से बहुत रूप धारण किये थे। नारकी के, देव के, स्त्री के, कुटुम्ब के, पुरुष के, नपुंसक के, हिजड़ा के और चींटी के। आहाहा! यह बहुरुपिया अब अन्दर में आया... आहाहा! परन्तु ऐसा रूप अभी धारण किया कि यह रूप अब बदलेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ। प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो अतीन्द्रिय है परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होने पर वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर बाहर आता है। आहाहा! समझ में आया? **अतीन्द्रिय सुखरूप विराजमान होता हुआ।** विराजमान कहने से परिणमता हुआ। समझ में आया? **ऐसा जीव जैसे प्रगट हुआ उसे कहते हैं–** कि अब ऐसा स्वरूप है, यह दशा में प्रगट हुआ। धर्मदशा अथवा अन्तिम मोक्षदशा।

'आसंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसात्' आहाहा! वह उत्पाद की बात की। अब ध्वंस करके उत्पाद होता है। आहाहा! [**आसंसार**] **अनादि काल से... 'यह'** अर्थात् अनादि से। अनादि काल से नरक और निगोद के भव करते अनादि से चला आता है। आहाहा! [**निबद्ध**] **जीव से मिली हुई चली आई है ऐसी आठ कर्म (बन्धनविधि) ज्ञानावरणकर्म, दर्शनावरणकर्म, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय...** यह निमित्तरूप से आत्मा में अनादि से चले आते हैं। **जो द्रव्यपिण्डरूप आठकर्म तथा भावकर्म हैं...** यह भी अन्दर की बहुरूपिया की विकल्प दशा, आत्मा बहुरूप में धारण करता है राग और द्वेष, दया, और दान, व्रत और भक्ति, पूजा और काम-क्रोध यह सब

विकार के वेश हैं। आहाहा!

यह भावकर्म हैं जो राग, द्वेष, मोह परिणाम इत्यादि हैं बहुत विकल्प... ओहो! आठ कर्म और विकारी परिणाम दोनों साथ लिये। **उनका [ध्वंसात्] विनाश से...** कोई जड़कर्म का विनाश आत्मा नहीं करता किन्तु वहाँ इसका विनाश हो जाता है। और यह विकार के परिणाम का भी नाश नहीं करता किन्तु स्वरूप में ठहरता है, वहाँ उत्पन्न नहीं होता इसलिए नाश करता है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पाठ तो ऐसा है, देखो! है? **'आसंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसात्'** विधि अर्थात् आठ कर्म नहीं, विधि अर्थात् पुण्य, पाप, राग, द्वेष और मोह का परिणाम। यह विधि। **[ध्वंसात्]** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि से जहाँ पर्याय में प्रगट होता है, तब आठ कर्म और विकार का ध्वंस होता है। ध्वंस करता प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो! यहाँ तो ध्वंस कहा।

समयसार की ३४वीं गाथा में तो ऐसा कहा, 'राग का नाशकर्ता भी परमार्थ से आत्मा नहीं।' आहाहा! रागादि विकार का नाशकर्ता कहना, यह नाममात्र कथन है। है? यहाँ तो कहते हैं, आठ कर्म, राग-द्वेष का ध्वंसात। संक्षेप भाषा में समझाना हो तो क्या समझाये? हें? शब्द को पकड़े परन्तु इसका भाव क्या है, यह नहीं पकड़ता और ऐसे के ऐसे शब्द में यह लिखा है—ध्वंसी। तो एक तरफ ऐसा भी कहा है कि आत्मा राग का नाश करे यह नाममात्र है। परमार्थ से यह नाश करने का कर्तापना भी जिसमें नहीं। हें? आहाहा! समयसार ३४ गाथा। आहाहा!

यह तो परमात्मा स्वयं आनन्द का नाथ जहाँ अन्दर में पर्याय में प्रगट होता है, तब वह विकार की पर्याय का व्यय होता है, उसको उपजता नहीं; उपजता नहीं, उसको व्यय करते हैं—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है। शब्द को पकड़े तो एक तरफ ध्वंस (कहते हैं) और एक तरफ ना करते हैं तो दोनों का मेल बैठे? यहाँ तो फिर आठों ही कर्म का नाश ऐसा कहा। कर्म तो जड़ है। जड़ की क्रिया और उदय का नाश करे? यह तो इसके कारण से (हो जाता है)। यहाँ जब राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती तब कर्म की अवस्था भी अकर्मरूप से इसके कारण से हो जाती है। आहाहा!

इत्यादि हैं बहुत विकल्प उनका विनाश से जीवस्वरूप जैसा कहा है, वैसा है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव वह नाश होते... आहाहा! स्वरूप की जो स्थिति शक्तिरूप से है, ऐसी ही पर्यायरूप से प्रगट आनन्द और शान्ति और वीतरागतापने प्रगट होती है। इसका नाम आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

समयसार में दूसरी गाथा में आया है न? '**जीवो चरित्तदसंणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो निर्मल पर्याय '**चरित्तदसंणणाणठिदो**' इसमें आया, इसको आत्मा कहते हैं। '**तं हि ससमयं**' अर्थात् आत्मा कहते हैं। आहाहा! और जो पुण्य और पाप में, राग में ठहरे, एकत्व हो वह कर्म के प्रदेश में, कर्म के अंश के विकार के भाग में ठहरा है, इसलिए उसको अनात्मा कहते हैं। हें? आहाहा! यह तो दूसरी गाथा से शुरु किया।

'**जीवो चरित्तदसंणणाणठिदो**' '**चरित्तदसंण**' में इस प्रकार से लिया है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ऐसे गया है, ऐसे कहते इस प्रकार लिया। जो राग में स्थित था, इसको छोड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हुआ। शुद्ध चैतन्य भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वीतरागी परिणाम में भगवान स्थित हुआ, इसको आत्मा कहने में आता है। स्वसमय अर्थात् आत्मा, और जो आत्मा पुण्य और पाप और राग और द्वेष के विकार में स्थित हो, रुके, अटके यह अजीव में स्थित हुआ, इसलिए वह अनात्मा है। समझ में आया? और निर्मलदशा में आया इसलिए उसको आत्मा कहते हैं। मलिनदशा में रुका उसका अनात्मा-अजीव कहते हैं। जीव यह नहीं। आहाहा! पर समय कहा है न? समझ में आया? समयसार का एक-एक पद और एक-एक गाथा अमूल्य है, अमूल्य है। जिसका मूल्य क्या? प्रभु का मूल्य क्या? आहाहा! चैतन्यस्वरूप का मूल्य क्या? इसकी कीमत क्या? यह अमूल्य चीज़! इसको जिसने सम्यग्दर्शन ज्ञान में धारण किया... आहाहा! यह चीज़ का भी मूल्य क्या? आहाहा! इसकी कीमत क्या? हें! आहाहा! 'श्रीमद्' में नहीं आता कहीं? इसका माप करते आत्मा माप में आ जाता है।

मुमुक्षु : निज मति मपाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमाला में पीछे आता है। आहाहा! भगवान के न्याय की दशा

या भगवान की वाणी का माप करने जाते मति मापने में आ जाती है।

मुमुक्षु : 'उपमा आप्यानी जेने तमा राखवी वह व्यर्थ'...

[ध्वंसात्] **विनाश से जीवस्वरूप जैसा कहा है, वैसा है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जल और कीचड़ जिस काल में एकत्र मिले हुए हैं,...** जिस काल में, हों! मिला हुआ है। **उसी काल जो स्वरूप का अनुभव किया जाये...** आहाहा! **तो कीचड़ जल से भिन्न है,...** मिला हुआ है, उस काल में। हैं? आहाहा! **जल और कीचड़ जिस काल में एकत्र मिले हुए हैं,...** एकत्र मिले हुए हैं। **उसी काल जो स्वरूप का अनुभव किया जाये...** पानी का, हों! **तो कीचड़ जल से भिन्न है,...** आहाहा! **जल अपने स्वरूप है,...** कीचड़ से भिन्न है, यह नास्ति से कहा। जल, जल के स्वरूप से है। आहाहा!

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ। **संसार अवस्था में जीव कर्मबन्ध पर्यायरूप से एक क्षेत्र में मिला है।** आहाहा! संसार की दशा में जीव और भावकर्म और जड़कर्म, यह बन्धपर्याय एक क्षेत्र में मिले हुए हैं। आहाहा! **उसी अवस्था में जो शुद्ध स्वरूप का अनुभव किया जाये...** आहाहा! जैसे पानी और कीचड़ एक जगह पर मिले हुए हैं, उसी काल में जो जल का अनुभव करने में आये तो कीचड़ से भिन्न है और जल, जलस्वरूप है।

उसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा को पुण्य और पाप के राग-द्वेष कीचड़ है, मैल है। आहाहा! कर्म तो जड़ है, अजीव है। किन्तु पुण्य और पाप का, दया-दान, व्रत-भक्ति और काम-क्रोध के भाव यह सब मैल है, कीचड़ है। पानी में जैसे कीचड़ है... आहाहा! वैसे भगवान आत्मा में यह पुण्य और पापरूपी भाव, वह मलिन कीचड़ है। उसी क्षण में, उसी काल में। आहाहा! है? शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने में आवे.. आहाहा! परन्तु मलिनता की पर्याय में रुके हुए को छोड़कर, आहाहा! उससे अधिक-भिन्न चैतन्य है, उसमें नजर डालने से... आहाहा! शुद्धस्वरूप का अनुभव किया जाए तो उस काल में भी मिलन परिणाम से भिन्न है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें, इसलिए फिर व्यक्ति को महंगी लगे न, वह सरल करके बैठा हो। व्रत करो, तपस्या करो, यात्रा करो और भक्ति

करो। यह हो गया धर्म तुम्हारा। धूल भी धर्म नहीं, सुनो न। यह तो मलिन परिणाम राग है। आहाहा! यह राग के मलिन परिणाम के काल में भी इसको जीव से राग को भिन्न जानते और राग से जीव को भिन्न जानते जीव का स्वरूप अनुभव में आये तो जीव स्वरूप राग से रहित है। आहाहा! और जीव अपने स्वरूप से है। राग से रहित है और जीव अपने स्वरूप से है। आहाहा! अब इसमें एक घण्टे में याद कितना रखना? सब नयी बात आयें। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, ऐसा कहते हों तो समझ में भी आये। इसमें क्या समझना था? यह तो अनादि काल से मिथ्या श्रद्धा पोषण करता आया है। आहाहा! यह व्रत और तप और भक्ति के भाव हैं, इसमें से मुझे लाभ होगा, यह मिथ्यात्व का पोषण करता आया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अब आत्मा जिस स्वरूप से है, वह राग के मलिन परिणाम के एकत्व के काल में भी इसको भिन्न देखने में आया तो वह राग से भिन्न है। अर्थात्? राग की ओर का लक्ष्य छोड़कर यह स्वरूप सन्मुख के लक्ष्य में अन्दर जाए तो उसको राग से भिन्न जीव का स्वरूप है, वैसा जानने में आये। आहाहा! समझ में आया? तब इसको धर्म हो। आहाहा! **शुद्ध स्वरूप का अनुभव किया जाये तो समस्त कर्म जीव स्वरूप से भिन्न हैं। जीवद्रव्य स्वच्छ स्वरूपरूप जैसा कहा वैसा है।** स्वच्छ-शुद्ध, निर्मल स्वच्छ। चैतन्य के प्रकाश का पूर, वह स्वच्छ है। समझ में आया? **समस्त कर्म जीव स्वरूप से भिन्न हैं। जीवद्रव्य स्वच्छ स्वरूपरूप जैसा कहा वैसा है। ऐसी बुद्धि जिस प्रकार से उत्पन्न हुई उसी को कहते हैं–'यत्पार्षदान् प्रत्याययत्' [यत्] जिस कारण से [पार्षदान्] गणधर मुनीश्वरों को...** आहाहा! भगवान की वाणी सुनकर के जिनको गणधरपना प्रगट हुआ है। यह गणधर (पार्षदान) मुख्य अग्रेसर है। इसको कहते हैं प्रतीति ऐसी उपजी गणधर को। आहाहा! यह इसमें से 'समयसार नाटक' में से लिया है न? उन्होंने ऐसा कहा, गणधर कहते हैं यह प्रतीति। ऐसा लिया है। क्योंकि गणधर को विशेष श्रुतज्ञान है न? इसलिये इनको अवगाढ़ श्रद्धा कही है। गणधर के सम्यग्दर्शन को अवगाढ़ समकित कहा है। केवलज्ञान में समकित को परम अवगाढ़ कहा है। इसलिए गणधर का नाम लिया है। आहाहा! प्रज्ञा के अग्रेसर, सभा के अग्रेसर गणधर। आहाहा!

गणधर मुनीश्वरों को प्रतीति उत्पन्न कराकर। उत्पन्न हुआ है। आहाहा! शुद्ध आनन्दकन्द का वेदन होते इसको प्रतीति हुई कि, अहो! आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। इसमें नहीं राग, नहीं द्वेष, दया, दान का विकल्प भी इसमें हैं नहीं। ऐसी प्रतीति करती गणधर को उसकी दशा उत्पन्न हुई है। आहाहा!

मुमुक्षु : गणधर को क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है न।

मुमुक्षु : क्षायिक ही होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं। यह तो क्षायिक होता है किन्तु नहीं तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं न। आहाहा! तीर्थंकर भी कोई जन्मे यह कोई क्षायिक समकित लेकर के ही जन्मे, ऐसा कुछ नहीं। यह भी क्षयोपशम लेकर के जन्मे। तीर्थंकर! फिर क्षायिक होता है। यह तो अलग बात है। समझ में आया? समकिती पहली नरक में गये हो। यह निकले तो क्षयोपशम समकित, इसलिये क्षायिक भाव हो तो सीधा है लेकिन यह तो वहाँ जाए और कोई क्षयोपशमवाले तीर्थंकर होते हैं। क्षायिकवाले पहली नरक में ही जाते हैं। भविष्य में जो तीर्थंकर होना है और क्षायिक समकित हुआ है। इसको नरक की आयुष्य बँध गयी है। वह पहली नरक जाते हैं और दूसरा तीर्थंकर का जीव हो किन्तु इसको नरक की आयुष्य बँध गयी हो और बाद में समकित हुआ तो यह क्षयोपशम समकित लेकर के वहाँ तीसरे (नरक) में जाए। क्षायिकवाला वहाँ नहीं जाता। 'श्रेणिक राजा' क्षायिकवाले थे तो पहले में रहे। वहाँ जाएँ तो इनको पहले मिथ्यात्व हो जाता है। फिर समकित हो जाता है। यह क्षयोपशमवाले, वहाँ क्षयोपशम रहता है। वहाँ से निकले तब भी क्षयोपशम लेकर के निकलते हैं। तीर्थंकर भी, हों! कोई। लम्बी बातें हैं।

मुमुक्षु : चार ज्ञान हों तो भी क्षायिक न हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो। चार ज्ञान प्रगटे, इसलिए इनको क्षायिक समकित ही हो, ऐसा कुछ नहीं। यह अपने तीन में आ गया, नहीं? तीन भाव हो। उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। ३२० गाथा। मोक्षमार्ग की दशा तीन होती हैं। लेकिन ज्ञान इसका क्षयोपशम हो।

समझ में आया ? किसी को चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित हो लेकिन ज्ञान क्षयोपशम होता है और किसी को उपशम हो ज्ञान क्षयोपशम हो, किसी को क्षयोपशम समकित हो और ज्ञान क्षयोपशम हो। यह इसमें ३२० में आ गया है। आहाहा! यह टीका में ज़रा फर्क है। 'जयसेनाचार्य' की टीका में। क्षयोपशम अन्यत्व ऐसा शब्द पड़ा है। परन्तु यह भूल है। क्षयोपशम ज्ञान लेते हैं। अपने अर्थ किया है। टीका में जरा ऐसा है क्षयोपशम अन्यत्व— ऐसा शब्द है।

यहाँ कहते हैं कि गणधर जैसी प्रतीति करता उत्पन्न होता है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जहाँ अन्दर स्वीकार में आया, परमात्मा ने बात तो की परन्तु अन्तर्मुख जहाँ हुआ, तब इसको गणधर के जैसे प्रतीति हुई है, ऐसी प्रतीति होती है, कहते हैं। आहाहा! 'समयसार नाटक' में इसमें से लिया है न ? इसलिए यह शब्द लिया है। 'समयसार नाटक' पहले में है न यह ? शुरुआत। **'पर' प्रतीति उपजे गनधर कीसी',** इसमें से लिया है। यह पहले बोल की। **'पर' प्रतीति उपजे गनधर कीसी',** यह श्लोक का अर्थ ही है। यह श्लोक का अर्थ ही है।

''अन्तर अनाद की विभावता विदारी है।
भेदज्ञान दृष्टि सौं विवेक की सकति साधि,
चेतन अचेतन की दशा निरवारी है॥
करम कौ नासरि अनुभौ अभ्यास धरि,
हिये में हरखी निज उद्धता सँभारी है।''

उद्धता समझ में आया ? उत्कृष्टता। उद्धत हुआ। उत्कृष्ट हो जाएगा।

अन्तराय नाश भयो सुद्ध परकास थयो,
ग्यानकौ विरास ताकौ वन्दना हमारी है॥

यह श्लोक का ही अर्थ है। इसमें यह गणधर कहा। इसमें से ही बनाया है। गनधर कीसी। आहाहा! **किस कारण से प्रतीति उत्पन्न हुई वही कहते हैं–'जीवाजीव विवेकपुष्कलदृशा' [जीव] चेतनद्रव्य और,...** देखा ? **[अजीव]** अजीव में **जड़कर्म–नोकर्म–भावकर्म...** सब अजीव। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, यह

अजीव है। आहाहा! है पाठ? देखो! अन्दर देखो लिखा है। यह अजीव अधिकार है न? अजीव की नास्ति है तो अजीव में भावकर्म है, यह भी जीव में नहीं। आहाहा! अब यह अजीव जो है, यह जीव को लाभ करता है, ऐसी प्ररूपणा चलती है। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। अत्यन्त मिथ्यात्व का पोषक है। समझ में आया?

कहा क्या? देखो न! जीव अर्थात् चेतनद्रव्य, अजीव अर्थात् **जड़कर्म–नोकर्म–भावकर्म...** यह सब जड़। **उनके भिन्नभिन्नपने से विस्तीर्ण ज्ञानदृष्टि के द्वारा। जीव और कर्म का भिन्न–भिन्न अनुभव करने पर जीव जैसा कहा गया है, वैसा है।** आहाहा! दो को भिन्न पाड़ते, राग को, विकल्प को, दया, दान के विकल्प को भी भिन्न करने से क्योंकि अजीव है। चैतन्य ऊपर दृष्टि (देने से) दो भिन्न पड़ जाते हैं। तब आत्मा का अनुभव होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-३४

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः।।२-३४।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'विरम अपरेण अकार्यकोलाहलेन किं' [विरम] भो जीव! विरक्त हो, हठ मत कर [अपरेण] मिथ्यात्वरूप हैं [अकार्य] कर्मबन्ध को करते हैं [कोलाहलेन किं] ऐसे जो झूठे विकल्प, उनसे क्या। उसका विवरण-कोई मिथ्यादृष्टि जीव शरीर को जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव आठ कर्मों को जीव कहता है, कोई मिथ्यादृष्टि जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसाय को जीव कहता है इत्यादि रूप से नाना प्रकार के बहुत विकल्प करता है। भो जीव! उन समस्त ही विकल्पों को छोड़, क्योंकि वे झूठे हैं। 'निभृतः सन् स्वयं एकं पश्य' [निभृतः] एकाग्ररूप [सन्] होता हुआ [एकं] शुद्ध चिद्रूपमात्र का [स्वयं] स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से [पश्य] अनुभव कर। 'षण्मासं' विपरीतपना जिस प्रकार छूटे उसी प्रकार छोड़कर 'अपि' बारम्बार बहुत क्या कहें। ऐसा अनुभव करने पर स्वरूप प्राप्ति है, इसी को कहते हैं-'ननु हृदय सरसि पुंसः अनुपलब्धिः किं भाति' [ननु] भो जीव! [हृदयसरसि] मनरूपी सरोवर में है [पुंसः] जो जीवद्रव्य उसकी [अनुपलब्धिः] अप्राप्ति [किंभाति] शोभती है क्या? भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, ऐसा तो नहीं है। 'च उपलब्धिः' [च] है तो ऐसा ही है कि [उपलब्धिः] अवश्य प्राप्ति होती है। कैसा है जीवद्रव्य? 'पुद्गलात् भिन्नधाम्नः' [पुद्गलात्] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से [भिन्नधाम्नः] भिन्न है चेतनरूप है तेजःपुंज जिसका ऐसा है।।२-३४।।

श्रावण शुक्ल २, सोमवार, दिनांक १८-०७-१९७७
कलश-३४, प्रवचन-४३

कलश टीका ३४ कलश है।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः।।२-३४।।

आहाहा! **'विरम अपरेण अकार्यकोलाहलेन किं'** [**विरम**] **भो जीव! विरक्त हो,...** संसार के दुःख के परिणाम से विरक्त हो। यदि तुझे आत्मा प्राप्त करना हो, सुखरूप भगवान आत्मा है। अजीव है न? अर्थात् संसार का दुःख आदि है, यह सब अजीव है। आहाहा! इससे विरक्त हो। **हठ मत कर...** हठ मत कर अर्थात्? पर में कुछ भी ठीक है, ऐसे विकल्प की हठ मत कर। सहजस्वरूप भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव है, उसको पकड़ना। [**अपरेण**] दूसरा। दूसरा अर्थात् मिथ्यात्वरूप आदि भाव। अपन जो ज़रा सरल भाषा कही है, यह जरा वह है। व्यर्थ के कोलाहल के कार्य से क्या काम है? व्यर्थ (है) यह। आहाहा!

यहाँ [**अपरेण**] दूसरा। भगवान आत्मा स्वरूप सिवाय दूसरा जो मिथ्यात्वरूपी परिणाम और [**अकार्य**] यह व्यर्थ कार्य है। यह कोई तेरा कार्य नहीं। आहा! सूक्ष्म बात बहुत, बापू! **'अपरेण अकार्यकोलाहलेन'** दूसरे व्यर्थ; अकार्य अर्थात् व्यर्थ, अकार्य। आहाहा! दूसरे अकार्य अर्थात् व्यर्थ कार्य से, यह कार्य के कोलाहल से तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? [**विरम**] विरक्त हो। विराम प्राप्त कर अब। आहाहा! किससे? कि संसार के दुःख के भाव से। अर्थात्? दूसरे अन्य व्यर्थ रागादि कार्य हैं, उनसे निवृत हो। ऐसी बात है। यहाँ तो अभी धन्धे से ही फुरसत नहीं होता। अरे..रे..! कहाँ इसको जाना और क्या करना है? अकेला पाप के धन्धा पूरे दिन। अरे! धर्म तो नहीं, किन्तु पुण्य भी नहीं। यह शास्त्र सुनना, सत्समागम में रहना, विचारना, यह सब शुभ-पुण्यभाव है। धर्म भाव तो भिन्न चीज़ है। बराबर ठीक नहीं सेठ को? कमजोरी (है)?

'विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन' आहाहा! भगवंत! तुम दुःख से मुक्त होओ न। आहाहा! दूसरे अकार्य-रागादि, मिथ्यात्व आदि, मिथ्याश्रद्धा आदि विकल्प, यह व्यर्थ अकार्य हैं। ऐसे अकार्य से अथवा व्यर्थ कार्य से विरक्त हो। यह कोलाहल छोड़ दे। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है। इसको प्राप्त करने के लिये इन दुःख के परिणाम से विरक्त हो और अन्य यह व्यर्थ काय हैं यह सब। तेरा कार्य नहीं। आहाहा! तेरा कार्य तो आत्मा को अनुभवना, यह तेरा कार्य है। इसके सिवाय सब विकल्पों की जाल... आहाहा! ऐसे कोलाहल झूठे विकल्प... आहाहा! सत्य भगवान आत्मा को प्राप्त करने में विरोध करनेवाले झूठे। झूठे अर्थात्? है तो सही, परन्तु सत्य स्वभाव से झूठे हैं। ऐसे विकल्प की जाल से अब विरक्त हो। आहाहा!

ऐसे जो झूठे विकल्प उनसे क्या। है? **'किम' 'किम'** ऐसा शब्द है न? **'किमपरेणाकार्यकोलाहलेन विरम'** आहाहा! दूसरे अकार्य—व्यर्थ कोलाहल के विकल्प से तू विरम। आहाहा! बहुत संक्षिप्त भाषा है।

मुमुक्षु : नकामा... (व्यर्थ)...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तेरे काम का नहीं। यह बन्ध का कारण है। तेरा कार्य नहीं। आहाहा! व्यर्थ अर्थात् तेरा कार्य नहीं। यह तो राग का कार्य, पुद्गल का कार्य है। फिर इसमें लेंगे। **'सर्वेऽपि भावाः पौदगलिका'** है न? ३५ में। वहाँ संस्कृत में ऐसा लिखा है। वहाँ संस्कृत में ऐसा लिखा। ऐ...! पण्डितजी! **'सर्वेऽपि भावाः पौदगलिका'** हाँ यह। आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव सब। **'भावाः पौदगलिका'** पुद्गल से हुआ यह पौद्गलिक, पुद्गल है। आहाहा! भगवान आत्मा से नहीं हुए। आहाहा! ऐसी बात। हैं?

मुमुक्षु : पुद्गल से हुआ तो यह पुद्गल का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमार्थ से पुद्गल का ही है। पर्याय का इसका है, यह तो बात कल सिद्ध की है। यहाँ तो स्वभावदृष्टि की अपेक्षा से जीव-अजीव की व्याख्या चलती है न। विकार का परिणाम है तो इसकी पर्याय में ही और इसका ही-अज्ञानी का ही कार्य है। अज्ञानी का, हों! यह विकार कर्म से हुआ है अथवा दो इकट्ठे होकर हुआ है,

ऐसा नहीं। यह बात तो विकार इसकी पर्याय में स्वरूप के अज्ञान के कारण से जो हुए भाव, वह तेरे में तुमने किया है, ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : पुद्गला भवा.. यह क्या आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आगे आयेगा। अभी। यह स्वभाव है इसलिए। यह स्वभाव तेरा नहीं। आहाहा! है न इसमें? ३५वीं गाथा में आयेगा। **'सर्वेऽपि भावाः पौदगालिका अमी' 'अमी'** यह प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। कौन सी अपेक्षा है, यह जानना चाहिए न? इसकी वस्तु भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप से विराजमान है। आहाहा! इसकी यह चीज़ नहीं। पर्याय में होता है, इससे और इसमें। यह तो इसका अस्तित्व पर्याय में सिद्ध करना इसका है, ऐसा कहा। किन्तु जब वस्तु का अस्तित्व शुद्ध चैतन्य है, इसके अस्तित्व में ले जाना है। इसको यहाँ खड़ा नहीं रखना। हैं? इसका इसमें तेरे से तुझे तेरे अज्ञानभाव से हुआ है। अर्थात्? भगवानस्वरूप प्रभु चैतन्यज्योत जगमग ज्योति... आहाहा! यह स्वयं उसके स्वरूप के अजानपने में अज्ञान से उत्पन्न हुआ भाव है। यह तो स्वरूप का ज्ञान नहीं। यह अज्ञान से उत्पन्न हुआ भाव तेरी दशा में है। अब यहाँ तो स्वरूप का ज्ञान कराना है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : घड़ीक में पुद्गल का घड़ीक में जीव का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हमारे 'फावाभाई' कहते हैं। सुबह कुछ आये। दोपहर... कौन सी अपेक्षा से (कहते हैं, यह समझना चाहिए)। दोपहर को जीव का कहा और अभी पुद्गल का। इसमें सुबह और दोपहर का मेल कहाँ? कौन सी अपेक्षा है, प्रभु! यह तो स्याद्वाद मार्ग प्रभु का है। अर्थात्? कि पर्याय में होता है, यह तो पर्याय से अपने से, अपने में, अपने कारण से होता है। यह तो इसका पर से भिन्न अस्तित्व सिद्ध करने वह राग का, पुण्य-पाप के भाव का अस्तित्व तेरी पर्याय में और वह तेरे से। तेरे से अर्थात? तेरे स्वरूप के अज्ञान से (हुआ है)। आहाहा! हैं? ऐसा मार्ग! स्वरूप जो चिदानन्द, प्रभु, उसके अज्ञान से उत्पन्न किया हुआ तुमने किया है। ऐसा वहाँ कहना है। अब यहाँ तो इसको भिन्न करके वस्तुस्थिति है, वहाँ इसको ले जाना है। जो त्रिकाली जीव स्वभाव है... आहाहा! वहाँ इसको यह स्वभाव की प्राप्ति हो, इस रीति से ले जाना है। यह किस रीति से प्राप्ति हो? आहाहा!

दूसरे अन्य [**अपरेण**] है न ? [**अपरे**] अर्थात् दूसरे, [**अकार्य**] अर्थात् व्यर्थ। तेरी आत्मा का यह वास्तविक कार्य नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो धर्म के मार्ग की रीति है। यह कोई वार्ता या कथा नहीं। आहाहा ! यह तो भगवतस्वरूप परमात्मा त्रिलोकनाथ ने, तीर्थंकर परमेश्वर ने यह स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो, इसकी रीति और क्या कहा था यह ? नियम। वस्तु के स्वभाव का नियम (फरमाते हैं)। ऐसा आया था न ? यह नियम विकार परिणाम के तुम कर्ता (हो), यह वस्तु के स्वभाव का नियम। पर्याय में पर्यायबुद्धिवाला, द्रव्य के स्वभाव के अजानपने वाला... आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! भगवान आनन्द का नाथ चिदानन्द प्रभु, नित्य आनन्द और नित्य ज्ञायकस्वभाववाली चीज़ (मौजूद है), उसके अज्ञान से, उसके भान बिना पर्यायबुद्धिवाला, पर्याय में विकार करता है, वह उससे है। यह कर्म से नहीं और पर से नहीं। इतनी बात वहाँ सिद्ध की है।

अब यहाँ दूसरी बात सिद्ध करना है कि जो पर्याय में पर्यायबुद्धि से विकृतभाव था, तेरे से तुम करते हो, यह तुम्हारे स्वरूप में नहीं और तेरा त्रिकाली स्वरूप इसमें नहीं। और इसके कारण से त्रिकाली स्वरूप प्राप्त हो, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! लो ! कहा है न कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका। ज्ञान की पर्याय में ज्ञानावरणीय के कारण से हीन दशा हुई है। ज्ञानावरणीय का यह कार्य है; तो यहाँ कहते हैं, ना। यह तो अपनी पर्याय की हीन दशा का कार्य स्वयं का है। तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहने में आता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। यहाँ कहते हैं यह है तो तेरी पर्याय का तेरा, किन्तु पर्याय में तेरा। वस्तुस्वभाव की प्राप्ति के लिये यह तेरा नहीं, यह तो पुद्गल का है। शान्तिभाई ! ऐसी बातें हैं। आहाहा !

प्रभु ! चौरासी लाख के अवतार में हैरान हो गया हो तू। यह पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव भी राग है, यह व्यर्थ चीज़ है, आत्मा को लाभकारक है ही नहीं— ऐसा कहते हैं। अरे ! जगत को बैठना कठिन। है तेरा, पर्यायबुद्धि से किया हुआ तेरे में, किन्तु तुझे यह दुःख का कारण है। अब उससे विरम। आहाहा ! अर्थात् कि पर्यायबुद्धि से अज्ञान से करता था। आहाहा ! अब हठ मत कर, ऐसा कहते हैं। यह मेरा है—ऐसा हठ मत कर अभी। है इसमें ? **हठ मत कर...** आहाहा !

भाई ! यह तो शान्ति का, धर्म का मार्ग है। इस शान्ति के मार्ग में कोलाहल क्या ?

कहते हैं। आहाहा! अन्य, दूसरे व्यर्थ, तेरा कार्य नहीं, ऐसा कार्य कि जिससे बन्धन हो— ऐसे कार्य (बन्धन) का कारण, यह तेरा कार्य नहीं। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है। इसमें कोई पण्डिताई काम आये ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कौन सी वस्तु काम में आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में यह आत्मा की समझ करना हो तो पण्डिताई काम नहीं आती वहाँ। यह कहते हैं कि विकल्प की जो दशा तेरी, यह कोई तेरा काम नहीं करे। आहाहा! बहुत संक्षिप्त। आचार्यों दिगम्बर सन्तों ने जो गजब काम किया है। एक-एक कलश से, एक एक गाथा से सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग को खोलकर रख दिया है। आहाहा! वाडा बाँधकर अपना पन्थ करने बैठा है—यह वह नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यहाँ तो [**अपरेण**] शब्द है न? दूसरे मिथ्यात्व आदि के परिणाम, ऐसा। कि जो कर्म बन्ध के कार्य। [**अकार्यं**] अर्थात् तेरा कार्य नहीं; यह कर्म बन्धन के कारण का कार्य है। आहाहा! [**कोलाहलेन किं**] ऐसे कोलाहल से प्रभु तुझे क्या लाभ है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो प्रभु का मार्ग है शूरों का, यह कायर का वहाँ काम नहीं। आहाहा! दुश्मन आये और पीछे हठ जाये ऐसे कायर का यह काम नहीं है। आहाहा! अकाम, अकार्य। जो व्यर्थ, तेरा कार्य नहीं, और यह व्यर्थ कार्य यह राग-द्वेष, पुण्य-पाप... आहाहा! यह झूठे विकल्प हैं। तेरे सत्य को नुकसान करनेवाले हैं। समझ में आया? अरे! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

अरे..! इसको चौरासी लाख के अवतार में से बाहर निकालना है, इसलिए कहते हैं कि जो इसके भाव में बन्धन हो और जिससे अवतार मिले, ऐसे व्यर्थ कार्य के राग से, पुण्य से तुझे क्या काम है? आहाहा! भाई! तुझे बाहर में जवानी कुछ हो, पाँच-पचास हजार, दो-पाँच-पच्चीस लाख मिले हों (ऐसे) उत्साह में तेरा समय जाएगा इसमें। किन्तु यह दुःख के दिन में जाता है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? रात्रि में कोई पीड़ा आयी हो तो ऐसा कहे, रात है यह ऐसी के ऐसी भी बड़ी लगे। हें? और यह बाहर की अनुकूलता के रसिया का समय कहाँ जाता है, इसकी भी खबर

नहीं मिले। आहाहा! हैरान करने में समय जाता है, इसकी इसको खबर नहीं होती। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग अलग जाति का है। यह तो यहाँ (कहते हैं), दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह भाव भी पुद्गल के हैं; जीव के नहीं। यह अकार्य कोलाहल मुफ्त का काम है। आहाहा! लोगों को कठिन (पड़े)। बेचारे सम्प्रदाय में बँध गये हुए, उनको वीतराग का मार्ग समझना भारी कठिन। हैं? अनादि से बँधे हुए हैं न? इसके लिये तो कहते हैं। यह सब विकल्प झूठे हैं।

उसका विवरण–कोई मिथ्यादृष्टि जीव शरीर को जीव कहता है,... शरीर, वह जीव है; शरीर की क्रिया, यह आत्मा करता है। आहाहा! भगवान की पूजा के समय स्वाहा (बोले), यह वाणी और देह की क्रिया तो जड़ की है। आहाहा! यह क्रिया मेरी है, मैं करता हूँ (—ऐसा माननेवाला) शरीर को जीव मानता है। आहाहा! ऐसी बातें। वीतराग का मार्ग बहुत अलग जाति का, बापू! परमेश्वर यह कहते हैं, **मिथ्यादृष्टि जीव शरीर को जीव कहता है,...** इसका अर्थ कि शरीर की जितनी क्रिया होती हैं, यह मेरे से होती है अर्थात् शरीर को ही इसने जीव माना है। आहाहा!

'छहढाला' में आता है न यह? 'छहढाला' में आता है। तन उपजत अपनी उपज जान (मानता है) 'छहढाला' में आता है। पाठशाला में सीखे परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती। यह शरीर उपजे और शरीर कोई पुष्ट हो, वह शरीर की क्रिया हो, वह मेरे से होती है। मैं बोला, मैंने शरीर को चलाया, दया पालने में जीव नीचे मरता था तो शरीर को मैंने ऊँचा रखा। आहाहा! यह शरीर की क्रिया जड़ की है। यह मेरे से होती है, ऐसा माना इसने शरीर को जीव माना। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

वीतराग मार्ग में कोई पक्ष नहीं कि दुनिया बहुत माने और बहुत भीड़ इकट्ठी हो, इसलिए इनका सच्चा है। लाखों-करोड़ों भले हो, कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की क्रिया एक ऐसा कदम बढ़ाना, जीव नीचे हो और पैर ऊँचा रखना नहीं तो मर जाएगा। यह शरीर को ऊँचा रखने की क्रिया मैंने की, वह शरीर को जीव मानता है, ऐसा कहते हैं। कहो, शकुनलालजी! ऐसा है कहाँ? था? आहाहा! मार्ग ऐसा, बापू! क्या हो? दुनिया तो अनादि से ऐसे के ऐसे अज्ञान में पड़ी है।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव आठ कर्मों को जीव कहता है,... देखा? कर्म का फल आये वह मेरा फल है। आहाहा! पैसा मिला, शरीर ठीक मिला, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब कुछ ठीक मिला, धन्धा कुछ ठीक चला, यह सब कर्म का फल है, तो भी यह मेरा है—ऐसा मानता है। आहाहा! ऐ..ई..! शान्तिभाई! **आठ कर्मों को जीव कहता है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा मेरा, ऐसा मानना यह क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुत्र मेरा, यह कर्म का फल है और अपना माने, यह कर्म को माना है। भाई! घर का प्रश्न करते हैं। सुमनभाई का। सुमनभाई तो होशियार है न। छह हजार का आठ हजार का वेतन है।

मुमुक्षु : इसको होशियार कहा जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लोग कहते हैं, दुनिया कहती है कि दस हजार का वेतन यह होशियार व्यक्ति। दुनिया पागल है। यहाँ तो यह बात है, बापू! परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ समवसरण में इन्द्र और गणधरों के मध्य परमात्मा ऐसा फरमाते थे। आहाहा! समझ में आया? कहो, पोपटभाई! आहाहा! भारी बात परन्तु संक्षेप में भी कितना कहते हैं! आहाहा!

कोई मिथ्यादृष्टि जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसाय को जीव कहता है... देखा? यह दया, दान, व्रत, भक्ति का राग है, यह मेरा है और मुझे लाभकारी है—ऐसा माननेवाला राग के अध्यवसाय को जीव मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : रागादि को तो स्थूल कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...अध्यवसाय कहा है न, एकत्वबुद्धि। एकत्वबुद्धि की अपेक्षा से सूक्ष्म कहा है। है तो स्थूल। परन्तु इसको एकत्वबुद्धि है कि यह राग, वह मेरा। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा भिन्न है, उसको ऐसी राग की क्रिया मेरी है, एकताबुद्धि है, उसको यहाँ मिथ्यात्व कहा है। आहाहा! भारी बातें, भाई! शान्तिभाई! अज्ञानी का तो सिर घूम जाए ऐसा है। आहाहा!

रागादि सूक्ष्म अध्यवसाय... अध्यवसाय क्यों लिया? कि एकत्वबुद्धि लेना है।

इत्यादि रूप से नाना प्रकार के... समयसार में बहुत हैं। **नाना प्रकार के बहुत विकल्प करता है।** देखा! ऐसे विकल्प-राग उत्पन्न करता है, एकत्वबुद्धि के। आहाहा! जो कुछ व्रत, तप और भक्ति का विकल्प उठता है, यह राग है। उसको भी एकत्व-अपने हैं, ऐसा मानता है, यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! अरे..! सत्य बात सुनने मिले नहीं, यह बेचारा सत्य में कब जाए? कल कहा था नहीं? बरांका। यह बेचारा, बेचारा भिखारी। आहाहा! तत्त्व के अजाने को रांका कहा था। रांकाओं। आहाहा! जो राग को अपना स्वरूप मानकर लाभ माने, यह बेचारा रांका-भिखारी है। आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों की यह वाणी है, ऐसी कहीं है नहीं। आहाहा! कड़क है।

इत्यादि रूप से नाना प्रकार के बहुत विकल्प करता है। भो जीव! उन समस्त ही विकल्पों को छोड़,... आहाहा! यह राग यह मेरा, शरीर यह मेरा, कर्म यह मेरा और कर्म से फल हो, यह मेरे से हुआ। प्रभु! इन सब भावों को छोड़ यदि तुझे सुखी होना तो। यदि तुझे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो... सम्यग्दर्शन अभी, हों! धर्म की पहली दशा। और सम्यग्दर्शन बिना के व्रत और तप तो सभी बालव्रत और बालतप। संसार में भटकना है सब। समझ में आया? क्या कहा? **भो जीव! उन समस्त ही विकल्पों को छोड़,...** राग की एकताबुद्धि छोड़। आहाहा! विरम। आहाहा! **क्योंकि वे झूठे हैं।** देखा! दूसरी बार आया। पहले झूठे विकल्प हैं, ऐसा कहा। पहले नीचे। झूठे हैं अर्थात? हैं तो सही। किन्तु आत्मा के नहीं; इसलिए झूठे हैं। आहाहा!

'निभृतः सन् स्वयं एकं पश्य' [**निभृतः**]... आहाहा! **एकाग्ररूप होता हुआ...** आहाहा! चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु में एकाग्र होकर... आहाहा! भाषा सरल है। जहाँ अनन्त पुरुषार्थ माँगती है। ऐसे विकल्प छोड़ और आनन्द का नाथ भगवान विराजता है, वहाँ स्वरूप में एकाग्र हो। तुम वहाँ हो, वहाँ जाओ। आहाहा! इन विकल्प में तुम नहीं, इसमें तुम नहीं, यह तेरे में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। फिर 'सोनगढ़' वाले को ऐसा कही कहे न। यह 'सोनगढ़' की बात है कि शास्त्र की है? ऐई..! सोनगढ़वाले व्यवहार को उत्थापित करते हैं और निश्चय... अरे! सुनो न, प्रभु। सब तेरी बात की खबर नहीं क्या पूरी दुनिया की?

यहाँ कहते हैं कि विकल्प जो है, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग यह भी झूठा है। तेरे आत्मा को लाभदायी नहीं। आहाहा! कैसे बैठे? अनन्त काल भटकने में गया और उसी के उसी पन्थ में पड़ा हुआ है। इसको बदलना इसको नहीं पोसाता। आहाहा! और यह बात इसको ऐसी लगती है कि यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... ऐसा कहते हैं। इसको बेचारे को खबर नहीं हो, क्या करे? आहाहा! बापू! परमार्थ का मार्ग वीतराग जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि यह सब राग के विकल्पों को छोड़ दे अब। इनको छोड़कर जाना कहाँ? आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा है, वहाँ एकाग्र हो तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। अभी सम्यग्दर्शन... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है?

एकाग्ररूप होता हुआ... [**निभृतः**] है न? मूल तो चिन्तारहित होता हुआ। दूसरे स्थान पर ऐसा कहा है न? '**निभृतः**' चिन्तारहित है और ऐसे एकाग्र होगा। [**एकं**] **शुद्ध चिद्रूपमात्र का...** भगवान आत्मा तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। यह सब राग के पुण्य-पाप के विकल्प यह इसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! [**एकं**] **शुद्ध चिद्रूपमात्र का** [**स्वयं**] **स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से** [**पश्य**] **अनुभव कर।** आहाहा! यह भगवान आनन्द का नाथ प्रभु! अन्दर है, ये यह सब विकल्प शरीर और वाणी और मन के राग के, सबसे पर है। आहाहा! इसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ एकाग्र हो। सम्यक् अर्थात पूरी चीज़ जो है, वह सत्य है, उसका तुझे दर्शन होगा, उसमें प्रतीति होगी, उसका अनुभव होगा। आहाहा! अब यह अभी सम्यग्दर्शन की खबर न मिले और व्रत, तप, चारित्र, यह हो गया सब। यह सब अंक बिना का शून्य है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

'**एकं, स्वयं, पश्य**' इतने का अर्थ चलता है। एक शुद्ध चिद्रूप मात्र। वे विकल्प अनेक थे। उनको छोड़कर यह भगवान आत्मा एकरूप शुद्ध चैतन्यघन आत्मा है। आहाहा! उसको स्वयं राग के अवलम्बन बिना, व्यवहार के विकल्पों के आश्रय बिना **स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से...** स्व अर्थात् अपने को, सं-प्रत्यक्ष वेदनपने। यह आत्मा आनन्द का सागर है, इसको तुम अन्तर में एकाग्र होकर अनुभवो, यह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। यह प्रत्यक्ष आत्मा का भाव वहाँ प्रत्यक्ष जानने में आता है। समकित में, मति-श्रुतज्ञान में यह आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन है। आहाहा! एक भी शब्द की खबर नहीं होती। हम धर्म

करते हैं और धर्म करते हमारा कल्याण हो जाएगा। आहाहा! अरे..रे..! संसार ऐसा अनादि काल से भ्रमणा में और भ्रमण में काल निकाला इसने। भाई! अब ऐसा अवसर मिला। आहाहा! इसको छोड़कर यहाँ आओ। जहाँ आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है। भगवतस्वरूप आत्मा है। आहाहा! कैसे बैठे? रांक को प्रभुता बैठे कैसे? आहाहा!

एक बार विकल्प को छोड़ और निर्विकल्प चीज़ एकरूप है, उसमें जा, एकाग्र हो। आहाहा! तुम तुम्हें स्वसंवेदन प्रत्यक्षपने अनुभव कर। आहाहा! स्व अर्थात् आत्मा से सं-प्रत्यक्ष वेदन कर। आहाहा! इसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, इसको यहाँ प्रत्यक्षपना कहा है। ज्ञान में भले ऐसे पूरा ना दिखे, किन्तु आनन्द के स्वाद की अपेक्षा से यहाँ प्रत्यक्ष कहा है। सम्यग्दृष्टि को, धर्म की पहली दशावन्त को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष आत्मा होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्यक्ष आनन्द की अपेक्षा से प्रत्यक्ष। अथवा पर का आश्रय नहीं, इस अपेक्षा से प्रत्यक्ष। व्यवहार अर्थात् राग का आश्रय नहीं, निमित्त का और इसका आश्रय नहीं, इसलिए प्रत्यक्ष कहा है। सीधा स्व को जाने अर्थात् ऐसा पर का आश्रय नहीं; इसलिए प्रत्यक्ष। बाकी है तो श्रुतज्ञान परोक्ष, किन्तु इस रीति से पर का आश्रय नहीं। अकेले स्व को जानने में एकाग्र हुआ, इसका नाम स्वसंवेदन प्रत्यक्ष, इसमें प्रतीति होना, वह समकित। आहाहा! समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! ऐसा कहीं लोहे-फोहे में मिले ऐसा नहीं। हैरान हो गया।

मुमुक्षु : लोहे में न मिले, सोना में मिले और वकीलात में मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकीलात में अज्ञान सब राग है। आहाहा! हम करते हैं। हमने जज के पास दलील की और दलील की और दलील करके हमारा केस जिताए। आहाहा!

यहाँ भगवान कहते हैं, **स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से अनुभव कर।** आहाहा! तेरा स्वरूप जो चैतन्य भगवान है, भगवत जिनस्वरूप प्रभु तेरा है, इसको स्व से, अपने से प्रत्यक्ष वेद-वेदन कर। इसको सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! शास्त्र की पढ़ाई चाहे जितनी हो, उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! यहाँ तो स्वसंवेदन आत्मा

का प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन, उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। आहाहा! अरे..रे! कहाँ मार्ग रह गया और कहाँ लोग मानकर बेचारे हैरान होकर कहाँ अवतार लेगा। अरे! यहाँ कुछ मिलेगा लोग इसके जैसे हो उसे। आहाहा! कुदरत के नियम में तो जो नियम है, वह रहेगा। आहाहा!

स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से अनुभव कर। कितने काल? आचार्य तो छह मास कहते हैं। एक छह महीना तो यह प्रयत्न करो। दूसरे सभी विकल्प छोड़कर छह महीने तो यह अभ्यास कर। यह मध्यम से बात की है। जघन्य तो अंतर्मुहूर्त में प्राप्त हो, ऐसा है। उत्कृष्ट तो अनन्त काल में प्राप्त न हो, ऐसा है। समझ में आया? परन्तु आचार्य महाराज छह मास कहते हैं। अर्थकार ने छह मास न लेकर... **विपरीतपना जिस प्रकार छूटे, उसी प्रकार छोड़कर...** आहाहा! ऐसा अर्थ किया। छह मास का ऐसा अर्थ किया। 'अमृतचन्द्राचार्य' दिगम्बर सन्त-मुनि छह मास कहते हैं, तो यह अर्थ इसका एकदम एकाग्र न लेते, जैसे बने वैसे स्वरूप की दृष्टि कर और राग के विकल्प को दृष्टि में से छोड़, ऐसा कहा।

विपरीतपना जिस प्रकार छूटे... आहाहा! यह राग से मुझे लाभ होता है, यह मिथ्यात्व है। ऐसी विपरीत बुद्धि जैसे छूटे, वैसे छोड़ अब। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अर्धपुद्गलपरावर्तन करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अर्धपुद्गल... यह सब पुरुषार्थ करे तो सब हो गया है अन्दर। यह कहेंगे अन्दर। स्वरूप का अनुभव करे और प्राप्ति न हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। यह कहेंगे अभी। राग की क्रिया में एकाकार हो, इसको आत्मा कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! ज्ञानी को राग आये किन्तु यह ज्ञानी उस राग को हेय जानते हैं। आदरणीय, उपादेय और लाभदायक ऐसे नहीं मानते। आहाहा! अज्ञानी यह राग की क्रिया को उपादेय हितकर है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! यह बड़ा अन्तर। दृष्टि का, मिथ्यात्व का और समकित का इतना अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? है? आहाहा! है?

विपरीतपना जिस प्रकार छूटे उसी प्रकार छोड़कर 'अपि' बारम्बार बहुत क्या कहें। आहाहा! आचार्य दिगम्बर सन्त, आनन्द के अनुभवी, मुनि तो इसको (कहते

हैं) कि जिसको अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव उग्रपने होता है, उसको मुनि कहा जाता है। मुनि कपड़ा बदलकर, नग्न हुआ, पंच महाव्रत का परिणाम (है), इसलिए मुनि (हो गया—ऐसा नहीं)। आहाहा! इसको तो अतीन्द्रिय... अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र वेदना, आनन्द का अनुभव होता है। इसको जैन शासन में मुनि कहने में आता है। है न? आहाहा!

ऐसा अनुभव करने पर स्वरूप प्राप्ति है,... आहाहा! केवल स्वसंवेदन प्रत्यक्षपने अनुभव करते स्वरूप की प्राप्ति है। आहाहा! ऐसा व्याख्यान कैसा यह! इसमें कहीं व्रत पालना, तपस्या करना, यात्रा करना यह बात तो आती ही नहीं। अरे.. भाई! सुनो, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह तो सभी क्रियाएँ राग हो, तब आये। समकिती को आये, अज्ञानी को आये। अज्ञानी को यह राग को लाभ मानकर आये। ज्ञानी को हेय-दुःखरूप जानकर इसको आती है। आहाहा! बहुत अन्तर, बापू! जैनदर्शन वीतरागमार्ग को श्रद्धा में लेना यह कोई अपूर्व बात है। यह कोई साधारण बात नहीं। जैनधर्म, यह कोई बाड़ा नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। जैसा स्वरूप है, वैसा अनुभव करना उसका नाम धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा अनुभव करने पर स्वरूप प्राप्ति है,... आहाहा! **इसी को कहते हैं-'ननु हृदय सरसि पुंसः अनुपलब्धिः किं भाति' भो जीव! [हृदयसरसि] मनरूपी सरोवर में है...** अन्दर भगवान आनन्द का सरोवर प्रभु है। आहाहा! यह हृदयरूपी सरोवर में **जो जीवद्रव्य... [पुंसः]** अर्थात् आत्मा। **उसकी अप्राप्ति [किंभाति] शोभती है क्या?** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का सरोवर है। इसमें अन्दर अनुभव करे तो क्या अप्राप्ति है, यह शोभित होता है (क्या)? आत्मा ना मिले, वह शोभित हो? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल बीता, चौरासी के अवतार (किये), दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रेवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आहाहा! अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ। पंच महाव्रत अनन्त बार लिया। यह तो राग है, विकल्प है, आस्रव है। आहाहा! किन्तु आत्मा राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव न करे तो उसके बिना सुख को प्राप्त नहीं करता। ऐसा आया है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रेवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन...' आत्मा के आनन्द के स्वाद के भान बिना यह चौरासी में अवतरित हुआ और फिर भटका। आहाहा! समझ में आया?

[**हृदयसरसि**] **मनरूपी सरोवर में है** [**पुंसः**] **जो जीवद्रव्य उसकी अप्राप्ति** [**किंभाति**] **शोभती है क्या?** आहाहा! यह सब पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनको छोड़कर अन्तर के स्वरूप में अनुभव करे तो इसको आत्मा प्राप्त न हो? अप्राप्ति हो? ऐसी है शोभा? प्राप्त हो, ऐसी यह शोभा है। आहाहा! यह अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त के कथन हैं। अभी तो ऐसा सब विपरीत सुनने मिले और इसमें माने कि हम कुछ आगे बढ़ गये हैं और धर्म में हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **शोभती है क्या?** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती ऐसा तो नहीं है।** ऐसा कहते हैं। विकल्प की लागणी करता है, इसमें तो आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। कारण कि यह सब राग है। चाहे तो दया, दान, व्रत, तप और भक्ति का, यात्रा का सब भाव राग है। इससे तो प्राप्त नहीं होती। परन्तु यहाँ कहते हैं... आहाहा! **शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती...** (ऐसा तो नहीं) आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव अशुद्ध हैं, इनको छोड़कर अन्तर स्वरूप में जाकर अनुभव करते यह प्राप्ति न हो, क्या ऐसा बने? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, ऐसा तो नहीं है।** आहाहा! **'च उपलब्धिः'** [**च**] **है तो ऐसा ही है कि** [**उपलब्धिः**] **अवश्य प्राप्ति होती है।** आहाहा! स्वसन्मुख में आत्मा का अनुभव करे और प्राप्ति न हो; परसन्मुखता को छोड़े और स्व सन्मुखता में जाए और प्राप्ति न हो— क्या ऐसा बने कोई दिन? कहते हैं। आहाहा!

कैसा है जीवद्रव्य? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर कैसा है? भगवान सर्वज्ञ ने देखा यह, हों! परमेश्वर जिनेश्वर के देखे बिना का जो अज्ञानी आत्मा... आत्मा करते हैं, वेदान्त और यह सब आत्मा ऐसा है और पवित्र है (कहते हैं), यह सब कल्पित बातें हैं। यह तो जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा यह आत्मा यहाँ शुद्ध जीवद्रव्य है, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! ऐसे तो वेदान्तवाले भी बात करते हैं कि आत्मा ऐसा है, आत्मा निर्मल है। बस अनुभव करो, एक सर्व व्यापक है। इसको खबर ही नहीं। यह तो परमेश्वर, जिनेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा ने जो आत्मा देखा... आहाहा!

इसलिए कहा था न ? 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल... ' हे नाथ ! सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। लाखों केवली विराजते हैं। मनुष्यपने में मौजूद हैं, हों ! भक्तिवन्त कहते हैं कि 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल। जिनस्वरूप से शुद्ध हमको देखते हो लाल।' आहाहा ! हमारा आत्मा शुद्ध चैतन्य है। ऐसा प्रभु तुम देखते हो। पुण्य और पाप के विकल्प बिना का आत्मा शुद्ध चैतन्य है, ऐसा प्रभु ! आप हमारे आत्मा को ऐसा देखते हो। हमारा आत्मा रागवाला है और पुण्यवाला है, ऐसा आप नहीं देखते। आहाहा !

जैसा भगवान निज सत्ता से शुद्ध। भगवान यह आत्मा को, सभी आत्मा को, हों ! ऐसे अनन्त जीव को। निगोद से लेकर सभी अनन्त जीव, सर्व जीव। एक लहसुन का राई जितना टुकड़ा (हो), इसमें असंख्य तो शरीर। एक शरीर में अनन्त जीव। यह एक-एक जीव द्रव्यस्वरूप से भगवतस्वरूप स्वयं है। यह अपने बात आ गयी है अभी। सर्व जीव सर्व काल में सम्पूर्ण आनन्द आदि गुण से भरा हुआ भगवान है। पर्याय में भूल है, यह एक तरफ रखो। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! यह निगोद का जीव भी द्रव्यरूप से भगवतस्वरूप है। द्रव्य—वस्तुरूप से, पर्याय में अज्ञान है। आहाहा ! सर्व जीव। तीन लोक में, तीन काल में परिपूर्ण आनन्द आदि शक्ति से भरा हुआ परमात्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? यह कहते हैं।

अन्दर **कैसा है जीवद्रव्य ? 'पुद्गलात् भिन्नधाम्नः'** [**पुद्गलात्**]... यह पुद्गल अर्थात् द्रव्यकर्म से आत्मा भिन्न है। **भावकर्म**... दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम यह भावकर्म विकारी भाव है। आहाहा ! बेचारे चिल्लाये, कहे। क्या हो ? खबर नहीं तत्त्व की। आहाहा ! कहते हैं, **कैसा है जीवद्रव्य ?** अन्दर वस्तु। **द्रव्यकर्म**-अर्थात् आठ कर्म से भिन्न, **भावकर्म**... अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से भी भिन्न है। है ? और **नोकर्म**... शरीर और वाणी, इससे भिन्न भगवान अन्दर है। आहाहा ! कारण कि पुण्य और पाप तो, नव तत्त्व में पुण्य और पापतत्त्व है। यह कोई आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा ! कर्म और शरीर, यह अजीवतत्त्व है। यह आत्मतत्त्व नहीं। तब अजीव और पुण्य-पापतत्त्व यह दो से भिन्न ज्ञायकतत्त्व जो चिदानन्द प्रभु है, यह आत्मतत्त्व है। आहाहा ! अरे..रे.. ! एक भी बात की

खबर नहीं होती और हम धर्म करते हैं और धर्म होता है। कौन ना करता है? बापू! इसका फल आएगा तब खबर पड़ेगी तुझे। आहाहा! अज्ञान से मानी हुई बातें, इसका फल चौरासी का अवतार है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **कैसा है जीवद्रव्य?** अन्दर वस्तु कैसी है? भगवान ने-केवली तीर्थंकर ने देखी यह, हों! कि **'पुद्गलात् भिन्नधाम्नः'**[**पुद्गलात्**]... देखा? भावकर्म को पुद्गल कहा। आहाहा! यह पुण्य का शुभ उपयोग, इसको यहाँ पुद्गल कहा। आहाहा! चिल्लाये। है या नहीं इसमें? **'पुद्गलात् भिन्नधाम्नः'** पुद्गल अर्थात् जड़कर्म, भावकर्म और नोकर्म तीनों ही पुद्गल हैं। यह जीवस्वरूप नहीं, जीव का नहीं। आहाहा! यह शुभोपयोग जो राग (है), यह पुद्गलतत्त्व में, पुण्यतत्त्व का पुद्गलतत्त्व में जाता है, कहते हैं। आहाहा! इससे भगवान अन्दर भिन्न है। उसको आत्मा कहते हैं और यह आत्मा की प्राप्ति यह तीन कर्म से रहित हो करके हो उसको प्राप्ति होती है। आहाहा!

यहाँ तो भावकर्म से रहित हो तो प्राप्त हो, ऐसा कहा। वह कहे कि व्यवहार करते-करते निश्चय हो, ऐसा कहते हैं अभी। भावकर्म अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते निश्चय होगा, यहाँ भगवान निषेध करते हैं कि भावकर्म से रहित है यह भावकर्म से प्राप्ति कैसे हो इसको? आहाहा! बड़ी तकलीफ अभी। पूरब-पश्चिम का अन्तर है।

मुमुक्षु : आप ढील छोड़ दो तो फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : ढील। यह बनिया... है तो ढील छोड़े? (एक) बनिया था, यह किसान से दो-तीन हजार माँगता था। किसान के पास दो हजार की पूँजी। सब हो तो भी, बनिया समझे कि इसके पास दो हजार से अधिक नहीं। बनिया कहे ये लेनदारी में से पाँच हजार से एक पाई कम नहीं लेना है। वह कहे कि हजार सिवाय एक पाई हमारे पास अधिक नहीं। ऐसा करते-करते वह बनिया चार हजार पर आया, वह आया बारह सौ रुपया, वह आया दो हजार पर ऐसा करते-करते वह बनिया वह आया पन्द्रह सौ रुपये पर, ऐसा करते-करते दो हजार सिवाय अब एक भी पाई अधिक नहीं। ऐसे यह.. है कुछ? यहाँ तो वीतराग ने जो कहा है, यह तीन काल में बदले—ऐसा नहीं कुछ भी। वहाँ बनिया हो वह ढील छोड़े (यहाँ) ऐसा नहीं है कुछ। यह कहते हैं वह। मुम्बई में नहीं? 'पूनमचन्द

घासीलाल' मन्दिर नहीं मन्दिर ? कालबादेवी। एक तो साधु हुआ है। यह आया था। ये 'पूनमचन्द घासीलाल' बहुत वर्ष पहले कहते थे। 'हिम्मतभाई' लाये थे न ? 'हिम्मतभाई झोबालिया' लाये थे। ये 'पूनमचंद घासीलाल' घर का मन्दिर है न वहाँ ? मुम्बई में मन्दिर है, प्रतापगढ़ के हैं। यह 'कानजीस्वामी' थोड़ा ढीला करे, थोड़ा हम ढीला करें, ऐसे इकट्ठे हों—कुछ-कुछ ऐसा कहता था, कि भाई! यह पुण्य, दया, दान के व्रत से भी कुछ लाभ हो, थोड़ा तो लाभ हो, ऐसा जरा कहो, ऐसा हम कहते हैं कि भाई! इससे थोड़ा लाभ हो, पूर्ण लाभ न हो, तो अपने समन्वय हो जाए। अरे! भगवान! यह समन्वय नहीं होता, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! परमात्मा का विरह पड़ा, केवली का विरह पड़ा, भगवान की गैर हाजिरी में ऐसा उल्टा-सीधा करे यह नहीं चलेगा, भाई!

कैसा है ? **चेतनरूप है तेजःपुंज...** है न ? [**भिन्नधाम्नः**] भिन्न प्रकाश है। भगवान का प्रकाश तेजपुंज तो पुण्य-पाप के परिणाम से भी भिन्न है। आहाहा! उसको अनुभवना और उसको मानना और वेदन करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। इसके बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-३५

(अनुष्टुप्)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी।।३-३५।।

खण्डावन्य सहित अर्थ-'अयं जीवः इयान्' [अयं] विद्यमान है ऐसा [जीवः] चेतनद्रव्य [इयान्] इतना ही है। कैसा है? 'चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारः' [चिच्छक्ति] चेतनामात्र से [व्याप्त] मिला है [सर्वस्वसारः] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण जिसके ऐसा है। 'अमी सर्वे अपि पौद्गलिकाः भावाः अतः अतिरिक्ताः' [अमी] विद्यमान हैं ऐसे [सर्वे अपि] द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप जितने हैं उन सब [पौद्गलिकाः] अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं ऐसे [भावाः] अशुद्ध रागादिरूप समस्त विभाव परिणाम [अतः] शुद्धचेतनामात्र जीव वस्तु से [अतिरिक्ताः] अति ही भिन्न हैं। ऐसे ज्ञान का नाम अनुभव कहते हैं।।३-३५।।

श्रावण शुक्ल ३, मंगलवार, दिनांक १९-०७-१९७७
कलश-३५-३६, प्रवचन-४४

यह अजीव अधिकार, कलश टीका, ३५वाँ कलश।

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी।।३-३५।।

पहली लाईन का अन्तिम शब्द है। **'जीवः इयान्'** पहली लाईन का अन्तिम शब्द है न? इसका अर्थ है **'जीवः इयान्'** ऐसा [**अयं**] अर्थात् भगवान आत्मा विद्यमान है। चैतन्यस्वरूप से आनन्द और ज्ञानस्वरूप से विद्यमान वस्तु है **ऐसा** [**जीवः**] **चेतनद्रव्य** [**इयान्**] **इतना ही है।** चेतनद्रव्य विद्यमान है। यह चेतनद्रव्य मात्र इतना ही है। **कैसा है?** ये चेतनद्रव्य? **'चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारः'** [**चिच्छक्ति**] **चेतनामात्र से...** चेतना—जानना, ऐसा इसका त्रिकाल स्वभाव। चेतना-चेतना (अर्थात्) चेतना, जानना-

देखना, ऐसा जिसका त्रिकाली स्वभाव है। आहाहा! यह **चेतनामात्र से** [**व्याप्त**] **मिला है** [**सर्वस्वसारः**] **दर्शन, ज्ञान, चारित्र,...** त्रिकाल की बात है।

चेतना के साथ मिला हुआ है, रहा हुआ है। **दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण...** आहाहा! आत्मा जीवद्रव्य जो है, यह चेतना शक्तिमात्र है। चेतना का स्वभाव सामर्थ्य मात्र है। आहाहा! और उसके साथ आनन्द, श्रद्धा आदि अनन्त गुण चेतनाशक्ति की साथ मिला हुआ है, रहा हुआ है। आहाहा! इसको आत्मा कहते हैं और यह सम्यग्दर्शन का विषय (है)।

जीवद्रव्य विद्यमान है, जीवद्रव्य इतना ही है। चेतनद्रव्य कि जो चित्शक्तिमात्र (है) और इसके साथ दर्शन, ज्ञान, चारित्र मिला हुआ है। [**सर्वस्वसारः**] सर्वस्व। अपना सर्वसार। आहाहा! भाषा ऐसी कठिन। अन्तर में चेतनास्वभाव के साथ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द गुण, इसके साथ-चेतना के साथ अनन्त गुण मिले हुए—रहे हुए हैं। आहाहा! **दर्शन, ज्ञान, चारित्र,...** त्रिकाली, हों! त्रिकाली की बात है। आनन्द, सुख आनन्द के साथ त्रिकाल चेतना रही हुई है। चेतना के साथ आनन्द त्रिकाल रहा हुआ है। चेतना के साथ श्रद्धा, दर्शन, यह भी त्रिकाल रहा हुआ है। वीर्य भी चेतना के साथ (त्रिकाल रहा हुआ है)। इसका बल जो है—वीर्य, यह भी चेतना के साथ सर्वस्व सार है इसका। सर्वस्व अपना यह सार है। आहाहा! यह तो जीवद्रव्य की व्याख्या (हुई)। आहाहा!

'अमी सर्वेअपि पौद्गलिकाः भावाः अतः अतिरिक्ताः' [**अमी**]... आहाहा! उसमें ऐसा कहा था [**अयं**]... विद्यमान है। यहाँ कहा कि विद्यमान है ऐसा। यह भी है। आहाहा! **द्रव्यकर्म...** आठ जड़कर्म; **भावकर्म...** पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति के परिणाम और काम, क्रोध, मान, माया, लोभ के भाव, यह भावकर्म सभी पुद्गल हैं। आहाहा! [**पौद्गलिकाः**] कल कहा था न? **'भावाः पौद्गलिका'** पण्डितजी! संस्कृत में है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो चैतन्यशक्ति के स्वभाव के सामर्थ्य से जीवद्रव्य और दूसरे अनन्त गुणों के साथ मिले हुए गुणवाला जीवद्रव्य है। आहाहा! ऐसा जीवद्रव्य है, यह अन्तर में सम्यग्दर्शन के विषय में यह जब दृष्टि में आये, तब इसको सम्यग्दर्शन हो।

आहाहा! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी हो। आहाहा! समझ में आया? अजीव अधिकार है न? तो यह चेतना और इसके साथ रहे हुए जो गुण, यह ही जीवद्रव्य वस्तु है। आहाहा! इससे भिन्न जड़कर्म, भावकर्म—पुण्य-पाप के भाव... आहाहा! गज़ब बात है। व्रत और तप और भक्ति और पूजा, यह सब पौद्गलिक भाव हैं, पुद्गल भाव हैं। आहाहा! गज़ब बात लिखी, बापू! जगत को सुनने नहीं मिले। अरे! यहाँ तो (अज्ञानी कहते हैं), ये व्रत, भक्ति, पूजा करें, यह धर्म है। आहाहा! ऐसी प्ररूपणा करते हैं। ऐसी मान्यता, प्रभु! नुकसानकारक है, भाई! तेरे हित के लिये तो यह है। आहाहा!

जीवद्रव्य वस्तु, यह द्रव्य कहा और चेतनाशक्ति, यह इसका गुण कहा और यह गुण के साथ दर्शन, आनन्द रहे हुए-मिले हुए सब यह इसका सर्वस्व सार है। आहाहा! शीशम की लकड़ी में बीच में सार नहीं आता? बीच का भाग सार होता है। वैसे ही इस आत्मा में चेतना और इसके साथ ज्ञान, दर्शन, आनन्द त्रिकाल, वह इसका सार है। आहाहा! ऐसा जीवद्रव्य भगवान परमात्मा ने कहा है। उसकी अन्तर्दृष्टि करना। ऐसी चीज़ जितनी बड़ी है, उसको उस रीति से सम्यक्-सत्यदर्शन में उसको देखना-मानना... आहाहा! यह तो अभी धर्म की पहली दशा है। फिर आनन्दस्वरूप का भान हुआ है कि भगवान तो आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हो। कहा न सुख? उस आनन्दस्वरूप में अन्दर रमना, लीन होना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की खबर न हो और व्रत और तप और अपवास, संवर और निर्जरा धर्म हो गया। प्रभु! नुकसानकारी है, भाई! तुझे सत्य के पंथ की खबर नहीं।

परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ऐसा फरमाते हैं कि जीव वस्तु जो है, वह चेतनास्वभाव और उसके साथ आनन्द और वीर्य, दर्शन, ज्ञान रहे हुए हैं, यह जीव (है)। उसमें अन्तर्मुख दृष्टि करना, उस जीवद्रव्य ऊपर दृष्टि करना और उसका अनुभव करना इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इसके सिवाय [**अमी**] **विद्यमान हैं ऐसे** [**सर्वेअपि**] है? **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म जितने हैं वे सब...** आहाहा! [**पौद्गलिकाः**] **चेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं...** कहो, देवीलालजी! आहाहा!

दोपहर को ऐसा कहा कि विकार अपनी पर्याय में स्वयं करता है। यह अज्ञानभाव

से मिथ्यादृष्टि जीव (जिसको) स्वरूप की खबर नहीं, वह स्वयं अज्ञानभाव से पुण्य-पाप के भाव का कर्ता होकर करता है—ऐसा सिद्ध किया। यहाँ अभी यह पर्यायदृष्टिवाला वह जीव विकार और पर्याय और विकार ऊपर रुचि और बुद्धि होने से उसका वह रचनेवाला, करनेवाला कहा जाता है।

अब यहाँ तो चेतनद्रव्य की दृष्टि कराने के लिये (ऐसा कहते हैं)... आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञानघन चिद्घन, आनन्दकन्द... आहाहा! ऐसा जो जीवद्रव्य-वस्तु इससे जितनी पर्याय की विद्यमानता है, यह भी विद्यमान है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ, चोरी—ऐसे भाव भी विद्यमान हैं। आहाहा! अर्थात् अस्तित्व धराते हैं। कुछ नहीं ही, ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : विकारी भाव को तो झूठा कहने में आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह झूठे का अर्थ स्वरूप नहीं, इसलिए झूठा है। 'है' अपेक्षा से सच्चा। उसकी अपेक्षा से झूठा। यह तो ऊपर आ गया है, झूठा। नहीं? **क्योंकि वे झूठे हैं।** चौथी लाईन आयी थी न? **उन समस्त ही विकल्पों को छोड़, क्योंकि वे झूठे हैं।** और इस ओर ये आया-कोलाहल यह झूठे विकल्प हैं। दो जगह कहा। झूठे का अर्थ कि यह सत्य स्वरूप में यहीं। यह सत्य स्वरूप की अपेक्षा से वह असत्य है, इसलिए झूठा है, किन्तु उनकी अपेक्षा से तो है, विद्यमान है। आहाहा!

जैसे यह आत्मा की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। यह सत् है तो दूसरे असत् हैं, किन्तु इसकी अपेक्षा से यह सत् है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा चैतन्य और अनन्त आनन्द के गुण का पिण्ड प्रभु, ऐसा जो सत् का स्वरूप... आहाहा! यह सत् का साहेब भगवान आत्मा इसकी—सत् की अपेक्षा से यह जितना पुण्य और पाप का भाव (होते हैं वह और) यहाँ तो द्रव्यकर्म भी लिया। जड़ है, वह भी इसकी अपेक्षा से असत् है। ऐसे त्रिकाली ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से यह पुण्य और पाप का भाव भी असत्य है, इसलिए झूठे हैं। किन्तु उनकी अपेक्षा से विद्यमान है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अभी... स्वरूप... सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. भगवान ने बहुत सूक्ष्म कहा है। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! यह तो सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर देखकर, जानकर कहा

है। भाई! तेरा स्वरूप तो चेतना और अनन्त गुण सर्वस्व सारवाला तेरा स्वरूप है और यह सब जो विकल्प उठते हैं... आहाहा! भगवान की भक्ति और भगवान का स्मरण और... आहाहा! शास्त्र का वांचन और शास्त्र का श्रवण करना, शास्त्र का वांचन देना... आहाहा! यह सब विकल्प पुद्गल है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का ध्यान करने का विकल्प...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प, यह पुद्गल का है।

एक ओर भगवान का भाव और एक ओर पुद्गल का भाव। दो को बाँटा है यहाँ। अजीव अधिकार है न? अर्थात् यह पुण्य का दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव भी अजीव है। ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! अरे रे! प्रभु! तेरी बात तुझे खबर न पड़े, और खोटी बात मानकर मुझे इसमें धर्म होगा... आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणति है यह है जीव का स्वरूप, परन्तु जो इसको त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से लेना हो तो शुद्ध परिणति को भी परद्रव्य कहने में आता है।

मुमुक्षु : पौद्गलिक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पौद्गलिक नहीं। किन्तु यह तो परद्रव्य क्यों कहा? इसको परद्रव्य कहा और उसको परद्रव्य क्यों कहा? यह है यह पुद्गल का है, इसलिए परद्रव्य कहा। और 'नियमसार' में शुद्ध परिणति को परद्रव्य कहा। यह तो पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चा धर्म प्रगट हुआ, किन्तु इसमें से नयी पर्याय नहीं आती; नयी पर्याय तो त्रिकाल द्रव्य में से आती है। इसलिए त्रिकाल द्रव्य को स्वद्रव्य कहकर और शुद्ध पर्याय को भी इस अपेक्षा से परद्रव्य कहा है। अरे रे! इतनी सब बातें! देवीलालजी! क्या हो? प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों में एक-सी अपेक्षा नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन-सी अपेक्षा है, यह जानना चाहिए।

मुमुक्षु : दोनों में एक ही अपेक्षा नहीं, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, एक अपेक्षा हो ही नहीं। अलग-अलग अपेक्षा है। कहा नहीं यह ? कि विकार अज्ञानी जीव स्वयं करता है। अब यह अपेक्षा कौन सी है ? क्योंकि अपना स्वरूप जाना नहीं, इसलिए अज्ञानी पुण्य-पाप के भाव का कर्ता होकर करते हैं। आहाहा! स्वरूप चैतन्य यह जीवद्रव्य चैतन्यशक्ति और अनन्त आनन्द आदि गुण से मिला हुआ स्वरूप है। ऐसे स्वरूप की तो दृष्टि और ज्ञान नहीं। ऐसे स्वरूप के अज्ञानी जीव की दृष्टि राग ऊपर और पर्याय ऊपर है। इसलिए जिसके ऊपर दृष्टि है, उतने का अस्तित्व स्वीकार कर उसका कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया ? भाई! मार्ग ऐसा है। यह कोई ऐसे का ऐसा... आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ है। यह कोई ऐरे-गेरे का कहा हुआ नहीं। इसको समझने के लिये, बापू! इसका प्रयत्न चाहिए, पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! समझ में आया ?

अरे! अनन्त काल से दु:खी (हुआ है)। मुनिव्रत भी अनन्त बार धारण किया, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, शुक्ललेश्या धारण किया। आहाहा! किन्तु यह बन्ध का कारण है। यह पौद्गलिक कहा न ? उसमें इसने धर्म माना है कि हम पंच महाव्रत पालते हैं न, यह हमारे धर्म हैं। यह मिथ्यादृष्टिपने का सेवन किया है। यह विकार पुद्गल कहा है। जीव का स्वभाव नहीं। इससे मुझे लाभ होगा, ऐसा माना है, यह मिथ्यादृष्टि पंच महाव्रत पालनेवाला होने पर भी इसको जैन की दृष्टि की खबर नहीं। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। वह तो ऐसा चला है बस, सम्यग्दर्शन क्या फिर ? यह हम भगवान को मानते हैं, देव-गुरु (को) मानते हैं, यह सम्यग्दर्शन। आहाहा!

(संवत्) १९८० की वर्ष में हमारे गुरुभाई ऐसा कहते थे। १९८० के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए ? ५३, जब व्याख्यान की प्ररूपणा चली उस समय तो हजारों व्यक्ति आते थे। उस समय समुदाय में भी। तीन सौ घर हैं वहाँ 'बोटाद' में स्थानकवासी के। इसमें थे न! १९८० में व्याख्यान चलता था। भाई! सम्प्रदाय की रुचि है, सम्प्रदाय की मानी हुई दृष्टि कोई सच्ची नहीं। संक्षेप रुचि को सम्यग्दर्शन कहते हैं वे लोग। उस समय की बात, ५३ वर्ष पहले की बात है। हमारे गुरुभाई 'मूलचन्दजी' बाहर बैठे थे। व्याख्यान चलता हो तो लोगों को... हमारी प्रतिष्ठा तो पहले से इतनी बड़ी थी न! व्याख्यान करने बैठे

तो लोग (व्यक्ति) मकोड़ा के जैसे उमड़े। उपाश्रय में नहीं समायें। बाहर गली में बैठे।

कहा, यह संक्षेप रुचि अर्थात् कि संक्षेप रुचि अर्थात् कि कुछ समझे बिना की रुचि, वह सम्यग्दर्शन यह नहीं। कुदृष्टि ऐसा पाठ है। 'अणभीगयदीठी' कुदृष्टि जिसको नहीं परन्तु संक्षेप में जिसे आत्मा के स्वरूप का भान होकर दृष्टि की है, परन्तु कुदृष्टि जिसे नहीं है और अन्यमत का कोई भी अभिप्राय जिसको नहीं, ऐसे जीव को संक्षेप रुचि समकिती कहा है। यह इसको नहीं रुचता था। मूलचन्दजी थे। सुनते-सुनते भाग गये—चले गये। दिशा के लिये चले गये जंगल। फिर कहा कि मैं यह सुन नहीं सका। मुझे इस समय यह कहना था कि ऐसा खोटा तुम (कहते हो)। मैंने कहा, कि नहीं कहा तो अभी कहो। भाग गये। मार्ग तो यह है, कहा। दुनिया लाख बात करे, चाहे जो करो। ऐसा कि हमारे सम्प्रदाय की दृष्टि है, यह बराबर है। अब तो इसको व्रत और तप और चारित्र लेना। यह चारित्र। ऐसा कहते थे। आहाहा! शिवलालभाई! तुमने उनको देखा था? नहीं देखा होगा। यह (संवत्) १९९८ में काल कर गये (गुजर गये)। १९९८ में।

यह सम्प्रदाय में बहुत चर्चा चलती थी। कहा, भाई! मार्ग तो यह है। हम बाड़े में आ गये, यहाँ आ गये, इसलिए यह मानें—ऐसा नहीं है कुछ। इसलिए ऐसे मत उलझो तुम कि हमारे बाड़े में आये, इसलिए अब जायेंगे कहाँ? मुझे तो सत्य लगा और असत्य जहाँ लगेगा तो छोड़ देंगे सब। हमें दुनिया की कोई दरकार नहीं है, बापू! इसलिए लोग डरते थे, हमारे से डरते थे। बहुत नहीं कहना इनको नहीं तो यह अभी मुँहपत्ती छोड़ देंगे। सेठिया भी डरते थे। दामोदर सेठ थे बड़े, उस समय इसके पास दस लाख रुपया था। ६० वर्ष पहले दस लाख रुपया। चालीस हजार की उपज। दामनगर का बड़े सेठिया था। उस समय ६० वर्ष पहले दस लाख अर्थात्! अभी तो अब रुपया सस्ता हो गया। यह डरे, कुछ कहना नहीं। बहुत रीति रूप बात करना इसके साथ। नहीं तो यह तुरन्त सम्प्रदाय छोड़ देंगे। बाड़ा छोड़ देंगे कि भाई हम बाड़े में आये इसलिए बाड़े की बात सच्ची है, ऐसा हम मानने के लिये नहीं आये। हम तो हमारा करने के लिये आये हैं। समझ में आया? आहाहा!

हमारे गुरु भी बेचारे ऐसे नरम थे। दीक्षा ले ली थी, शरीर रूपवान-सुन्दर। उस समय पच्चीस वर्ष की उम्र। अभी तो ८८ हुआ। लोग कहें, कानजीस्वामी वाँचे...

कानजीस्वामी वाँचे। ऐसा कहे, हमारे गुरु फिर कहें, भाई! तुम वाँचो न। महाराज! मैं वाँचने नहीं निकला, हों! मुझे फिर से कहना नहीं। मैं तो मेरा आत्मा का करने के लिए निकला हूँ। सभा बैठे और मैं वाँचन करूँ, इसमें से (इसके लिए) मैं निकाल नहीं। हमारे गुरु बहुत नरम थे। कषाय मन्द, ब्रह्मचारी। इनके लिये किये हुए पानी का बूँद हो तो प्राण जाये तो न ले। अभी तो यह साधु दिगम्बर के लिये चौका करके लेते हैं। आहाहा! कुकर्म है, जैनधर्म के नाम पर। वह तो पानी की एक बूँद (भी न ले)। गाँव में जायें, सात-आठ घर हों। महाराज चार सेवा में रहनेवाले थे, जायें (इसलिये) पानी सीधा गर्म करे। आहार लेने जायें वहाँ यह कहे, यह पानी क्यों किया था? कि महाराज! हमारे नहाने (के लिये)। अभी क्यों रखा है? न लें। यह तो मेरे लिये किया है। हम आये फिर हमारे लिये यह किया है। आहाहा! ऐई! तो भी वस्तु की दृष्टि झूठी। धर्म क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। यह तो पर की दया पालना-यह धर्म। बस। ऐसा कहते थे। बहुत शान्त थे, नरम थे। परन्तु अन्दर वस्तु की कोई खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं... यह तो 'अमृतचन्द्र' दिगम्बर सन्तों की बातें पूरी दुनिया से अलग है। भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, आनन्द के गुणसहित सर्वस्व जिसका—आत्मा का सार, यह जीवद्रव्य। इससे भिन्न भावकर्म, द्रव्यकर्म अर्थात् आठ कर्म। यह तो सीधा अजीव है। किन्तु भावकर्म—दया का भाव, दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का, अपवास करने का विकल्प उठता है, यह सब पुद्गल है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? यह भावकर्म है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, यह भावकर्म भी अजीव है। आहाहा! जगत चिल्लाये। क्या हो? प्रभु! मार्ग तो यह है, भाई! अनन्त जन्म-मरण मिटाना हो तो मार्ग तो यह है। अरे रे! यह जन्म और मरण में भटककर, कुचलकर अनन्त काल से मर गया है, बापू!

यह तो कहते हैं कि यहाँ तो पुण्य का भाव भी आत्मा को दुःखरूप है। इसलिए उसे पुद्गल का कहा है। आत्मा का भाव हो, यह दुःखरूप नहीं होता, यह तो आनन्दरूप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते प्रगट होता है। आहाहा! धर्म प्रगट होता है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता हुआ प्रगट होता है और यह तो

दु:ख है। आहाहा! भारी बातें कठिन, बापू! और दुनिया की तो खबर है न। यहाँ तो ८८ वर्ष हुए। ६४ वर्ष से तो दुकान छोड़ी है। ६४ वर्ष हुए और दुकान ऊपर भी मैं तो शास्त्र वाँचता था। पिताजी की घर की दुकान थी। 'पालेज' में 'भरुच' और 'बड़ोदरा' के बीच में दुकान है। चलती है। मैं तो दुकान ऊपर भी शास्त्र ही वांचता था। हमारे स्थानकवासी के। स्थानकवासी थे न? पिताजी स्थानकवासी थे। आहाहा! परन्तु यह जहाँ वस्तु हाथ आयी। 'समयसार' जहाँ (हाथ आया)... आहाहा! चीज़ वह चीज़ है। यह समयसार कलश है। ऐसी बात दिगम्बर सम्प्रदाय सिवाय कहीं नहीं। इसको सम्प्रदायवालों को खबर नहीं तो फिर दूसरों को (कहाँ से खबर हो?) क्यों बसन्तलालजी? यह सब इसमें डुबकी मारते थे। भक्ति, पूजा, व्रत और यह सब धर्म। यहाँ कहते हैं कि यह सब पुद्गल के हैं। अर..र..!

अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त। केवलज्ञानी के पथानुगामी और एक दो भव में केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले, मोक्ष जानेवाले, ऐसी जिनकी दशा थी। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से परिणमे हुए थे। आहाहा! बाह्य में नग्नदशा थी। अन्दर में राग से भिन्न अन्तर की वीतरागी शुष्क थी। आहाहा! वे मुनि ऐसा कहते हैं, दिगम्बर सन्त ऐसा कहते हैं कि जितने व्रत और तप और भक्ति के विकल्प उठते हैं, यह सब **अचेतन पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न हुए हैं...** भाषा है? यह चेतनस्वभाव से नहीं उपजे। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़े। और बैठे कहाँ से? अभी तो सुनने मिले ही नहीं। वहाँ बेचारा क्या करे? आहाहा! ऊपर कहा था, नहीं? बरांका। आहाहा!

अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं ऐसे... आहाहा! उसको अजीव कहने में आता है। जितने व्रत, तप, भक्ति, पूजा, सम्यग्दर्शन के भान बिना और सम्यग्दर्शन होने के बाद भी अशुभ से छूटने को व्रतादि का विकल्प आये उसको, परन्तु है तो यह हेय और दु:खरूप। आहाहा! आत्मज्ञान होने के बाद भी भक्ति का भाव, पूजा का भाव आये परन्तु यह दु:खरूप है, ऐसा जानकर हेय जाने। अज्ञानी उसे उपादेय जाने, यह अन्तर है। आहाहा! [**पौद्गलिका:**] **अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं...** (इसको) अज्ञानी अपना माने। ज्ञानी उसको अचेतन से उत्पन्न हुए भाव (जानते हैं), इसलिए हेय है, आदरणीय नहीं, हितकर नहीं। आहाहा! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े।

'प्रभु का मारग है शूरों का, वहाँ कायर का काम नहीं।' बापू! आहाहा! अन्यमति नहीं कहते? 'हरि नो मार्ग छे शूरा नों, कायर ना नहिं काम जोने। प्रथम पहला मस्तक मूकी, वळता लेवूं नाम जोने...' ऐसा 'प्रभु नों रे मारग छे शूरानों।' पुण्य से धर्म मनानेवाले कायर—नपुंसकों का यह काम नहीं है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह शुभभाव से धर्म माननेवाले को परमात्मा तो कहते हैं, यह सब पावैया—हिजड़ा—नपुंसक हैं। आहाहा! नपुंसक को जैसे प्रजा नहीं होती, उसी प्रकार शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। आहाहा! शान्तिभाई! नपुंसक कहा है न? 'समयसार' में पुण्य-पाप अधिकार में नपुंसक कहा। पावैया—हिजड़ा हैं। आहाहा! हमारा मार्ग जो है, यह तुझे खबर नहीं। वीर का मार्ग जो है.. आहाहा! जिसका वीर्य स्वभाव सन्मुख प्रेरित करता है और विभाव से जिसका वीर्य हट जाता है, ऐसा जो वीरा परमात्मा का मार्ग है, कायर का वहाँ काम नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए लोग ऐसी बात सुनकर (ऐसी पुकार करते हैं), ऐई! यह तो इनका निश्चय है, इनका एकान्त है। ऐसा मानो, बापू! मानो, ऐसा मानो, भाई! समझ में आया? यह तो कोई खबर नहीं हमको। सम्प्रदाय में से खबर है यह तो। यहाँ तो छोड़ इसको साढ़े ब्यालीस वर्ष हो गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं [**पौद्गलिकाः**] **अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं ऐसे...** तब अभी वह ऐसा कहते हैं कि कर्म के कारण से विकार हुआ।

मुमुक्षु : यहाँ कहते हैं, पुद्गल है।

पूज्य गुरुदवेश्री : पुद्गल है। कौन सी अपेक्षा है? कर्म तो जड़द्रव्य है। जड़ में से जड़ के कारण से पुण्य-पाप का विकार हो, ऐसा नहीं। पुण्य-पाप का भाव चैतन्य की विकारी पर्याय चेतन जैसी ही कहा जाए इसको। इसकी पर्याय का कर्ता, कर्म, जड़ नहीं। यह अज्ञानभाव से अज्ञानी राग और पर्याय ऊपर बुद्धि होने से उसका वह कर्ता होता है। कर्म नहीं।

अब यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात है। द्रव्यस्वभाव। आहाहा! भगवान चेतन स्वरूपी प्रभु में तो अनन्त आनन्द आदि गुण मिले हुए हैं किन्तु यह विकार के अचेतन पुद्गल इसके गुण साथ में मिले हुए नहीं हैं, यह तो भिन्न है, ऐसा कहते हैं। हैं विद्यमान। समझ

में आया ? दूसरी रीति से कहें तो भगवान चेतनद्रव्य जो अनन्त चेतनाशक्ति से और अनन्त गुण से मिला हुआ तत्त्व है, उसमें यह विकारी पर्याय का मेल साथ में नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव को तो चेतना शक्ति से भरा हुआ तत्त्व, वह मैं हूँ—ऐसी दृष्टि में पर्याय में जो कर्म के संग से उत्पन्न हुआ विकार, यह स्वभाव में नहीं; इसलिए उसको पौद्गलिक कहकर उसको हेय जानते हैं। धर्मी जीव उसको हेय जानते हैं। आहाहा! बात-बात में अन्तर। वह नहीं कहा ? 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मिले और एक त्राम्बिया ना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि मेरी और तेरी बात बात में फर्क है भाई! आहाहा! तुम कुछ मानते हो और हम कुछ कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है ? यह तो परमात्मा के घर की बात है। आहाहा! है ?

अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं... तब वह कहते हैं कि कर्म से विकार हुआ है। यह दूसरी दृष्टि है। विकार होता है, यह अज्ञानी अपनी पर्याय में करता है। वह कर्म के कारण से नहीं। इतना सिद्ध होने के बाद, जब पर्यायदृष्टि छूट जाती है और द्रव्यदृष्टि ज्ञायकस्वभाव ऊपर समकिती की दृष्टि आती है, तब वह विकार के परिणाम जीव के नहीं; यह पुद्गल के हैं, ऐसा निकाल देने के लिये ऐसा कहने में आया है। आहाहा! धर्मचन्दजी! कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि वहाँ तो सब सुननेवाले भोले लोग। यह रामजीभाई और यह सब भोले लोग हाँ-हाँ पड़े। जो बात कह दें उसकी हाँ। अरे! भगवान! सुनो, बापू! भाई! ऐसा लिखते हैं कि भोले लोग हैं वहाँ, जो वह (कानजीस्वामी) कहें (इसमें) जी हाँ.. जी हाँ.. करते हैं। अरे! भगवान एक बार सुन तो सही, नाथ!

मुमुक्षु : आप कहो इसलिए हाँ तो कहनी पड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन भोले हो इसलिए हाँ कहते हो ऐसा कहते हैं। सच्ची बात इनकी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो इसकी दृष्टि से...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना छोड़कर यहाँ आयी ? आहाहा! यह उसमें आया है कल। चार इकट्ठे होकर के चर्चा करो। जैनदर्शन में आया है। बापू! चर्चा किसके साथ करना ? बापू! तुम्हारी ऐसा करना है ? कि तुम खोटे हो और हम सच्चे, ऐसी चर्चा करना ?

अब इसमें करना क्या ?

मुमुक्षु : निर्णय हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय तो कर लिया तुमने। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य 'नियमसार' में कहते हैं, वस्तु ऐसी है कि स्वसमय और परसमय के साथ वाद-विवाद नहीं करना। नहीं बैठेगी यह बात। 'नियमसार' का पाठ है। भगवान कुन्दकुन्द आचार्य का 'नियमसार'। स्वसमय और परसमय के साथ (वाद-विवाद नहीं करना) क्यों ? ज्ञानस्वरूपी भगवान का निधान तुझे जो मिला और प्राप्त हुआ और पुद्गल आदि परिणाम यह भिन्न हैं, ऐसा तुझे भान हुआ, अब तुम किसके साथ चर्चा करोगे ? आहाहा! यह स्वसमय जैन वाला साथ चर्चा करना नहीं और परसमय अन्यमति के साथ भी चर्चा नहीं करना। ऐसा पाठ 'नियमसार' में है। आहाहा!

जैसे लक्ष्मी (कमाने) जंगल में कहीं गया, बाहर परदेश में दो-पाँच करोड़ पैदा किये। मिल गये, तो कहते हैं कि देश में आकर अकेले भोगना, ऐसा पाठ है वहाँ। अकेला भोगता है। किसी को बाहर ढोल नहीं पीटा जाता कि मैं पाँच करोड़ लेकर आया हूँ, कारण कि नहीं तो लूटने आ जाए। लड़का-लड़कियाँ...

मुमुक्षु : आप तो अभी लड़के का ढोल बजाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी खोटा। यह कहते हैं कि ढोल बजाना नहीं। नहीं तो देनेवाले, लेनेवाले आयेंगे। हमको दो.. हमको दो.. हमको दो.. इसी प्रकार जो तुझे ज्ञानघन आत्मा ज्ञानस्वरूप पुण्य-पाप के भाव के विकल्पों से भिन्न है, ऐसा तुझे तो सम्यग्दर्शन हुआ तो तुम अभी अकेले भोगना। 'नियमसार' में पाठ है। यह वादविवाद में नहीं पड़ना। नहीं बैठेगा। मुफ्त के हैरान होंगे लोग। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो जिसको बापू! भवभ्रमण का डर लगा हो, इसकी बात है, भाई! अरे..रे..! कहना जाएगा ? कहाँ जाएगा ? चौरासी के अवतार भवाब्धि-बड़ा भव समुद्र (पड़ा है)। यदि इसको मिथ्या श्रद्धा रह गयी तो यह भवसिन्धु में कहाँ जाएगा, कहाँ उपजेगा ? वहाँ कोई गौशाला नहीं है, वहाँ कोई मौसी माँ नहीं बैठी है। आहाहा! करोड़ों रुपया के बँगले में बैठा हो, वह मर के ढोर में जाये। मिथ्याश्रद्धा का फल तो चार गति है। आहाहा! रतन

के पलंग पर सोता हो, ढोलिया.. को क्या कहते हैं ? पलंग। आर्य मनुष्य हो इसलिए माँस-दारु नहीं खाता हो इसकी बात, और यह ममता हो, तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं मिले, मिथ्यात्व का, विपरीत श्रद्धा का पोषण किया हो। आहाहा! मायाचारी का बहुत सेवन किया हो, वह आड़ा शरीर है ऐसे ढोर में जाएगा। भगवान इसको 'गोम्मटसार' में वक्रता कहते हैं। यह मनुष्य ऐसा ऊँचा (खड़ा) है न ? गाय, भैंस, ढोर ऐसे आड़े हैं—तिरछे हैं। यह सब सम्यग्दर्शन बिना वक्रता (मायाचारी) की है, वे आड़े होकर उनका शरीर आडा हो जाएगा। आत्मा तो अवला (विपरीत)-आड़ा हुआ लेकिन इसका शरीर आड़ा-बांका हो जाएगा। बापू! ऐसे अवतार किये, भाई! नवमीं ग्रैवेयक दिगम्बर जैन साधु होकर गया परन्तु मिथ्यात्व नहीं टाला। आहाहा! मिथ्यात्व, यह ही महासंसार और महा पाप है। आया था न ? मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! राग के पुण्यभाव की आत्मा के साथ एकत्वबुद्धि करना, वह मिथ्यात्व (है) और यह संसार और इसका नाम महापाप है। आहाहा! यह पाप का तो इसको कोई डर नहीं, दरकार नहीं। और यह दया पालते हैं और व्रत पालते हैं... आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो इन्होंने स्पष्ट लिखा **अचेतन पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न...** क्या ? यह पंच महाव्रत के परिणाम, भगवान की भक्ति का भाव, भगवान का स्मरण करना, यह भाव, सब अचेतन पुद्गल से उत्पन्न हुए। चिल्लाये न ? यह 'अमृतचन्द्राचार्य' मुनिराज कहते हैं। दिगम्बर सन्त सच्चे सन्त हैं, हों! अकेला नग्नपना तो अनन्त बार लिया। पंच महाव्रत भी अनन्त बार किया। यह तो सच्चे सन्त हैं अन्दर। आहाहा! शान्ति प्राप्त कराये, उसे सन्त कहते हैं। आहाहा! आता है यह भजन में आता है। फिर कोई पद है। 'शान्ति प्राप्त कराये, उसे सन्त कहते हैं।' आहाहा! आता है, यह भजन में आता है। फिर कोई पद है। 'शान्ति प्राप्त कराये, उसे सन्त कहते हैं।' (उनके दासानुदास होकर के रहिये) आहा! शान्ति यह है। भगवान! तुम आनन्द स्वरूप प्रभु हो न! इसमें दृष्टि करो, तुम्हें शान्ति मिलेगी। यह पुण्य-पाप में दृष्टि करने से तुझे दुःख और पाप खड़ा होगा। आहाहा! है ?

अचेतन पुद्गलद्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं ऐसे अशुद्ध रागादिरूप समस्त विभाव परिणाम... लो! अशुद्ध। पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति आदि। यह

रागादिरूप समस्त विभाव परिणाम... आहाहा! [**अतः**] **शुद्धचेतनामात्र जीव वस्तु से...** भगवान आत्मा तो शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप (है), इससे तो यह पुद्गल के भाव अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पुद्गल कहा फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर भिन्न अलग हैं।

जीव वस्तु से... है? जीव कौन [**अतः**] **शुद्धचेतनामात्र जीव वस्तु से** [**अतिरिक्ताः**] '**अतिरिक्ताः**' खाली। अर्थात् चैतन्य के स्वभाव से खाली और अपने भाव से भरा हुआ **अति ही भिन्न हैं। ऐसे ज्ञान का नाम अनुभव कहते हैं।** आहाहा! है? ऐसे ज्ञान का नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहाहा! जगत को कठिन पड़े। क्या हो? भाई! मार्ग तो जो है यह रहेगा। दुनिया माने और कल्पना करे, इसलिए मार्ग दूसरा हो जाए (ऐसा नहीं)। आहाहा! **ऐसे ज्ञान का नाम अनुभव कहते हैं।** देखा! अर्थात्? चैतन्यद्रव्य की दृष्टि करके जो अनुभव करना और इसमें रागादि का परिणाम को अशुद्ध भिन्न रखना, ऐसा जो अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! 'अनुभव रत्न चिन्तामणि अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का अनुभव मोक्ष स्वरूप।' यह बनारसीदास का है। यह अनुभव, परन्तु ऐसा, हों! आहाहा! शुद्ध चेतना के साथ अनन्त गुण के साथ मिला हुआ जीवद्रव्य, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना... आहाहा! यह 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप' आनन्द का कुँआ यह तो कूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव-कुँआ है। आहाहा! 'अनुभव मारग मोक्ष का..' यह अनुभव मोक्ष का मार्ग है। व्रत और तप का विकल्प, यह तो सब पुद्गल के परिणाम है, यह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो ३५ हुआ। ३५ कलश हुआ न?

कलश-३६

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम्।।४-३६।।*

खण्डावन्य सहित अर्थ- 'आत्मा आत्मनि इमं आत्मानं कलयतु' [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मनि] अपने में [इमं आत्मानं] अपने को [कलयतु] निरन्तर अनुभवो। कैसा है अनुभव योग्य आत्मा? 'विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तुं' [विश्वस्य] समस्त त्रैलोक्य में [उपरिचरन्तं] सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है। (साक्षात्) ऐसा ही है। बड़ाई करके नहीं कह रहे हैं। और कैसा है? 'चारु' सुख स्वरूप है। और कैसा? 'परं' शुद्धस्वरूप है। और कैसा है? 'अनन्तं' शाश्वत् है। अब जैसे अनुभव होता है वही कहते हैं- 'चिच्छक्तिरिक्तं सकलं अपि अन्हाय विहाय' [चिच्छक्तिरिक्तं] ज्ञानगुण से शून्य ऐसे [सकलं अपि] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म को [अन्हाय] मूल से [विहाय] छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है कि जितनी कुछ कर्मजाति है, वह समस्त हेय है। उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं है। और अनुभव जैसे होता है वही कहते हैं- 'चिच्छक्तिमात्रं स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य' [चिच्छक्तिमात्रं] ज्ञानगुण ही है स्वरूप जिसका ऐसे [स्वं च] अपने को [स्फुटतरं] प्रत्यक्ष रूप से [अवगाह्य] आस्वादकर। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणाम हैं, वे सब जीव के नहीं हैं। शुद्धचैतन्यमात्र जीव है, ऐसा अनुभव कर्तव्य है।।४-३६।।

कलश - ३६ पर प्रवचन

३६वाँ कलश। टीका में पहले यह आया है? **'सकलमपि'** फिर यह इसमें। श्लोक आगे-पीछे आया है?

* मुद्रित 'आत्मख्याति' टीका में श्लोक नं० ३५ और ३६ आगे-पीछे आया है।

सकलमपि विहायाह्राय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम्।।४–३६।।

आहाहा! **'आत्मा आत्मनि इमं आत्मानं कलयतु'** आहाहा! कहते हैं [**आत्मा**] **आत्मा अर्थात् जीवद्रव्य...** जो चेतना और अनन्त गुण का सम्पन्न स्वरूप, यह आत्मा अपने में... राग में अब नहीं। आहाहा! अपने पवित्र परिणाम में **अपने को निरन्तर अनुभवो।** आहाहा!

मुमुक्षु : यह भी पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय नहीं किन्तु त्रिकाल इसको (अनुभवो)।

कैसा है? देखो! **जीवद्रव्य अपने में अपने को...** व्यवहार से व्यवहार आत्मा में, ऐसा नहीं। आहाहा! **जीवद्रव्य अपने में...** अर्थात् स्वयं में जो जीवद्रव्य कैसा कहा? यह तो कहा, चेतना के साथ अनन्त गुण मिले हुए—ऐसे गुणवाला, वह द्रव्य। आहाहा! **अपने में अपने को...** अर्थात् आत्मा की निर्मल परिणति को **निरन्तर अनुभवो।** आहाहा! **अपने में अपने को निरन्तर अनुभवो।** [**कलयतु**] है न? [**कलयतु**] का अर्थ दो, तीन, चार किया है। स्वयं से और जानना ऐसे शब्दार्थ किये हैं। [**कलयतु**] [**कलयतु**] का अर्थ अनुभवो है। परन्तु फिर **निरन्तर अनुभवो।** इसमें लिया। अर्थात् कि किसी काल में भी राग से लाभ होता है, ऐसा न अनुभवो। व्यवहार आये तो सही, परन्तु व्यवहार से आत्मा को धर्म हो, ऐसा नहीं। निरन्तर अनुभवो। आत्मा का ध्येय निरन्तर द्रव्य ऊपर रखो। आहाहा! समझ में आया?

निरन्तर अनुभवो। कैसा है अनुभव योग्य आत्मा? आहाहा! आत्मा के अनुभव के लायक आत्मा कैसा होता है? आहाहा! **'विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तुं' समस्त त्रैलोक्य में** [**उपरिचरन्तं**] **सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है। (साक्षात्) ऐसा ही है।** आहाहा! यह तो [**विश्वस्य**] अर्थात् जगत के विकल्प से भिन्न पड़ा हुआ-तैरता भगवान पर से भिन्न आत्मा को देखता है। आहाहा! है? यह जितने पौद्गलिक के विकल्प कहे यह व्रत,

नियम, तपादि के, इनसे भिन्न भगवान विश्व से ऊपर तैरता है। अर्थात् राग से भिन्न पड़ा हुआ यह अनुभवता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात अभी, लोगों को फिर एकांत लगे न? एकांत लगे। व्यवहार की बात तो करते नहीं। यह नहीं करते? व्यवहार आये यह पुद्गल का परिणाम है, आत्मा को हेय है। आये तो सही। केवलज्ञानी न हो, वहाँ तक धर्मी को भी आत्मा के आश्रय से अनुभव होने पर भी अपूर्णता के कारण से ऐसा शुभभाव आता है, किन्तु उसको वह हेय जानते हैं, दुःखरूप जानते हैं। आहाहा! उसको पुद्गल का परिणाम (जानते हैं), उसको जीव की जाति नहीं जानते। समझ में आया? कहो, चिमनभाई! ऐसा तुम्हारे कहाँ अरबस्तान में था? आहाहा! वीतराग का मार्ग प्रभु, अरे! हिन्दुस्तान में भी फेरफार हो गया तो बाहर तो कहाँ था? आहाहा! यद्यपि अब तो 'लन्दन' में भी वांचन चलता है। 'लन्दन' में यहाँ का वांचन चलता है। एक 'प्रेमचन्द' करके कोई महाजन है। चारों तरफ पुस्तक गयी हैं और बीस लाख पुस्तकें छपी हैं। चौदह लाख यहाँ और छह लाख जयपुर। बीस लाख यहाँ से छपी हैं। परदेश में बहुत गयी हैं। चारों तरफ 'अमेरिका', 'लन्दन', क्या कहलाये वह? 'अफ्रीका'। 'अफ्रीका' में तो यहाँ का एक बड़ा मण्डल है। वांचते हैं, वांचो तो सही, बापू! आहाहा! अरे! ऐसा अवसर भाई! कब मिलेगा? मनुष्यपने का एक-एक समय की कीमत है। ऐसा मनुष्यपना यह आत्मा के लिये है। यदि यह आत्मा को पहचाना नहीं तो तेरा मनुष्यपना मिला, न मिला जैसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह अनुभव करने के योग्य आत्मा कैसा होता है? **समस्त त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है।** आहाहा! शुद्ध चैतन्य को ही उपादेय माननेवाला यह आत्मा है और यह आत्मा सर्वोत्कृष्ट है। पर्याय में भी सर्वोत्कृष्ट है। आहाहा! अर्थकार कहते हैं कि अधिक (बढ़चढ़ कर) नहीं कहते हैं। आहाहा! हम बढ़ाकर अतिश्योक्ति से नहीं कहते हैं। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप का जहाँ अनुभव करता है, यह तो राग और सर्व से भिन्न पड़कर ऐसी ही इसकी दशा है। सर्वोत्कृष्ट दशा राग की मलिन दशा से यह दशा भिन्न है। आहाहा!

फिर अर्थकार ने क्या कहा? **बड़ाई करके नहीं कह रहे हैं।** हम बढ़चढ़कर

अतिश्योक्ति से नहीं कहते। आहाहा! यह राग के विकल्प से भिन्न पड़कर चैतन्य को अनुभवते हैं, यह जीव त्रिलोक से ऊँचा है, भिन्न है, यह आत्मा उपादेय है। इसकी पर्याय ही ऐसी हो गयी है कि जिसने त्रिकाल को उपादेय माना है, और यह पर्याय भी वास्तव में उपादेय है,प्रगट करने की अपेक्षा से। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश अभी। वह तो कहें, एकेन्द्रिय की दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, रस छोड़ो, भक्ति करो, रथयात्रा करो, मंदिर बनाओ, पंचकल्याणक की बड़ी रथयात्रा करो। (ऐसा तो) समझ में भी आये सही। क्या समझना है इसमें? धूल? यह तो जड़ की पर की क्रिया होने के काल में हो। इसमें कदाचित् तेरा राग मन्द हो तो पुण्य है। यह पुद्गल का परिणाम है, तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! गजब बात है। सुरेन्द्रजी!

देखो! अर्थकार राजमलजी कहते हैं कि ऐसे आत्मा को हमने सर्वोत्कृष्ट और ऊँचा कहा, यह बढ़ाकर नहीं कहा हमने। आहाहा! **'विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तं'** वहाँ १४४ में आया था न? १४४ में। **'विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तं'** विकल्प से लेकर भिन्न सभी संसारी विकल्प हैं। आहाहा! इससे भिन्न पड़ा हुआ है। इस आत्मा को हम सर्वोत्कृष्ट ऊँचा कहते हैं, यह बढ़ाकर नहीं कहते हैं कोई। आहाहा!

और कैसा है? अनुभवयोग्य आत्मा? **सुख स्वरूप है। 'चारु'** है **'चारु'** सुखस्वरूप। जिसकी दशा में आनन्ददशा प्रगटी है। धर्मी इसको कहते हैं। आहाहा! जिसकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द सुख प्रगट हुआ है। उसे सम्यग्दृष्टि और उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! है इसमें? है कि नहीं? आहाहा! **सुख स्वरूप है।** आहाहा!

और कैसा? 'परं' शुद्धस्वरूप है। आहा! सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है, सुखरूप है, शुद्ध स्वरूप है। इतने बोल कहे। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, वह जीव तो त्रिकाली को उपादेय मानता है। यह व्यवहार के विकल्प तो आयें परन्तु इनको हेय जानता है। दुःख है। आहाहा! मेरा भगवान सुख का सागर है, इसमें जिसने डुबकी मारी है, इसकी पर्याय में सुखरूप है और शुद्धस्वरूप है और सर्वोत्कृष्ट है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, बुधवार, दिनांक २०-०७-१९७७
कलश-३६, प्रवचन-४५

३६ कलश। कलश टीका है न? थोड़ा चला है। फिर से। यह अधिकार अजीव अधिकार है। अर्थात् कि आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन (है), इसके सिवाय जितने पुण्य और पाप के भाव (होते हैं), यह सब अजीव हैं। आहाहा! कठिन बात बहुत। जीव तो चैतन्य आनन्दकन्द घन है। उसका अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन में प्रथम धर्म की शुरुआत होती है। यह आत्मा ज्ञायक चैतन्य ज्योत है, ऐसा राग की विकल्पदशा से भी पार-भिन्न अन्तर में देखने पर यह ज्ञायकभाव है, ऐसा अनुभव होना, इसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। यह यहाँ कहते हैं।

'**आत्मा आत्मनि इमं आत्मानं कलयतु**' [**आत्मा**] है न पहला शब्द? [**आत्मा**] अर्थात् वस्तु **अर्थात् जीवद्रव्य**... आहाहा! यह तो ज्ञायक चिद्घन आत्मा है। आनन्द का कन्द ज्ञायक चैतन्य का रूप इसका है। ऐसा जीवद्रव्य। आहाहा! **अपने में**... ऐसा जीवद्रव्य यह अपने में... आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, बापू! अभी चलता है, इससे यह जाति, भगवान! मार्ग दूसरा कहते हैं। आहाहा! जीवद्रव्य जो वस्तु है जो भगवान सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा जो जीवद्रव्य अकेला चैतन्यघन, वह अपने में अर्थात् कि अपनी निर्मल परिणति में (प्राप्त होता है)। आहाहा! शुभ-अशुभभाव जो है, अशुभ तो पाप है, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग वासना, यह तो पाप है। परन्तु यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप ऐसा जो विकल्प राग (आता है), यह भी एक शुभराग है। आहाहा! सूक्ष्म बात। यह राग से भिन्न स्वयं त्रिकाली ज्ञायक जीवद्रव्य, यह अपनी निर्मल परिणति से प्राप्त होता है। समझ में आया?

अपने में अपने को निरन्तर अनुभवो। आहाहा! भगवान का वाक्य है। वीतरागी सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं, भाई! तुझे यदि आत्मा प्राप्त करना हो अर्थात् कि तुझे धर्म करना हो.. आहाहा! तो आत्मा जो जीवद्रव्य वस्तु, आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसको अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति से उसका अनुभव करो। आहाहा! समझ में

आया ? ऐसी बात। ऐसी बात सुनी न हो। व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो। अरे! यह तो राग की क्रिया है, बापू! तुझे खबर नहीं। इससे प्रभु चैतन्य अन्दर द्रव्य भिन्न है। ऐसा जीवद्रव्य जो है, आनन्द और ज्ञायकभाव से भरा हुआ, इसको स्वयं में, स्वयं को, स्वयं का अनुभव कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वयं में अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभाव में, स्वयं को निरन्तर अनुभवो। आहाहा! तेरी दृष्टि में सम्यग्दर्शन का विषय यह पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। इसको तुम निरन्तर अनुभवो। आहाहा! इतनी चीज़ जो है, उसका अनुसरण करके आनन्द के वेदन में जा। तुझे आत्मा की प्राप्ति होगी। आहाहा! यह तो अभी सम्यग्दर्शन-पहली धर्म की दशा की बात है। चारित्र तो फिर कहाँ रह गया। किसको कहना, यह तो अभी लोगों को खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

आत्मा को.. है न ? **जीवद्रव्य अपने में अपने को** [**कलयतु**] तीन अर्थ किये हैं। आत्मा को ध्यान में ले। **ध्यायति जानाति, पश्यति, कलयतु** ये [**कलयतु**] का अर्थ इतना है। यह तो वीतराग का मार्ग बापा बहुत सूक्ष्म है। यह कोई साधारण व्यक्ति कहते हैं, ऐसा नहीं है।

यह आत्मा जो चैतन्यद्रव्य जो वस्तु है, इसको तुम तुम्हारे से, तुमको तुम्हारे से... आहाहा! अर्थात् कि वीतरागीदशा द्वारा तुझे तेरे से तुम अनुभवो तुम्हें। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा व्याख्या है, बापू! क्या हो ? वीतराग का मार्ग तो यह है। यह **निरन्तर अनुभवो।** [**कलयतु**] की व्याख्या की। यह चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु, अनाकुल आनन्द के रसकन्द से भरा हुआ प्रभु है। आहाहा! अरे! यह कैसे बैठे ? कोई दिन सुना न हो। आहाहा!

शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था ? दिया था, बारम्बार देते हैं। शकरकन्द होता है न ? शक्करिया। हमारे गुजरात में शकरकन्द को शक्करिया कहते हैं। ऊपर की लाल छाल है ज़रा। उसको मत देखो तुम, अन्दर में शकरकन्द अकेला भरा हुआ है। शक्कर अर्थात् शक्कर का पिण्ड, मिठास का पिण्ड। शकरकन्द यह है। आहाहा! यह छाल से भिन्न है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर के मिठास का दल, यह शकरकन्द है।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम जो है, यह

तो विकल्प और छाल-राग है। यह छाल के पीछे अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द यह है। जैसे, वह शकरकन्द है, वैसे यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। अरे! उसमें उसके अतीन्द्रिय आनन्द की दशा द्वारा तुमको तुम अनुभवो। आहाहा! तुम तुम्हारा उसका ध्यान करो, ध्यान में इसको-त्रिकाली चीज़ को विषय बनाओ। तो तुझे आत्मा प्राप्त होगा और सम्यग्दर्शन होगा। अभी सम्यग्दर्शन की बात है, हों! यह तो। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा जो भगवान परमेश्वर ने कहा, यह आत्मा में दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प राग है, यह तो छाल है। यह इसमें नहीं। आहाहा! अब अभी यह तो ऐसा कहते हैं कि यह दया, दान, व्रत, भक्ति करो तो कल्याण होगा। देवीलालजी! आहाहा! भाई! बहुत सूक्ष्म है, बापू! अनन्त काल इसका परिभ्रमण करते करते गया है। दुःखी है, इसकी खबर नहीं। राग और द्वेष के परिणाम शुभ या अशुभ हो, यह सब दुःखरूप है। भगवान आत्मा इस दुःख की दशा से अन्दर भिन्न है सेठ! यह दो-तीन दिन से नहीं आये। पूछा था, हों! भाई को। कहा, कमजोर हैं। शरीर की दशा ऐसी है, बापू! यह तो मिट्टी है। धूल है, यह धूल। अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, इसको भी यहाँ तो भगवान अजीव कहते हैं। क्योंकि जीव के स्वरूप में यह चीज़ नहीं। आहाहा! कठिन काम। सुनना भी कठिन पड़े। कोई समय किया नहीं। सुनने मिलता नहीं। आहाहा!

परमात्मा तीर्थंकरदेव जिनेश्वर परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा हुक्म करते हैं... आहाहा! प्रभु! तुम आत्मा आनन्दस्वरूप हो न, नाथ! तुम तुम्हारे आनन्द की दशा द्वारा, स्वयं का अर्थात् आनन्द की दशा द्वारा अनुभव। आहाहा! उसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव विकल्प है, राग है, यह तो भिन्न रह जाएँगे। आहाहा! कहो, बाबूभाई! यह 'प्रवीणभाई' थोड़ा-थोड़ा आता है कहते हैं अभी। सुबह बात निकली। थोड़ा रस लेते हैं, थोड़ा। आया है या नहीं? सुबह तुम्हारी बात निकली। कहा यह 'प्रवीणभाई' क्या? अब रस थोड़ा-थोड़ा आता जाता है, ऐसा कोई कहता था। 'हीराभाई' कहते थे। आहाहा! बापू यह तो वस्तु ऐसी है क्या कहें? आहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव का हुक्म है, यह आज्ञा है। आहाहा! प्रभु! तुम जीवद्रव्य हो न, तुम जीव वस्तु हो न। इसमें यह पुण्य और पाप के शुभादि विकल्प जो राग

की क्रियाएँ हैं, यह तेरे में नहीं हैं। आहाहा! वह तो अजीव है। अरे! प्रभु! कठिन काम बहुत। अरे.. क्या करे? आहाहा! इसको निरन्तर। [**कलयतु**] की व्याख्या की। इसको ध्यान में इस बात को कायम लो, ऐसा कहते हैं। वस्तु को... आहाहा! तेरी ज्ञान की प्रगट दशा में ध्यान में इसको ध्येय बना। आहाहा! इसका निरन्तर अनुभव कर और निरन्तर उसका ध्यान कर और निरन्तर उसको देख और जान। आहाहा! इसका नाम आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! कहो, बाबूभाई! ऐई..! महेन्द्र! ऐसा है बापू! वस्तु ऐसी है। आहाहा!

यह (शरीर) तो मिट्टी धूल है, पुद्गल मिट्टी है। अजीव है। अन्दर कर्म है, यह भी अजीव है, जड़ है। अब आगे जाते यह दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणाम होती हैं, यह भी अजीव है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये। क्योंकि चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा है, इसका चैतन्य का, ज्ञान और आनन्द का अंश इसमें नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

नारियल का दृष्टान्त नहीं दिया था? नारियल। नारियल का ऊपर का छाला, यह अलग चीज़ है; काँचली, यह अलग चीज़ है और काँचली की ओर की लाल रातड़ जो खोपरापाक बनाते घिस देते हैं। लाल छाल अलग है और लाल छाल के पीछे सफेद गोला है, मीठा श्वेत गोला, यह श्रीफल है। आहाहा!

उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, यह शरीर तो ऊपर का छाल है। अन्दर आठ जड़कर्म जो हैं, यह काँचली हैं, यह कोई आत्मा नहीं। अब कर्म सन्मुख के जो पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम-क्रोध के भाव होते हैं, यह सब कर्म सन्मुख की लाल छाल है। आहाहा! अरे..! ऐसी बातें अभी। यह लाल पुण्य-पाप की छाल के पीछे अन्दर भगवान आत्मा जो है, यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। इसके ऊपर नजर करो और यह सब विकल्प है, इससे नजर छोड़ दो। यदि तुझे आत्मा की प्राप्ति और सम्यग्दर्शन करना हो तो, बाकी तो सब अनादि से करता है, भटकता है। इसमें कहीं इसके भव का अन्त आये, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कैसा है अनुभव योग्य आत्मा? आत्मा को अन्दर में आनन्द की दशा जो अनुभवना... आहाहा! यह पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर प्रभु को अनुभवना,

यह जीव कैसा है ? आहाहा ! अलौकिक बातें हैं, बापा ! परमात्मा जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलग जाति का है। जगत के साथ कहीं मेल खाये, ऐसा नहीं। आहाहा ! **कैसा है अनुभव योग्य आत्मा ? 'विश्वस्य साक्षात् उपरि चरन्तुं' [विश्वस्य] समस्त त्रैलोक्य में [उपरिचरन्तं]**... उसमें **(उपरि तरन्तं)** है भाई इसमें। १४४ गाथा है न ? भाई ! इसमें **(विश्वस्य उपरि तरन्तं)** है। यह [**उपरिचरन्तं**] है दोनों में अन्तर। वहाँ विश्व ऊपर ऐसा तैरते हैं अर्थात् भिन्न दिखायी देते हैं। पुण्य और पाप के राग और शरीर, वाणी, कर्म से ऐसा भिन्न तैरता है, ऐसा भिन्न। यहाँ [**उपरिचरन्तं**] सर्वोत्कृष्टपना है इसका, ऊपर रहते हैं। ऊपर रहते हैं। आहाहा ! अरे.. ! ऐसी व्याख्या ! भगवान ! क्या हो ? मार्ग तो ऐसा है। इसको नहीं मिला, ऐसा करके कोई दूसरा मार्ग हो जाएगा। आहाहा !

कहते हैं कि **त्रैलोक्य में [उपरिचरन्तं] सर्वोत्कृष्ट है,...** ऐसा लेना यहाँ। ऊपर रहता है। ऊपर सर्वोत्कृष्टपने भगवान भिन्न हैं। राग से भी भिन्न है, ऐसा सम्यग्दर्शन का विषय है यह। [**उपरिचरन्तं**] अर्थात् ऊपर रहनेवाला। अर्थात् कि राग के विकल्प से भिन्न रहकर सर्वोत्कृष्ट ऊपर वस्तु वह भिन्न है। यह **उपादेय है।** यह दृष्टि में आदरने लायक है। आहाहा ! बाकी वर्तमान पर्याय और रागादि, यह आदरणीय नहीं ऐसा कहते हैं। ऐसा सिर घूम जाए ऐसा है। पोपटभाई ! यह बाहर में पैसा, स्त्री, और पुत्र धूल धमाल... आहाहा ! इसमें उलझ गया बेचारा। बीस-बीस घण्टे वहाँ रहे। घण्टा-दो घण्टा मिले, सुनने जाए वहाँ कुगुरु इसका घण्टा लूट ले। इसको बता दे कि व्रत करो, अपवास करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। यह लोग कहें, तुम्हारे भगवान की भक्ति करो, मन्दिर बनाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। दोनों झूठे हैं। समझ में आया ? वीतरागमार्ग के यह नहीं। आहाहा !

परमेश्वर का मार्ग तो, परमेश्वर जीव द्रव्य (हैं), इसको तुम तुम्हारी दशा से अनुभवो। आहाहा ! **(साक्षात्) ऐसा ही है।** आहाहा ! यह ज्ञान की दशा से अन्दर देखने पर वह वस्तु उत्कृष्ट है। ऐसी चीज़ जगत में कहीं है नहीं। परमात्मा तीर्थंकर (आत्मा तो है) परन्तु यह तो इनका आत्मा। यहाँ कहाँ आया ? आहाहा ! यहाँ तो भगवान चैतन्य नित्य प्रभु अनादि-अनन्त जो है, यह ध्रुव आनन्दस्वरूप, वह सर्वोत्कृष्ट है और वह ही उपादेय है। धर्मी को वह आत्मा आदर करने लायक है। आहाहा ! बाकी पुण्य-पाप के भाव होते

हैं, परन्तु यह सब दुःखरूप हैं और हेय हैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। आहाहा!

बड़ाई करके नहीं कह रहे हैं। आहाहा! ऐई! पोपटभाई! पाँच लाख की पूँजी हो और पच्चीस लाख की जाए। बाहर में आबरू कही जाए तो न नहीं कहे, कि भाई अपनी आबरू तो बढ़ती है। स्वयं जाने कि अपने पास पाँच लाख हैं, लेकिन लोग पच्चीस लाख कहते हैं और पचास लाख कहते हैं। वहाँ मौन रहे और प्रसन्न हो। वाहन तो अधिक (बढ़ाचढ़ाकर) कहते हैं। यहाँ कहते हैं बढ़ाचढ़ाकर हम नहीं कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, यह अतीन्द्रिय वीतराग स्वभाव से भरा हुआ परमात्मा स्वयं है। आहाहा! यह जिनस्वरूपी ही प्रभु है आत्मा। यह सर्वोत्कृष्ट है, यह हम बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहते। यह तो कल आ गया था सेठ! परन्तु तुम आये (इसलिए) फिर से लिया।

मुमुक्षु : सबको लाभ हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको। इसमें अधिक जो चले यह तो... आहाहा!

अरे! भटकते-भटकते अनन्त काल हुआ। इसने व्रत और तप और भक्ति और पूजा भी अनन्त बार की है। इसके कारण से कदाचित् मिथ्यादृष्टिपने पुण्य हो। दृष्टि मिथ्यात्व है, इसमें धर्म मानता है और इससे धर्म होता है। मिथ्यात्व के महापाप की भूमिका में ऐसा पुण्य हो तो चार गति में जाकर भटके कहीं। पहले स्वर्ग आदि जाए कदाचित्, फिर मरकर ढोर और नरक में जाएगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **बड़ाई करके नहीं कह रहे हैं।** है? अर्थात् कि अतिशय और विशेष से कहते हैं, ऐसा नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ही अन्दर ऐसा है। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमात्मा स्वयं शुद्ध परमात्मस्वरूप अखण्ड आनन्दकन्द है। अनन्त गुण का सागर है, अनन्त गुण का गोदाम है, अनन्त शक्ति का संग्रहालय है, अनन्त शक्ति के संग्रह का आलय-स्थान है। अनन्त स्वभाव का सागर है। यह बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! वहाँ जेवरात में कहीं सुना है? धूलधाणी। लाख-दो लाख मिले, वहाँ तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। आहाहा! धूल। अभी ऐसे अरबपति तो अनन्त बार हुआ और मरकर फिर ढोर में गया। कारण कि आर्य व्यक्ति हो, इसलिए

दारू, माँस, अण्डे नहीं खाता हो। लेकिन यह पाप के परिणाम सब माया, कपट, क्रोध, मान पूरे दिन संसार का धन्धा करता हो, इसलिए यह मरकर ढोर में जाए। आहाहा! ऐसे अवतार अनन्त किये हैं। परन्तु सर्वोत्कृष्ट और उपादेय चीज़ क्या है, उसको तुमने दृष्टि में नहीं लिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य और पर्याय दोनों में भगवान है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो द्रव्य में भगवान है। परन्तु प्रतीति करे, तब पर्याय में भगवान होने की योग्यता प्रगट हो। पर्याय में। आहाहा! वस्तु तो भगवानस्वरूप ही है। कहा न? आत्मा पूरी चीज़ है या नहीं? वर्तमान दशा और वर्तमान पुण्य-पाप के भाव यह तो वर्तमान क्षणिक है। इसके पीछे ऐसी कोई चीज है या नहीं? आहाहा! त्रिकाल रहनेवाली चीज़ है या नहीं? क्या खबर है कुछ? आहाहा!

यह विचार जो बदलते हैं, यह तो पर्याय है-अवस्था है। यह तो एक क्षण की अवस्था है परन्तु पीछे चीज़ है, नित्य ध्रुव चीज़ है। 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' तो ध्रुव यह त्रिकाली चीज़ आनन्दकन्द प्रभु है। इसको देखना, इसको श्रद्धना, इसको मानना कोई समय प्रयत्न किया नहीं। बाकी बाहर का प्रयत्न कर-करके मर गया। व्रत, अपवास और भक्ति और पूजा। स्त्री, पुत्र, दुकान छोड़कर और अन्दर पुण्य का परिणाम कुछ किया। आहाहा! यह महाव्रत का परिणाम भी पुण्य है, यह धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बात कहाँ?

मुमुक्षु : परमात्मा बनाने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बापू जिसको धर्म करना हो, जिसको सुखी होना हो, जिसको परिभ्रमण का अन्त लाना हो तो यह मार्ग है, भाई! बाकी तो भव कर-करके कचूमर निकल गया है। आहाहा! यह नरक का भव। मनुष्य के भव की तुलना में नरक के असंख्यगुने अनन्त भव किये, ऐसा भगवान के ज्ञान में आया है। अनन्त काल में एक बार मनुष्यपना मिले तो भी इसको अनन्त भव मनुष्य के हुए। इसकी तुलना में सात नरक नीचे है। इसके भव परमात्मा केवलज्ञानी ने देखे ऐसा कहते हैं। प्रभु! तुमने ऐसे भव किये। मनुष्य (भव) की संख्या अनन्ती, इसकी तुलना में असंख्यगुना अनन्त बार नरक में गए हो तुम, भाई! तुझे खबर नहीं। तुम भूल गये, बापू! आहाहा!

एक मनुष्य का भव और असंख्यात नारकी के। तब मनुष्य है थोड़े और नारकी में इतने भव किये। मनुष्य मर के जाए तो मनुष्य तो थोड़े हैं। वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तिर्यंच की इतनी संख्या है, पंचेन्द्रिय तिर्यंच की इतनी संख्या है कि मर-मर के बहुत नरक में जाता है। ऐसे अनन्त भव तिर्यंच में किये। इससे नरक की संख्या असंख्यगुनी अनन्ती मनुष्यभव की तुलना में किये। और इसकी तुलना में असंख्यगुना अनन्त स्वर्ग के किये। कारण कि दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति ऐसा बहुत बार किया तो यह पुण्य के कारण से स्वर्ग में गया। किन्तु इसको धर्म नहीं हुआ। आहाहा! वह स्वर्ग में कितनी बार गया? नरक के भव की तुलना में असंख्यातगुना अनन्त स्वर्ग के किये, ऐसा केवली परमात्मा के ज्ञान में है। एक भव नरक का और असंख्य स्वर्ग के; दूसरा एक नरक का तो असंख्य स्वर्ग के; ऐसे अनन्त और इससे असंख्यगुना अनन्त देव में गया। आहाहा! तो यह देव में गया, यह पाप करके गया होगा? आहाहा! यह व्रत, तप, दान, दया, भक्ति, पूजा किया, इसके कारण से स्वर्ग में गया। परन्तु मिथ्यादृष्टि, आत्मा क्या चीज़ है, इसका ज्ञान नहीं किया इसने। समझ में आया? और नरक की तुलना में असंख्यगुना अनन्त देव के भव जो किये इससे अनन्त गुने तो यह तिर्यंच के और निगोद के अनन्त गुना किये। आहाहा! अरे रे!

एक व्यक्ति की जैसे चार दुकान हों, फिर दुकान में बारह महीने में पाँच लाख का नुकसान हुआ। लेकिन चार में कम ज्यादा कहाँ? कि भाई! जेवरात की दुकान ज्यादा नुकसान में गयी, कपास्या की दुकान में थोड़ी, कपड़े की दुकान में इससे अधिक। उसी प्रकार परमात्मा सर्वज्ञदेव कहते हैं कि अनन्त काल से चार गति में भटका, इसमें नुकसान गया तुम्हारा, यह चार गति में गति कहाँ-कहाँ अधिक रही? आहाहा! समझ में आया?

यह नग्न दिगम्बर मुनि हुआ और पंच महाव्रत का पालनेवाला, चमड़ा उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, तो भी सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा! यह आत्मा का ज्ञान, आत्मदर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? इसलिए यहाँ सर्वोत्कृष्ट यह आत्मा को कहा जाता है। महाप्रभु है। आहाहा! उसको दृष्टि में लो, उसको ध्यान में ध्येय बनाओ, उसको ज्ञान में ज्ञेय बनाओ। आहाहा! अरे! ऐसी बात अब। एक तो बनिया फुर्सत

न होय बेचारे। पूरे दिन स्त्री,पुत्र, धन्धे में... छह-सात घण्टे नींद में जाए, छह-आठ घण्टे धन्धे में-पाप में वह भी पाप में। दो-चार घण्टे स्त्री-पुत्र को पालने में और भोग में जाए। आहाहा! घण्टा, दो घण्टा रहे, अभी कोई धर्म तो नहीं लेकिन पुण्य का ठिकाना नहीं। समझ में आया? आहाहा! और कदाचित् कहते हैं कि पुण्य करे तो इससे कदाचित् देव हो या कि धूल का धनी यह पैसे का धनी, धूल का धनी सेठिया, धूल का धीन हो। लेकिन फिर मरकर नरक में और ढोर में जाए। समझ में आया? ऐसा भगवान सर्वोत्कृष्ट प्रभु पड़ा है न, कहते हैं। आहाहा! आदि-अन्त बिना का अकर्ता (है)। इसका कोई कर्ता नहीं। ईश्वर कुछ करते हैं, ऐसा है? ईश्वर-वीश्वर कोई कर्ता है नहीं। अनादि की चीज़ तेरी ध्रुव नित्यानन्द प्रभु यह सर्वोत्कृष्ट है, यह ही उपादेय है। इसके सिवाय शुभ-अशुभभाव आये परन्तु यह आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'चारु' सुख स्वरूप है। आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप है। आहाहा! अरे! कैसे बैठे? अन्दर भगवान आत्मा, जैसे वह शकरकन्द में मिठास का पिण्ड है, वैसे यह भगवान सुखस्वरूप है। भगवान अर्थात् यह आत्मा, हों! फिर यह भगवान हो गये, यह तो हो गये। आहाहा! यह तो कल आ गया है। **सुख स्वरूप है। और कैसा? 'परं' शुद्धस्वरूप है।** आहाहा! शुद्ध पवित्र स्वरूप भगवान आत्मा, यह पुण्य-पाप के राग से भिन्न भगवान शाश्वत वस्तु है। फिर कहा, अनन्त है। **शाश्वत् है।** जो वस्तु है, यह तो नित्य शाश्वत है। इसकी पर्यायें हैं, अवस्थाएँ बदलती हैं। वस्तु तो अन्दर शाश्वत है। आहाहा! किसी ने की नहीं, किसी से हुई नहीं। यह शाश्वत् वस्तु है। अनादि की शुद्ध चैतन्यघन... आहाहा!

अब जैसे अनुभव होता है, वही कहते हैं- कल यहाँ तक आया था। **'चिच्छक्तिरिक्तं सकलं अपि अन्हाय विहाय' [चिच्छक्तिरिक्तं] ज्ञानगुण से शून्य...** आहाहा! अन्दर जो आत्मा का कायमी ज्ञानस्वभाव है,... यह शास्त्र ज्ञान और यह ज्ञान, यह ज्ञान नहीं। यह वकीलात का ज्ञान, डॉक्टर का ज्ञान, यह तो सब कुज्ञान है। यह शास्त्र का ज्ञान, यह ज्ञान नहीं। कारण कि यह परावलम्बी ज्ञान, यह भी आत्मा का ज्ञान नहीं। आहाहा! अन्दर ज्ञानस्वरूप आत्मा है। प्रज्ञा-ज्ञानबिम्ब, चिदबिम्ब, ज्ञानबिम्ब यह आत्मा है। आहाहा!

यह **[चिच्छक्तिरिक्तं] ज्ञानगुण से शून्य ऐसे [सकलं अपि] समस्त द्रव्यकर्म-**

अर्थात् जड़कर्म। जड़कर्म में ज्ञान नहीं। ज्ञान का जो स्वभाव भगवान आत्मा का है, यह जड़कर्म में ज्ञान का अंश नहीं। ऐसा **भावकर्म–** पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, यह भावकर्म है। यह चैतन्य से शून्य है। इसमें चैतन्य का-ज्ञान के-स्वभाव का इसमें अभाव है। आहाहा! ऐसी बात अब। ऐसा मुश्किल से सुनने कोई दिन मिले। वह तो सरल फटाफट एक घण्टा जाए और सामायिक करी और प्रोषध करे, इसलिए हो गया धर्म जाओ अभी। भटको अब। आहाहा!

हमारे गाँव में 'बोटाद' में एक मोची था। मोची। यह प्रोषध करता था। सामायिक और प्रोषध करता था, सामायिक करता फिर इस समय वह करे... क्या कहा यह? चटाई। चटाई बुनते थे। और चटाई बुने, व्याख्यान सुने और सामायिक हो। तीनों इकट्ठे हो। मोची था, बेचारा वृद्ध था। 'बोटाद' का एक स्थानकवासी जैन थे, आते थे बेचारे। लेकिन वस्तु की कोई खबर नहीं। आहाहा! (संवत) १९८० के वर्ष। चौमासा हमारा वहाँ १९७९-८० में था न। हजार-पन्द्रह सौ व्यक्ति वहाँ थे। पूरा उपाश्रय भर जाता था। यह तो ५०-५३ वर्ष पहले की बात है। बहुत लोग भरें। लेकिन वस्तुस्थिति नहीं जानता कोई, बस यह सामायिक करो और प्रोषध करो। ऐई! कालिदासभाई! इसके पिता और इसके पिताजी सभी ऐसे, हों! सब ही। सब ही ऐसे थे फिर तुम्हारा क्या वहाँ... 'रायचन्द गाँधी' कैसे सेठ बड़े? भूदरभाई? भूदरभाई क्या? वीसाश्रीमाली के सेठ। यह सेठ का नाम क्या? भूल गये।

मुमुक्षु : सोमचन्द मानेकचन्द

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, ना, यह वीसाश्रीमाली के अग्रेसर। अभी इनका लड़का है।

मुमुक्षु : भूदर...

पूज्य गुरुदेवश्री : भूदर नहीं। बाजार में दुकान (थी), नहीं? सेठ एक सामने 'हिम्मतलाल' सेठ, इनके पास दुकान नहीं सामने? स्थानकवासी का सेठ। पक्षघात होकर गुजर गया नहीं यह?

मुमुक्षु : नारायण भुदर

पूज्य गुरुदेवश्री : 'नारायणभाई' न? 'नारायण भुदर' यह। यह तो सब वहाँ चौमासा बहुत किया है न हमने तो। 'नारायणभाई, नाराणभाई', 'नारायण भुदर' आहाहा! कोई खबर

नहीं होती। जी हाँ। आकर बैठे। ऊपर (बैठा) कहे यह हाँ।

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं। प्रभु! [**चिच्छक्तिरिक्तं**] यह ज्ञान स्वरूप जो भगवान है आत्मा, इसने पुण्य और पाप के भाव यह चैतन्य के स्वभाव से शून्य है, खाली है। आहाहा! शरीर और वाणी, यह तो जड़ है, अजीव है। यह तो चैतन्यस्वभाव से खाली है, इसमें चैतन्यस्वभाव नहीं। किन्तु पाप के परिणाम हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध के भाव, यह भी ज्ञान के स्वभाव से शून्य है। इसमें ज्ञान का अंश नहीं। यह तो पाप भाव अन्धकार है। ऐसे पुण्यभाव दया, दान, व्रत, यह कोई ज्ञान का स्वभाव है, उसका अंश इनमें नहीं। यह तो राग अन्धकार है। आहाहा!

ये चित्शक्ति से रिक्त है। अर्थात? शुभ-अशुभभाव। जो ज्ञानस्वरूप भगवान उससे— उस शक्ति से रहित है। आहाहा! अजीव का अधिकार है न? यह अजीव है। आहाहा! पंच महाव्रत का परिणाम, यह अजीव है—ऐसा कहते हैं यहाँ। यह विकल्प है, राग है। बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! बारह व्रत और पंच महाव्रत... कहते हैं कि यह चित्शक्ति जो ज्ञानस्वरूप भगवान है कि यह चित्शक्ति से ये भाव खाली है। इसमें चित्शक्ति नहीं है। आहाहा! अन्दर है या नहीं?

ज्ञानगुण से शून्य ऐसे [सकलं अपि] समस्त द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म को... द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म; भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव; नोकर्म अर्थात् शरीर और वाणी। इसमें चित्शक्ति-ज्ञानशक्ति नहीं। ज्ञानस्वभाव जो आत्मा चैतन्यप्रकाश का पूर प्रभु है। आत्मा चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर है। अरे! कैसे बैठे? रांका करके माना है। किसी समय देखा नहीं। आहाहा! प्रभु आत्मा चैतन्य के प्रकाश का पूर है, ऐसा कहते हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा, इससे यह पुण्य और पाप भाव, वे चैतन्य के स्वभाव से खाली है। इसलिए उनको अजीव कहते हैं और अजीव से आत्मा भिन्न जीव है। आहाहा!

यह नोकर्म [**अन्हाय**] **मूल से** [**विहाय**] **छोड़कर।** आहाहा! आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव ज्ञानस्वभाव चैतन्य भगवान, यह चैतन्य के स्वभाव से यह पुण्य-पाप का भाव खाली है, रहित है। इसलिए मूल से दृष्टि में से छोड़ दे। आहाहा! लो, कान्तिभाई!

ऐसा मार्ग (है)। अभी तो पकड़ना कठिन (पड़े)। आहाहा! जिनेश्वरदेव परमेश्वर केवलज्ञानी भगवान के ज्ञान में यह आया, ऐसा उन्होंने बताया। भाई! तुम जो जीव हो, यह तो चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ पदार्थ है और यह पुण्य दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध के भाव यह चैतन्य की शक्ति-गुण से रहित है। इसमें चैतन्य का स्वभाव नहीं। क्योंकि रागभाव है, यह स्वयं अन्धा है। नहीं जानता यह स्वयं को और नहीं जानता साथ रहे चैतन्य ज्ञानस्वरूप को। और यह राग और क्रिया जो है, यह चैतन्यस्वरूप द्वारा जाना जाता है। इसलिए वह जड़ और अजीव है। इसलिए उसको छोड़कर अन्दर में जाओ। अरे रे! ऐसी बातें अब। बापा! परिभ्रमण करते-करते अनन्त भव गये, भाई! आहाहा! है?

द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म को मूल से छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है... मूल से अर्थात् मूल में से उखाड़कर। गाय है न? घास खाती है न? यह ऊपर-ऊपर का खाये। मूल रखे और गधा ऐसा होता है न कि मूल से खींच के खाये। यहाँ कहते हैं कि वह गधे जैसा है ऐसा यह ज्ञानी सच्चा है कि राग को मूल में से छोड़ देता है। समझ में आया? इसके अन्दर में गन्ध नहीं रहने देता। वस्तु भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति भिन्न है। इसको यह पुण्य और पाप के विकल्प को मूल से दृष्टि में से छोड़ दे। आहाहा! अरे! ऐसा अभी। कोई समय कुछ सुना न हो, इसको करना, वह सरल एकदम है। पूरे दिन सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, अपवास करना, आम्बेल करना। अभी यह तो धूल है, सुनो न। यह तो सभी राग की क्रियाएँ विकल्प हैं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह चैतन्य की जात की तुझे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जितनी कुछ कर्मजाति है, वह समस्त हेय है। यह सब कर्म जाति है। पुण्य का, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव भी यह कर्म की जाति है, चैतन्य की नहीं। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। क्या हो? बापू! मार्ग तो यह है। इसको मानना पड़ेगा। आहाहा! अभी तो यह बात नहीं चलती हो; इसलिए मुश्किल लगे। इसलिए कितने ही कहते हैं कि 'सोनगढ़' ने नया धर्म निकाला। अरे! भगवान! यह तो परमात्मा का मार्ग है, वह मार्ग है यह तो। जिनेश्वर का मार्ग जो अनादि है। अनन्त तीर्थंकर हुए, यह सब इसी प्रकार से कहते थे। महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। लाखों

केवली मनुष्यपने विराजते हैं, यह यह बात बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जितनी कुछ कर्मजाति है, वह समस्त हेय है। आहाहा! यह शुभभाव को कर्म की जाति में डाला है। यह आत्म जाति नहीं ऐसा कहते हैं। यह कजात है। आहाहा! परन्तु बाहर में मजा लगता हो। इसमें पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो, स्त्री-पुत्र ठीक हो। पुत्र कमाऊ जागा हो और पुत्र छह-आठ हों। ऐई! मजा है। मर जाओगे अभी, सुनो न। तुमने आत्मा को मार डाला। पर में मजा मानकर और आत्मा में मजा और सुख है, इसको तुमने मार डाला। आहाहा! तुम्हारी तुमने हिंसा की। आहाहा! सुख स्वरूप है, ऐसा आया था न? **'चारु'** आहाहा! यह पर में सुख माने। शरीर में, स्त्री में, पुत्र में, कुटुम्ब में, आबरू में और पाप के परिणाम में और या कि पुण्य के परिणाम में सुख माने कि यह ठीक है, यह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! इसको जैनधर्म की खबर नहीं। जैनधर्म किसको कहना? आहाहा! कालिदासभाई! ऐसा है यह। वहाँ मुम्बई में बड़ा रुपया का फैलारा है। यह करोड़पति कहलाये। फलाना भले पाँच लाख हो। फैलारा बड़ा हो पाप का इसको जाने। ओहोहो! ऐसा कहता था। कोई कहता था। आहाहा! सबसे बड़ा फैलारा तो इसका पोपटभाई का साला नहीं था? यह पोपटभाई बैठे हैं। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ है। अपने दशाश्रीमाली बनिया थे। यह पोपटभाई के सगे साले। 'गोवा' 'गोवा'। अभी डेढ़ वर्ष पहले गुजर गये। दो अरब चालीस करोड़। पाँच मिनिट में रात्रि में मर गये। ६४ वर्ष (की उम्र) पाँच मिनिट में चले गये। गये होंगे ढोर में। आहाहा! अम्बाजी को मानते थे, खबर है न। अम्बाजी... आहाहा!

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि को माता कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मातारूप से वचन-वाणी। इसमें वीतराग की वाणी में इतना भरा है इस अपेक्षा से माता कहते हैं। 'जिनवाणी माता...' आता है न? यह तो वीतराग की अपेक्षा से। यह दिव्यध्वनि है। यह उत्कीर्ण की हुई भगवान की वाणी है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। इनकी वाणी है यह। 'कुन्दकुन्दाचार्य' भगवान के पास गये थे। संवत् ४९ में, दो हजार वर्ष पहले। वहाँ से आकर यह सब शास्त्र रचे हैं। यह वाणी भगवान के घर की है। आहाहा!

'जिनवाणी..' आता है न उसमें ? 'नमो देवी वागेश्वरी जैन वाणी' 'नमो देवी वागेश्वरी' वागेश्वरी अर्थात् बाघेश्वरी नहीं। यह बाघ ऊपर बैठती, यह अज्ञानी नहीं। यह तो वाणी में ईश्वरी वीतराग की वाणी। दिव्यध्वनि छूटे। भगवान के होंठ बन्द हों। कण्ठ चले नहीं, पूरे शरीर में से ॐ ऐसी आवाज आये। 'मुख ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारें' सन्त, भावलिंगी आत्मज्ञानी, अनुभवी भगवान की वाणी सुनकर और शास्त्र रचे। आहाहा! 'बनारसीदास' का वचन है। 'मुख ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारें रचि आगम उपदेशे भाविक जीव संशय निवारें' इनकी आगम रचना करें गणधर सन्त। उसको सुनकर भाविक जीव संशय को टालें और मिथ्यात्व टालकर समकित प्राप्त करें। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है। भाई ने कहा कि वाणी को माता कहते हैं न। यह इस रीति से। इनकी भाव में वीतरागता भरी है।

'श्रीमद्' में आता है न ? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भव रोग के पण कायर को प्रतिकूल, गुणवंता रे ज्ञानी... अमृत वरस्या से पंचम काल में।' आहाहा! कायर को प्रतिकूल जिन की वाणी, परम शान्त वीतरागी दशा बतानेवाला। आहाहा! वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा। कहा न यहाँ ? सर्वोत्कृष्ट है यह। उसको बतानेवाली वाणी है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **कि जितनी कुछ कर्मजाति है...** आहाहा! चैतन्य जाति, वह ज्ञान और आनन्द की जाति है भगवान और पुण्य और पाप के भाव, शरीर, वाणी, मन यह सब कर्म की जाति है। एक ओर आतमराम और एक ओर गाँव विकार का सब। आहाहा! ऐसा उपदेश इसमें समझना क्या ? आहाहा! अरे! भगवान! भाई! तुमने कोई समय धर्म सुना नहीं। सच्चा धर्म वीतराग का, भाई! क्या हो ? आहाहा! जिन्दगी चली जाती है। आँख मींचकर चला जाएगा, बापू! वहाँ कोई शरण नहीं। अन्दर आत्मा शरण है। इसको तुमने देखा और जाना नहीं। आहाहा! और बाहर में भटकाव होकर भटककर मरा है। आहाहा!

यह **कर्मजाति है, वह समस्त हेय है।** यह चाहे तो जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे यह भाव भी हेय है। क्योंकि यह कर्मजाति है। आहाहा! समझ में आया ? **उसमें कोई कर्म उपादेय नहीं है।** कोई राग की क्रिया अथवा शरीर की क्रिया, यह आदरणीय नहीं।

आहाहा! ऊपर कहा था न? 'सर्वोत्कृष्ट उपादेय है।' इसके सामने यह उपादेय नहीं, ऐसा लिया। पहले आया था न?

मुमुक्षु : समस्त लोक...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। [**उपरिचरन्तं**] इसकी व्याख्या। सर्वोत्कृष्ट उपादेय है। यहाँ कहा कि कोई भी राग की क्रिया अथवा शरीर की क्रिया, यह आदरणीय नहीं। आहाहा!

और अनुभव जैसे होता है, वही कहते हैं– आत्मा का अनुभव। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसकी पर्याय में उत्कृष्ट वस्तु जो ध्येय में, लक्ष्य में लेकर के अनुभव होता है, वह सर्वोत्कृष्ट चीज़ है, उसका अनुभव हो, इसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन, ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! **अनुभव जैसे होता है, वही कहते हैं– 'चिच्छक्तिमात्रं स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य' [चिच्छक्तिमात्रं] ज्ञानगुण ही है स्वरूप जिसका...** आहाहा! अन्तर जाणक... जाणक... जाणक... जाणक... जाणक... स्वभाव, वह चित्शक्ति वह आत्मा। आहाहा! है? ज्ञानगुण... ज्ञानस्वभाव जो जानना... जानना... जानना... जिसका त्रिकाली स्वभाव। जैसे शक्कर का मिठास स्वभाव, नमक का खारा स्वभाव; उसी प्रकार भगवान आत्मा का ज्ञान स्वभाव। जानने का त्रिकाली स्वभाव है, बस। आहाहा!

वह ही है स्वरूप जिसका ऐसे [स्वं च] अपने को [स्फुटतरं]... आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? कि ज्ञानस्वरूप करके आत्मा बताया। ज्ञान-आनन्द आदि ज्ञानस्वरूप जो है इसको स्व को अवगाहन करके—इसमें जाकर... आहाहा! जिसका (स्फुटतरम्) जिसका **प्रत्यक्षरूप से [अवगाह्य] आस्वादकर।** आहाहा! यह ज्ञानस्वरूप को वर्तमान में प्रत्यक्षपने ज्ञान का स्वाद लेकर। आहाहा! ज्ञान का स्वाद अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद। इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम अनुभव है। बहुत परन्तु यह तो फेरफार, भाई! फेरफार है, तब यह सब फेरफार कहते हैं न? आहाहा! है?

'स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य' यह तीन का अर्थ। स्व भगवान ज्ञानस्वरूपी, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूपी। इसको **'स्फुटतरं अवगाह्य'** प्रत्यक्षपने स्वाद ले। आहाहा! इसका नाम धर्म और समकित है। आहाहा! अरे! ऐसी बात। सिर घूम जाए। वह सरल था एकदम। ऐई! पोपटभाई! अभी तो जवान भी रस लेने लगे हैं, हों! भाई! सुनो तो सही, बापा!

मुमुक्षु : सब जवान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवान हैं। यह तो इनका लड़का यहाँ बैठता है जयेश। यह तो अभी जवान है। यह पुस्तक लेकर बैठता था। भले अभी अव्यक्तपने भी... यहाँ बैठता यहाँ, सामने मुँह आगे बैठता, हो! बापू! यह तो आत्मा की बात, नाथ! तेरे घर की बातें, प्रभु! क्या कहें? तुझे तेरे घर की खबर न हो और धर्म हो जाए? आहाहा! अरे..रे..! संसार के परिभ्रमण से उद्धार होने का भाव तो यह है। ज्ञानस्वरूप भगवान को प्रत्यक्षपने आस्वाद। आहाहा! तुझे राग का और पुण्य का स्वाद तो प्रभु! अनादि का है। यह तो दुःख का स्वाद है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! कहो, स्थानकवासी में ऐसा सुना था कहीं? वहाँ तो यह क्रिया करो। हम स्वयं भी कहते और इसमें। इक्कीस वर्ष (इसमें रहे)। आहाहा! व्रत करो, अपवास करो, यह करो और वह करो बस हो गया। क्या करना? यह तो विकल्प राग है। यहाँ तो (कहते हैं कि यह राग) चित् शक्ति से रहित खाली है यह। परन्तु इसकी वस्तु अन्तर है, इसके ऊपर इसकी प्रतीति ही नहीं। अन्तर भगवान चिदानन्दस्वरूप आनन्दकन्द है। उस ओर इसका लक्ष्य नहीं, इसका इसको विश्वास नहीं, इसकी इसको प्रतीति की प्रतीति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दया भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो 'दया वह सुख की बेलडी, दया वह सुख की खान, अनंता जीव मुक्तिये गये...' यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया का भाव, यह राग है और तुम पर की दया कर सकते नहीं। कारण कि पर की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। भगवान के मार्ग में तो यह है। यह पर की दया पालने का भाव, यह राग है, यह तेरी हिंसा है। आहाहा!

यहाँ तो प्रत्यक्ष वेदन करके... **भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणा' हैं, वे सब जीव के नहीं हैं।** जितने राग के विकल्प उठते हैं, वह सभी तेरे नहीं। **शुद्धचैतन्यमात्र जीव है, ऐसा अनुभव कर्तव्य है।** लो! यह अनुभव करनेयोग्य है। इसका नाम धर्म और समकित है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-३७

(शालिनी)

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।।५-३७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अस्य पुंसः सर्व एव भावाः भिन्नाः' [अस्य] विद्यमान है ऐसे [पुंसः] शुद्ध चैतन्यद्रव्य से [सर्व] जितने हैं वे सब [भावाः] अशुद्धविभाव परिणाम [एव] निश्चय से [भिन्नाः] भिन्न है-जीव स्वरूप से निराले हैं। वे कौन से भाव? 'वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा' [वर्णाद्या] एक कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप हैं, वे तो जीव के स्वरूप से निराले ही हैं [वा] एक तो ऐसा है कि [रागमोहादयः] विभावरूप अशुद्धरूप हैं, देखने पर चेतन जैसे दीखते हैं, ऐसे जो राग-द्वेष-मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम, वे भी शुद्धजीवस्वरूप को अनुभवने पर जीवस्वरूप से भिन्न हैं।

यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि विभाव परिणाम को जीवस्वरूप से भिन्न कहा, सो भिन्न का भावार्थ तो मैं समझा नहीं। भिन्न कहने पर, भिन्न हैं-सो वस्तुरूप हैं कि भिन्न हैं, सो अवस्तुरूप हैं?

उत्तर इस प्रकार है कि अवस्तुरूप हैं। 'तेन एव अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः अमी दृष्टाः नो स्युः' [तेन एव] उसी कारण से [अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः] शुद्धस्वरूप का अनुभवशील है जो जीव, उसको [अमी] विभाव परिणाम [दृष्टाः] दृष्टिगोचर [नो स्युः] नहीं होते। 'परं एकं दृष्टं स्यात्' [परं] उत्कृष्ट है ऐसा [एकं] शुद्ध चैतन्य द्रव्य [दृष्टं] दृष्टिगोचर [स्यात्] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि वर्णादिक और रागादिक विद्यमान दिखलायी पड़ते हैं, तथापि स्वरूप अनुभवने पर स्वरूपमात्र है, विभावपरिणति रूप वस्तु तो कुछ नहीं।।५-३७।।

श्रावण शुक्ल ५, गुरुवार, दिनांक २१-०७-१९७७
कलश-३७, प्रवचन-४६

अजीव अधिकार है यह,

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।।५-३७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अस्य पुंसः सर्व एव भावाः भिन्नाः' [**अस्य**] **विद्यमान है ऐसे** [**पुंसः**] **शुद्ध चैतन्यद्रव्य से...** विद्यमान हैं यह तो सामने भाव। शुद्ध चैतन्यद्रव्य-भगवान आत्मा तो शुद्ध चैतन्य वस्तु है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द ध्रुव है। यह **चैतन्यद्रव्य से** [**सर्व**] **जितने हैं, वे सब** [**भावाः**] **अशुद्धविभाव परिणाम...** पहले साधारण बात रखी, फिर इसका स्पष्टीकरण करेंगे।

अशुद्धविभाव परिणाम... मलिन, विकारी भाव **निश्चय से भिन्न है-जीव स्वरूप से निराले हैं।** भगवान तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा है। उससे यह सब अशुद्ध विभाव परिणाम भिन्न हैं। अर्थात् क्या? अब कहते हैं, अशुद्ध परिणाम अर्थात् क्या?

वे कौन से भाव? 'वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा' [**वर्णाद्या**] **एक कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप हैं,...** ऐसा लिया। वर्ण, रस, गन्ध से लेकर कर्म, संहनन, संस्थान, यह सब अशुद्ध अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप हैं। **वे तो जीव के स्वरूप से निराले ही हैं...** शरीर, कर्म, संघनन, संस्थान, कर्म आदि भगवान आत्मा से भिन्न ही हैं। **एक तो ऐसा है कि विभावरूप अशुद्धरूप हैं, देखने पर चेतन जैसे दीखते हैं,...** आहाहा! यह बहुत सूक्ष्म बात। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव यह राग विभावभाव हैं। [**रागमोहादयः**] **देखने पर चेतन जैसे दीखते हैं,...** इसकी पर्याय में हैं इसलिए।

ऐसे जो राग-द्वेष-मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम... आहाहा! दोपहर को ऐसा आया था कि राग और द्वेष के परिणाम जीव का अकेला कर्तव्य है। ऐसा आया था। यह तो इसकी पर्याय में होते हैं और इसका—पुण्य-पाप का अज्ञानभाव से कर्ता है। इसलिए उसके सिद्ध किये थे। यहाँ तो वस्तु स्वभाव सिद्ध करना है। जो चैतन्य ज्ञान-आनन्द स्वभाव है, उसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम, वे स्वरूप में नहीं। इसलिए यह परिणाम पुद्गल से निपजे हैं, ऐसा कहा है। बात सुनी न हो उसको (कठिन लगे)। व्रत, तप, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ आदि भाव, कहते हैं कि यह भी जीव स्वरूप से भिन्न हैं। आगे कहेंगे—आगे कि यह एक ही पुद्गल की उत्पत्ति है। पुद्गल से ही इसकी निष्पत्ति है।

अब दोपहर को ऐसा कहते हैं कि विकार है, वह पुद्गल का भी नहीं, जीव और पुद्गल दोनों इकट्ठे होकर के नहीं। यह जीव का एक का ही किया हुआ पुण्य-पाप का भाव है। यह तो विकार की अवस्था पर्याय में होती है। इसका अस्तित्व वहाँ सिद्ध किया है। और यहाँ तो उसके त्रिकाली अस्तित्व का जो स्वभाव है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसका कोई स्वभाव और शक्ति विकार को करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा के परिणाम, यह सब अजीव—पुद्गल से निपजे हैं, ऐसा कहना है। आहाहा! यह अजीव हैं, जीव नहीं। किस अपेक्षा से कहा? दोपहर को किस अपेक्षा से कहा, यह दोनों की अपेक्षा जाननी चाहिए न?

विकार के—पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव, यह जीव की पर्याय में—पर्याय में पर्यायबुद्धिवाले को होते हैं, इसलिए उसका कर्तव्य है; यह पुद्गल का नहीं। आहाहा! यहाँ तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टि सिद्ध करनी है। यह तो वहाँ पर्याय को सिद्ध करना था। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी सूक्ष्म बहुत मार्ग। आहाहा! अरे! वीतराग के मार्ग की इसको खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया का भाव, अहिंसा—पर को नहीं मारना—ऐसा भाव, सत्य बोलना—ऐसा भाव... आहाहा! व्रत का परिणाम है, वह भाव यह सब अजीव

हैं। क्योंकि जीव चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा यह तो स्वभाव का पिण्ड प्रभु है। यह तो पहले कहा न? **शुद्ध चैतन्यद्रव्य से...** [**पुंसः**] [**पुंसः**] अर्थात् आत्मा-पुरुष। आहाहा! पर्याय में उसके पुण्य-पाप दया, दान, व्रत, भक्ति के, काम, क्रोध के भाव, उसकी पर्याय में पर्यायबुद्धिवाले का कर्तव्य है यह। यह कोई कर्म से और पुद्गल से नहीं हुए। यह तो पर्याय की स्वतन्त्रता, द्रव्यस्वभाव की दृष्टि छोड़कर, पर्याय में होता है, उसकी सिद्धि करके यह जीव ही अपने चैतन्य के शुद्धस्वभाव के अज्ञान में पर्याय में विकृति स्वयं करता है। विकार भाव यह अपना है। आहाहा! यह पर्यायबुद्धि को सिद्ध करने के लिये यह बात की है। अब यहाँ तो वस्तु द्रव्यस्वभाव जो चैतन्यद्रव्य है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है... समझ में आया? यह चैतन्य ज्ञायक स्वरूप भगवान वीतराग मूर्ति प्रभु है। यह जिनस्वरूप ही आत्मा अन्दर है। आहाहा! यह जीवस्वरूप की दृष्टि से देखते यह दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम जो उठते हैं, यह सब पुद्गल के—अजीव है, आत्मा के नहीं। आहाहा! कहो, शशीभाई! अब कहाँ एक तरफ यह बात और कहाँ एक तरफ यह। भगवान का मार्ग स्यादवाद अनेकान्त जो वस्तु स्वरूप है वैसा सिद्ध किया है।

यहाँ तो द्रव्य जो वस्तु है, इसको सिद्ध करना है। वहाँ तो पर्याय में विकृत भाव, शुभ या अशुभ योग की क्रिया का राग, यह पर्याय का कर्तव्य है, यह पुद्गल का कर्तव्य नहीं। समझ में आया? ऐसा सिद्ध करके वहाँ अकेला जीव की पर्याय विकार का कर्ता है, यह अज्ञानी सिद्ध किया। यह अज्ञानी पर्यायबुद्धिवाला पुण्य-पाप भाव का कर्ता होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात अभी, कहाँ मिलान करना? इसको वहाँ सिद्ध किया कि वस्तु स्वयं जो है, वह तो चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु है। उसका जिसको ज्ञान नहीं, उसका जिसको स्वभाव का भाव सन्मुख नहीं, वह जीव पर्यायबुद्धिवाला है। वह पर्यायबुद्धिवाले के राग का कर्ता यह पर्याय है। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि जीव है। त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि नहीं। सम्यग्दर्शन जो कहें त्रिकाली वस्तु का आश्रय तो हैं नहीं। और अकेली पर्याय के ही अस्तित्व को स्वीकारता है तो इसकी पर्याय में जितना भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव होता है, सब विकार इसकी पर्याय ने किया है। इसलिए पर्यायबुद्धिवाले ने किया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात अभी। दोपहर को कुछ, सुबह कुछ। किस अपेक्षा से है? भाई!

अभी तो जीवस्वभाव जीवद्रव्य की व्याख्या चलती है। जीवद्रव्य जो है, वह तो चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है, शुद्ध पवित्र है। उसके परिणाम होते हैं, वे तो पवित्र होते हैं। आहाहा! और यह जितने पर सन्मुख के लक्ष्यवाले परिणाम है... आहाहा! दया का हो, अथवा दान का हो या कि व्रत का हो या भक्ति का हो या पूजा का हो, (वे अपवित्र है)। आहाहा!

'भावपाहुड़' की ८३वीं गाथा में ऐसा कहा है कि पूजा और व्रत, यह कोई जैनधर्म नहीं। है? 'भावपाहुड' की ८३वीं गाथा। आहाहा! इसमें तो स्पष्टीकरण किया है कि व्रत, वैयावृत्य, भक्ति और पूजा यह भाव कोई जैनधर्म नहीं। आहाहा! क्योंकि यह तो राग है। आहाहा! यहाँ कहा कि राग का करनेवाला पर्यायबुद्धिवाला स्वयं है। दो (बात)। तीसरा यह कहा कि वस्तुस्वभाव जो है... आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव चैतन्य भगवान परमानन्दस्वरूप है, यह द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से इसके चैतन्यद्रव्य में यह पुण्य-पाप के भाव है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। यह व्रत का और अपवास के जो विकल्प उठते हैं, यह सब कहते हैं अजीव हैं, ऐसा कहते हैं। अरे! यह किस रीति से? क्योंकि इसमें से निकल जाते हैं। इसकी चीज़ हो तो निकले नहीं। इसलिए वह अजीव है। आगे तो कहेंगे। ३९ कलश है न? **निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य** ३९ कलश में। **निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य** आहाहा! ३९ की दूसरी लाईन। यह सब दया, दान, व्रत... आहाहा! गजब बापू! बात कठिन, भाई! और जिसको धर्म माने। दया का भाव, यह दया पाली, यह धर्म हुआ। अरे! प्रभु! बापू! तुझे धर्म की खबर नहीं।

वीतराग मार्ग की दया तो स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का स्वीकार करे, पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, मेरे स्वरूप में विभाव विकल्प है नहीं—ऐसे स्वभाव का स्वीकार करे, उसने जीव की अपनी दया पाली। आहाहा! क्योंकि जितना और जैसा था, उसने ऐसे का ऐसा जीवता स्वीकार किया। इसका नाम जीव की दया और इसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो वस्तु का स्वभाव... आयेगा, कहेंगे, हों! आहाहा! **कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गलपिण्डरूप हैं, वे तो जीव के स्वरूप से निराले ही हैं; एक तो ऐसा है कि**

विभावरूप अशुद्धरूप हैं, देखने पर चेतन जैसे दीखते हैं,... कौन ? राग-द्वेष-मोह। आहाहा ! चाहे तो शुभराग हो, शुभ उपयोग अथवा चाहे तो अशुभराग हो या चाहे तो यह मेरा है, ऐसा मिथ्यात्वभाव हो... आहाहा ! यह सब अजीव है। अरे ! ऐसी बात।

मुमुक्षु : इसमें से निकल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाते हैं और इसकी चीज में है ही कहाँ ? यह तो पर्याय में है, इतना अस्तित्व सिद्ध किया। पर्यायबुद्धिवाले को पर्याय में पर्याय का कर्ता यह है। आहाहा ! यहाँ द्रव्य को सिद्ध करते भगवान ज्ञायक चैतन्य ज्योति निर्मलानन्द, प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय ध्येय, इस चीज़ में पुण्य और पाप के भाव अजीव रूप से हैं, जीवरूप से नहीं। आहाहा ! अभी ऐसी बातें ! और यहाँ तो बाहर से यह दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो। जाओ तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान।' देवीलालजी को था पहले। देवीलालजी ! यह तो सबको ही था पहले।

हमारा (संवत्) १९८१ की साल में 'गढडा' में व्याख्यान चलता था वहाँ एक बड़ा चार पन्ने का चौपानिया लिखा हुआ। ऐसा यह। 'दया वह सुख की बेलड़ी...' कौन सी दया ? बापू ! पर की दया तो राग है। राग है, वह तो आत्मा की जाति नहीं, यह तो अजीव है, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा ! अजीव से जीव को लाभ हो ?

यहाँ दो प्रकार के अजीव का वर्णन किया। बापू ! सूक्ष्म बात। एक तो शरीर, कर्म, संहनन, संस्थान, वर्ण, गन्ध, स्पर्श यह अजीव। और यहाँ अन्दर देखने पर पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, यह राग है और आत्मा चैतन्यस्वरूप है। चैतन्यस्वरूप का अंश, यह राग में नहीं। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु की कोई किरण राग में नहीं। इसके ज्ञान का अंश का राग में अभाव है। इसलिए वह सब दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव को अजीव कहा है। अरे.. ! ऐसी बात ! आहाहा !

मुमुक्षु : चेतन की एक भी किरण नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतन की जात नहीं, बापू ! आहाहा ! इसको तुम धर्म रूप माने और लाभ रूप माने, यह तो मिथ्यात्व का पोषक है। महामिथ्यात्व पाप का पोषक है। कठिन बात है, भाई ! अभी जो चलता है, उसके सामने यह बात कठिन लगे।

परमात्मा की तो यह पुकार है। जिनेश्वरदेव वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा जो एक समय में तीन काल, तीन लोक प्रभु देखते हैं, उन परमेश्वर की यह आज्ञा यह हुक्म है। आहाहा! प्रभु! तुम एकबार सुनो तो सही। अरे..! तेरी चीज़ जो अन्दर आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु है। उसमें यह पुण्य और पाप भाव तो दुःखरूप है और भगवान आत्मा तो आनन्दरूप है। तो आनन्दरूप को जीव कहते हैं और दुःखरूप भाव को अजीव कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? बहुत ऊँची बात है, बापू! यह दुनिया क्या मानती है यह तो खबर है या नहीं? आहाहा! इसमें यह है या नहीं? क्या?

राग-द्वेष-मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम... देखा? है तो जीव सम्बन्धी पर्याय ऐसा कहते हैं। **वे भी शुद्धजीव स्वरूप को अनुभवने पर जीवस्वरूप से भिन्न हैं।** आहाहा! वर्तमान ज्ञान की दशा को अन्तर ध्रुव सन्मुख झुकाते सम्यग्दृष्टि जीव-धर्मी, अपनी ज्ञान की वर्तमान दशा को ध्रुव सन्मुख ढालते अकेला शुद्ध आत्मा है, वह जानने में आता है। कहते हैं, इसमें पुण्य और पाप साथ में नहीं आती। आहाहा! ऐसी बात अभी। फिर 'सोनगढ़' के नाम से लोग कहते हैं न, एकान्त है। व्यवहार का लोप करते हैं। बात सच्ची है, बापू! उनको खबर नहीं। अरे..रे..!

चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ प्रभु के परिणाम अतीन्द्रिय आनन्द के होते हैं। और यह राग है, यह तो दुःख है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान की पूजा का भाव भी राग है और दुःख है। आहाहा! यह तो अजीव की जात का परिणाम, अजीव की जाति के, जीव की जाति का नहीं। सेठ! ऐसा है, बापू! ऐसी बात! अरे..रे..! दुनिया के पास परमात्मा ने तो खुली (स्पष्ट) रख दी है, लेकिन लोगों को.. आहाहा..! सुनने नहीं मिलती और सुनने का समय आया, तब कहे, ऐई..! सुनना नहीं यह बात, बन्द करो। शुकनलालजी! वहाँ जाना नहीं, हों! नहीं तो एकान्त.. अरे..! भगवान! सुनो बापू, भाई!

भगवान परमेश्वर जिनेश्वरदेव, जिसकी सभा में एकावतारी इन्द्र आते हैं, महाविदेहक्षेत्र में.. आहाहा! इन्द्र की इन्द्राणी है अभी, वह भी एकावतारी, एक भवावतारी मोक्ष जानेवाली है, यह इनकी सभा में आती है तो परमात्मा यह कहते हैं। ऐई! आहाहा! तीन लोक के नाथ, जिनेश्वर, परमेश्वर; वीतरागभाव के अलावा जितने भाव हैं, इसको

परमेश्वर अजीव कहते हैं। यह जीव का हो तो भिन्न नहीं पड़े, निकल ना जाये। आहाहा! समझ में आया? है? राग—राग में शुभ-अशुभ राग दोनों आये। द्वेष में पर का अभाव प्रतिकूलता लगे यह द्वेष आया। मोह में पर सन्मुख के झुकाव का भाव मेरा, इसमें मिथ्यात्व आया। आहाहा! यह राग-द्वेष और मोह।

अरे..! परमात्मा का विरह पड़ा, भरतक्षेत्र में वीतराग का विरह पड़ा, लोगों ने अपनी कल्पना से मार्ग चलाया। आहाहा! लक्ष्मी का नाश हो और पिताजी गुजर जाएँ तो लड़के झगड़ा करें फिर। ऐसे तीन लोक के नाथ केवली का विरह पड़ा अभी यहाँ और केवलज्ञान उत्पन्न हो, इसकी लक्ष्मी का तो नाश हुआ। आहाहा! यह झगड़ा खड़ा किया कि नहीं, शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति—यह सब धर्म है और यह धर्म का कारण है। ऐसा झगड़ा खड़ा किया। आहाहा!

जीव का स्वभाव तो चैतन्य ज्ञान और आनन्द है न, प्रभु! यह दया, दान के भाव स्वभाव में से उत्पन्न हुए हैं? स्वभाव का यह कार्य है? यह निकल जाते हैं; इसलिए पुण्य का, दया, शुभ-अशुभ के भाव और वह मेरे—ऐसा मिथ्यात्वभाव, तीनों को यहाँ परमात्मा अजीव कहते हैं। तीन लोक के नाथ वीतराग जिनेश्वर वस्तु की दृष्टि के स्वभाव की अपेक्षा से इसमें नहीं, इसलिए उनको अजीव कहते हैं। आहाहा! अब यह अजीव की क्रिया, यह धर्म है—ऐसा मानते हैं। भगवान की भक्ति, दया पालना, व्रत पालना, पूजा करना, यह भाव धर्म है। शुकनलालजी! अब इतना सब अन्तर, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **राग-द्वेष-मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम...** भाषा देखी? वह अजीव था। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शरीर, कर्म, यह अजीव है और यह जीव सम्बन्धी। आहाहा! परिणाम इतना, हों! परिणाम की अपेक्षा से। जीवद्रव्य नहीं। जीव सम्बन्धी परिणाम। आहाहा! **वे भी शुद्धजीव स्वरूप को अनुभवने पर...** अन्तर में चैतन्य भगवान शुद्ध है, उसको अन्तर में देखते, स्व को देखने से उसमें यह पुण्य-पाप के भाव नहीं आते। आहाहा! धर्मी जीव-सम्यग्दृष्टि जीव धर्म की पहली शुरुआतवाला यह अन्तर्मुख चैतन्य को देखता है, उसमें यह नहीं दिखते। आहाहा! ऐसी बात अभी! बात-बात में अन्तर। अब इसका मेल किस रीति से करना? वह कहते हैं कि समन्वय करो।

सेठ! समन्वय करो, ऐसा कहते हैं कि यह तुम्हारा और अपना दोनों इकट्ठे करो। अरे..! भगवान! किसका समन्वय? दो हैं, इस अपेक्षा से बराबर है। यह खोटा है और यह सच्चा है—ऐसे दो हैं, परन्तु दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं। आहाहा!

अभी तो नामधारी साधु की प्ररूपणा यह (कि) दया करो, व्रत पालो, पूजा करो, तपस्या करो। यह तुमको कल्याण का कारण है। अरे..! प्रभु! यह भाव तो अनन्त बार किया है न, भाई! नवमीं ग्रैवेयक अनन्त बार गये हो न, प्रभु! तो नवमी ग्रैवेयक कौन जाता है? शुक्ललेश्या। कैसी शुक्ललेश्या! आहाहा! कि व्रत पालने में कोई प्रतिकूलता आये तो खण्ड न करे। ऐसे व्रत पाले, परन्तु यह सभी शुभ भाव है, यह अजीव है। यह जीव में नहीं और जीव को लाभदायक नहीं। ऐसी बात करे तो दूसरे में तो रहने न दे इसको। आहाहा! अरे..! सुनो न, भाई! क्या कहते हैं? आहाहा!

परमात्मा ऐसा कहते हैं, यह **राग-द्वेष-मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम...** यह वर्ण, रस, गन्ध, शरीर, कर्म, संहनन, संस्थान, यह तो सभी सीधे अजीव ही हैं। और जो पुण्य, दया, दान और व्रत, भक्ति के भाव, यह जीव सम्बन्धी परिणाम लिये। देखा! भाषा? यह अजीव वह जड़ है वर्ण, रस, स्पर्श, यह नहीं। यह जीव सम्बन्धी परिणाम है। तो भी यह अजीव है। आहाहा! ऐसी बात अभी। यह है या नहीं?

मुमुक्षु : इसकी जाति का नहीं और इसकी जाति में मिलते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति का है ही नहीं, यह कजात है। आहाहा! ऐसी बात मुश्किल पड़े, भाई! व्यक्ति को सुनना मुश्किल पड़े। बहुत दूसरी चीज़ों से घुंट गया है न? रगड़ गया है कि व्रत, तप, अपवास करें तो यह धर्म है। ऐसा घुंट गया है। ऐसा तो अभव्य भी अनन्त बार करता है। सुन न। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' मुनिव्रत पंच महाव्रत पाला, नग्नपना धारण किया, समिति, गुप्ति, व्यवहार निरतिचार पालन किया। ऐसा 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। यह तो राग है। यह कोई आत्मा की क्रिया नहीं, यह धर्म नहीं। आहाहा! 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' यह तो 'छहढाला' में आता है। पाठशाला में सिखाते हैं। अर्थ की कहाँ खबर है? आहाहा! पंच महाव्रत पाले, यह अजीव है, राग है। अरे..! मार डाले। यह कहे—पंच महाव्रत संवर है।

मुमुक्षु : व्यवहार अजीव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अजीव है। व्यवहाररत्नत्रयमात्र अजीव है। अब लोग ऐसा कहें कि व्यवहार से निश्चय होता है, अर्थात् अजीव से जीव होता है। बापू! बहुत अन्तर पड़ गया है। वीतरागमार्ग को बहुत फेरफार किया है, बापू! क्या हो? आहाहा! आधा घण्टा लेट हो गय.. समझ में आया? यह राग अर्थात् शुभराग, हों! अशुभराग तो ठीक। पंच महाव्रत का परिणाम, यह आस्रव है, यह राग है। आहाहा! क्योंकि यह परलक्ष्यी भाव है। यह चैतन्य के स्वभाव का भाव नहीं है। आहाहा! अनादि से ऐसे का ऐसा भटकता है।

यहाँ कहते हैं, यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष **जीव सम्बन्धी परिणाम...** भाषा देखी! वह अजीव अकेला था। यह शरीर, कर्म, वाणी, वर्ण, गन्ध, कर्म यह तो अकेले अजीव थे और यह दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव, यह कोई कर्म नहीं, अजीव, जड़ नहीं, वह परमाणु नहीं। किन्तु जीव सम्बन्ध के परिणाम यह विकार है; इसलिए उसको अजीव कहने में आता है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : यह रूपी कहलाये कि अरूपी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वास्तव में रूपी है। निश्चय से रूपी है। पर्याय है, इस अपेक्षा से अरूपी है। किन्तु अरूपी इसमें चैतन्य जो ज्ञानस्वरूप भगवान, यह चैतन्य की किरण इसमें नहीं। जैसा सूर्य है, उसकी किरण कोयले में हो? इसकी किरण सफेद-श्वेत हो। ऐसे भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसकी किरण अर्थात पर्याय, ज्ञान और आनन्द की दशा उसकी हो। आहाहा! यह जो राग की दशा और पुण्य-पाप के भाव और मोह, यह तो अन्धकार है। आहाहा! चेतनस्वरूप भगवान की यह किरण नहीं, उसकी यह दशा नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई! यहाँ तो कहे व्रत ले लो, जाओ संवर हो गया तुम्हारा। प्रतिमा ले लो। दिगम्बर में यह (कहे)। अभी सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी खबर नहीं होती। सम्यग्दर्शन में तो अन्तर्मुख आत्मा अकेला दिखायी दे और मानने में आये। इसमें तो पुण्य-पाप के भाव जानने में आते नहीं। समझ में आया?

विभाव परिणाम को जीवस्वरूप से भिन्न कहा... यह शुद्धजीव स्वरूप को

अनुभवने पर जीवस्वरूप से भिन्न हैं। यहाँ पर कोई प्रश्न करता है... है न? **कि विभाव परिणाम को जीवस्वरूप से भिन्न कहा सो भिन्न का भावार्थ तो मैं समझा नहीं।** क्या कहते हो? मैं कुछ समझा नहीं... क्या तुम यह कहते हो? आहाहा! अहिंसा पालना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य शरीर से पालना, यह सब भाव तुम भिन्न कहते हो—अजीव। मैं तो कुछ समझा नहीं। आहाहा!

मैं समझा नहीं। भिन्न कहने पर, भिन्न हैं–सो वस्तुरूप हैं कि भिन्न हैं, सो अवस्तुरूप हैं? यह भिन्न कहते हो, वह वस्तु का स्वरूप है? अथवा वस्तु से भिन्न जाति है? आहाहा! **उत्तर इस प्रकार है कि अवस्तुरूप हैं।** अपनी चीज़ की अपेक्षा से यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम अवस्तु है। वस्तु में–भगवान में नहीं। आहाहा! भगवान अर्थात् यहाँ आत्मा, हों! लोगों को मुश्किल पड़े। आहाहा! यह **अवस्तुरूप हैं।** अर्थात् कि चैतन्य द्रव्य में यह चीज़ है नहीं। आहाहा! चेतनस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा चेतना के परिणाम तो ज्ञान और आनन्द का हो। यह परिणाम भिन्न है अर्थात् कि आत्मा की वस्तु नहीं। आत्मा की अपेक्षा से आत्मा के अन्दर देखते उसमें यह नहीं आते, इसलिए अवस्तु है। अरे...!

मुमुक्षु : है, उसको अवस्तु कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की वस्तु नहीं, इसलिए अवस्तु। उसमें है तो सही, अजीव रूप से हैं। जीव की वस्तु में यह नहीं। आहाहा!

जैसे भगवान ने कहा कि स्वद्रव्य जो वस्तु है, इसकी अपेक्षा से स्वयं सत् है। किन्तु अपनी अपेक्षा से दूसरे तत्त्व हैं, वे असत् हैं। यह सत् है तो दूसरे तत्त्व इसकी अपेक्षा से असत् हैं, उनकी अपेक्षा से वे सत् हैं, इसकी अपेक्षा से असत् है। क्योंकि इस चीज़ में यह चीज़ है नहीं। कर्म, शरीर, वाणी, मन, अरे..! देव–गुरु और शास्त्र, वे इस द्रव्य की स्व सत् की अपेक्षा से यह सब असत् है, उनकी अपेक्षा से (ये) हैं।

इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वरूप सम्यग्दर्शन का जो विषय, ऐसे आत्मद्रव्य की अपेक्षा से, पुण्य और पाप के भाव को असत् और अवस्तु कहते हैं। अरे..रे..! ऐसा। मार्ग ऐसा है, भाई! यह तो जिनेश्वर वीतरागदेव का अपूर्व मार्ग है। पूर्व में कभी किया नहीं, सुना

ही नहीं। आहाहा! सुना है परन्तु रुचि से नहीं सुना। समवसरण में अनन्त बार गया है। आहाहा! वहाँ से धोये हुए मूले जैसा निकला फिर। 'केवली आगल रह गया कोरा' ऐसा सज्झाय में आता है। समझ में आया? उनको क्या कहना है, यह छूने भी नहीं दिया। अपनी कल्पना से माना है कि यह भगवान दया को धर्म कहते हैं, व्रत को, तप को धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग कैसा? यह नया निकाला होगा? बापू! यह तो वीतराग का मार्ग अनादि का यह है। नया तुझे लगता है, यह कोई नया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं, अवस्तुस्वरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानवस्तु, आनन्दवस्तु (है), उसको आत्मा कहते हैं। और यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के परिणाम, वह आत्मा नहीं, अजीव है इसलिए अवस्तु है। स्व की अपेक्षा से अवस्तु है। उसकी अपेक्षा से भले विद्यमान है। आहाहा! अरे! ऐसा क्या लेकिन? ऐसा उपदेश किस जाति का? बापू! सत्य का मार्ग तो यह है। जिनेश्वर परमेश्वर, वीतराग की दिव्यध्वनि में आयी हुई यह बात है। समझ में आया? आज मानो, कल मानो परन्तु यह मानकर ही छूटकारा है इसको। आहाहा! बाकी तो भटककर मरेगा। चौरासी के अवतार कर-करके भटक के मरता है। मनुष्य मर के पशु हो और पशु मर के नरक में जाए। आहाहा! ऐसा अनन्त अवतार किये, भाई! भूल जाता है। वर्तमान जहाँ देखे वहाँ... आहाहा! यह मिथ्यात्व के कारण से। यह परिणाम जो राग है, यह आत्मा की जात नहीं। उसको अपना माना और इससे मुझे लाभ होता है, यह माना इस मिथ्यात्वभाव के कारण से यह भटकना है। समझ में आया? भाषा तो सादी है। भाव भले सूक्ष्म हो। भाषा में बहुत कोई संस्कृत और व्याकरण ऐसा कुछ नहीं। यह तो भगवान की सीधी बात है।

'तेन एव अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः अमी दृष्टाः नो स्युः' [तेन एव] किस कारण से अवस्तु है? क्या कहते हैं? इसको अवस्तु क्यों कहा? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव करे बेचारा। दुकान का धन्धा छोड़कर ऐसे भाव करे। यह भाव को तुम अवस्तु कहते हो? यह जीव की वस्तु नहीं? कहो, शिवलालभाई! तुमने यह अवस्तु क्यों कही? ऐसा पूछते हैं। **'तेन एव अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः अमी दृष्टाः नो स्युः'** [तेन एव] **उसी**

कारण से 'तेन' अर्थात् उस कारण से **'एव'** अर्थात् ही। [**अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः**] **शुद्ध स्वरूप का अनुभवशील है जो जीव...** आहाहा! शुद्ध स्वरूप का अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव है। है? [**अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः**] अन्तःतत्त्व को देखनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव **शुद्ध स्वरूप का अनुभवशील है...** यह तो। आहाहा! शुद्ध स्वरूप के अनुभव स्वभाववाले हैं। सम्यग्दृष्टि तो ऐसे हैं। भले गृहस्थाश्रम में हों, लेकिन सम्यग्दृष्टि धर्मी जो है यह तो शुद्ध स्वरूप के अनुभव स्वभाववाला है। त्रिकाली शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभव करनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? इसको यहाँ समकिती कहते हैं। इसको धर्म की शुरुआतवाला कहते हैं कि जो कोई शुद्ध स्वरूप का अनुभवनशील.. आहाहा! भगवान शुद्ध पवित्र है, पुण्य-पाप के विकल्प के राग से भिन्न है, उसका अनुभव करनेवाला जिसका स्वभाव हो गया है, समकिती का। धर्मी जीव का शुद्ध स्वरूप का अनुभव स्वभाव हो गया है। यह विभाव का अनुभव करे, यह इसमें नहीं। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि, चौथे गुणस्थान में, पाँचवाँ तो किसको कहना..! यह सूक्ष्म बात। यह बाड़े के श्रावक यह कोई श्रावक नहीं। बोरी में काली जीरी और ऊपर दिया नाम शक्कर। अन्दर मिथ्यात्व भाव और ऊपर नाम दिया कि हम श्रावक और साधु। बापू! आहाहा! सूक्ष्म बात है।

कहते हैं, शुद्धस्वरूप जो चैतन्य त्रिकाली, इसको अनुसरण करके जिसका अनुभवशील स्वभाव हो गया है। राग को अनुसरण करना जिन्होंने—धर्मी ने छोड़ दिया है। आहाहा! यह धर्मी की व्याख्या! वीतराग धर्म, जैनधर्म, परमेश्वर त्रिलोकनाथ का पन्थ है, ये यह है।

शुद्ध स्वरूप का अनुभवशील है जो जीव उसको [**अमी**] **विभाव परिणाम... 'अमी'** अर्थात् ऐसा है तो सही। परन्तु **दृष्टिगोचर नहीं होते।** सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव पहली शुरुआतवाला चौथे गुणस्थान में... आहाहा! अन्तर में देखने पर, यह शुद्ध स्वरूप का अनुभवशील यह समकिती जीव है। उसको अन्तर में यह पुण्य-पाप अनुभव में दिखायी नहीं देते। कारण कि वहाँ तो अकेला शुद्ध आत्मा दिखता है। आहाहा! अरे..रे..! ऐसी बात अभी कितनों ने तो जिन्दगी में सुनी नहीं हो, पहली-पहली होगी। ऐसा मार्ग

होगा। ऐई! धर्मचन्दजी! क्या हो? भाई! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त जिनेश्वर यह कहते आये हैं और यह कहते हैं और कहेंगे। अनन्त तीर्थंकर होंगे यह सभी, यह कहेंगे। भगवान वहाँ विराजते हैं, यह कहते हैं। उनकी वाणी है, यह सब। आहाहा! समझ में आया?

जो जीव उसको विभाव परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते। क्या कहा? **'अमी'** तो कहा। है तो सही। परन्तु ऐसी जहाँ स्वरूप की दृष्टि करके अनुभव में जाते हैं, वहाँ यह राग और पुण्य और दया, दान नहीं दिखाते इसमें। क्योंकि यह पर हैं। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! ऐसी बात है। ऐई! प्रेमचन्दजी! कहीं सुना भी न हो। ओघड़भाई ने नहीं सुना था। आहाहा! आहाहा! अरे..! यह बात थी कहाँ? भाई! आहाहा! ऐसा वीतराग मार्ग इसको सुनने नहीं मिले। यह कहाँ जाएगा? किस ओर जाए? आहाहा!

पर्याय में जो यह जानने में आता है, यह तो वास्तव में ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। (यह) द्रव्य जानने में जब जाता है... आहाहा! क्या कहा यह? इसको अन्तर में नहीं देखते बाहर में देखे यह सब, यह तो ज्ञान की पर्याय जानने में आती है वहाँ। यह चीज़ तो दूर रह गयी। ज्ञान की पर्याय में यह जानने में आता है अर्थात् पर्याय जानने में आती है। अब पर्याय जानने में आती है, वहाँ तक तो मिथ्याबुद्धि है। यह द्रव्य को जहाँ अन्दर देखे, चैतन्य तत्त्व भगवान अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु पड़ा है। आहाहा! उसको जहाँ देखने जाता है, वहाँ रागादि उसमें दिखते नहीं। उसमें हैं नहीं। आहाहा! अरे..! प्रभु का विरह पड़ा, ऐसा मार्ग फिर जगत को कहना, लोग लांछन दे, आलोचना करके निन्दा करे, क्या हो? बापू! क्या कहें? कहाँ कहने जाए? आहाहा! बड़ा भाग विरोध करे। अरे! प्रभु! क्या है? भाई! सुनो न, भाई! यह तो तत्त्व की बात है, भाई! तुम तुम्हारा विरोध करते हो। किसी का विरोध नहीं। आहाहा! चारित्र की इसमें (बात नहीं आती, ऐसा कहते हैं)। परन्तु चारित्र समकित बिना होता नहीं। अभी सम्यग्दर्शन की तुझे खबर नहीं और चारित्र कहाँ से आ गया? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं पर्याय में, ज्ञान की दशा में यह जानने में आता है, यह वास्तव में ज्ञान दशा है। परन्तु इतना आत्मा नहीं। यह पर्याय जब अन्तर में देखने जाती है... आहाहा! वस्तु जो पूरी चैतन्यघन आनन्दकन्द चीज़ पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल आत्मा तो

है। आहाहा! वीतरागमूर्ति आत्मा है। अभी, हों! अन्दर में। आहाहा! उसमें जब ज्ञान की दशा अन्तर में जाता है, तब तो एक शुद्ध स्वरूप ही अनुभव में आता है। वहाँ दया, दान के विकल्प साथ में नहीं आते। क्योंकि यह भिन्न चीज़ है। आहाहा! क्योंकि यह अवस्तु है। वस्तु का अनुभव करते यह अवस्तु उसमें नहीं आती। न्याय से उसको समझना पड़ेगा न, भाई! यह ऐसे के ऐसे मान लेना यह अन्धी श्रद्धा इसको मार डालेगी, संसार में भटका देगी। आहाहा! अरे..! ऐसा मनुष्यपना और इसमें वीतराग की वाणी कान में पड़े और इसमें सत्य को न समझे और असत्य का पक्ष करे, भाई! तेरा किनारा नहीं आएगा, बापू! आहाहा!

कहते हैं, **विभाव परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते।** सम्यग्दृष्टि जीव जब त्रिकाली को देखने जाता है, अन्तर्मुख होता है... आहाहा! तब उसको जीव शुद्ध द्रव्य, वह अनुभव में आता है। इसमें दया, दान के विकल्प यह अवस्तु है, इसलिए अनुभव में नहीं आते। ऐसी बातें हैं। अभी तो पकड़ना कठिन। क्या कहते हैं? कौन सी पद्धति और क्या रीति है? आहाहा! ऐसी बात है।

'नो स्युः' सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव पहले दर्जे का, यह तिर्यंच हो, अथवा नारकी हो अथवा मनुष्य हो या देव हो परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव जो है, यह सच्ची दृष्टि जिसको हुई, वह अन्तर में आत्मा को देखता है, वहाँ यह तो अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति देखते हैं। इसमें दया, दान के विकल्प यह वस्तु में नहीं, इसलिए उसके अनुभव में नहीं आते। कहो, समझ में आता है या नहीं कुछ? भाषा तो सादी परन्तु भाव कठिन, भारी कठिन, भाई!

'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोगना पण कायर को प्रतिकूल।' आहाहा! कायरों का कलेजा काँप उठे। अर..र..! हाय..! हाय..! यह क्या कहते हैं? बापू! तेरे घर की बात है, भाई! आहाहा! तेरा घर बलवन्त है अन्दर। आहाहा! चैतन्य अनन्त बल का धनी अन्दर पड़ा है। आहाहा! यह अनन्त गुण का धनी बलशाली है। ज्ञान का बलवान, श्रद्धा का बलवान, त्रिकाली श्रद्धा हों! शान्ति का—चारित्र का बलवान, आनन्द का बलवान—ऐसा इसका स्वरूप ही है त्रिकाल।

पहले दर्जे का धर्मी जीव अन्तर्मुख देखे, तब उसको शुद्धद्रव्यस्वरूप अनुभव में

आता है। इसमें यह रागादि अवस्तु है; इसलिए वस्तु के अनुभव में नहीं आते। भाषा तो सादी परन्तु वस्तु तो ऐसी है, बापू! आहाहा! शिवलालभाई! यह भगवान की भक्ति से कल्याण होगा, तुम्हारे पिता कहते थे। देव-गुरु-शास्त्र अन्य कहे जाएँ? १० की साल। देव-गुरु-शास्त्र शुद्ध हैं तो अन्य कहे जाएँ? अन्य क्या भिन्न-अन्य ही हैं। तेरे में नहीं। तेरे में नहीं। अन्य चीज़ है। भगवान केवली हों तो यह अन्य चीज़ हैं। वह तेरी चीज़ है? ऐसा कि यह तो शुद्ध हैं। परमात्मा और मुनि जो सच्चे सन्त हैं, आनन्दकन्द के अनुभवी, यह सब शुद्ध है न। तो अन्य कहा जाए? अन्य ही है। पंच परमेष्ठी भी तेरे से अन्य हैं। आहाहा! यह अन्य का आश्रय लेने जाएगा तो तुझे राग होगा। उनकी भक्ति, उनका स्मरण, उनकी पूजा, यह शुभराग होगा। यह शुभराग चैतन्य की अनुभव दृष्टि में यह शुभराग नहीं आता इसलिए राग आत्मा का नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम! पसीना उतर जाए ऐसा है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **नहीं होते।** क्या दिखायी देते हैं? **'परं एकं दृष्टं स्यात्'** [**परं**] **उत्कृष्ट है, ऐसा शुद्ध चैतन्य द्रव्य दृष्टिगोचर होता है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव अपनी दृष्टि को अन्तर में जहाँ झुकाता है। आहाहा! वहाँ अकेला **शुद्ध चैतन्य द्रव्य दृष्टिगोचर होता है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि वर्णादिक और रागादिक विद्यमान दिखलायी पड़ते हैं...** है सही। **तथापि स्वरूप अनुभवने पर स्वरूपमात्र है,...** यह दया, दान के परिणाम यह वस्तु ही नहीं। चैतन्य की चीज़ ही नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-३८

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किञ्चि-
त्तदेव तत्स्यान्न कथं च नान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिम्।।६-३८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अत्र येन यत् निश्चित् निर्वर्त्यते तत् तत् एव स्यात् कथञ्चन न अन्यत्' [अत्र] वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर [येन] मूलकारणरूप वस्तु से [यत्किञ्चित्] जो कुछ कार्य-निष्पत्तिरूप वस्तु का परिणाम [निर्वर्त्यते] पर्यायरूप निपजता है, [तत्] जो निपजा है वह पर्याय [तत् एवस्यात्] निपजता हुआ जिस द्रव्य से निपजा है, वही द्रव्य है [कथञ्चन न अन्यत्] निश्चय से अन्य द्रव्यरूप नहीं हुआ है। वही दृष्टान्त कहते हैं। यथा-'इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्तं' [इह] प्रत्यक्ष है कि [रुक्मेण] चाँदी धातु से [असिकोशं] तलवार की म्यान [निर्वृत्तं] घड़कर मौजूद की सो 'रुक्मं पश्यन्ति कथञ्चन न असिं' [रुक्मं] जो म्यान मौजूद हुई, वह वस्तु तो चाँदी ही है ऐसा [पश्यन्ति] प्रत्यक्षरूप से सर्व लोक देखता है और मानता है [कथञ्चन] चाँदी की तलवार ऐसा कहने में तो कहा जाता है, तथापि [न असिं] चाँदी की तलवार नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि चाँदी की म्यान में तलवार रहती है। इस कारण 'चाँदी की तलवार' ऐसा कहने में आता है[१]। तथापि चाँदी की म्यान है, तलवार लोहे की है, चाँदी की तलवार नहीं है।।६-३८।।

---

१. *भावार्थ इसौ जो रूपा का म्यान माहै खांडों रहे छे इसी कहावत छै, तिहितैं रूपा की खांडी कहतां इसौ कहिजै छै।।मूल पाठ।।*

श्रावण शुक्ल ६, शुक्रवार, दिनांक २२-०७-१९७७
कलश-३८-३९, प्रवचन-४७

वस्तु के स्वरूप का विचार करने पर मूलकारणरूप वस्तु से जो कुछ कार्य-निष्पत्तिरूप... होता है। अर्थात् ? चाँदी की म्यान होती है, उसमें तलवार तो लोहे की है, परन्तु चाँदी से उत्पन्न है म्यान, इस म्यान को देखनेवाले लोग चाँदी को देखते हैं। उसी प्रकार आत्मा भगवान आनन्दस्वरूप के ऊपर यह जो शरीर, वाणी, कर्म, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, गुणस्थान भेद, यह सब पुद्गल से रचे हुए हैं। आहाहा! जैसे म्यान चाँदी की है, वह चाँदी से रची हुई है। लोहे की तलवार तो अन्दर भिन्न है। सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! इसी तरह परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि यह शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी-बक्ष्मी तो धूल बहार कहाँ रह गयी। आहाहा! यह तो शरीर, वाणी, मन, कर्म, दया, दान, व्रत, पुण्य-पाप के भाव, यह सब चाँदी का जैसे म्यान है, वैसे यह पुद्गल का सब ठठारा है। आहाहा! है ? यह वस्तु का स्वरूप विचार करते मूल कारण वस्तु अर्थात् पुद्गल यहाँ लेना है।

इससे **जो कुछ कार्य-निष्पत्तिरूप वस्तु का परिणाम पर्यायरूप निपजता है, जो निपजा है, वह पर्याय निपजता हुआ जिस द्रव्य से निपजा है...** क्या कहते हैं ? आहाहा! यह पुद्गलद्रव्य जो जड़ है, उससे यह सब राग-द्वेष, पुण्य, पाप, शरीर, वाणी रचे हुए हैं। आत्मा तो अन्दर भिन्न वस्तु है। आहाहा! लक्ष्मी और बाहर मकान, महल यह तो धूल तो कहाँ रह गयी। यह तो सीधी मिट्टी है। परन्तु यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि चाँदी की जैसे म्यान है, यह चाँदी से निर्मित है। उसी प्रकार आत्मा में यह राग-द्वेष, पुण्य-पाप, काम-क्रोध, गुणस्थान भेद, शरीर दिखायी देता है, यह सब पुद्गल से रचा हुआ है। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बात, बापू! धर्म चीज़ ऐसी सूक्ष्म है। आहाहा!

देव का भव, स्वर्ग का भव, नारकी का भव, यह सब पुद्गल से-जड़ से रचा हुआ है। यह तो ठीक, परन्तु आत्मा में जो कोई पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम-क्रोध का भाव (होता है)... आहाहा! यह चाँदी से जैसे म्यान निपजी है, वैसे यह सब पुद्गल से निपजे हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह चाँदी की म्यान में लोहे की तलवार भिन्न है, वैसे

यह पुद्गल से उत्पन्न सभी भाव... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव, यह भी पुद्गल से रचे हुए हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। यह म्यान है। ऐई.. ! पुद्गल की म्यान है। जैसे लोहे की तलवार भिन्न है, वैसे आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञान का सागर आत्मा, वह म्यान से भिन्न है। आहाहा!

यह सब है, ऐसा जो ज्ञान की पर्याय में इसकी सत्ता का—होनेपने का ज्ञान होता है। यह है, शरीर, वाणी, मन, पुण्य, पाप, उनका ज्ञान-ज्ञान की पर्याय में होता है। अब यहाँ कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय जो अवस्था यह तो यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. ऐसा जानती है परन्तु यह ज्ञान की पर्याय यह त्रिकाली ज्ञायक भिन्न है, ऐसा जानती नहीं। किन्तु वह ज्ञान की पर्याय यह त्रिकाली ज्ञायक भिन्न है, ऐसा नहीं जानती। चाँदी की म्यान में यह लोहे की तलवार भिन्न है, ऐसा यह नहीं जानते। आहाहा! वैसे तो अनन्त बार अरबपति हुआ। बड़ा राजा (हुआ), नवमी ग्रैवेयक का देव हुआ परन्तु यह सब पुद्गल की रचना, जड़ की है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जैसे म्यान चाँदी की है, ऐसा लोग उसे चाँदी का ही कहते हैं। ऐसे यह शरीर, वाणी, मन.. आहाहा! पुण्य और पाप के भाव यह सब पुद्गल की रची हुई म्यान है। चैतन्य अन्दर भिन्न-पृथक् चीज़ है। समझ में आया? परन्तु लोग यह चाँदी की म्यान को देखते हैं। परन्तु तलवार अन्दर भिन्न है, उसको नहीं देखता। इसी प्रकार अज्ञानी... आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि ये शरीर, वाणी, मन और पुण्य और पाप के भाव, हों! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, विषय, भोग, वासना, कमाना आदि का भाव, यह लक्ष्मी मेरी है—ऐसा जो भाव, यह सब पुद्गल से रचा हुआ है, कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

पूरा तत्त्व क्या है और किसमें यह मानकर बैठा है, यह यहाँ वर्णन करते हैं। आहाहा! भाई! तुम कौन हो? यह म्यान, वह कोई तलवार नहीं। उसी प्रकार यह पुण्य और पाप के भाव, शरीर, वाणी, मन, यह कोई आत्मा नहीं। आहाहा! यह तो सब जड़ पुद्गल की रचना है। भगवान तो अन्दर चैतन्य आनन्द का नाथ (भिन्न विराजता है)। आहाहा! इसने वर्तमान ज्ञान की दशा में यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. यह है—ऐसा इसने जाना। किन्तु

यह जाननेवाले की पर्याय जो उसको जानती है, यह है, इसलिए जानते हैं—ऐसा नहीं। यह पर्याय की ताकत इतनी है। यह पर्याय से यह अस्ति है, ऐसा इसने माना। आहाहा! परन्तु अन्दर में भगवान आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द... वह सच्चिदानन्द अन्यमति कहते हैं, यह नहीं, हों! यह तो सत् शाश्वत चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द—ऐसा जो सत् ज्ञान और आनन्दस्वरूप को यह नहीं देखता। अज्ञानी; महा प्रभु विराजता है, यह स्वयं प्रभु है। सूक्ष्म बात है, भाई! उसको यह नहीं देखता और इसको देखता है और यह सब मेरा है—ऐसा यह मानता है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु क्या हो? अरे..! अनादि का दुःखी प्राणी है। बड़े अरबपति दुःखी। पोपटभाई! सच्ची बात होगी? आहाहा! इनके साले मर गये, नहीं? इसके पास दो अरब चालीस करोड़ रुपया। यह पोपटभाई है न? उनकी लड़कियाँ अपने यहाँ बालब्रह्मचारी है, दो है?

मुमुक्षु : हाँ! जी! दो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो होंगी। अपने को बहुत खबर नहीं। यह लड़कियों के मामा और इनके साले। गोवा में दो अरब चालीस करोड़। २४० करोड़ - धूल।

मुमुक्षु : करोड़ को भी जानना न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसकी गिनती हो गयी। आहाहा! दो सौ करोड़! सौ करोड़ का एक अरब, दो सौ करोड़ का दो अरब धूल में भी नहीं। मर गया। पाँच मिनिट में। स्त्री को, क्या कहते हैं यह? हेमरेज हुआ डेढ़ वर्ष पहले की बात है। ऐसे तो गोवा में रहते हैं। साठ लाख के तो मकान है वहाँ। चालीस लाख का एक बँगला, दस-दस लाख के दो। यह पत्नी को हेमरेज हुआ, इसलिए आया। इसमें एकदम दो-चार दिन हुए। रात्रि डेढ़ बजे उठा। मुझे दुखता है। एक व्यक्ति था। यह अपने को मिला था। मुम्बई रहता है कोई। कान्तिभाई। यह कान्तिभाई खड़े थे। मुझे दुखता है। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर जहाँ आया, वहाँ भाई साहब चार गति में भटकने चला गया। आहाहा! अरे..रे..! क्या हो? इसकी जो चीज़ है, इसको तो जाना नहीं और जो इसकी नहीं उसको जानने में रुक गया।

मुमुक्षु : अपनी करने में रुक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जानने में रुक गया, इसका ज्ञान वहाँ रुक गया। मानने में तो

एक ओर रखो। समझ में आया? बापू! वीतराग परमेश्वर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, वैयावृत्य और यह सब भाव होते हैं, वह सभी राग है और पुद्गल से रचे हुए हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! भगवान आत्मा इनसे भिन्न है। लोग म्यान को ही देखते हैं, तलवार अन्दर भिन्न है, इसको देखते नहीं। ऐसे लोग शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप के भाव देखते हैं। मानो कि यही आत्मा है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! म्यान ही मानो कि तलवार हो। आहाहा! म्यान कहते हैं न? हिन्दी.. हिन्दी। म्यान कहते हैं।

ये कहते हैं, देखो! **निपजता हुआ जिस द्रव्य से निपजा है,...** जो कोई वस्तु पुद्गल है, यह पदार्थ है और यह पुद्गल से जो द्रव्य है, इससे यह सब चीज़ निपजी हुई है। यह शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप के भाव... आहाहा! कठिन लगे, भाई! क्या हो? बापू! मार्ग कोई अलग जाति का है। आहाहा! **वही द्रव्य है...** अर्थात् कहते हैं कि द्रव्य से निपजी हुई चीज़ वही, द्रव्य है; वैसे पुद्गल से निपजा हुआ यह पुण्य, पाप, शरीरादि है, वह पुद्गल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान अन्दर विराजता है, यह तो ज्ञान और आनन्द का पूर, नूर तेज भरा हुआ है। आहाहा! उसको तलवार कहते हैं। यह तो म्यान है। म्यान को लोग तलवार मानते हैं। यह म्यान को तलवार मानते हैं, वैसे यह शरीर राग-द्वेष को आत्मा मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे..! ऐसी बातें! व्रत करना, तपस्या करनी, अपवास करना, यह सब विकल्प है, राग है, यह वस्तु का उत्थान है, वृत्ति का उत्थान है।

मुमुक्षु : यहाँ तो पुद्गल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुद्गल है। यहाँ तो पुद्गल से निपजा है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, नाथ! तेरी चीज़ क्या है, यह तुझे खबर नहीं।

परमेश्वर जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं, प्रभु! तुम कौन हो? क्या यह पुण्य और पाप के भाव होते हैं और शरीर और वाणी, यह तुम हो? और पूर्व के पुण्य के कारण से कोई यह बाहर की धूल मिली अरबों रुपया, लो! यह तुम हो? यह तो अजीव धूल पुद्गल है।

आहाहा! जो इसमें नहीं और जो पुद्गल से रची हुई चीज़ है, उसको यह अपनी मानता है, यह ही बड़ा मिथ्या भ्रम अज्ञान है। आहाहा! यह ही मिथ्यात्व है। मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि, असत्य दृष्टि, पाप दृष्टि है यह। आहाहा! है?

[**कथञ्चन न अन्यत्**] **निश्चय से अन्य द्रव्यरूप नहीं हुआ है।** आहाहा! यह तो इस पुद्गल से हुआ है, वह आत्मारूप नहीं। यह पुद्गल से हुआ, यह पुद्गलरूप ही है। आहाहा! अरे..! ऐसा भारी कठिन काम। यहाँ तो व्रत और तपस्या करो तो तुमको धर्म हो, ऐसी तो प्ररूपणा अभी चलती है। विपरीत प्ररूपणा है, बापू! यह मार्ग तेरा अलग है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! **निश्चय से अन्य द्रव्यरूप नहीं हुआ है। वही दृष्टान्त कहते हैं।** आहाहा!

'इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्तं' [**इह**] **प्रत्यक्ष है कि** [**रुक्मेण**] **चाँदी धातु से तलवार की म्यान...** प्रत्यक्ष क्या है? चाँदी की म्यान प्रत्यक्ष है। ध्यान रखना, हों! इसमें वहाँ उतरेगी बात। **प्रत्यक्ष है कि चाँदी धातु से तलवार की म्यान घड़कर मौजूद की सो 'रुक्मं पश्यन्ति कथञ्चन न असिं'** [**रुक्मं**] **जो म्यान मौजूद हुई वह वस्तु तो चाँदी ही है, ऐसा** [**पश्यन्ति**] **प्रत्यक्षरूप से सर्व लोक देखता है...** चाँदी से निपजा हुई म्यान वह चाँदी है, ऐसा लोग देखते हैं। **वह वस्तु तो चाँदी ही है, ऐसा प्रत्यक्षरूप से सर्व लोक देखता है और मानता है। चाँदी की तलवार, ऐसा कहने में तो कहा जाता है, तथापि चाँदी की तलवार नहीं है।** लोग कहते हैं कि यह म्यान चाँदी की वह तलवार है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा लोग कहते हैं कि यह पुण्य और पाप के भाव दया, दान, आदि गुणस्थान, मार्गणास्थान शरीर, वाणी यह पुद्गल से निपजे हैं और प्रत्यक्ष कहते हैं कि यह पुद्गल के हैं। यह चाँदी की म्यान है चाँदी का है, वैसे यह पुद्गल का है। आत्मा का है, ऐसा लोग कहते हैं। (वह) कहते हैं, यह म्यान का है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा उपदेश किस जात का! वह बेचारा मुश्किल मुश्किल से अभी पाप में से निकलकर, धन्धा के पाप में पूरे चौबीस घण्टे पड़ा (हो), इसमें एकाध-दो घण्टे आये वहाँ व्रत करे, तपस्या करे तो यह कहते हैं कि राग है। लो! यह वृत्ति का उत्थान है, विकल्प है। यह पुद्गल से निपजा हुआ है, तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं इसमें?

प्रत्यक्षरूप से सर्व लोक देखता है और मानता है चाँदी की तलवार, ऐसा कहने में तो कहा जाता है, तथापि चाँदी की तलवार नहीं है। आहाहा! तलवार तो अन्दर लोहे की भिन्न है। आहाहा! जाननेवाला दूसरे को जानता है, कहते हैं, परन्तु जाननेवाले को नहीं जानता, इसलिए यह जानता है, यह जानता है और इसको जानता है इसमें रुक गया है वहाँ। इसको मेरा मानता है, यह तो भिन्न वस्तु है परन्तु जाननेवाला जो पुद्गल की रचनावाली रचना पुण्य-पाप और शरीर, वाणी, आदि को जानते वहाँ रुक गया ज्ञान पर प्रकाशक... आहाहा! यह ज्ञान भी मिथ्यात्व है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि चाँदी की म्यान में तलवार रहती है। इस कारण 'चाँदी की तलवार' ऐसा कहने में आता है। तथापि चाँदी की म्यान है, तलवार लोहे की है, चाँदी की तलवार नहीं है। उसी प्रकार यह शरीर की हिलने-चलने की क्रिया होती है, यह सब पुद्गल की क्रिया है। आहाहा! यह भाषा बोली जाती है, यह भी जड़ की, पुद्गल की भाषा है। और अन्दर पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव, हों! यह भगवान का-परमात्मा का स्मरण करे, यह भाव भी राग है। क्योंकि परद्रव्य ऊपर लक्ष्य है और राग की वृत्ति पुण्य है। आहाहा! यह भगवान आत्मा आनन्द के नाथ से निपजी हुई यह चीज़ नहीं है। प्रभु तो चैतन्य और आनन्द आत्मा है। आहाहा! यह ज्ञानानन्द और आनन्द से निपजी हुई चीज़ नहीं। आहाहा! अब ऐसा सुनना मिलना मुश्किल। इसकी जिन्दगी चली जाए। आहाहा! लो! नवनीतभाई बेचारे चले गए। अभी तो यहाँ नहीं आये थे। बहुत महीने से। आहाहा! बीमार भी थे और सूजन चढ़ते। देह की स्थिति जिस समय पूरी होने की हो, इसमें कोई मीनमेख (नहीं होती)। वहाँ बड़ा लाख-करोड़ों (खर्च करे), डॉक्टर उतारे, लेकिन देह जिस समय छूटने का वह छूटने में कोई फेरफार नहीं होनेवाली। आहाहा! यह सब इनका हजीरा.. हजीरा अर्थात् समझ में आया? बड़े मकान। लाखों-करोड़ों के बड़े मकान-हजीरा पड़ा रहेगा तेरा। यह जड़ का है। आहाहा!

प्रभु! जिसको आत्मा कहते हैं, यह आत्मा तो चैतन्य आनन्द और ज्ञान का सागर है। इसको यह रागवाला, पुण्यवाला कहना, यह म्यान को तलवार मानने जैसा है। समझ में आया? अरे..! ऐसी बात कहाँ है? बापू! तुझे खबर नहीं, यह तो वीतरागमार्ग है।

जिनेश्वर परमेश्वर केवलज्ञानी... आहाहा ! भाई ! वह जिनेश्वर का मार्ग अन्दर में से सुना नहीं। आहाहा !

यह चाँदी की म्यान लोग कहते हैं और यह है ऐसा ही। परन्तु म्यान में रही हुई लोहे की तलवार को तो यह नहीं कहता, नहीं मानता। उसी प्रकार अनादि का अज्ञानी यह शरीर, वाणी, मन की क्रियाएँ होती है, वह मेरी हैं, मैं करता हूँ, मैं आत्मा हूँ, अन्दर तो यह शरीर चला सकता हूँ। हाथ ऐसा कर सकता हूँ, वाणी बोल सकता हूँ, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञानी... आहाहा ! यह क्रियाएँ पुद्गल की है, उसको अपनी मानता है। समझ में आया ? आहाहा ! और अन्दर में शुभ और अशुभभाव होते हैं। यह कमाने के, पैसा प्राप्त करने के और उसकी व्यवस्था करने के यह सब भाव पाप है। और कोई भक्ति के, दया, दान के भाव होते हैं, यह पुण्य है। दोनों भाव पुद्गल से जड़ से रचे हुए हैं, भगवान आत्मा से नहीं, ऐसा कहते हैं। कारण कि परमात्मस्वरूप स्वयं तो ज्ञान और आनन्द का पूर है। आहाहा ! पानी के पूर का प्रवाह निर्मल हो (या) कीचड़वाला हो ? उसी प्रकार चैतन्य भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का सागर है, इसका प्रवाह हो, वह तो वीतरागी आनन्द और ज्ञान की दशा का हो। यह पुण्य और पाप के भाव, यह आत्मा का कार्य नहीं, आत्मा की स्थिति नहीं। यह तो सब पुद्गल की रचना म्यान है। इसको तलवार मान लेना, (यह तो भ्रमणा है)। आहाहा !

अरे..! इसमें शरीर जरा ठीक हो, २५-३०-४० वर्ष की जवान अवस्था (हो), लठ्ठ जैसा शरीर हो, दो-दो, तीन-तीन लड्डू चढ़ा जाता हो और अरबी के पत्तों का... आहाहा ! इसमें इसको सूझ कहाँ पड़ती है कि मैं कौन हूँ ? आहाहा ! भाई ! तुझे खबर नहीं। तुम कहीं श्मशान में उलझ गए हो। श्मशान की राख है, उसमें उलझ गया है। यह सब पुद्गल के ठाठ हैं। आहाहा ! प्रभु ! तुम वहाँ उलझ गए हो। मेरा है, ऐसा मानकर भटककर मर गए हो। आहाहा !

तलवार तो लोहे की है। वैसे भगवान आत्मा तो आनन्द और ज्ञान का सागर है। यह कोई पुण्य और पाप और शरीर की क्रिया, यह आत्मा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अब इसको विशेष दृढ़ करते हैं। ३९।

कलश-३९

(उपजाति)

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः।।७-३९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'हि इदं वर्णादिसामग्र्यं एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदन्तुं' [हि] निश्चय से [इदं] विद्यमान [वर्णादिसामग्र्यं] गुणस्थान, मार्गणास्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं, वे समस्त ही [एकस्य पुद्गलस्य] अकेले पुद्गलद्रव्य का [निर्माणं] कार्य अर्थात् पुद्गलद्रव्य का चित्राम जैसा है ऐसा [विदन्तु] भो जीव! निःसन्देहरूप से जानो। 'ततः इदं पुद्गल एव अस्तु न आत्मा' [ततः] उस कारण से [इदं] शरीरादि सामग्री [पुद्गलाः] जिस पुद्गलद्रव्य से हुई है, वही पुद्गलद्रव्य है। [एव] निश्चय से [अस्तु] वही है। [न आत्मा] आत्मा अजीवद्रव्यरूप नहीं हुआ। 'यतः सः विज्ञानघनः' [यतः] जिस कारण से [सः] जीवद्रव्य [विज्ञानघनः] ज्ञान गुण का समूह है। 'ततः अन्यः' [ततः] उस कारण से [अन्यः] जीवद्रव्य भिन्न है, शरीरादि परद्रव्य भिन्न हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि लक्षण भेद से वस्तु का भेद होता है, इसलिए चैतन्यलक्षण से जीववस्तु भिन्न है, अचेतनलक्षण से शरीरादि भिन्न हैं। यहाँ पर कोई आशंका करता है कि कहने में तो ऐसा ही कहा जाता है कि एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव इत्यादि; देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि; रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि। उत्तर इस प्रकार है कि कहने में तो व्यवहार से ऐसा ही कहा जाता है, निश्चय से ऐसा कहना झूठा है। सो कहते हैं।।७-३९।।

कलश - ३९ पर प्रवचन

अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त आनन्द के रसिया, अतीन्द्रिय आनन्द के भोक्तृत्व लेनेवाले, मुनि तो इनको कहते हैं, बापा! मुनिपना किसको कहते हैं? आहाहा! जिनका आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरा हुआ है, उसका अतीन्द्रिय आनन्द जिनकी दशा

में उछल गया है। जैसे समुद्र के किनारे पानी की बाढ़ आती है! जैसे समुद्र के किनारे पानी की बाढ़ आती है, वैसे धर्मी जीव को, मुनि को... आहाहा! उनकी वर्तमान पर्याय के किनारे अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर से उछलता है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी यह मुनि जगत को जाहिर करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः।।७-३९।।

'हि इदं वर्णादिसामग्र्यं एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदन्तुं' [**हि**] **निश्चय से** [**इदं**] **विद्यमान** [**वर्णादिसामग्र्यं**] रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, गुणस्थान, मार्गणास्थान... आहाहा! चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणास्थान... आहाहा! जाति, गति, ज्ञान के भेद, यह सब विकल्प भेद हैं। आहाहा! यह सब **गुणस्थान, मार्गणास्थान,...** बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! यह **द्रव्यकर्म,...** अर्थात् जड़ मिट्टी अन्दर, **भावकर्म,...** अर्थात् पुण्य-पाप के परिणाम और **नोकर्म...** अर्थात् शरीर और वाणी **इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं,...** सभी को अशुद्ध लिया। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ सागर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द... आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी, यह मृग को खबर नहीं। मृग की नाभि में कस्तूरी है, इसका मृग को भान नहीं है। उसी प्रकार अज्ञानी को अन्दर आत्मा में तो आनन्द की कस्तूरी पड़ी है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। मृगला जैसे जीव को उसकी कस्तूरी की कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। वह **गुणस्थान, मार्गणास्थान, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं, वे समस्त ही अकेले पुद्गलद्रव्य का कार्य...** कल और परसों दोपहर को तो ऐसा आया था कि पुण्य-पाप के जो विकारी परिणाम है, यह पुद्गल और जीव दो मिलकर किये हुए नहीं तथा अकेले पुद्गल के नहीं। अकेले जीव के हैं, ऐसा कहा था। पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध ऐसी विकारी पर्याय जीव का पर्यायबुद्धिवाले का यह कार्य है। समझ में आया? आहाहा!

अब यहाँ तो द्रव्यबुद्धि सिद्ध करना है। अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु वस्तु जो है। आहाहा! यह ज्ञान के नूर का पूर और आनन्द का सागर भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसे आत्मा को यह जो सब रचना है, यह अकेले पुद्गल का कार्य है। वस्तु का स्वभाव यहाँ सिद्ध करना है। उसमें तो इसकी पर्याय सिद्ध करना था। पर्यायदृष्टिवान, इसकी पर्याय में होते विकार का यह कार्य पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! भारी! वीतराग का स्याद्वादमार्ग!

यहाँ कहते हैं कि यह दया, दान, व्रत और जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, यह भाव भी पुद्गल की रचना है। क्योंकि पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का विकारी भाव, इसको रचे, ऐसी कोई आत्मा में शक्ति नहीं। आत्मा का यह स्वभाव कोई नहीं कि वह पुण्य को रचे। आहाहा! पर्याय की अवस्थाबुद्धिवाले को पर्याय की रचना में अज्ञानी रचना मेरी है, ऐसा मानता है। परन्तु वस्तु का स्वभाव त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है—चैतन्यमूर्ति ज्ञायक है। आहाहा! ऐसा आत्मा इसको अभी... यहाँ तो दो बीड़ी पूरी पिये, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। सिगरेट, दो बीड़ी पिये तो भाईसाहब को पाखाना उतरे, ऐसे तो अपलक्षण। आहाहा! अब इसको कहते हैं कि प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। भाई! ऐई.. धर्मचन्दजी!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने वीतरागदेव की ध्वनि में इन्द्र और गणधरों की सभा में यह बात की थी। यह बात सन्त आड़तिया होकर जगत को जाहिर करते हैं। समझ में आया? यहाँ लोग दया, दान और व्रत के परिणाम हों, उनको धर्म माने। यहाँ परमात्मा कहते हैं कि यह सब पुद्गल की रचना (है), यह तेरा कार्य नहीं। आहाहा! क्योंकि जो दृष्टि—सम्यग्दर्शन है, उसका विषय द्रव्यस्वभाव त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु स्वयं वह द्रव्य, सम्यग्दर्शन का विषय है। अर्थात् ये विषय यह द्रव्य है, उसमें कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकार को रचे। आहाहा! इसलिए यह पुद्गल की रचना गिनकर ज्ञाता इसको जाननेवाला है। क्योंकि ज्ञानस्वरूप प्रभु है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... जानना... जानना... जानना... जानना... ऐसे जानने के स्वभाव से भरा हुआ अनादि-अनन्त प्रभु स्वयं है। आहाहा! चिल्लाये न।

यहाँ कहते हैं, यह वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, गुणस्थान, मार्गणास्थान। मार्गणास्थान की

बड़ी व्याख्या है। जाति, गति, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन के भेद सब। आहाहा! यह सब अशुद्ध पर्यायें हैं। आहाहा! मलिनदशा है, कहते हैं। आहाहा! **वे समस्त ही 'एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं'** अकेले पुद्गल अर्थात् धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल नहीं और जीव नहीं। **'एकस्य'** कहा है न? अर्थात् पुण्य-पाप के भाव हों, यह शरीर, वाणी, मन, गुणस्थान आदि वह धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल का भी कार्य नहीं, जीव का भी कार्य नहीं, एक पुद्गल का कार्य है।

मुमुक्षु : सात तत्त्व में (यह) किसमें डालना? अजीव में डालना या...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य-पाप में। पुण्य-पाप तत्त्व यह अजीवतत्त्व है। जीवतत्त्व यह ज्ञायक है। नव तत्त्व में लो तो जीव है, यह तो ज्ञायकतत्त्व है और नव में पुण्य का परिणाम दया, दान, व्रत यह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह पाप है। परन्तु ज्ञायकतत्त्व से तो भिन्न तत्त्व है। आहाहा! अरे..! ऐसी बात कहाँ मिले? भाई! यह तो वीतराग के घर की बातें हैं, भाई! आहाहा! अरे..रे..! यह मनुष्यपना में सत्य बात सुनने मिले नहीं। यह सत्य की दृष्टि, रुचि कब करे? और इसके भव का अन्त कब आये? भाई! आहाहा! समझ में आया? लो! चले गये। नवनीतभाई। प्रमुख थे। वहाँ मुम्बई में भी प्रमुख थे। हो गया। देह स्थिति पूरी हो गयी। आहाहा! ऐसे यह देह की अवधि है, यह पुद्गल की अवधि है। आत्मा को (अवधि) नहीं है। यह ५०, ६०, ७०, ८० वर्ष जो कहलाये यह तो जड़ के कहलाते हैं। आत्मा को अवधि नहीं आत्मा जो अनादि-अनन्त आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसको भारी कठिन पड़े।

यहाँ तो पर्यायबुद्धि छुड़ाकर द्रव्यबुद्धि कराना है। आहाहा! वस्तु जो त्रिकाल आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसकी यहाँ दृष्टि कराना है। वह आत्मा है और उसकी दृष्टि यह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह तो धर्म की अभी तो पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। श्रावक को पाँचवाँ गुणस्थान यह तो फिर कहाँ आगे रहा, बापू! आहाहा! यह तो स्वरूप का भान होकर और मैं अखण्डानन्द प्रभु हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन होने के बाद यह स्वरूप के आनन्द में रमे, अतीन्द्रिय आनन्द में अंश में विशेष रमे, तब इसको पाँचवाँ गुणस्थानवाला श्रावक कहा जाए। यह अतीन्द्रिय आनन्द में खूब रमे। अतीन्द्रिय आनन्द में जमवट जम

जाए, अतीन्द्रिय आनन्द में रेलमछेल अन्दर हो जाए, तब उसको मुनि कहा जाता है। अरे..रे..! बात बात में अन्तर। कहीं एक भी बात का सुनी हुई बात के साथ मेल (नहीं)। ऐई..! पोपटभाई! आहाहा! अरे..रे..! ऐसी बात परमात्मा के घर की...

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि **'एकस्य पुद्गलस्य'** आहाहा! आत्मा का अंश भी इसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। वैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति है न, दूसरे चार? छह द्रव्य हैं न? भगवान ने तो केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। परमेश्वर वीतरागदेव ने जाति से छह द्रव्य देखे हैं, संख्या से अनन्त देखे हैं। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। आहाहा! इसमें कहते हैं कि यह पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति का भाव और काम-क्रोध के भाव और शरीर-वाणी का अस्तित्व, यह सब पुद्गल का कार्य है। आहाहा! अकेला पुद्गल का कार्य है। आत्मा का नहीं। धर्मास्ति आदि चार का नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है। भाव भले ऊँचा हो। भाषा कोई समझ में नहीं आये, ऐसी चीज़ नहीं। ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है। किस रीति से, किस पद्धति से कहा जाता है, इतना तो ख्याल इसको आना चाहिए न? आहाहा!

मुमुक्षु : कौन सी पद्धति?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पद्धति कि जितने पुण्य-पाप के भाव, शरीर, वाणी (है), यह सब पुद्गल की रचना (है), यह पद्धति है। यह इसकी रीति है। रीति की रीत-भात यह है। पुद्गल की भात है यह। पुद्गल की छाप है इसमें, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें। लो। वह तो बेचारा लेकर बैठा। थोड़ा व्रत किये हों, अहिंसा, ब्रह्मचर्य पाले, अपवास-बपवास करे तो धर्म हो जाए, निर्जरा हो जाए। व्रत पालने से संवर हो, अपवास करने से निर्जरा हो। और संवर-निर्जरा हो, इसको मोक्ष हो। सब गप्पागप्प है। आहाहा! ऐसी बात अभी किसके घर की है? यह तो परमेश्वर के घर की है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो वजन यहाँ है। **'एकस्य पुद्गलस्य'** का वजन है। यहाँ त्रिकाली आनन्द द्रव्यस्वभाव जो है, उसकी दृष्टि करना उसने आत्मा को जाना। और यह पुण्य-पाप और इसको जाने, यह आत्मा को जाना नहीं। यह तो पर को जानता है। वहाँ रुक गया है। और

मेरा माने, यह तो मिथ्यादृष्टि तीव्र अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? यह धूल जो है, यह मिल गयी हो दो करोड़, पाँच करोड़ा, पचास करोड़, उसे मेरा माने, यह मूढ़ है, कहते हैं। वह तो जड़ अजीव है। तेरा कहाँ से आ गया? ऐई..! शान्तिभाई!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि जो पुण्य और शुभ-अशुभभाव होते हैं, यह तो राग है, राग अचेतन है। इसमें चैतन्य के स्वभाव का अंश नहीं। इससे वह राग अरूपी होने पर भी अचेतन का प्रकार है। शरीर, वाणी, मन, जड़कर्म यह अचेतन। अब यहाँ यह पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह अचेतन (है, ऐसा कहते हैं)। यह अचेतन है, इसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है और पुण्य-पाप के भाव में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं परन्तु उसमें चैतन्य के प्रकाश के नूर का अभाव है; इसलिए पुण्य-पाप के भाव को अचेतन कहने में आता है।

मुमुक्षु : पुद्गल का...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल का कहो, अचेतन कहो। तीसरा अचेतन कहा था एक बार। तीन प्रकार के अचेतन हैं। यह शरीर, वाणी, मन, पैसा, धूल, बँगला, यह सब अकेला वर्ण, गन्ध, रसवाला अचेतन, जड़। पुण्य और पाप का भाव (होते हैं), इसमें परमाणु का रंग, गन्ध, स्पर्श भले नहीं किन्तु इसमें चैतन्य ज्ञायकस्वरूप भगवान का प्रकाश, चैतन्य का अंश उसमें नहीं; इसलिए वह पुण्य-पाप के भाव को अचेतन कहने में आता है। यहाँ उनको अजीव कहा है। अजीव कहो या अचेतन कहो। आहाहा! तीसरा अचेतन... यह सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन चैतन्यस्वरूप है, यह चैतन्य है और यह सिवाय के जो गुण है, यह चैतन्य का उनमें अभाव है। इस अपेक्षा से आत्मा में जानना-देखना जो स्वभाव है, यह चेतन है और इसके सिवाय जितने गुण हैं सम्यग्दर्शन, आनन्द, चारित्र, वीर्य, बल आत्मबल अन्दर, यह सबमें उपयोग जानना-देखने का इनमें अभाव है। इस अपेक्षा से अचेतन कहा है। अर..र..! परन्तु यह बात यहाँ नहीं। इस बात को यहाँ नहीं लेना है।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप के भाव अचेतन...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अचेतन, इतना लेना है।

मुमुक्षु : रूपी?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसको रूपी कहा जाता है। आहाहा! इसको स्थूल परिणाम कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अभी एक घण्टे में इतनी बातें! जितनी सुनी हो, उससे दूसरी जात। अभी तक सुनी वह सब खोटी? अब सुनो और निर्णय तो करो। तुमने क्या सुना है और क्या माना है? आहाहा! इसकी खबर नहीं? आहाहा!

दुनिया का बड़ा भाग, सम्प्रदाय का भी बड़ा भाग इस रीति से ही प्ररूपणा करता है कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह भाव करो, तुम्हारा कल्याण होगा। यह यहाँ कहते हैं कि यह भाव पुद्गल से रचे हुए हैं, तेरे नहीं। आहाहा! ऐसा है। वीतराग की यह वाणी है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ इनकी वाणी का भाव जो है, यह आड़तिया हो करके सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु का मार्ग यह है। अरे..रे..! यह तो सुनना कठिन पड़े। भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हाँ, **निश्चय से विद्यमान गुणस्थान, मार्गणास्थान,...** पुण्य और पाप है तो सही। है न? **विद्यमान गुणस्थान, मार्गणास्थान,...** गुणस्थान चौदह हैं, मार्गणास्थान चौदह हैं और इसके प्रभेद का पार न मिले, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, देवगति और यह गति सब पुद्गल के कार्य हैं। आहाहा! और पर्याप्तपना, अपर्याप्तपना... समझ में आया? आहाहा! **अकेले पुद्गलद्रव्य का कार्य...** आहाहा! **अर्थात् पुद्गलद्रव्य का चित्राम जैसा है...** आहाहा! भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप में यह सब पुद्गल का चित्राम है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मार्गणा में अशुद्ध हो, यह लेना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब (जो) भेद हैं, यह सब अशुद्धता ही है। लम्बी बात है। यह तो अन्दर आये, तब इसका बोल गति, जाति, चौदह बोल हैं न? यह चौदह बोल के भेद सब हैं, यह सब अशुद्ध में जाते हैं। भगवान तो चैतन्यमूर्ति अभेद अखण्डानन्द अन्दर है। इसको यहाँ आत्मा कहने में आता है। आहाहा! वहाँ तो संयमलब्धिस्थान को भी पुद्गल का कहा है। ठीक! भेद है न, भेद? और इसके ऊपर दृष्टि देते विकल्प / राग ही होता है।

मुमुक्षु : सराग संयम अथवा वीतराग संयम...?

पूज्य गुरुदेवश्री : संयम, सराग संयम नहीं होता। संयम तो स्वरूप की आनन्द की

दशा (होती है), इसका नाम संयम है। सराग-राग तो पुद्गल की दशा है। आहाहा! ऐसी बहुत अच्छी बात!

सम्यग्दर्शन है, यह वीतरागी पर्याय है। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही, जिनस्वरूप ही है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' भगवान वीतराग के प्रवचन का यह मर्म है कि यह आत्मा है, यह जिन है, जिनस्वरूप से है। वीतरागमूर्ति आत्मा है। अभी, हों..! इसमें जितने यह परिणाम उठते हैं, वह सब पुद्गल का चित्रांकन है। यह दीवार के ऊपर चित्रांकन नहीं करते? ऐसे भगवान चैतन्य दीवार आनन्द का नाथ प्रभु..! आहाहा! इसकी दशा में पुण्य और पाप आदि के भाव, गुणस्थान, मार्गणा के भेदभाव सब पुद्गल का चित्रांकन है। यह चैतन्य का स्वरूप नहीं। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा! सुनना कठिन पड़े और पूरी जिन्दगी ५०-५० वर्ष से माना हो। आहाहा! दया पालना यह धर्म है, वैयावृत्य करना यह धर्म है, भगवान की पूजा करना यह धर्म है। अब इसको यह गले उतरना (कठिन लगे)। ज्ञानी को भी आत्मज्ञान होने पर भी भक्ति का और पूजा का ऐसा भाव आये तो सही, परन्तु इस भाव को हेय जानते हैं, दुःखरूप जानते हैं, अजीवरूप उनको जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : जीव में अजीव किस रीति से घुस गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : घुस कहाँ गया है? यह पर्याय में बनाव हुआ है। अन्दर में घुस नहीं गया। यह चाँदी की म्यान कोई लोहे की तलवार में नहीं घुस गयी। यह तो भिन्न चीज़ है। ऐसी बात वह कैसी? बेचारा अभी पाप से निवृत्त हुआ नहीं। संसार में कमाना, भोग, विषय, आबरू, कीर्ति, कमाना, पैसा का ब्याज का उपजाना... आहाहा! अकेले पाप का धन्धा। ऐई! सुरेन्द्रजी! इसमें से निवृत्त न हो बेचारा। तब यहाँ कुछ दया, दान और व्रत का परिणाम करे तो कहें, यह तो पुण्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों स्थान पर दण्डित हो, यहाँ भी दण्डित हो और वहाँ भी दण्डित हो, इसमें छूटना कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे भिन्न भगवान है, इसके सामने देखते यह छूट जाता है, वहाँ इसको लाभ है। आहाहा! ऐसी बात अभी। क्या हो? भाई! माननेवाले भले कम हों।

सत् को किसी संख्या की जरूरत नहीं कि बहुत माननेवाले, इसलिए सच्चा। आहाहा!

परमेश्वर जिनेश्वरदेव केवलज्ञान से परमात्मा ने यह वर्णन किया। प्रभु! तेरे में जितना पुद्गल का चित्रांकन है, यह सब तेरा नहीं। आहाहा! तुम तो ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. समझने का पिण्ड, यह समझने के पिण्ड में यह चित्रांकन पर्याय में यह तो पुद्गल का चित्रांकन है। आहाहा! यह हेय है। यह अपना है, ऐसा मानने जैसा नहीं। आहाहा! पकड़ना कठिन। बेचारे को पूरे दिन पाप करने से निवृत्ति न मिले, इसमें यदि दो-पाँच करोड़ पैसा कुछ अधिक हो गया... मर गया इसमें ही इसमें, उलझ गया। आहाहा!

यह चालीस करोड़, कहा नहीं था? अपने सेठ आये थे न अभी? दिल्ली-दिल्ली शाहूजी शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़। अभी आये थे न? व्याख्यान सुनकर गए। मैंने तो इनको एकान्त में कहा फतेपुर आये थे, फतेपुर। चालीस करोड़। पाँच-सात करोड़ की आमदनी तो उपजाते होंगे। फतेपुर आये थे। मैं अकेला था और आये और बैठे। ऐसे पाट को हाथ देकर के, हमारे यहाँ तो पैसावाला हो या धूलवाला हो हमें क्या? ऐई.. सेठ! यह बहुत पैसा होने के कारण वहाँ तुमको मुँह आगे सभा में बैठाने को ले जाते हैं। इस पाप में तुम्हारा समय चला जाता है। सभा भरे वहाँ मुँह आगे (मंच पर) बैठाये। क्योंकि पाँच-दस हजार, पच्चीस हजार-पचास लाख-दो लाख देंगे। जहाँ हो वहाँ बढ़ाई करे। फलानी सभा में महत्ता करो इनकी, प्रमुख ठहराओ। एकान्त में अकेले में बैठे। (तो कहा) इस बड़प्पन में और बड़प्पन में प्रभु! समय चला जाता है तुम्हारा। आहाहा! अरे..रे..! वहाँ तो बेचारा नरम, हों! सुने। हमें कहाँ इसके पास से पैसा लेना था जो उसको अच्छा लगे न लगे। ऐसा कहा, सच्ची बात महाराज! भाई! समय जाता है। ऐसा कीमती समय आत्मा को जानने का समय है। इसमें (बाहर की) बढ़ाई के काल में जहाँ-तहाँ जाते हो, वहाँ सभा तो बड़ी-बड़ी भरे और सेठ को बैठाये, इसलिए सभा की शोभा कहलाये। सभा के नायक यह थे। आहाहा! अरे..! प्रभु! तुम तुम्हारे नायक हो, इसकी तो खबर नहीं। आहाहा! समय चला जाता है ऐसे के ऐसे। लोगों को इसकी कीमत नहीं।

यहाँ प्रभु कहते हैं कि यह **अर्थात् पुद्गलद्रव्य का चित्राम जैसा है, भो जीव! निःसन्देहरूप से जानो।** भाषा है? [**विदन्तु**] ऐसा है न? आहाहा! भगवान परमात्मा की

पुकार है। हे जीवो! जितना पुण्य और पाप के भाव शरीर, वाणी, मन सब यह पुद्गल का चित्रांकन है, (ऐसा) नि:सनदेहपने जानो। मेरा है और इसका होकर के दो हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! दृष्टि पूरी बदलनी पड़ेगी। आहाहा!

देखनेवाले की पर्याय में जानने में आता है, वह जाननेवाले को जानने जा। आहाहा! जिसकी पर्याय में यह है, ऐसा जानने में आता है। यह पर्याय जानती है वह पर्याय का जाननेवाला जो त्रिकाल है, उसको देख, तो तुम्हे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! श्वास निकल जाए ऐसा है। **भो जीव! नि:सन्देहरूप से जानो।** तुम नि:सन्देह जानो कि पुण्य-पाप के भाव और शरीर, वाणी सब पुद्गल की रचना है। इसमें सन्देह को स्थान नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ८, रविवार, दिनांक २४-०७-१९७७
कलश-३९-४०, प्रवचन-४८

कलश टीका, अजीव अधिकार। ३९ कलश है। फिर से लेते हैं। सूक्ष्म विषय है, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। उसको समझना, यह तो महापुरुषार्थ है। अनन्त काल से यह समझा नहीं। यह यहाँ कहते हैं।

खण्डान्वय सहित अर्थ–'हि इदं वर्णादिसामग्र्यं एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदन्तुं' [**हि**] **निश्चय से** [**इदं**] **विद्यमान...** जो हैं गुणस्थान के भेद। आहाहा! गुणस्थान के भेद, मार्गणा के भेद। बहुत सूक्ष्म बात है। यह सब भेद हैं। यह सब पुद्गल की रचना है, आत्मा नहीं। आहाहा! यह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शरीर, वाणी, मन, यह तो सब जड़ हैं, अजीव हैं परन्तु आत्मा में होते पुण्य और पाप के भाव... आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह भाव पाप है, यह पुद्गल से रचे हुए हैं। आहाहा! यह आत्मा नहीं। इसी तरह अन्दर में जो दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव के शुभभाव होते हैं, यह शुभ पुण्य है। यह पुद्गल जड़ से रचा हुआ है, आत्मा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत।

वीतराग का मार्ग, परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, भाई! तुम कौन हो? कैसे हो? कहाँ हो? इसकी तुझे दृष्टि नहीं। और यह सब जो पुण्य और पाप के भेद जो दिखायी देते हैं और इसके फलरूप से यह सब बाहर में धूल आदि दिखती हैं, उसे मेरी मानी, यह मिथ्यात्व है। यह अत्यन्त असत्य और पाखण्ड झूठी दृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत।

द्रव्यकर्म,... जड़कर्म। आठ कर्म हैं न मिट्टी? यह अजीव जड़ है। **भावकर्म,...** यह पुण्य-पाप के भाव... आहाहा! शुभ-अशुभभाव, यह भी पुद्गल की रचना है, प्रभु! आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा है। उसकी रचना में तो आनन्द और ज्ञान की रचना होती है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की रचना, वह आत्मा का कार्य है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। यहाँ तो दया, व्रत और भक्ति और तप करना, यह धर्म है—ऐसा पूरी दुनिया मानती है। यहाँ परमात्मा

कहते हैं कि यह सब भाव... है ? भावकर्म (है)। पुण्य और पाप के भाव असंख्य प्रकार के यह सब पुद्गल—अजीव है। आहाहा! यह जीव नहीं। क्योंकि जीव हो तो इसमें से निकल नहीं जाए और निकल जाता है, इसलिए यह जीव नहीं। आहाहा! **नोकर्म...** शरीर, वाणी, यह सब जड़ पुद्गल परमाणु अजीव से निपजता है।

इत्यादि जितनी अशुद्ध पर्यायें हैं, वे समस्त ही अकेले पुद्गलद्रव्य का कार्य... आहाहा! शशीभाई यह वीतराग परमात्मा जिनेश्वरदेव गणधर और इन्द्रों के बीच परमात्मा ऐसा फरमाते थे। वह यह बात है। तेरे में जो कुछ दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, व्रत का, अपवास का शुभभाव होता है, यह सब शुभराग है, यह आत्मा नहीं, इसको तो यहाँ परमात्मा अजीव कहते हैं। अरे..! और अजीव ऐसे पुद्गल जो जड़कर्म हैं, उसके संग उत्पन्न हुए है, यह पुद्गल है। प्रभु चैतन्यस्वरूप जो ज्ञानघन है, उसके संग से यह उत्पन्न नहीं हुआ। आहाहा! भगवान अन्दर वस्तु जिसको परमेश्वर जिनेश्वर जिसको जीव कहते हैं, यह कौनसा ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अकेले पुद्गलद्रव्य का कार्य अर्थात् पुद्गलद्रव्य का चित्राम जैसा है... आहाहा! जैसे दीवार के ऊपर चित्रांकन करते हैं, यह कोई दीवार नहीं। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज चैतन्यघन आनन्दकन्द है। उसमें यह सब पुद्गल की चित्रांकन दशा है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। क्योंकि सम्प्रदाय में यह बात चलती नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के कथन और उनके आगम कोई अलग जाति के हैं। यह परमेश्वर ऐसा कहते हैं, प्रभु! जैसे दीवार में चित्रांकन है, यह दीवार नहीं। वैसे ही भगवान आत्मा ज्ञान की दीवार ज्ञानस्वरूप चैतन्यघन है। उसमें यह सब रचना चित्रांकन, यह सब जड़ के हैं। आहाहा! है ? **अकेले पुद्गलद्रव्य का कार्य...** है। आहाहा!

दोपहर को फिर ऐसा कहा जाता है कि पुण्य और पाप के भाव जीव का अकेला कर्तव्य है। जीव का पर्याय में। कर्म के कारण से नहीं। यह तो इसकी पर्याय में इससे, दशा में होता है, इतना सिद्ध करना है। किन्तु जब वस्तु को सिद्ध करना है, चैतन्य भगवान आत्मा यह आनन्दकन्द प्रभु है। यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! इसके

ऊपर यह सब पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, तप के भाव, यह सब जड़ की—पुद्गल की रचना है, कहते हैं। समझ में आया? है? वहाँ तक तो आया है अपने।

अर्थात् पुद्गलद्रव्य का चित्राम जैसा है, ऐसा भो जीव!... [**विदन्तु**] है न? **भो जीव! निःसन्देहरूप से जानो।** निःसन्देहरूप से जानो। आहाहा! यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम है, यह तो जीव में हैं न? है इसकी पर्याय में। परन्तु इसकी वस्तु के स्वभाव में नहीं, इसलिए पुद्गल का चित्रांकन कहा है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अन्दर देखो! कहेंगे। **'ततः इदं पुद्गल एव अस्तु न आत्मा'** आहाहा! **उस कारण से शरीरादि सामग्री...** पुण्य-पाप के भाव, गुणस्थान, मार्गणा के भाव **जिस पुद्गलद्रव्य से हुई है, वही पुद्गलद्रव्य है।** आहाहा! **निश्चय से वही है।** [**एव**] है न? [**एव**] शब्द है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो जड़ है यह। आठ कर्म है, यह जड़ है, अजीव है। वैसे ही पुण्य और पाप का भाव परन्तु चैतन्य का अभाव है; इसलिए वह अजीव और जड़ है। आहाहा! समझ में आया?

जिस पुद्गलद्रव्य से हुई है, वही पुद्गलद्रव्य है। निश्चय से वही है। आत्मा अजीवद्रव्यरूप नहीं हुआ। आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि भगवान अन्दर आत्मा स्वरूप जिसको चैतन्यस्वरूप आत्मा भगवान सर्वज्ञ कहते हैं, यह आत्मा ऐसे पुण्य-पाप के भावरूप कभी हुआ नहीं। आहाहा! यह गुणस्थान और मार्गणास्थान के भेदरूप कभी नहीं हुआ। आहाहा! छठवीं गाथा में आ गया है यह। शुभ-अशुभभाव अचेतन है। चेतन तो ज्ञान का पुंज, ज्ञान का सागर है। यह ज्ञानसागर वस्तु जो शुभाशुभभावरूप हो तो अजीव हो जाए। है न? आहाहा! जड़ हो जाए, ऐसा कहा। अर..र..! ऐसी बातें अब। पञ्च महाव्रत का भाव, कहते हैं कि यह तो पुद्गल का परिणाम; राग है, यह तो जड़ का कार्य है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े, बापू! प्रभु का मार्ग अलग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा अजीवद्रव्यरूप नहीं हुआ। क्या कहा यह? भगवान आत्मा यह पुण्य-पाप के भाव और गुणस्थान के भेद और शरीर, वाणी और कर्मरूप से कभी हुआ ही नहीं। अरे..! ऐसी बातें। दूसरा सुन-सुनकर पचास वर्ष-साठ वर्ष निकाले हों, इसमें यह बात

आये। बापू! प्रभु का मार्ग अलग है भाई! आहाहा! परमेश्वर वीतराग जिनवरदेव, यह वीतराग स्वरूप से भरा हुआ भगवान आत्मा है। इससे (भिन्न) यह सब रचना है, यह पुद्गल की है, आत्मा की नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर और वाणी तो जड़ है, यह तो ठीक, कहते हैं अन्दर ज्ञानावरणीय आठ कर्म हैं यह भी जड़ हैं, अजीव हैं, मिट्टी, धूल है। ये तो अजीव ठीक। यह पुद्गल की रचना, ये तो ठीक। परन्तु यह पुण्य-पाप के भाव यह भी पुद्गल की रचना! जिसको दुनिया धर्म माने। दया पालना, यह धर्म है; अहिंसा, सत्य, दत्त, व्रत पाला यह धर्म है। आहाहा! इसको यहाँ परमात्मा कहते हैं, प्रभु! तुम सुनो तो सही। तुम्हारी चीज़ उसरूप हो जाए तो अजीव हो जाए। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। है? आहाहा!

ये **अजीवद्रव्यरूप नहीं हुआ।** है कौन तब? **'यतः सः विज्ञानघनः' जिस कारण से जीवद्रव्य ज्ञानगुण का समूह है।** ज्ञान का पुंज, ज्ञान की गाँठ है। आहाहा! अकेला समझण का पुंज है, इसमें से निकले तो ज्ञान और आनन्द निकले। परन्तु यह पुण्य-पाप के भाव इसमें से नहीं निकले, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अब। हो कौन तब? है कौन यह आत्मा? प्रभु! आप किसको आत्मा कहते हो? कि **'सः विज्ञानघनः'** यह ज्ञानगुण का घन पुंज है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे शकरकन्द है, उसकी छाल न देखो तो यह शक्कर अर्थात् मिठास का पिण्ड है। शक्कर-शक्कर शक्करिया कहते हैं न? मूल तो यह (नाम) शक्कर शब्द से पड़ा है। इसकी लाल छाल न देखो तो यह शक्कर की मिठास का पिण्ड है। इसको शकरकन्द कहते हैं।

ऐसे भगवान आत्मा यह पुण्य और पाप के विकल्प हैं, यह लाल छाल है, पर है, यह आत्मा नहीं। आत्मा इसके पीछे अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। जैसे वह शक्करकन्द है... आहाहा! ऐसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड और ज्ञान का घन है। कहो, नटुभाई! वकीलात में ऐसा नहीं आये कुछ। वहाँ सब गप्प आये। आहाहा!

भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ 'सीमन्धर' भगवान तीर्थंकरपने महाविदेह में विराजते हैं। उनका यह हुकम—आज्ञा है। उनके पास से आयी हुई यह बात है। समझ में आया?

संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले। कुन्दकुन्द आचार्य नग्न दिगम्बर (सन्त) वहाँ गए थे। आठ दिन वहाँ रहे। वहाँ से आकर के यह (कहते हैं), भगवान ऐसा कहते हैं। यह तो अनुभवी थे, सन्त थे, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन करनेवाले प्रचुर स्वसंवेदी मुनि थे, मुनि इनको कहते हैं। मुनि कोई यह क्रिया, नग्न होकर कपड़ा बदले, पञ्च महाव्रत के परिणाम (करे), इसलिए नहीं। यह वस्तु दूसरी।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! यह तो विज्ञानघन है। आहाहा! **उस कारण से जीवद्रव्य भिन्न है,...** क्या कहा? यह तो ज्ञानगुण का पुंज है, आनन्द का कन्द है। उससे जीवद्रव्य राग और पुण्य के भाव से भिन्न है। अर..र..! ऐसी बातें। अरे..! बापू! धर्म अपूर्व अनन्त काल में हुआ नहीं। आहाहा! अनन्त-अनन्त भव बीते। अरबपति अनन्त बार हुआ, भिखारी अनन्त बार हुआ, स्वर्ग का देव अनन्त बार (हुआ), नवमीं ग्रैवेयक का देव जिसकी ३१ सागर की स्थिति, यह नवमीं ग्रैवेयक है। पुरुष के (आकार) प्रमाण में यह लोक है यह। यह लोक के ग्रीवा के स्थान पर नवग्रैवेयक है। भगवान ने देखा है। यह ग्रैवेयक में अनन्त बार उपजा है। आहाहा! ऐसा कोई दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत का, तप का, भाव किया हो, यह पुण्य है। इससे स्वर्ग में जाए, किन्तु इसके भव का अभाव नहीं होता इसको। आहाहा! आहाहा!

सिर पर जहाँ भव का... आहाहा! देखा! अनन्त भव पड़ा है। मिथ्यात्व है, वहाँ अनन्त भव पड़े हैं। यह राग और पुण्य के भाव मेरे, ऐसी जो मान्यता, यह मिथ्यात्व है, उसमें अनन्त भव पड़े हैं। भाई! इसको खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह सब। वनस्पति, नीम, यह हरित। एक-एक नीम के एक-एक पत्ते में असंख्य जीव हैं। एक-एक पत्ते पर असंख्य जीव है। असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। यह नीम और यह सब हरित और यह... बापू! इसमें भी तुम अनन्त बार अवतरित हुए हो, भाई! तुझे खबर नहीं। यह किस कारण से? विज्ञानघन चैतन्य है, उसकी दृष्टि के अभाव से। आहाहा! अर्थात् कि सत्य दृष्टि—सत्य वस्तु विज्ञानघन भगवान की दृष्टि, वह सत्यदृष्टि है। और यह पुण्य-पाप के भाव की दृष्टि, 'यह मेरे', वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? इसमें फिर बाहर का बँगला और दो-पाँच करोड़ का हजीरा यह तो मिट्टी,

जगत की जड़ चीज़ है। यह तेरी कहाँ से आ गयी ? यह मेरा पैसा, मेरा बँगला (इसमें) जीव को मार डाला। मार डाला अर्थात् ? कि विज्ञानघन आत्मा है, उसको उस रीति से नहीं मानकर, यह सब मेरा है, राग मेरा है, यह मेरा—ऐसा करके, इसका विज्ञानघन स्वरूप है, उसका इसने अनादर किया। यह जीव की स्वयं की इसने हिंसा की। समझ में आया ? ऐसा वीतराग परमेश्वर का मार्ग है, भाई ! आहाहा ! अभी तो बिखर गया। ऐसा बिखरा है न। कहीं पता न मिले। आहाहा ! अरे..रे.. ! ऐसे के ऐसे जीवन चला जाता है।

परमात्मा ऐसा कहते हैं, **उस कारण से जीवद्रव्य भिन्न है,...** भगवान जिसको आत्मा कहते हैं जीवद्रव्य-वस्तु, यह सब पुण्य और पाप के विकल्प राग और गुणस्थान के भेद, मार्गणा का भेद, शरीर, कर्म, उनसे यह चीज़ अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा ! **शरीरादि परद्रव्य भिन्न हैं।** आदि अर्थात् सब लेना। शुभ-अशुभभाव... आहाहा ! पर की हिंसा नहीं करने का, दया पालने का भाव, प्रभु ! यह राग है, भाई ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! यह वृत्ति का उत्थान है। विज्ञानधन में वृत्ति उठती है कि इसको यह न हो। यह वृत्ति है, राग है। यह राग तेरे स्वरूप में नहीं। आहाहा ! तुम उस रागरूप से नहीं। आहाहा ! तुम तो उसको जाननेवाले विज्ञानघन स्वरूप हो। ऐसी दृष्टि जहाँ तक नहीं, वहाँ तक मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकता रहता है। नरक और निगोद.. आहाहा ! देव और स्वर्ग, यह सब दुःख के भव हैं। स्वर्ग में भी राग का दुःख है। आहाहा !

भावार्थ इस प्रकार है कि लक्षण भेद से वस्तु का भेद होता है,... क्या कहते हैं यह ? कि वस्तु अलग-अलग कैसे गिनी जाए ? कि इसके लक्षण भिन्न-भिन्न (हैं), इसलिए वस्तु भिन्न है। समझ में आया ? जिसका लक्षण अलग, उसकी वस्तु अलग, यह कहते हैं, देखो ! **लक्षण भेद से वस्तु का भेद होता है, इसलिए चैतन्यलक्षण से जीववस्तु...** जानन स्वभाव लक्षण से आत्मा है। आहाहा ! जानने के ज्ञान लक्षण से वह आत्मा है। आहाहा ! **अचेतनलक्षण से शरीरादि भिन्न हैं।** आहाहा ! शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप के भाव, यह सब अचेतन लक्षण से जड़ हैं। आहाहा ! कहो, जयन्तीभाई ! यह रविवार का दिन है। आहाहा !

भाई ! तुम अन्दर कौन हो ? तुम तो ज्ञान की गाँठ हो, ज्ञान के पुंज हो। गाँठ में से

नमूना निकले तो भी रुई का निकले न? या कोयले का निकले? ऐसे भगवान आत्मा विज्ञानघन है। इसमें से पुण्य और पाप के भाव निकले, यह तो कोयला है। इसमें से यह नहीं निकले। आहाहा! कहो, शशिभाई! ऐसा है।

यह शुभ-अशुभभाव जिसको दुनिया शुभभाव को धर्म मानती है। आहाहा! परमात्मा जिनेश्वर देव उसको पुद्गल कहते हैं। आहाहा! **अचेतनलक्षण से शरीरादि भिन्न हैं।** यह शुभ-अशुभभाव का अचेतन लक्षण है। क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी किरण राग में नहीं आती। आहाहा! यह राग की क्रिया में चैतन्य की कोई पर्याय नहीं आती। आहाहा! इससे यह पुण्य और पाप के भाव को परमात्मा अचेतन कहकर, वह चैतन्य से भिन्न है—ऐसा बताते हैं। आहाहा! अभी दृष्टि-सम्यग्दर्शन क्या कहलाये और सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? इसकी खबर नहीं हो और इसको धर्म हो जाए (—ऐसा नहीं होता)। आहाहा!

परमात्मा जिनेश्वरदेव तो ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन, सच्ची प्रतीति, सच्चा दर्शन। अर्थात्? कि जिसके विषय में ज्ञानघन आत्मा पूर्णानन्द सत् है, उसकी प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अभी तो चौथे गुणस्थान की यह बात (चलती है)। श्रावक-बाबक तो कहाँ रहा। वर्तमान में श्रावक तो सभी समझने जैसा है। आहाहा! बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि सत्यदर्शन, सम्यग्दर्शन किसको देखता है? किसको जानता है? किसको मानता है? आहाहा! कि यह तो विज्ञानघन प्रभु आत्मा है, उसको सम्यग्दर्शन जानता है, मानता है, और देखता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, वह भेद के राग के भाव को अपना नहीं मानता। आहाहा! है? **अचेतनलक्षण से शरीरादि...** आदि शब्द में सब आ गया। पुण्य और पाप के (भाव), गुणस्थान आदि मार्गणा के भेद... आहाहा! यह ऊपर आ गया है। पहले दर्जे जैसी बातें लगे ऐसी हैं। यह तो दुनिया की तो खबर है। यहाँ क्या खबर नहीं है? आहाहा! बापू! प्रभु का मार्ग, जैनधर्म का पन्थ कोई अलग जाती है। आहाहा! यह राग है, यह जैनधर्म है? यह आत्मा है? आहाहा!

ज्ञानी को भी, धर्मी को भी आत्मा का दर्शन हुआ और आत्मा का भान हुआ हो,

इसको ऐसा शुभभाव आये, परन्तु मानते हैं कि अजीव है, हेय है; मुझे लाभदायक नहीं। आहाहा! ऐसा कहाँ से आया यह ? ऐसा जैनधर्म होगा ? भाई! अभी तक तो हमने (ऐसा सुना है कि) छह काय की दया पालना, (वह धर्म)। (तो कहते हैं) छह काय में तुम हो या नहीं ? तुम्हारी दया है या नहीं ? तुम्हारी दया इसको कहते हैं कि इसको पुण्य और पापवाला न मानकर विज्ञानघन मानने जैसा जीवत्व इसका है, त्रिकाल टिकता तत्त्व जो है, उसको उस रीति से मानना इसका नाम जीवत्व ने जीवत्व को जीवरूप से माना। आहाहा! इसको रागवाले को.. यह कहेंगे अन्दर। देव जीव, मनुष्य जीव, रागी जीव, और द्वेषी जीव को... आगे आयेगा। ४०वें कलश में आयेगा। ऐसा जो मानना, यह आतमा का हनन कर दिया है। भारी काम, भाई ऐसा।

यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव की सीधी वाणी है। दिव्यध्वनि। गणधर और इन्द्रों की बीच में महाविदेह में अभी परमात्मा फरमाते हैं। सीमन्धर प्रभु का करोड़ वर्ष की आयु है, पाँच सौ धुनष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचे हैं। महाविदेहक्षेत्र में अभी मौजूद हैं। बीसवें (तीर्थंकर) मुनिसुव्रत भगवान जब यहाँ थे, तब उन्होंने दीक्षा ली थी और तुरन्त केवल (ज्ञान) हुआ है। अभी तो अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। यहाँ आती हुई चौबीसी में जब तेरहवें तीर्थंकर होंगे तब प्रभु मोक्ष जाएँगे। तब देह छूटकर के सिद्ध होंगे। अभी अरिहन्त पद में हैं। फिर देह छूट जाएगी, तब सिद्ध होंगे। अशरीरी णमो सिद्धाणं। आहाहा! महावीर भगवान आदि अभी सिद्धपद में हैं – णमो सिद्धाणं में हैं और सीमन्धर भगवान है, यह णमो अरिहंताणं में हैं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी सामायिक के समय आज्ञा नहीं माँगते भगवान के आगे। इसकी खबर कहाँ है कि सामायिक किसको कहना ?

मुमुक्षु : सीमन्धर भगवान की आज्ञा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीमन्धर की आज्ञा तो यह है कि तुझे जो विकल्प उठा है, यह राग है, यह कोई तुम नहीं। आहाहा! विज्ञानघन भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव होकर स्वरूप में स्थिर होकर वीतरागता की दशा प्रगट होना इसको सामायिक कहते हैं। इसके स्थान पर यहाँ दो घड़ी, दो घड़ी णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... किया और हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं। सुनो, बापू! एक समय की सामायिक अनन्त भव के अन्त को

लाती है। अरे..! यह क्या चीज़ होगी? बापू! यह कोई यहाँ बिना मतलब की प्रशंसा नहीं करना है यहाँ। आहाहा! सुरेन्द्रजी! यहाँ वानियावाड नहीं कोई। यह तो मार्ग यह है।

वह कहता था न कि आप थोड़ा ढ़ीला करो। हम थोड़ा ढ़ीला करते हैं, आप थोड़ा ढ़ीला करो, परन्तु क्या ढ़ीला करना? सत्य को थोड़ा असत्य करना? हम ऐसा कि इस रीति से दया, दान, व्रत में धर्म मानते हैं तो तुम कुछ कथंचित धर्म मानो और हम इसको कथंचित् अधर्म मानें और कथंचित् धर्म माने। अपने समन्वय करें।

अरे..! भगवान! बापू! भाई! ऐसा मनुष्यपना मिला है। इसमें वीतराग के वाड़े में जन्म हुआ। इसमें यह बात इसको समझने में न आये तो वह की वह दशा है। आहाहा! ढोर को मनुष्यपना नहीं मिला। जैसे वह हार जानेवाला है। यह भी मनुष्यपना मिला लेकिन यह आत्मा विज्ञानघन है, इसमें पुण्य-पाप के भाव का अभाव है। क्योंकि वे अजीव हैं। जीव में अभाव है और इस अजीव में जीव का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? कहो, शिवलालभाई! ऐसी बात कहाँ (सुनने मिले)? मुश्किल बहुत। यह अलग होना पड़ा, यह इस कारण से है। कारण कि यह सच्ची बात वहाँ चलेगी नहीं और लोग चिल्लायेंगे। यहाँ कोई कहे ऐसा नहीं, यहाँ तो मार्ग यह है। मानना हो, यह मानो; नहीं मानना हो तो तुम्हारी मर्जी। समझ में आया?

अचेतनलक्षण से... पुण्य-पाप के भाव अचेतन लक्षण से आत्मा से भिन्न है और अचेतनलक्षण चैतन्य लक्षण से आत्मा से भिन्न है। जानने के लक्षण से जानने में आता है। अचेतन अजानपना-अचेतन लक्षण से जानने में आता है। ऐसा दोनों के लक्षण अत्यन्त भिन्न हैं। लॉजिक से-युक्ति से तो यह बात चलती है। यह बही इसको आग्रह पूर्व का हो और उसको पकड़ के रखा हो, उसमें से खिसकना.. हाय.. हाय.. समझ में आया?

कोई आशंका करता है कि कहने में तो ऐसा ही कहा जाता है कि एकेन्द्रिय जीव,... लो। यह पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति। आता है न? इच्छामि पडिकमणा में नहीं आता? एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, वाया, व... कहा जाता है तो एकेन्द्रिय जीव। यह नीम के एकेन्द्रिय जीव। पृथ्वी-पृथ्वी। खदान में से पृथ्वी निकलती है। यह पृथ्वी में एक कण में असंख्य जीव हैं। यह पानी की एक बूँद हो इसमें

असंख्य पानी के एकेन्द्रिय जीव है। आहाहा! कहते हैं, ऐसा तो कहते हो न तुम? **एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव**... यह इल्ली, कीड़ा (लट) यह दो इन्द्रिय जीव, **देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि;**... तुम कहते हो। और फिर बाद में ना करते हो कि यह जीव नहीं। **रागी जीव,**... लो! आता है न? ऐसा तो आप कहते हो रागी जीव, पुण्यवाला जीव, पुण्य को करनेवाला जीव। **द्वेषी जीव इत्यादि।** जीव को आप पहचान कराते हो।

उत्तर इस प्रकार है कि कहने में तो व्यवहार से ऐसा ही कहा जाता है,... आहाहा! परन्तु एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, देव, मनुष्य, यह जीव नहीं। जीव तो अन्दर आनन्दकन्द विज्ञानघन, वह जीव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! वीतराग परमेश्वर जिनेश्वर का मार्ग पूरी दुनिया से अलग प्रकार है। दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये— ऐसा नहीं। आहाहा! हमने तो सब दुनिया को देखा है न। पूरी दुनिया। हिन्दुस्तान में दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। दस-दस हजार मील तीन बार, हों! आहाहा! मार्ग अलग रह गया। लोग कोई दूसरे मार्ग में चढ़ गये।

प्रभु! वीतराग परमात्मा कहते हैं, शिष्य ने पूछा, प्रभु! तुम ऐसा कहते हो न एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रिय जीव, रागी जीव। बापू! व्यवहार से कहा जाए जाए ऐसा है। वस्तु ऐसी नहीं। समझ में आया? आहाहा! **व्यवहार से ऐसा ही कहा जाता है, निश्चय से ऐसा कहना झूठा है।** है? सत्य से देखो तो वह एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय कहना झूठा है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय जीव नहीं। अन्दर आनन्दघन, ज्ञानघन, वह जीव है। आहाहा! यह सब एकेन्द्रिय जीव है न? यह अन्दर आनन्दघन स्वरूप है। आहाहा! यह हरित, नीम, पीपल, यह हरी घास, हरी घास, इसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में जीव, वह आनन्दकन्द जीव इसको कहते हैं। यह शरीर को नहीं और इसके राग की पर्याय का भेद जीव नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अभी। समझ में आया?

निश्चय से ऐसा कहना झूठा है। आहाहा! अब इसका दृष्टान्त देते हैं। निश्चय से खोटा और व्यवहार से कहना, यह दो क्या है? इसका कोई दृष्टान्त हमको समझाओगे? कि हमको ख्याल में आये।

कलश-४०

(अनुष्टुप्)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः।।८-४०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-दृष्टान्त कहते हैं- 'चेत् कुम्भः घृतमयः न' [चेत्] जो ऐसा है कि [कुम्भः] घड़ा [घृतमयो न] घी का तो नहीं है, मिट्टी का है। 'घृतकुम्भाभिधानेऽपि' [घृतकुम्भ] घी का घड़ा [अभिधानेऽपि] ऐसा कहा जाता है, तथापि घड़ा मिट्टी का है। भावार्थ इस प्रकार है-जिस घड़े में घी रखा जाता है, उस घड़े को यद्यपि घी का घड़ा ऐसा कहा जाता है, तथापि घड़ा मिट्टी का है, घी भिन्न है तथा 'वर्णादिमज्जीवः जल्पनेऽपि जीवः तन्मयो न' [वर्णादिमज्जीवः जल्पने अपि] यद्यपि शरीर-सुख-दुःख-राग-द्वेषसंयुक्त जीव ऐसा कहा जाता है, तथापि [जीवः] चेतनद्रव्य ऐसा [तन्मयः न] जीव तो शरीर नहीं, जीव तो मनुष्य नहीं; जीव चेतनस्वरूप भिन्न है। भावार्थ इस प्रकार है कि आगम में गुणस्थान का स्वरूप कहा है, वहाँ ऐसा कहा है कि देव जीव, मनुष्य जीव, रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि बहुत प्रकार से कहा है, सो यह सब ही कहना व्यवहारमात्र से है। द्रव्यस्वरूप देखने पर ऐसा कहना झूठा है। कोई प्रश्न करता है कि जीव कैसा है? उत्तर - जैसा है वैसा आगे कहते हैं।।८-४०।।

कलश - ४० पर प्रवचन

४० (कलश)।

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः।।८-४०।।

दृष्टान्त कहते हैं-'चेत् कुम्भः घृतमयः न' [चेत्] जो ऐसा है कि [कुम्भः] घड़ा घी का तो नहीं है,... कहा जाता है क्या? घी का घड़ा। घी भरा हो न? यह घी का घड़ा। बोलने में तो ऐसा आये। **मिट्टी का है।** यह घी का नहीं। आहाहा! तेल की

बरणी, यह बरणी तेल की है ? यह तो बरणी में व्यवहार से रहा है। व्यवहार से, हों! निश्चय से तो अपने में रहा है। यह दृष्टान्त दिया है। यह दृष्टान्त दिया है न, भाई इसमें ? ऐसा कि बिलिया है, कटोरी, बिलिया। इसमें घी रहा है। घी के आधार से यह है ? बिलिया घी के आधार से है ?

मुमुक्षु : यह तो वेदिया ब्राह्मण की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, ना इसमें आता है। अपने इसमें आता है। कटोरी का दृष्टान्त इसमें आता है। अपने इसमें आता है। कल ही कहीं आया था। भाई ने 'जैनतत्त्व मीमांसा' में दिया है। फूलचन्दजी 'जैनतत्त्व मीमांसा' में। कटोरा हैं यह कटोरा ? (इसमें) घी है। तो घी का आधार कटोरा है ? यदि घी का आधार कटोरा हो तो उल्टा करें इसका आधार हो तो घी अलग क्यों रहता है ? घी के आधार से घी है। यह कटोरा के आधार से घी नहीं। ऐसी बातें।

क्योंकि एक-एक परमाणु में भगवान ने आधार नाम की शक्ति देखी है। छह कारक। एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा। भगवान ने तो जाति से छह द्रव्य देखे हैं। ऐसे अनन्त (द्रव्य हैं)। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। यह सर्वज्ञ भगवान ने यह छह द्रव्य देखे हैं। तीर्थंकरदेव केवली ने। छह द्रव्य में अनन्त संख्या है। यह प्रत्येक द्रव्य... आहाहा! अपने आधार से है। प्रत्येक द्रव्य में षट्कारक शक्ति है। छह कारक अर्थात् ? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। यह हमारी चौथी कथा में आता था, स्कूल में आता है। छह कारक। परन्तु यह तो पढ़ाई करने तक परीक्षा देकर दे दिया हो फिर किसको खबर। अब आगे आता होगा, अब आगे आता है। पहले चौथी में आता था। हमारे समय में ६०-७० वर्ष पहले। चौथी कक्षा में आता था, छह कारक। कर्ता, करे वह कर्ता; कर्ता का इष्ट वह कर्म; कर्ता का साधन वह करण, जिससे हो वह अपादान आदि छह बोल आते थे। स्कूल में भी यह दृष्टान्त आता है। देवदत्त छुरी द्वारा आम काटता है। ऐसा आता है। ऐसा लम्बा तुमको न समझ में आये।

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य में छह शक्तियाँ हैं। प्रत्येक की अनन्त

शक्तियाँ हैं, उनमें छह शक्ति हैं। एक कर्ता शक्ति है। एक कार्य शक्ति है, एक करणशक्ति है, एक इससे होता ऐसा अपादान शक्ति है, एक इससे होकर इसमें रहे ऐसी सम्प्रदान शक्ति है और इसके आधार से हो ऐसी एक अधिकरण शक्ति है। ऐसी सूक्ष्म वीतराग की बातें अभी। अर्थात् यह परमाणु, घी बर्तन के आधार से रहा है, यह तो व्यवहारमात्र कथन है। घी, घी के आधार से है। समझ में आया? वैसे ही आत्मा को अपने आनन्द का आधार स्वयं का है, उसको राग का आधार नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह क्या होगा? यह वह कोई बात वीतराग की होगी? भाई! हमने तो कहीं सुनी नहीं यह ५० वर्ष, ६० वर्ष से। एक इन्द्रिय की दया पालो और यह करो तत मिच्छामि दुक्कडम। जाओ। जीविया ववरोविया तत् मिच्छामि दुक्कडम। सुनो न अभी। कौन पर का, जीव का नाश करता है कौन? ताकत है तेरे कि पर के जीव का नाश कर सके, हनन कर सके? यह तो इसका आयुष्य हो तो जिये और आयुष्य नहीं हो तो नहीं जिये। यह तो इसके कारण से है। तेरे कारण से है? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि घड़ा घी का नहीं। बोला क्या जाए? घी का घड़ा, दवा की शीशी, तेल की बरनी। ऐसा बोला जाए। बोला जाए इससे क्या? बोला जाए इससे क्या इसकी हो गयी? मिट्टी का है। **'घृतकुम्भाभिधानेऽपि' घी का घड़ा, ऐसा कहा जाता है, तथापि घड़ा मिट्टी का है।** आहाहा! क्या दृष्टान्त दिया? देखो! **जिस घड़े में घी रखा जाता है, उस घड़े को यद्यपि घी का घड़ा, ऐसा कहा जाता है, तथापि घड़ा मिट्टी का है, घी भिन्न है...** आहाहा! यह दृष्टान्त तो समझ में आता है या नहीं? अब दृष्टान्त में से सिद्धान्त निकालना है। आहाहा! भगवान इसमें सिद्धान्त (सिद्ध करते हैं)।

'वर्णादिमज्जीवः जल्पनेऽपि जीवः तन्मयो न' जीव को रागी कहना, द्वेषी कहना, शरीरवाला कहना, ऐसा **शरीर-सुख-दुःख-राग-द्वेषसंयुक्त जीव, ऐसा कहा जाता है...** घी के घड़े की भाँति ऐसा बोला तो जाए। आहाहा! परन्तु घड़ा घी का नहीं। घड़ा तो मिट्टी का है। वैसे ही भगवान आत्मा को.. आहाहा! शरीरवाला, पुण्यवाला, पापवाला, रागी और द्वेषी को ऐसे भाववाला घी के घड़े की भाँति कहा जाए। परन्तु यह घी का घड़ा नहीं, मिट्टी का है। ऐसे पुण्य-पाप का करनेवाला जीव, पुण्य-पाप इसके, ऐसा व्यवहार से

कहने में आता है। लेकिन वास्तव में इसका नहीं। आहाहा! लॉजिक से है या नहीं इसमें? ऐई..! नटुभाई! भगवान का मार्ग न्यायमार्ग है। न्याय-नि धातु है। जैसा स्वरूप है, उसमें ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय। यह तुम्हारे वकीलात का न्याय नहीं, हों! यह तो सरकार का बना हुआ। यह तो परमात्मा जिनेश्वर के घर का न्याय। आहाहा! कैसी बात है? देखा!

घी के घड़े को घी का कहना, यह तो कथनमात्र है। वैसे भगवान आत्मा को शरीरवाला, मनुष्यवाला, देव, पर्याप्त, अपर्याप्त, रागी-द्वेषी, पुण्य करनेवाला, पाप करनेवाला, ऐसा कहना, यह तो घी के घड़े की भाँति कहना मात्र है। आहाहा! परमेश्वर की बातें सूक्ष्म बहुत, बापू! वीतराग परमात्मा तीन लोक के नाथ, जिन्होंने एक समय में तीन काल, तीन लोक देखे जिनेश्वरदेव ने। आहाहा! सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। एक सेकेण्ड में, हों! इसके एक समय में भगवान परमेश्वर अरहन्त तीन काल, तीन काल को देखते हैं। इन्होंने यह बात की है, प्रभु कहते हैं कि अरे..! भाई! सुन न, भाई! तुझे बात मिली नहीं। यह घी का घड़ा, दूध का घड़ा—ऐसा कहना मात्र है परन्तु घड़ा मिट्टी का है। ऐसी आत्मा को मनुष्य जीव, एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, रागी जीव, द्वेषी जीव—ऐसा कहनेमात्र है। बाकी यह रागी-बागी जीव आत्मा है नहीं। आहाहा! यह तो विज्ञानघन है।

यह विज्ञान अर्थात् क्या होगा? समझण का यह पिण्ड है। भगवान आत्मा चैतन्यघन है। सब विराजते हैं। आबाल-गोपाल, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सब। कहा ऐसा जाए कि यह देव जीव, मनुष्य जीव, यह स्त्री का जीव, यह पुरुष का जीव। परन्तु जीव स्त्री-पुरुष का है? जीव तो विज्ञानघन है। आहाहा! चैतन्य का पुंज है, उसको जीव कहने में आता है। यह मिट्टी का पिण्ड है, उसको घड़ा कहने में आता है। आहाहा! यह कोई घी का घड़ा कहा, इसलिए यह घड़ा घीमय हो गया? उसी प्रकार जीव को रागी कहा, राग का पुण्यवाला, पापवाला; इसलिए जीव रागमय हो गया? कठिन बात, बापू! आत्मा अर्थात्? और यह आत्मज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन अपूर्व चीज़ है। आहाहा!

यह राग और पुण्य के, पाप के भाव भी अजीव हैं। इसको व्यवहार से कहा कि

इसके। परन्तु यह आत्मा नहीं। आत्मा तो अन्दर विज्ञानघनस्वरूप प्रभु, जिसको यह पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति का आश्रय छोड़कर और त्रिकाली आनन्दकन्द की दृष्टि अन्दर करे, तब उसको आत्मा प्रतीत में और अनुभव में, जानने में, देखने में आता है। तब उसको सम्यग्दर्शन कहा जाए अभी तो। अभी तो चौथा गुणस्थान। श्रावक तो कहाँ बापू! किसको कहा जाए, यह तो सूक्ष्म बातें बहुत। आहाहा! समझ में आया? कहो, यह तो दृष्टान्त से समझ में आये या नहीं? आहाहा!

बोरी में ऐसा कहा जाए न चावल की बोरी, बाजरा की बोरी। बोरी बाजरे की है? बाजरा तो बाजरे में है। बोरी का बाजरा कहाँ से आया? और तौला जाए तब ऐसे तौला जाए। चार मन बाजरा हो और ढाई सेर का बोरा हो। तौलने में चार मन और ढाई सेर, ऐसा बोले न? वहाँ हमारे पालेज में दुकान के बाजू में बड़ी दुकान थी। बड़ा धन्धा, मजदूर ऐसा अन्दर से बोले, चार मण ढाई सेर। ऐसी बोरियाँ सुबह से शाम तक तौलते रहें। बोहरे की दुकान थी। चावल चार मण खाने में काम आये। दूसरा ढाई सेर बोरी खाने में काम आये? उसी प्रकार जीव को रागवाला, पुण्यवाला, पापवाला भाववाला कहने में आता है परन्तु यह पुण्य और पापवाला जीव नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह तो मिट्टी है। यह तो मिट्टी धूल है। ऐसे भी जब कील लग जाए तब नहीं कहते? कि मेरी मिट्टी पकनी है, पानी को मत छूने देना। ऐसी बातें करे। बोले तो सही परन्तु समझे नहीं कुछ इसमें। भाषा ऐसी कहे कि मेरी मिट्टी पकनी है। कील-बील लग गयी हो न? तो ऐसा कहे, इसको पानी नहीं छूने देना नहीं तो पक जाएगा। ऐ! वहाँ तुम कहते थे न मेरी मिट्टी पकनी है। मिट्टी इसको कहते थे और फिर तुम कहो मेरा शरीर, यह क्या हो गया? दारू पिये हुए को जैसे कोई भान नहीं, वैसे मिथ्यादृष्टि को कुछ भी बोलने का भान नहीं, कहने का भान नहीं। क्या कहता हूँ कुछ खबर नहीं। आहाहा! ऐई! लड़का हो न इसका, लो! जा न, बापू! तुम वह मन ही हूँ न। श्मशान में जाना हो न। मैं अभी काम में हूँ, तुम वह मैं ही हूँ न, फिर ऐसा कहे। स्वयं को नहीं जाना हो और लड़के को भेजना हो कहीं। श्मशान हो कहें। जा न भाई तुम वह मैं ही हूँ न। धूल भी नहीं तुम और मैं। दो कहाँ से (एक हो गया)? यह तो अलग चीज़ है तुम भिन्न हो। आहाह! ऐई! पोपटभाई!

यह तुम्हारे बनिया की पोल सभी। दुनिया की पोल यह तो सब। आहाहा! यह स्त्री के लिये ऐसा कहे हमारी अर्धांगिनी है यह। अर्धांगिनी है। आधा अंग यह और आधा अंग यह, ऐसे दो होकर के एक होगा। ऐसा होगा? अरे..रे..! यह क्या हुआ तुझे? पागलपन हुआ तुझे? क्या हुआ? यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? व्यवहार से घी का घड़ा कहा जाए। परन्तु इससे घी का घड़ा हो गया? बोरा को चावल का बोरा कहा जाए, इसलिए बोरा का चावल का हो गया? आहाहा! बोरी-बोरी कहते हैं न? क्या कहते हो? बोरी। केसर का डिब्बा। ऐसा नहीं कहते? केसर-केसर का डिब्बा आता है न इतना-इतना। पहले तो बहुत सस्ता था, केसर का डिब्बा। हम तो मुम्बई माल लेने जाते थे, वहाँ केसर का बड़ा गोदाम, केसर का गोदाम हों। बड़ा। पाँच-पाँच हजार केसर के डिब्बे भरे हों। ऐसे बड़े व्यापारी है मुम्बई में। केसर का डिब्बा कहते हैं। यह केसर का डिब्बा है? केसर केसर में रही, डिब्बा डिब्बा में रहा।

मुमुक्षु : तो फिर क्यों बोला जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो कहते हैं न? कथन करना ऐसा इसमें तुम मान बैठो। तुम मूढ़ हो? घी का घड़ा कहा तो घड़ा घी का हो गया? आहाहा! यह तो जिसने घड़ा भिन्न कभी जाना नहीं, उसको जब घड़े की पहिचान कराना हो तो ऐसा कहा जाता है कि देखो वह घी का घड़ा। यह मिट्टी का है, फिर तुरन्त ऐसा (कहे)। किसी समय खाली घड़ा नहीं देखा हो, इसलिए घी का घड़ा कहे बिना यह जान नहीं सकता। उसी प्रकार अकेला राग बिना का जीव तो इसने कभी देखा नहीं। आहाहा! ऐई..! आहाहा! इसलिए इसको पहिचान कराते हैं, देखो भाई! यह दया, दान का परिणाम हुआ न? यह दया के परिणामवाला जीव ऐसा कथन कहा है। यह जीव नहीं। आहाहा!

भगवान अन्दर जीव है, वह तो आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति यह तो प्रभु है। इसको कहाँ खबर है? पामर को प्रभुता की प्रतीति नहीं। आहाहा! पर्याय / अवस्था में जिसने पामरता को स्वीकार किया है, उसको यह प्रभु चैतन्य भगवान

अन्दर विराजते हैं, जैसे सिद्ध भगवान (हैं); ऐसा ही यह आत्मा अन्दर है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' 'श्रीमद्' में आता है। अपने अभी कल नहीं आया था? सब ज्ञानमय जीव हैं। 'सर्व जीव हैं ज्ञानमय जे समझे वे होय' कल पाठ में आया था।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि जीव...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी पर्याय से कहा है। जीव तो विज्ञानघन है। यह तो गुणस्थान कहा न? गुणस्थान से इसको पहचान कराना, यह तो निमित्त का कथन है। यह ऐसा है नहीं। आहाहा! आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। यह इसको खबर कहाँ है? यह बाहर में मानता है न? धूल में सुख और पैसा में सुख और पत्नी में सुख। बड़ा मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी को जीव की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह सब करोड़पति और अरबपति बेचारे दुखिया-भिखारी हैं। मिथ्यादृष्टि मूढ़ हैं। हमको इसमें से सुख है और पैसा से सुख है। दो-पाँच करोड़ रुपया हो, बड़ा हो इसको वर्ष की दो-पाँच करोड़ की पैदाश हो। इसमें धूल में क्या गया? यह तो पर जड़ है। उसमें सुख है? सुख तो तेरे स्वभाव में आनन्द पड़ा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं। उसी प्रकार अज्ञानी को अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु पड़ा है। उसकी अज्ञानी को कीमत नहीं—खबर नहीं। मृग जैसे जीव (हैं)। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कहो, नेमचंदभाई! आहाहा! भारी दृष्टान्त दिया। घी का घड़ा, बाजरे की बोरी यह तो कहनेमात्र है घड़ा तो मिट्टी का है। केसर का डिब्बा। केसर का डिब्बा है? डिब्बा केसररूप हो गया? कहनेमात्र है, उसको मान लेता है तो मूढ़ है, कहते हैं। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं, देखो! **शरीर-सुख-दुःख-राग-द्वेषसंयुक्त जीव ऐसा कहा जाता है, तथापि चेतनद्रव्य ऐसा जीव तो शरीर नहीं, जीव तो मनुष्य नहीं;...** आहाहा! **जीव चेतनस्वरूप भिन्न है।** आहाहा! घी का घड़ा वह मिट्टीमय है। वैसे यह पुण्यवाला जीव वह विज्ञानघन है। समझ में आया? भारी कठिन बातें, बापू! धर्म अर्थात्... आहाहा! जिससे जो भव अनन्त किये, उनका अन्त आ जाए ऐसा सम्यग्दर्शन धर्म वह कोई क्या चीज़ है। आहाहा! जिसका अनन्त भव परिभ्रमण रुक जाए और अनन्त आनन्द

और अनन्त शान्ति जिसके फल में मिले, ऐसा सम्यग्दर्शन और उसका विषय क्या चीज़ है ? बापू !

मुमुक्षु : इसका उपाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न उपाय। विज्ञानघन है, उसकी दृष्टि करो। ऐसी पर्यायबुद्धि को छोड़ दो, ऐसा कहते हैं। ऐई.. ! घी का घड़ा कहा, इसलिए यह मान्यता छोड़ दे। घड़ा तो मिट्टी का है। ऐसे तुझे मनुष्य का जीव, देव जीव, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय कहा परन्तु यह नहीं। यह जीव तो ज्ञानघन है। उसकी दृष्टि करो तो तुम्हारा भव का अन्त आये बिना नहीं रहेगा, बाकी सब थोथा है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण शुक्ल १०, सोमवार, दिनांक २५-०७-१९७७
कलश-४० से ४२, प्रवचन-४९

४० वाँ कलश है इसका नीचे भावार्थ है। नीचे से पाँचवीं लाईन है। **भावार्थ इस प्रकार है कि आगम में गुणस्थान का स्वरूप कहा है,...** पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा ऐसे। जैसे नसैनी चढ़ने में, ऊपर मंजिल पर चढ़ने में सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे चौदह गुणस्थान सीढ़ियाँ हैं। यह गुणस्थान का स्वरूप कहा है। वहाँ देव जीव,... ऐसा कहा। देव का जीव **मनुष्य जीव, रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि बहुत प्रकार से कहा है, सो यह सब ही कहना व्यवहारमात्र से है।** आहाहा! और ऐसा क्यों कहा? कि जैसे घी का घड़ा जिसने खाली नहीं देखा हो, अकेला घड़ा खाली देखा नहीं हो, उसको ऐसा कहने में आता है कि यह घी का घड़ा, यह आटे का डिब्बा, तेल की बरणी। कारण कि अकेली कोई अलग चीज़ देखी नहीं हो, उसको इस रीति से समझाते हैं कि भाई! यह घी का घड़ा वह घीमय नहीं किन्तु मिट्टीमय है। ऐसा समझाने के लिये घी का घड़ा ऐसा कहने में आता है। इसका हेतु यह है कि इसने घड़ा कभी देखा ही नहीं, इसलिए इसको इस रीति घी का घड़ा वह मिट्टीमय है ऐसा बताते हैं।

ऐसे यह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु है, वह तो किसी दिन देखी नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे यह घड़ा अकेला अलग घी बिना का कभी देखा नहीं, इसलिए उसको 'घी का घड़ा' ऐसा कहकर मिट्टी का घड़ा है, ऐसा बताना है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा! शुद्ध चैतन्य आनन्दघन ऐसी राग और भेद से रहित इस चीज़ को तो कभी देखा नहीं। इसलिए उसको ऐसा कहा कि देखो, भाई! यह देव जीव, अर्थात् कि देव नहीं, आनन्दकन्द ज्ञायक वह जीव—ऐसा समझाया है। आहाहा! ऐसा धर्म का प्रकार। अरे..! धर्म बापू! कोई साधारण है? अनन्त काल में एक सेकेण्ड मात्र नहीं किया। आहाहा! उसको समझना, यह वस्तु अलौकिक है। आहाहा!

देव जीव ऐसा कहकर, देव जीव, वह देवरूप नहीं किन्तु ज्ञानरूप है। जैसी घी का घड़ा कहकर घी का घड़ा मिट्टीमय है, वैसे देव जीव कहकर, जीव ज्ञानस्वरूप है (ऐसा

समझाना है)। आहाहा! इसी प्रकार मनुष्य जीव, स्त्री का जीव, पुरुष का जीव, तिर्यंच का जीव ऐसा कहा जाए न? ऐसा कहकर कहना है कि इसने अकेला चैतन्यस्वरूप है, यह तो कभी जाना नहीं, देखा नहीं, अनुभव किया नहीं। इसलिए उसको ऐसा कहकर (समझाते हैं) कि देखो भाई! यह घोड़े का जीव। अर्थात् कि यह जीव ज्ञानमय है, घोड़े का नहीं। यह मनुष्य जीव ऐसा कहकर कि यह मनुष्य जीव, यह जीव मनुष्य नहीं, किन्तु ज्ञानमय है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। रागी जीव। देखो, भाई! यह राग होता है न? यह रागी जीव है। ऐसा कहकर रागी जीव, यह जीव रागमय नहीं, ज्ञानमय है—ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का।

द्वेषी जीव इत्यादि बहुत प्रकार से कहा है, सो यह सब ही कहना व्यवहारमात्र से है। जैसे घी का घड़ा कहना, यह व्यवहारमात्र से है। वैसे रागी जीव, पुण्यवाला जीव, पापवाला जीव, ऐसा कहना यह तो व्यवहारमात्र है। यह मात्र कहकर इसको जीव चैतन्यमय है, यह नहीं। इसने चैतन्यमय जीव है, उसका तो कभी ज्ञान किया नहीं, समकित हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस रीत से इसको समझाया है परन्तु यह सब व्यवहार है। आहाहा!

व्यवहारमात्र से है। द्रव्यस्वरूप देखने पर ऐसा कहना झूठा है। आहाहा! मिट्टी का घड़ा है, ऐसे देखते घी का घड़ा कहना यह झूठा है। वैसे भगवान आत्मा, ज्ञानस्वरूपी चिद्घन स्वरूप है, इस दृष्टि से देखो तो यह सब व्यवहार, वह सब व्यवहार है, झूठा है। आहाहा! इसी प्रकार की बात अब कभी गन्ध भी नहीं सुनी हो।

इसमें आता है न, भाई! 'परमार्थ वचनिका' 'परमार्थ वचनिका' बनारसीदासजी का (रचित) अनादि का अज्ञानी जीव, मूढ़ जीव, आगम पद्धति आगम में जो व्यवहार कहा, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह पद्धति सुगम है, इसलिए यह साधता है और यह अज्ञानी उसको धर्म मानता है। अध्यात्म का व्यवहार भी नहीं जानते। क्या कहा? आगम में जो व्यवहार कहा, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना शरीर से, यह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु समकिती जीव को यह भाव आते हैं। किन्तु यह अज्ञानी तो आत्मा के भान बिना यह आगम पद्धति के व्यवहार को साधता है और धर्म

मानता है। परन्तु अध्यात्म पद्धति को यह नहीं जानता। अध्यात्म के व्यवहार को, पद्धति कहो या व्यवहार कहो, (इसको नहीं जानता)। अर्थात् क्या? अध्यात्म पद्धति और अध्यात्म का व्यवहार अर्थात् क्या?

आत्मा जो आनन्द ज्ञानस्वरूप है, उसके परिणाम में पवित्रता जो प्रगट होती है उसको यहाँ अध्यात्म पद्धति का व्यवहार कहते हैं। अध्यात्म में तो निश्चय तो द्रव्य—वस्तु है। ऐसा आया है न, भाई! 'परमार्थ वचनिका' में। वहाँ तो ऐसा लिया है कि यह कर्म जो है यह आगम पद्धति है और अध्यात्म पद्धति के दो प्रकार हैं। एक जीव परिणाम, एक ज्ञान-दर्शन आदि गुण के परिणाम। जरा सूक्ष्म बात है। यह तो यहाँ व्यवहार कैसे कहा? यह व्यवहार जो कहा, वह इसमें नहीं—ऐसा कहकर, आत्मा आनन्दमय है, ऐसा बताने के लिये यह कहा है। आहाहा! समझ में आया?

तब अज्ञानी को व्यवहार जो आगम में कहा दया, दान, व्रत, भक्ति व्यवहार कहा, उसको साधकर हम धर्म करते हैं, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! यह अध्यात्म के व्यवहार को जानता भी नहीं। अर्थात्? शुद्ध परिणाम जीव का। वहाँ लिया है न? कि चेतना पद्धति। इसकी चेतना की पद्धति द्रव्यरूप और भावरूप। द्रव्यरूप... वस्तु सूक्ष्म है थोड़ी। सम्पूर्ण जीव का शुद्ध परिणाम जीवद्रव्य का यह द्रव्य परिणाम। और ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेदवाला परिणाम, यह गुण परिणाम। दोनों को अध्यात्म पद्धति का व्यवहार कहा है। यह व्यवहार की तो इसको खबर भी नहीं। चैतन्य अन्दर आनन्द का नाथ अभी कहेंगे ४१ (कलश में)। आहा!

अनादि-अनन्त आनन्दकनद प्रभु स्वसंवेद्य। जो अपने आनन्द के स्वभाव से जानने में आये और वेदन में आये, ऐसा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को और आत्मा के परिणाम को, जो आत्मा का परिणाम निर्मल मोक्षमार्ग हुआ, उसको तो अध्यात्म में व्यवहार कहा है और त्रिकाली चीज़ को निश्चय कहा। तो अब यहाँ कहते हैं कि आगम पद्धति का जो व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह इसको साधना सुगम है। कारण कि यह अनादि का किया है और करता है और यह करके ऐसा मानता है कि हम धर्म करते हैं। यह मूढ़ जीव का यह व्यवहार है। आहाहा! यह अध्यात्म का निश्चय तो नहीं जानते परन्तु

अध्यात्म का व्यवहार भी नहीं जानते। आहाहा!

अध्यात्म का व्यवहार अर्थात्? अध्यात्म का निश्चय अर्थात् कि द्रव्य वस्तु त्रिकाल। और इसका व्यवहार अर्थात् कि यह त्रिकाली चीज़ की दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मलता वीतरागभावरूप से परिणाम होते हैं, उसको अध्यात्म का व्यवहार कहने में आता है। अरे..! ऐसी बात अभी। बात बात में अन्तर। कितने ही अनजाने व्यक्ति ने तो बेचारे ने कभी सुना भी नहीं हो, बेचारा, हों! आहाहा! अरे..! इसको जन्म-मरण के अन्त लाने की व्यवहार पद्धति किसको कहना, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

व्यवहार से कहा है, यह समझाने के लिये कहा है कि देखो, यह जीव नहीं। आहाहा! **कोई प्रश्न करता है कि जीव कैसा है? उत्तर – जैसा है, वैसा आगे कहते हैं।** अब आगे के श्लोक में यह कहेंगे। आहाहा! इसमें फिर मिलायेंगे। देखो!

कलश-४१

(अनुष्टुप्)

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते।।९-४१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'तु जीवः चैतन्यं स्वयं उच्चैः चकचकायते' [तु] द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर [जीवः] आत्मा [चैतन्यं] चैतन्यस्वरूप है, [स्वयं] अपनी सामर्थ्य से [उच्चैः] अतिशयरूप से [चकचकायते] अति ही प्रकाशता है। कैसा है चैतन्य? 'अनाद्यनन्तं' [अनादि] जिसकी आदि नहीं है, [अनन्तं] जिसका अन्त-विनाश नहीं है, ऐसा है। और कैसा है चैतन्य? 'अचलं' नहीं है चलता प्रदेशकम्प जिसको, ऐसा है। और कैसा है? 'स्वसंवेद्य' अपने द्वारा ही आप जाना जाता है। और कैसा है? 'अबाधितं' अमिट है जिसका स्वरूप, ऐसा है।।९-४१।।

कलश - ४१ पर प्रवचन

४१ है।

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते।।९-४१।।

आहाहा! **'तु जीवः चैतन्यं स्वयं उच्चैः चकचकायते'** [तु] **द्रव्य के स्वरूप...** भगवान आत्मा का परमार्थ द्रव्य वस्तु के स्वरूप विचार करते जो तत्त्व है त्रिकाली द्रव्य पदार्थ, उसका स्वरूप **विचार करने पर** [**जीवः**] जीव अर्थात् आत्मा। **आत्मा चैतन्यस्वरूप है,...** आहाहा! यह तो कायमी चैतन्य अर्थात् जानने-देखन के स्वभावस्वरूप यह तो है। आहाहा! ऐसा उपदेश और यह वह किस जाति का? अभी तक तो हम यह सब सुनते हैं। मन्दिर बनाओ, भक्ति करो, पूजा करो, रथयात्रा निकालो।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, यहाँ मन्दिर हो गया अब तकलीफ नहीं ऐसा। हुआ है यह इसके कारण से हुआ है। इसको करे कौन? रामजीभाई! प्रमुख थे, सब व्यवस्था करते थे। नहीं? अभी कोई कल परसों कहते थे कि यह नवनीतभाई गुजर गये। मण्डल एकत्रित करके विनती करो रामजीभाई को। प्रमुख के लिये फिर से। ऐसा कोई परसों कहते थे। यह तो बात आये तो सुनते हैं। कौन करे व्यवस्था? भगवान! यह तो निमित्त से कथन है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! तुम कौन हो? कैसे हो? कहाँ हो? तो कहते हैं, प्रभु! तुम आत्मा चैतन्यस्वरूप है। यह तो जानने-देखने के स्वभाव स्वरूप आत्मा है। आहाहा! जिसको परमेश्वर जिनेश्वरदेव आत्मा कहते हैं और यह आत्मा है। 'है' यह क्या है परन्तु? यह तो चैतन्यस्वरूप है। कायमी अविनाशी भगवान, जानन-देखन चेतनास्वरूप, चेतन, चेतनास्वरूप है। चेतन ऐसा जो आत्मा, यह चेतना अर्थात् ज्ञान-दर्शन जानना-देखने के स्वरूप से है यह तो। आहाहा! ध्यान रखे तो पकड़ में आये। भाषा सादी आती है। बहुत कोई ऐसी संस्कृत और व्याकरण बड़ा (नहीं)। सादी बात सरल सीधी भाषा है। परन्तु

इसको अभ्यास नहीं हो, इसलिए ऐसा लगे कि यह वह क्या है ? भाई ! मार्ग अलग है, नाथ ! तेरा मार्ग कोई अलग जाति का है। आहाहा !

तुम अन्दर हो कौन ? कि यह तो चैतन्यस्वरूप की ऋद्धि का धरनेवाला आत्मा है। इसमें नहीं राग, नहीं पुण्य, नहीं पाप, नहीं गति। आहाहा ! जानने-देखने के स्वरूप यह आत्मा है। इसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन यह भी अध्यात्म का व्यवहार है। अध्यात्म का निश्चय ? चैतन्यस्वरूप वह अध्यात्म का निश्चय है। आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा चैतन्यस्वरूप है। आहाहा ! यह तो निश्चय। **अपनी सामर्थ्य से अतिशयरूप से...** अभी यह स्वयं, अपने सामर्थ्य से-ज्ञान सामर्थ्य से, चैतन्य सामर्थ्य से, चैतन्य के बल से, चैतन्य शक्ति के सामर्थ्य से। आहाहा ! ऐसा उपदेश ! वह तो दया पालो, भक्ति करो, अर्थात् ऐसा करके... यह आगम पद्धति का व्यवहार साधकर अज्ञानी धर्म मानता है, यह मूर्ख है। आहाहा ! उसे अध्यात्म पद्धति के व्यवहार की भी खबर नहीं। क्योंकि निश्चय चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, यह तो त्रिकाली वस्तु भगवान आत्मा है, इसको वर्तमान स्वसंवेद्य से अपने ज्ञान के परिणाम से वेदन करके जानना, यह स्वसंवेदन परिणाम, यह व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ? यह शैली कैसी होगी पूरी ! अभी हम तो जैन में बहुत वर्षों से जन्मे हुए हैं, ऐसा नहीं सुनते थे, नहीं सुनते थे तो सुनो अभी। बापू ! यह तो वीतराग सर्वज्ञदेव, जिनेश्वरदेव का (मार्ग है)। जिनेश्वरदेव जिनको एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान है, इनका यह मार्ग है। आहाहा !

कहते हैं, कि चैतन्यस्वरूप जो कायमी ध्रुव है, वह अध्यात्म का निश्चय; और वह चैतन्यस्वरूप को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा जानना... आहाहा ! ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान त्रिकाल चैतन्यस्वरूप है, ऐसी प्रतीति; चैतन्यस्वरूप त्रिकाल है, उसका ज्ञान और यह चैतन्यस्वरूप में रमणतारूपी चारित्र-यह चारित्र है। यह तीनों अध्यात्म का व्यवहार कहने में आता है। देवीलालजी !

मुमुक्षु : यह पर्याय है...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न। आहाहा ! और आगम का व्यवहार यह शुभराग है।

यह इसको करना सरल है, सुगम है, ऐसा कहा है इसमें बनारसीदासजी ने। सुगम है। एकदम यह भक्ति करना, यह करना, पूजा, दान, दया करना, यह शुभभाव है। यह करना सरल है, इसलिए इसको मान कर करता है और इसको धर्म मानता है। कहो, नेमीचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अध्यात्म का व्यवहार को जानता भी नहीं, ये कहते हैं। निश्चय तो क्या है इसका आश्रय? आहाहा! ये यहाँ कहते हैं।

चैतन्य **सामर्थ्य से अतिशयरूप से अति ही प्रकाशता है।** [**चकचकायते**] है न? चकचकाट। ऐसे जैसे बिल्लोरी काँच का हीरा होता है यह चकचकचक होता है, वह जड़ की चकचकाट है। यह चैतन्य की चकचकाट है। आहाहा! अरे..रे..! ऐसा कहाँ? भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का चकचकाटस्वरूप है। आहाहा! ऐसी बातें अभी।

कैसा है चैतन्य? 'अनाद्यनन्तं' [**अनादि**] **जिसकी आदि नहीं है...** किसी से किया हुआ नहीं। भगवान आत्मा है, वह किसी से किया हुआ नहीं। अकृत्रिम अनादि है। अकृत्रिम यह अनादि आत्मा है। आहाहा! कोई ईश्वरकर्ता है, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! सत् है, उसका कर्ता कौन है? यह अनादि है। जिसकी आदि नहीं, जिसकी उत्पत्ति नहीं। ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, जिसकी उत्पत्ति नहीं। उत्पत्ति नहीं, इसलिए अनादि है। आहाहा! अनन्त है। है? जिसका विनाश नहीं। भविष्य में जिसका नाश नहीं। यह तो अनादि अन-उत्पत्ति और अनाश—ऐसी चीज भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

चे चैतन्य **कैसा है चैतन्य?** अचल है। आहाहा! **नहीं है चलता प्रदेशकम्प...** वस्तु के स्वरूप में। परन्तु वस्तु चैतन्य है, वह पर को जानते भी चलायमान नहीं होता। वर्तमान लिया। वह अनुत्पत्ति, अनाश, वर्तमान में अचल है, ज्ञानघन है यह। वह, यह पर को जाने तो भी यह अपने स्वरूप में से चलित नहीं होता। अरे..! ऐसी बात अभी। कहीं नजर में नहीं पहुँचे। आहाहा! यह नजर में आ जाए, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

अरे..! जन्म-मरण का काल, चौरासी के अवतार कर-करके दुःखी है यह। ये राजा दुःखी, रंक दुःखी, देव दुःखी, सब पराधीन राग-द्वेष में पड़े हुए बेचारे दुःखी हैं। यह दुःख का कीड़ा है। दुःख का कीड़ा है। इसको जब धर्म समझना हो, तब इस रीति से समझ

में आयेगा कि आत्मा वस्तु जो अन्दर है भगवान सर्वज्ञ की देखी हुई, जिनेश्वर की कही हुई, हों! दूसरा कहे, यह उनको खबर नहीं। जिनेश्वर सिवाय सभी आत्मा-आत्मा बहुत कहते हैं। वेदान्तवाले, सांख्यवाले। समझ में आया? आहाहा! अभी वह 'रजनीश', वह बाबा नहीं? साईं बाबा। खबर है न? बड़े बाल ऐसे रखे। सब मूढ़ हैं।

मुमुक्षु : बाल में से अंगूठी निकाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अंगूठी वहाँ अन्दर रखी होती है। बड़े मोटे ऐसे बाल रखे इसलिए अन्दर रखे। और अन्दर एक रखे वह सुनने का क्या कहते हैं? माईक अन्दर छोटा। इसलिए कोई वहाँ कहे इसलिए यहाँ आ जाए, इसलिए दूसरे को कहे, भाई ऐसा। वह जाने... ओहो..हो..! मेरा नाम कहाँ से आया? परन्तु वह तो बाहर से कहा और यहाँ रखा हो माइक। बड़े इतने बाल रखे। अब तो अभी इसकी सामने चेलेंज उठा है कि तुम जो जादूगरी बताते हो, यह सब झूठी है। परन्तु क्या करे? सब झूठे झठा गप्प चलाया है। और वह रजनीश। मुम्बई बड़ा पन्द्रह लाख का मकान और रुलाये, घबराये और फिर ऐसा कहे निर्विकल्प हो जाओ। गप्पा गप्प है सब।

अपना एक भाई है न? 'के. लाल' 'के. लाल' है न? जादूगर। इसकी बहन है न यहाँ? 'उषा बहन'? क्या कहते हैं? यह उनका मामा होता है। मेरे पास दो चार बार आया था। यहाँ आया था। बड़ा जादूगर, वह कैसा जादूगर! जिसको लाखों रुपये की आमदनी एक-एक रात में। एक बार तो बड़ा कुछ दिखाया था वह तीन घण्टे में कितने लाख लिये थे। बड़ा जादूगर। हमारे पाया आया था बेचारा, हमारे पास तो क्या करे। 'राजकोट' बड़ी जगह जादूगिरी करता था। ऐसे काट दे, फिर बाई को फिर से जीवित करे। खोटे खोटा ढोंग, हों! मेरे पास आया था, यहाँ आया था भाई, नहीं? 'हिम्मतभाई' थे और यहाँ बताया था, ढोंग बताया था ऐसे डोरी ऐसे करके ऐसे। ढोंग ही ढोंग। 'राजकोट' मेरे पास आकर स्पष्ट कहा। महाराज! हमारा यह सब ढोंग है। बड़ा होशियार है 'के. लाल' तुम्हारी 'उषा' का... आहाहा! ढोंग है। मैंने कहा, भाई! इसमें तुम मर जाओगे, हों! इसमें तो हैरान होगे, भले तुमको पाँच-पच्चीस लाख इसमें से मिले, मर जाओगे इस धूल में। और ढोंग बताकर, जादूगिरी बताकर के तुम्हारा समय जाता है। कहे कि हाँ, महाराज! हमें क्या इसके पास

से कुछ लेना है ? मुझे तो दूसरा कहना था। यह 'के. लाल' जब बड़ोदा था तब 'रजनीश' की मोटर लेने आयी। अब क्या होगा 'रजनीश' के पास ? ऐसे जादूगर के पास ? यह कहे कि मेरे पास मोटर भेजी और बाहर में बड़ा 'रजनीश' धर्म का नाम धरे। ऐई.. बड़ा.. आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो सबको भगवान कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी भगवान कौन ? यह तो वस्तु भगवान है। यह तो पर्याय से भगवान मानते हैं। अरे..! बापू! पर्याय यह भगवान नहीं, बापू! यह चीज़ कोई अलौकिक है, अभी तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! इसने बड़ोदा 'के. लाल' को मोटर भेजी। 'कान्तिलाल' नाम है न ? यह कहता था मुझे मोटर भेजी थी। मैं तो जादूगर हूँ मेरे पास कोई धर्म नहीं, मैं तो ढ़ोंग हूँ, मेरे हाथ की चालाकी इतनी सब है कि लाखों व्यक्ति ऐसे (अंजाय जाते हैं-अन्धे हो जाते हैं) नजर बन्दी हो जाती है। बाकी सब मेरा ये ढोंग है। स्पष्ट कहता था बेचारा। 'राजकोट' आया न ? 'इन्दौर' भी एक बार आया था। 'इन्दौर'। यहाँ आया था। जहाँ हो वहाँ आये। दर्शन करने आये।

मुमुक्षु : पिछली बार दादर आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दादर आया था। वहाँ हम उसमें थे न ? आमोदवाला नहीं मुम्बई में 'रमणीकभाई'। कैसी कोई कम्पनी कहलाती है। रौनक कोई। बड़ा पाँच करोड़ रुपया इसके पास है। इसके मकान में पिछले वर्ष हम उतरे थे। शरीर को ८७ वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ न ? ८७वीं जन्म जयन्ती पर उस समय इसके मकान में थे। मकान ७० लाख का है। दादर में वहाँ विनती की थी न इसने ? महाराज! मेरे वहाँ पधारो। वहाँ १८ दिन रहे थे। ३६ व्याख्यान दिए थे। दस-दस हजार व्यक्ति वहाँ दादर में (आते थे)। यह 'के. लाल' कहता था मुझे 'रजनीश' ने मोटर भेजी। एला..! परन्तु मेरे पास क्या है ? यह सब जादूगर का खेल करके दुनिया को भरमाता है।....

यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा.. आहाहा! यह आत्मा तो चैतन्य स्वभाव से चकचकायमान वस्तु अन्दर है। अनुत्पत्ति, अनादि, अविनाशी और अचल वर्तमान में ज्ञानस्वरूप में पर को जाने तो भी अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! **अन्त-विनाश नहीं है, ऐसा है।** और चलायमान नहीं।

और कैसा है? अपने द्वारा ही आप जाना जाता है। देखो यह पर्याय ली अब। क्या कहा? यह चैतन्यस्वरूप प्रकाश का पुंज प्रभु (है)। यह सूर्य है, यह जड़ प्रकाश है, यह सब। जड़ का प्रकाश है, इसका भी प्रकाशक चैतन्य है। यह प्रकाश है, यह प्रकाश को खबर नहीं। सूर्य का प्रकाश और यह तो सब जड़ है। इनका भी प्रकाशक चैतन्य है कि मैं चैतन्य हूँ और यह जड़ है, ऐसा प्रकाश करनेवाला चैतन्य है। आहाहा! और वह चैतन्य कैसा है? **अपने द्वारा ही आप जाना जाता है।** आहाहा! यह दया-दान और व्रत-भक्ति के परिणाम से यह जानने में आये ऐसा नहीं। वह तो राग है, ऐसा कहते हैं। भारी बात। भाई! समझ में आया?

स्वयं, स्वयं से ही स्वयं जानने में आता है। आहाहा! यह तो राग से भिन्न पड़कर और ज्ञान की निर्मल दशा द्वारा वह आत्मा जानने में आता है। आहाहा! निर्मल स्वयं से ही स्वयं... आहाहा! ज्ञान के निर्मल परिणाम से, वर्तमान आनन्द के वीतरागी परिणाम द्वारा (जानने में आता है)। कारण कि स्वयं वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है। वह स्वयं को स्वयं, स्वयं को ज्ञान की परिणति द्वारा स्वयं स्वयं को जानता है। ऐसा यह है। कहो, समझ में आया? अरे..! ऐसी बात अभी। वह बेचारा पैसावाला हो, दो-पाँच-दस करोड़, बीस करोड़ और बहुत अभी तो पैसा है, पैसा खर्च करे वह ऐसा माने कि धर्म करते हैं।

'आमोद' में हम वहाँ मकान में रहे थे न पिछले वर्ष। 'दादर-दादर' बड़ा गृहस्थ, पाँच-छह करोड़ रुपया। सत्तर लाख का तो एक मकान है। ऐसे तो कई हैं। दो भाई हैं। नरम व्यक्ति। अभी यह 'मुम्बई' जाना था न, विनती कर गया था। बेचारे आये थे यहाँ। 'मुम्बई' जाना था अभी। 'घाटकोपर' उतरना था लेकिन यह पैर पकड़ गया अर्थात् जिद कर गये। आये थे। बड़ा गृहस्थ है। इनकी बहन है यह बाल ब्रह्मचारी है। यह सब कारखाने में व्यवस्था यह करता है। यह बहन भी आये थे। उस समय जाना था न? ८८ वीं जन्म-जयन्ती घाटकोपर होनी थी, किन्तु यह पग का हुआ और इसलिए फिर यहाँ 'जामनगर' हुआ। यहाँ दूसरा कहना है... आहाहा! कि ऐसे करोड़पति, पाँच-पाँच करोड़ और छह-छह करोड़ और दस करोड़ इसमें से दो-पाँच लाख खर्च करे, इसलिए वह साधु कहे कि अहो..! भारी धर्म (किया) धर्मी है। धूल भी नहीं अभी ये धर्मी, सुनो न।

मुमुक्षु : धर्म शिरोमणि...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। धर्म शिरोमणि। बेचारे भाई ने नहीं कहा था। 'शाहूजी शान्तिप्रसाद' अभी व्याख्यान में आये थे न? चालीस करोड़ रुपया। ५० हजार या लाख दिया था, 'इन्दौर'। बहुत वर्ष पहले। सभा में इकट्ठा होकर श्रावक शिरोमणि की उपमा दी। चालीस करोड़ रुपया। अभी यहाँ आये थे न। बहुत बार आते हैं, उन्होंने स्वयं अभी कहा। अपना शिक्षण शिविर प्रान्तिज में हुआ था न? वहाँ गये थे, वहाँ से आये। मुझे तो श्रावक शिरोमणि कहते हैं परन्तु मेरे पास तो व्रत भी नहीं और प्रतिमा भी नहीं। मुझे श्रावक शिरोमणि की बड़ी उपमा दे दी। पैसा खर्च करे, वहाँ साधारण गरीब व्यक्ति समाज उसको धर्म शिरोमणि कर दे। आहाहा! यह स्वयं बेचारे अभी कहते थे, इनकी पत्नी 'रमारानी' मर गयीं। वहाँ 'कोलकाता' इनके घर आहार किया था। 'दिल्ली' में इनके लड़के का मकान था, वहाँ उतरे थे। वहाँ पूरे दिन स्वयं रहते थे, व्यक्ति नरम है। यह पैसा मैंने खर्च किया... ऐसा नहीं बोला, परन्तु मुझे सबने इकट्ठे होकर श्रावक शिरोमणि की उपमा दे दी है। परन्तु मेरे पास श्रावक के व्रत भी नहीं, प्रतिमा भी नहीं। मेरे पास कुछ नहीं। मैं तो रात्रि को खाता हूँ, 'प्रान्तिज' में ऐसा कहा था न? लोगों को धर्म क्या है, इसकी कोई खबर न मिले।

यहाँ कहते हैं कि धर्म कैसे हो? कि अनादि-अनन्त चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा (है), उसके सन्मुख होकर के आनन्द और ज्ञान के परिणाम के वेदन से जाने, उस परिणाम को धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? जिनेश्वरदेव का मार्ग यह है। अरे..! क्या कहा? **अपने द्वारा ही...** अपने से ही अर्थात् निर्मल वीतरागी दशा से ही, स्वयं अर्थात् वीतरागीस्वरूप चैतन्यस्वरूप जानने में आता है। आहाहा! यह कोई कथा नहीं, भाई! यह तो भगवतस्वरूप आत्मा की वार्ता है। आहाहा! यह दो शब्द में इतना भरा (है)।

'स्वसंवेद्य' स्व अर्थात् अपने से ही, वेद्यं स्वयं जानने में आया है। आहाहा! पुण्य का परिणाम दया, दान, व्रत, यह सब बन्ध का कारण (है)। यह कोई आत्मा का व्यवहार नहीं। आता है न भाई, नहीं? 'प्रवचनसार' की ९२ गाथा में। आत्मव्यवहार, यह दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप यह कोई आत्म व्यवहार नहीं। आहाहा! 'प्रवचनसार' में दूसरा अधिकार ज्ञेय अधिकार में आता है। ९४ गाथा। आहाहा! यह आत्म व्यवहार। आहाहा!

चैतन्यस्वरूपी भगवान यह तो चैतन्य प्रकाश का पुंज प्रभु है। चैतन्य का नूर तेज का पूर प्रभु अन्दर है। उसकी कहाँ नजर की है किसी समय? आहाहा! यह चैतन्यस्वरूपी चकचकाटमान प्रकाशमान प्रभु! यह स्वयं स्वयं से जानने में आये, ऐसी चीज़ है। यह गुरु से और देव से और वाणी से जानने में आये, ऐसी तो नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आगम ज्ञान से भी नहीं जानने में आय?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम ज्ञान, शास्त्रज्ञान से भी नहीं। आहाहा! यह कल-परसों पाठ (सज्झाय) में नहीं आया? शास्त्र पाठी भी मूर्ख है। शास्त्र के पढ़नेवाले ने भी आत्मा को अन्दर से नहीं पढ़ा। आहाहा!

यह तो आनन्द का दरबार भगवान है। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा यह कायमी स्वभाव, हों! अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय ईश्वरता आदि से भरा हुआ तत्त्व है। उसको स्वयं अपने से वेदन करे, उस परिणाम को धर्म और उसको अध्यात्म का व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? अरे..! ऐसी बातें!

'अन्तरिक्ष' में ऐसी बात आयी थी न। 'श्रेयांसकुमारजी'! तुम्हारे थे न वहाँ? धन्यकुमार। 'अन्तरिक्ष' में। 'अन्तरिक्ष' में जब बड़ा व्याख्यान हुआ (तब) पाँच-सात हजार व्यक्ति (थे)। 'शाहूजी' सेठ आये थे, चालीस करोड़। फिर एक दिगम्बर साधु सुनने आये थे, पहले क्षुल्लक थे। यहाँ चौमासा रह गया है, परन्तु यह बेचारे तो एकान्त में कहते थे। महाराज! आप कहते हो, यह चीज़ हमारे पास कुछ है नहीं। हमको तो दीक्षा दे दी लेकिन हम कुछ जानते नहीं। एकान्त में स्पष्ट कहते थे। यह फिर क्षुल्लक का दिगम्बर साधु हो गया। और मैं वहाँ 'अन्तरिक्ष' गया, इसलिए बेचारे बहुत विहार करके सुनने आये। क्या नाम? 'नेमीचन्द'?

मुमुक्षु : नेमिसागर

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे? 'नेमिसागर' यहाँ चौमासा कर गये हैं। क्षुल्लक रह गये

हैं। 'चिदानन्दजी' एक क्षुल्लक थे। 'द्रोणगिरी'। यह भी यहाँ चौमासा रह गये हैं। 'चिदानन्दजी' दो चौमासा रह गये हैं। यह एक रह गये हैं। फिर साधु होकर भी इनको हमारे ऊपर प्रेम बराबर, इसलिए सुनने आये। इसमें व्याख्यान चलता था बहुत व्यक्ति पाँच-सात हजार। इसमें शाहूजी को ऐसा कि यह (गुरुदेवश्री को) महाराज कहते हैं लेकिन यह तो मुनि हैं इसलिए इनकी चीज़ कोई दूसरी होगी। इस बात से कुछ इसमें फर्क होगा। इसलिए शाहूजी उठकर साधु के पास गये। व्याख्यान में बैठे थे। साहब आप व्याख्यान करो। यह क्या है? तब यह बेचारे (साधू) बोले। नरम व्यक्ति भद्रिक है। कि स्वामीजी कहते हैं, यह अक्षर-अक्षर सच्चा है। दो सौ-तीन सौ व्यक्ति देखने एकत्रित हुए ऐसा कि यह शाहूजी पूछते हैं, यह कोई दिगम्बर साधु हैं, थे ही किस समय दिगम्बर? अभी वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। नग्न हुए, इसलिए हो गये साधु? लेकिन व्यक्ति नरम बेचारे। इसलिए कहा, बड़ी सभा थी और दो सौ-तीन सौ तो एक साथ सुनने आये कारण कि यह क्या कहते हैं? 'धन्यकुमार' हमारे वहाँ थे, ब्रह्मचारी इनके भाई वहाँ कर्ता-धर्ता थे। स्वामीजी कहते हैं यह अक्षर-अक्षर सच्चा है, ऐसा कहा बेचारे ने। सब शान्त पड़ गये। ये समझे कि साधु के पास कुछ कहेंगे तो इनसे कोई दूसरी चीज़ होगी। बापू..! यह तो घर की-अन्तर की चीज़ है। यह कोई बाहर की चीज़ नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि आत्मा जो अनादि-अनन्त अचल वस्तु है, यह जानने में आये कैसे? इसकी पहचान कैसे हो? इसकी पर्याय में प्राप्ति कैसे हो? वस्तु है इसकी वर्तमान दशा में प्राप्ति कैसे हो? वस्तु तो वस्तु है, त्रिकाल परन्तु वर्तमान दशा में—अवस्था में प्राप्ति कैसे हो? यह वर्तमान दशा में प्राप्ति ऐसे हो कि इसके ज्ञान का परिणाम, आनन्द का परिणाम द्वारा इसको देखे, जाने तो इसमें प्राप्ति हो। आहाहा! समझ में आया? अरे..! ऐसी बातें अभी। है इसमें? इसमें है या नहीं?

'स्वसंवेद्य' जानने में आता है। **अपने द्वारा ही आप जाना जाता है।** आहाहा! यह आगम की व्यवहार पद्धति से भी नहीं जानने में आता। यह तो राग की क्रिया है। आहाहा! चैतन्य का अध्यात्म का जो व्यवहार (यह) ये, इससे जानने में आये। अर्थात्? भाई! यह तो अपूर्व बातें हैं। परमात्मा जिनेश्वरदेव... आहाहा! जिनकी सभा में इन्द्र और इन्द्राणी

एकावतारी है। सौधर्म देवलोक है न ? यह चन्द्र-सूर्य के ऊपर सौधर्म देवलोक है। बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में असंख्य देव हैं, अभी इनका स्वामी शकेन्द्र है। दो सागर की स्थिति है और एक मनुष्य देह धारण करके मोक्ष जानेवाला है। ऐसा सिद्धान्त में लेख है और इसकी एक मुख्य रानी इन्द्राणी है, यह जब उपजे तब तो स्त्रीपने उपजे, तब तो यह स्त्रीपने उपजे, यह तो मिथ्यात्वपने ही उपजे। जो कोई स्त्री का देह धारण करे यह मिथ्यादृष्टि हो, यह स्त्री का देह धारण करे अर्थात् इन्द्राणी हुई तब तो मिथ्यादृष्टि थी। फिर इन्द्र के साथ भगवान के समवसरण आदि में बहुत बार जाए, इसमें उसको आत्मज्ञान हो गया। यह भी एक देह धारण करके मोक्ष जाना है। दोनों पति-पत्नी इन्द्र और इन्द्राणी सुधर्म देवलोक में हैं। मेरुपर्वत ऊपर सौधर्म देवलोक है। दोनों मनुष्य का देह धारण करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाले हैं। वे इनकी सभा में—भगवान की सभा में आयें यह वाणी कैसी हो ? जो तीन ज्ञान के धनी तो दोनों हैं। मति, श्रुत और अवधि। देव हैं न ? दोनों समकिती हैं। आहाहा ! और जिनको एक भव से मोक्ष जाना है। भगवान ने कहा है और इनको भी खबर है, तुम्हारा यह देव का देह अन्तिम है, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाना है, परमात्मा सिद्ध होना है। ये व्याख्यान में आयें तो वह वाणी कैसी हो ? आहाहा ! बापू ! यह सूक्ष्म बातें, भाई ! वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है। लोगों ने लौकिक कर डाला।

ये यहाँ कहा, **अपने द्वारा ही आप जाना जाता है।** इतने में तो कितना समा दिया है ! चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, वह चैतन्य की निर्मल परिणति द्वारा जानने में आये ऐसा है। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! ज्ञान का परिणाम जो वर्तमान निर्मल करे, राग के विकल्प से भिन्न पड़कर और चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का जो परिणाम लक्ष्य करे, उस परिणाम द्वारा यह जानने में आये ऐसा है। समझ में आया ? यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान द्वारा जानने में आये ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! इसको वहाँ सम्यग्दर्शन में आत्मा जानने में आये और इसकी प्रतीति हो, इसको धर्म कहते हैं। आहाहा ! यद्यपि धर्म तो चारित्र है, भान होने के बाद स्वरूप में रमणता करना। यह पञ्च महाव्रत और नग्नपना, यह कोई चारित्र नहीं। आहाहा !

आनन्दस्वरूप भगवान अपने ज्ञान द्वारा जानने में आने के बाद उस आनन्द में

चरना, रमना, आनन्द में, इसका नाम चारित्र है। यह चारित्र है, वह धर्म है और वह धर्म, दंसण मूलो धम्मो। वह धर्म का मूल समकित है। यह दोनों शब्द 'अष्टपाहुड़' में कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। चारित्तं खलु धम्मो। स्वरूप की रमणता, वह धर्म चारित्र है और उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन। दंसण मूलो धम्मो। यह चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और यह सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति भगवान चिदानन्दस्वभाव के आश्रय से होती है। भूतार्थ, सत्यार्थ के आश्रय से। आता है न? ११वीं गाथा '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवादि जीवो**' त्रिकाली जो चैतन्यस्वरूप त्रिकाली सत्यार्थ भूतार्थ का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है और उस सम्यग्दर्शन द्वारा वह प्रतीति में आता है। आहाहा! कितनी बात धारण करना इसमें? सब बात अनजानी नयी। वह जो ५० वर्ष ६० वर्ष से सुनी। यह तो दूसरी बात निकली। कहते हैं। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! मर जाएगा। यह देह छूटेगी तो चला जाएगा। आहाहा!

'नवनीतभाई' जैसे चले गये। लो! यहाँ प्रमुख बनाया था। 'रामजीभाई' ने सब एकत्रित होकर। पचास-साठ लाख रुपया होगा, यह बाग-बगीचा और दो लाख का मकान बनाया था। मर गये तो किसी ने (बात) उड़ा दी कि बँगला बेच दिया। कोई कल सुबह कहता था। लेकिन अभी गुरुवार को मरे वहाँ बँगला बेच दिया? बाहर में किसी ने बात उड़ा दी। ऐसा कि अब बस हो गया, यह स्वयं थे तो मकान बनाया था। बड़ा बगीचा है। ऐसा कि गया अब क्या? पुत्र तो एक ही है यह व्यापार-धन्धा छोड़ के कहाँ से आयेगा? लेकिन अभी गुरुवार को मरे हैं और शुक्रवार को किसने बेच दिया? कोठारी कहते थे, 'वजुभाई' कोठारी हैं न? कि ऐसी कोई बात गाँव में चलती थी और किसने लिया? कि यह 'चिमनभाई' के 'मधु' ने लिया। यह तो पैसावाला है न? 'मधु' अभी आया था न? गप्पे गप्प। बाईयों में गपुड़ा चला आता है। आहाहा! भाई! यह तो देह छूट जाए और इसमें कहाँ है यह? यह चीज़ तो पड़ी रहेगी। इसमें कहाँ इसकी थी तो इसके साथ आये? आहाहा! इसके साथ जितना अन्दर भाव किया होगा, शुभाशुभभाव अथवा श्रद्धा का, यह इसके साथ आयेगा। बाकी तो सब थोथा (पड़ा रहेगा)। आहाहा! एक बड़ी लड़की है ३५ वर्ष की कुँवारी शादी नहीं की है। ऐसी ही रह गयी अब रह गयी तो रह गयी ऐसी की ऐसी। दूसरी बात कि मैं साधारण हूँ। एक बार यह पेशाब करने जाते थे तब ये

लड़की खड़ी थी बाहर निकले और खाट पर गिरे वहाँ देह उड़ गयी एकदम। अकस्मात् हो गया, लो! गुरुवार को आठ बजे, यह तो देह की स्थिति जिस क्षण में, जिस काल में, जिस क्षेत्र में जिस संयोग में होना है, वह होना है और होना है। इसमें कोई इन्द्र उतरे तो फेरफार हो जाए (ऐसा नहीं) आहाहा! यह अफर चीज़ है। चैतन्यस्वरूप भगवान नित्यानन्द का नाथ का वेदन करो। आहाहा! इस परिणाम से तुझे धर्म होगा और इस परिणाम से तुझे केवलज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'अबाधितं' है। **अमिट है जिसका स्वरूप, ऐसा है।** आहाहा! कभी इसका अभाव हो जाए, ऐसा नहीं है। यह कायम रहनेवाला चैतन्य भगवान है। अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है। यह अनुभव करते जानने में आये ऐसा है और यह अनुभव भी कोई समय मिटे नहीं, बदले नहीं, ऐसी चीज़ है। यह स्वयं नहीं मिटे, ऐसी चीज़ है और अनुभव भी मिटे नहीं, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा!

जिसका स्वरूप, ऐसा है। अन्तिम शब्द। भगवान आत्मा... कल दोपहर को आया था न, नहीं? ज्ञानधाम। फिर ध्रुव के बोल कितने ही थे। तेरह कहे थे, थोड़े कहे थे। बहिन लिखती थी, हमारे 'प्राणभाई' के लड़के की बहू कल लिखती थी। ख्याल है। आहाहा! ध्रुवधाम भगवान है। उसका अनुभव करना, यह धर्म है। आहाहा! उसको अनुसरण करके... अनु... अनु-चैतन्यस्वरूपी भगवान को अनुसरण करके भवना— होना, इसका नाम अनुभव है। राग को अनुसरण करके होना, यह तो विकार है। आहाहा! अथवा परद्रव्य को अनुसरण करके होना, यह भी विकार है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के साक्षात् दर्शन करे और इसका अनुसरण करे तो भी यह राग है। आत्मा आनन्द का नाथ है, उसको अनुसरण करके होता है तो वह धर्म है। समझ में आया? पहले ज्ञान तो करे कि मार्ग तो यह है। जिसका ज्ञान अभी खोटा (है), उसको सच्चे मार्ग में जाने का अवकाश ही कहाँ है? आहाहा! **जिसका स्वरूप, ऐसा है।** लो! ४१ (कलश) हुआ।

कलश-४२

(शार्दूलविक्रीडित)

वर्णाद्यः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम्।।१०-४२।।

खण्डान्वय सहित अर्थ – 'विवेचकैरिति आलोच्य चैतन्यं आलम्ब्यताम्' [विवेचकैः] जिन्हें भेदज्ञान है ऐसे पुरुष [इति] जिस प्रकार से कहेंगे उस प्रकार से [आलोच्य] विचारकर [चैतन्यं] चेतनमात्र का [आलम्ब्यता] अनुभव करो। कैसा है चैतन्य? 'समुचितं' अनुभव करनेयोग्य है। और कैसा है? 'अव्यापि न' जीवद्रव्य से कभी भिन्न नहीं होता है। 'अतिव्यापि न' जीव से अन्य हैं जो पाँच द्रव्य, उनसे अन्य है। और कैसा है? 'व्यक्त' प्रगट है। और कैसा है? 'व्यंजितजीवतत्त्वं' [व्यंजित] प्रगट किया है [जीवतत्त्वं] जीव के स्वरूप को जिसने, ऐसा है। और कैसा है? 'अचलं' प्रदेशकम्प से रहित है। 'ततः जगत् जीवस्य तत्त्वं अमूर्तत्वं उपास्य न पश्यति' [ततः] उस कारण से [जगत्] सब जीवराशि [जीवस्य तत्त्वं] जीव के निज स्वरूप को [अमूर्तत्वं] स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण से रहितपना [उपास्य] मानकर [न पश्यति] नहीं अनुभवता है। भावार्थ इस प्रकार है कि कोई जानेगा कि 'जीव अमूर्त' ऐसा जानकर अनुभव किया जाता है, सो ऐसे तो अनुभव नहीं। जीव अमूर्त तो है परन्तु अनुभव काल में ऐसा अनुभवता है कि 'जीव चैतन्यलक्षण'। 'यतः अजीवः द्वेधा अस्ति' [यतः] जिस कारण से [अजीवः] अचेतन द्रव्य [द्वेधा अस्ति] दो प्रकार का है। वे दो प्रकार कौन से हैं? 'वर्णाद्यैः सहितः तथा विरहितः' [वर्णाद्यैः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श से [सहितः] संयुक्त है, क्योंकि एक पुद्गलद्रव्य ऐसा भी है। तथा [विरहितः] वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित भी है, क्योंकि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य और आकाशद्रव्य ये चार चार द्रव्य और भी हैं, वे अमूर्तद्रव्य कहे जाते हैं। वह अमूर्तपना अचेतन द्रव्य को भी है। इसलिए अमूर्तपना जानकर जीव का अनुभव नहीं किया जाता, चेतन जानकर जीव का अनुभव किया जाता है।।१०-४२।।

कलश - ४२ पर प्रवचन

४२।

वर्णाद्यः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम्।।१०-४२।।

क्या कहते हैं? **'विवेचकैः चैतन्यं आलम्ब्यताम्' जिन्हें भेदज्ञान है ऐसे पुरुष...** धर्मी। जिस प्रकार कहा जाएगा, उस प्रकार से विचार करके चैतन्य का-चेतनमात्र का अनुभव करो। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप जो है, यह कायमी चीज़ नित्यानन्द प्रभु है, इसको अनुभवो। आहाहा! यह कर्तव्य है। बाकी सब धूल धानी का कर्तव्य है। आहाहा! है? **जिस प्रकार से कहेंगे उस प्रकार से विचारकर चेतनमात्र का अनुभव करो।** आहाहा!

कैसा है चैतन्य? 'समुचितं' अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, वे अनुभव करने लायक नहीं। वे तो बन्ध के कारण हैं। आहाहा! और यह भगवान आत्मा.. गजब! बड़ा समुद्र हो लेकिन इसके किनारे चार हाथ का कपड़ा लगा हुआ हो इतना चार हाथ का। व्यक्ति चार हाथ ऊँचा और कपड़ा चार हाथ का अर्थात् इसकी आँख में नजर में कपड़ा नजर आये। वस्तु—समुद्र नजर नहीं आये। ऐसे जो प्राणी पुण्य और पाप के राग में रुक गया है अथवा एक समय की पर्याय में रुक गया है, उसको भगवान देखने में नहीं आता, अन्दर बड़ा समुद्र है। आहाहा! यह आनन्द का सागर है, प्रभु! परन्तु राग की आड़ में, पुण्य के परिणाम की रुचि में यह देखने में नहीं आता। आहाहा! अथवा एक समय की पर्याय प्रगट है, उसकी रुचि में त्रिकाल द्रव्य ज्ञानमूर्ति प्रभु, अज्ञानी को देखने में, दृष्टि में नहीं आता। इसको देखो और इसको अनुभवो, अब कहते हैं, गुलाँट खा जाओ। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, मंगलवार, दिनांक २६-०७-१९७७
कलश-४२-४३, प्रवचन-५०

कलश टीका ४२वाँ कलश चलता है न? थोड़ा आया था। फिर से। यह अजीव अधिकार है अर्थात्? कि आत्मा जो आनन्द, ज्ञानस्वरूप चेतना है, उसमें अजीवपना नहीं। अजीव अर्थात् शरीर, कर्म और शुभ-अशुभभाव, यह सब अजीव हैं। ये चैतन्य के स्वभाव से खाली हैं। यह अजीवपना जीव स्वरूप में नहीं। तब उसका स्वरूप कैसा है? यह कहते हैं, देखो!

जिन्हें भेदज्ञान है ऐसे पुरुष... अर्थात् आत्माएँ। अर्थात्? जिसको वास्तविक चैतन्य तत्त्व भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के राग से भिन्न चेतन का जिसको भेदज्ञान है। आहाहा! भेद अर्थात् भिन्न; शरीर से भिन्न, पुण्य और पाप के भाव जो शुभ-अशुभराग, उससे भिन्न, ऐसा जिसको भेदज्ञान, अजीव से जीवस्वरूप अन्दर भिन्न है (ऐसा जिसने अनुभव किया है)... आहाहा! ऐसे जीवों को **जिस प्रकार से कहेंगे उस प्रकार से विचारकर चेतनमात्र का अनुभव करो।** आहाहा!

जिसे धर्म करना हो... आहाहा! तो उसे यह चेतनास्वरूप जीव, जिसकी सत्ता में पर और स्व जानने में आता है, ऐसा चेतना स्वभाव के सन्मुख होकर उसे अनुभव करो। आहाहा! ऐसी बात अब। इसका नाम धर्म है। जैनधर्म परमात्मा का जिनेश्वर का कहा हुआ, यह जीतना, जैन अर्थात् जीतना। अर्थात् कि इसमें पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उनसे रहित, चैतन्य का अनुभव करना, उसने राग-द्वेष को जीता, यह जैन धर्मी जैन हैं, यह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? है न?

चेतनमात्र का अनुभव करो। [**आलम्ब्यता**] आलम्बन ऐसा। लो, ऐसा लिया है। आत्मा अर्थात् जीव आत्मा यह चेतनास्वभाववाला चेतन, चेतना स्वभाववाला आत्मा, चेतना अर्थात् जानना-देखना ऐसा जो स्वभाव, ऐसा यह आत्मा, उसके सन्मुख होकर और पुण्य और पाप के भाव वह अजीव हैं, उनसे विमुख होकर... ऐसी बात! यह धर्मी का धर्म, इस रीति से है, कहते हैं। आहाहा! धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा चेतना स्वभाववाला, उसे

चेतनास्वभाव से अनुभवना। आहाहा! उसे पुण्य और पाप के भाव का अभाव करके और सद्भाव जो चेतनास्वभाव है, (उसको अनुभवना)। आहाहा! यह कैसी रीति? जो चैतन्य, जीव, चेतनास्वभाव है। उसमें यह पुण्य और पाप के (भाव); शरीर, वाणी, मन तो जड़ हैं। प्रत्यक्ष पर हैं। परन्तु अन्दर जो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, यह भी अजीव हैं, चेतन का इनमें अभाव है और चेतन में इनका अभाव है। आहाहा! ऐसा ज्ञान! भाई! भव के अन्त की रीति, सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा

सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्यदर्शन, अर्थात् भेदज्ञान से यहाँ बात ली है। कारण कि अजीव इसमें नहीं है न? और जीव है, यह चेतनास्वभाववाला अस्तित्व है-होनापने। अर्थात् इसमें अभाव की बात की है, इसलिए भेदज्ञान से बात ली है। समझ में आया? बाकी तो चेतनास्वभाववाला भगवान पर दृष्टि देते यह चेतनास्वभाव यह सत्यार्थ, भूतार्थ वस्तु है। अरे..! भूतार्थ अर्थात् वह भूत होगा? यह भूत-बूत नहीं होते? बापू! भूत अर्थात् मौजूद पदार्थ है। भगवान आत्मा चेतनास्वभाव से भरा हुआ मौजूद पदार्थ है। उसे यहाँ भूतार्थ कहने में आता है। भूत-अर्थ—विद्यमान पदार्थ अस्ति है। आहाहा! उसे सत्यार्थ कहते हैं सत्य पदार्थ त्रिकाल भगवान.. आहाहा! ऐसा चेतनास्वभावस्वरूप जीव को पुण्य और पाप और कर्म, शरीर से अन्तर में भिन्न करके और चैतन्य का अनुभव करो। तुमको सम्यग्दर्शन होगा और तुमको अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा, ऐसा कहते हैं। जयसुखभाई! ऐसी बात है यह। आहाहा! अरे..! यह बात सत्य क्या है यह सुनने न मिले, यह क्या करे? आहाहा!

यहाँ तो यह चीज़ है। भगवान जिनेश्वरदेव परमेश्वर का हुकम यह है। आहाहा! प्रभु! तुझे चैतन्य का अनुभव करना हो अर्थात् कि धर्म करना हो... आहाहा! तो यह चेतना स्वभाव से भरा हुआ भगवान त्रिकाल.. त्रिकाल.. त्रिकाल (है) उसके सन्मुख होकर पुण्य और विकारी भाव हैं, इनसे विमुख होकर **चेतनमात्र का अनुभव करो।** भाषा तो बहुत संक्षिप्त परन्तु... आहाहा! भाव तो अलौकिक है, बापू! अभी तो यह प्रथा सब बिखर गयी है। चेतना जिसका होनापना, चेतना जिसका स्वभाव, ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! इसको पर्याय और राग की दृष्टि से छोड़कर इसको त्रिकाली चेतनस्वभाव ऐसा जीव को

अनुभवना। आहाहा! इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म की पहली श्रेणी इसको कहने में आता है। यह आया था।

कैसा है चैतन्य? 'समुचितं' सम्यक् प्रकार से **अनुभव करनेयोग्य है।** आहाहा! ऐसा धर्म भगवान का होगा? जैन परमेश्वर का? मार्ग तो यह है। आहाहा! अभी तो बाहर में व्रत, तप, भक्ति, पूजा करो, तुम्हें धर्म होगा, (ऐसी प्ररूपणा चलती है) अरे..! प्रभु! यह मार्ग भिन्न है, भाई! आहाहा! यह तो सब विकल्प और राग है, यह कोई धर्म नहीं। इससे भिन्न भगवान चैतन्यस्वरूपी आत्मा विराजता है, इसका अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। आहाहा! वहाँ इसके भव के अन्त का नगाड़ा बजता है। भव का अन्त आ गया है। आहाहा!

चेतनस्वभाव, जिसमें भव और भव के कारणों का अभाव (है)। न्याय-लॉजिक से तो कहा जाता है परन्तु अब पकड़ना (कठिन पड़े)। अनादि से अभ्यास दूसरा, यह अभ्यास नहीं होता। आहाहा! आता है न? श्लोक। भेद का अभ्यास करना। भेदज्ञान का अभ्यास करना। आहाहा! पहले भेदज्ञान का अभ्यास करते राग से भिन्न आत्मा अनुभव में आवे, फिर भेद का अभ्यास करते राग से भिन्न पड़कर स्थिरता करते चारित्र हो। आहाहा! समझ में आया?

यह अनुभव करने के लायक **'समुचितं'** सम्यक् प्रकार से यह उचित है, ऐसा कहते हैं। यह ही उचित है अर्थात् क्या? लोग नहीं कहते कि यह उचित है। यहाँ सम्यक् प्रकार से सत्य उचित यह है। आहाहा! चेतनास्वभाव से भरा हुआ जीव, यह राग और पुण्य के भाव से खाली अर्थात् अभाव (स्वरूप है), इसका सम्यक् प्रकार से अनुभव करना यह ही उचित है, कहते हैं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसा स्वरूप भी क्या होगा? मुश्किल से हाथ आये नहीं। सुनने में मुश्किल पड़ जाए कि यह क्या कहते हैं ये सब? भाई! तुझे खबर नहीं। वीतराग परमात्मा का फरमान तो यह है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक तो आया था।

और कैसा है? क्या कैसा है? चेतनास्वभाव जीव। आहाहा! है न? चेतन स्वभाव का अनुभव कैसा है? **जीवद्रव्य से कभी भिन्न नहीं होता है।** क्या? चेतना जो स्वभाव

है, वह जीव से कभी भिन्न नहीं रहता। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव तो आत्मा से भिन्न रहते हैं, भिन्न वर्तते हैं, भिन्नपने है। समझ में आया? ऐसे व्याख्या और यह क्या होगा? अरे..! प्रभु! मार्ग भिन्न, भाई! क्या करता है? इसको खबर भी नहीं। आहाहा!

चौरासी लाख अवतार करके... यह देखो न अभी तो यह वनस्पति को देखते हैं न नजर से। पानी का पानी गिरे ऊपर। पानी की एक बूँद, उसमें असंख्य तो एकेन्द्रिय प्राणी अपकाय के जीव हैं। आहाहा! यह हरित... हरी... हरित आहाहा! एक बार... अरे..रे..! इसमें एक मक्खी चावल का टुकड़ा खाती थी। यह चावल हो न, चावल? सूक्ष्म पड़ा था और मक्खी खाती थी। अब इसको कोई पूरा चावल नहीं चाहिए। इसकी जठर थोड़ी। पका हुआ चावल। कहा.. आहाहा! यह प्राणी क्या करता है? अन्दर तो चैतन्यस्वरूप भगवान है आत्मा। परन्तु पर्याय में भान नहीं और शरीर जो मिला, वह मैं। और इसको खुराक देना, यह मेरा काम। आहाहा! समझ में आया? यह मक्खी उड़ती ही है न, देखो। यह चावल का टुकड़ा पड़ा था। ऐसे पड़ा था। इसमें बराबर ऐसे धीरे-धीरे जरा.. जरा.. जरा.. अंश ले। वह सूँढ़ होता है सूंढ़ इसकी? इसको जीभ नहीं होती इसको सूँढ़ होती है छोटी। मुँह में रख के... आहाहा! यह क्या है? यह क्या करते हैं? इसके शरीर की खुराक इसको देती है। परन्तु शरीर ही इसका नहीं, और खुराक इसका नहीं।

आत्मा की खुराक तो इसको कहते हैं... आहाहा! जैसे यह सूँढ़ निकालकर चावल खाती है ऐसे निर्मल पर्याय द्वारा चावल शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान का अनुभव करना यह खुराक लेना। आहाहा! वह भगवान के मार्ग में सम्यक् प्रकार से उचित गिनने में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाकी दया, दान और व्रत, भक्ति का भाव, यह अनुभवना, वह अनुचित है। यह जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! सम्यक् उचित, यह ही उचित है, ऐसा कहते हैं। समुचित है न? यह ही वाजबी है, कहते हैं। आहाहा! चेतना स्वभाव जो नित्य है, यह जीव स्वरूप। उसको अनुभवना ही उचित है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव मेरे मानकर अनुभव करना, यह अनुचित है। यह तो मिथ्यात्व भाव है, आहाहा! (यह) कहते हैं। कहो, धर्मचन्दजी! ऐसा कहाँ से निकाला? कितने ही कहते हैं। हम तो सब सुनते हैं इसमें स्थानकवासी में ऐसा कहें, सामायिक करना, प्रौषध करना,

प्रतिक्रमण करना। मन्दिरवासी में यात्रा, भक्ति और तीर्थ और उपधान करते हैं न? डेढ़-डेढ़ महीने का उपधान। डेढ़ महीने तक उपधान करें भगवान के सामने। एक दिन में सैकड़ों उठ-बैठ करके। बापू! यह वस्तु भिन्न है, भाई! यह जड़ की क्रिया भिन्न और उसमें विकल्प उठता है, वह राग है, वह भिन्न चीज़ है। अरे..! प्रभु! यह मार्ग भिन्न, नाथ! आहा..!

अरे..! चौरासी लाख में रहना। अरे..! मक्खी का कहा (यह) कब मनुष्यपना प्राप्त करे। आहाहा! मक्खी चावल खाती थी। जूठन मुँह में रह गयी हो और यह रह गया था (चावल का दाना)। अब इसको यह चावल खाना जँचे। लेकिन स्पष्ट (निखालिस) भगवान चैतन्य स्वभाव निर्मलानन्द है.. आहाहा! इसके ऊपर दृष्टि नहीं, इसका आदर नहीं, इसका सत्कार नहीं, इसका स्वीकार नहीं। और यह राग और पुण्य और उसके धूल के फल आदि का ज़हर का इसको स्वीकार है। आहाहा! समझ में आया?

जीवद्रव्य से कभी भिन्न नहीं होता है। क्या? चेतना.. चेतना.. चेतना.. जो कायमी ध्रुव स्वरूप जिसका-आत्मा का, यह कोई समय जीव से भिन्न नहीं रहता। आहाहा! **'अतिव्यापि न' जीव से अन्य हैं जो पाँच द्रव्य उनसे अन्य है।** आहाहा! भगवान आत्मा से अन्य है। क्या? पाँच द्रव्यों—पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। आहाहा! **पाँच द्रव्य उनसे अन्य है।** क्या? चेतनास्वरूप। आहाहा! **अतिव्यापि न' जीव से अन्य हैं जो पाँच द्रव्य उनसे अन्य है।**

और कैसा है? प्रगट है। यह चेतना स्वभाव अस्तिपने प्रगट है। भगवान आत्मा का चेतना स्वभाव जानना, देखना यह प्रगट है—व्यक्त है। आहाहा! अस्तिपने मौजूद है। चेतनास्वभाव ऐसा आत्मा उसकी मौजूदगी अस्ति है। आहाहा! उसका विद्यमानपना है। आहाहा! समझ में आया? **प्रगट है।**

और कैसा है? 'व्यंजितजीवतत्त्वं' प्रगट किया है जीव के स्वरूप को जिसने,... आहाहा! चेतना, उसने जीव का स्वरूप प्रगट किया है, यह जीव का स्वरूप है। चेतना स्वभाव से जीव का प्रगट किया है स्वरूप। आहाहा! जाननेवाला, देखनेवाला वैसा उसने जीव का स्वरूप जाननेवाले, देखनेवाले भाव से प्रगट किया है (कि) यह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे..! तुझे बाहर में उत्साह वर्तता है, इसमें

तो आत्मा पीड़ित हो जाता है, भाई! तुझे तेरे स्वभाव का उत्साह नहीं आता। आहाहा! पाठ (सज्झाय) में आता है न? इसमें यह आता है। चार सज्झायमाला (पाठ) नहीं आती?

'होंशिडा मत होंश न कीजे' यह सज्झाय पूरी है। एक सज्झाय नहीं? यह तो हमने दुकान ऊपर मँगाई थी उस समय (संवत) १९६५-६६ की बात है, ६८ वर्ष पहले की बात है। दुकान ऊपर (मँगाई) थी। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला हैं। एक-एक सज्झायमाला में ढाई सौ सज्झाय हैं। एक-एक सज्झाय में दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह कड़ी हैं। ऐसी-ऐसी चार सज्झायमाला हैं। यहाँ तो पहले से इसका रस था न। यहाँ हैं चार। भाई में हैं बहुत करके। कैसे भाई? बच्छराजभाई, बच्छराजभाई की अलमारी में है। ये चार तो मैंने उस समय दुकान ऊपर मँगाई थी। ६६-६८ की बात है। संवत् १६६६-६८। कितनों का तो तब जन्म भी नहीं हुआ होगा। इसमें एक सज्झाय ऐसी थी। 'होंशिडा मत होंश न कीजे' अरे..! होंशिडा तुम पर में उत्साह मत करो भाई! तेरी वीर्य की स्फुरणा में पर का उत्साह मत करो यह जहर का उत्साह है, भाई (यह) ज़हर का प्याला (है)। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! **प्रगट किया है जीव के स्वरूप को जिसने,...** चेतना ने। जागृत चेतना.. चेतना.. चेतना.. चेतना.. इसने प्रगट किया है जीव का स्वरूप। राग से जीव का स्वरूप प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, (यह धर्म नहीं)। कठिन पड़े। लोग इसमें तो धर्म मानते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं इस चेतनास्वरूप ने जीव का स्वरूप प्रगट किया है। ऐसा चैतन्य है उसे अन्तर (में) देखो। आहाहा! बाहर को देखने में तो तेरा अनन्त काल गया, प्रभु! आहाहा! परन्तु अन्तर में देखने की तूने कभी निवृत्ति नहीं ली। अभी बहुत से तो ऐसे व्यापार-धन्धेवाले को पूछे तो कहे, बापू! अभी मरने की भी फुर्सत नहीं है, ऐसा कहे। आहाहा! अरे..! वह मूर्खाई का गाँव कोई अलग होगा? ऐसा बोले। अभी तो इतना व्यवसाय है कि मरने के आगे (फुर्सत नहीं)। लेकिन मरेगा तब तो पड़ा रहेगा वहाँ टाँगें टूटकर.. फू.. हो करके। आहाहा! मरने के लिये फुरसत कहाँ नहीं? मरेगा तब तो... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जीव के स्वरूप को जिसने,...** आहाहा! **प्रगट किया है जीव के स्वरूप को जिसने, ऐसा है। और कैसा है? प्रदेशकम्प से रहित है।** आहाहा! यह तो ध्रुव बिम्ब, चैतन्यबिम्ब जिसमें कम्पन भी नहीं। कम्पन यह पर्याय का लक्षण, वस्तु में नहीं। आहाहा! अथवा यह चेतना जो है, वह पर को जानते होने पर भी अपने स्वरूप से चल नहीं होता, ऐसा यह चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहा यह? यह पहले अचल में आ गया था। आत्मा चेतनास्वरूप ध्रुव त्रिकाल है। उस ज्ञान में पर को जानते होने पर भी वह अपने ध्रुवस्वभाव से अथवा जानने की पर्याय से बाहर नहीं निकलता। समझ में आया? अपने में रहकर पर को जानता है, इसलिए यह चल नहीं होता, अस्थिर नहीं होता। आहाहा! ऐसा वह जैन का मार्ग होगा कि अन्य का होगा। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई!

तथा जगत **'ततः जगत् जीवस्य तत्त्वं अमूर्तत्वं उपास्य न पश्यति'** आहाहा! क्या कहते हैं? **उस कारण से सब जीवराशि...** जगत अर्थात् जीवराशि। [**जीवस्य तत्त्वं**] **जीव के निज स्वरूप को...** हैं न? **'अमूर्तत्वं उपास्य न पश्यति'** अमूर्तपने आत्मा का अनुभव ज्ञानी नहीं करता। क्या कहते हैं यह? **सब जीवराशि जीव के निज स्वरूप को [अमूर्तत्वं] स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण से रहितपना मानकर नहीं अनुभवता है।** यह क्या कहते हैं? कि आत्मा जो चैतन्यस्वरूप है, उसे अमूर्त है, ऐसा नहीं अनुभवता। इसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं, इससे अमूर्त है—ऐसा नहीं अनुभवता। कारण कि अमूर्तपना तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल यह अमूर्त तो यह भी हैं। इसलिए अमूर्त जानकर आत्मा को नहीं अनुभवता। अरे..रे..! समझ में आया इसमें? कैसे? कि अमूर्तपना तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, छह द्रव्य हैं न? इनमें पाँच तो अरूपी (हैं), इनमें आत्मा अरूपी है, अमूर्त है और दूसरे चार भी अरूपी हैं। एक यह शरीर पुद्गल रूपी है। यह वाणी, यह पुद्गल दिखायी देता है। भगवान ने धर्मास्तिकाय तत्त्व देखा है। एक अधर्मास्ति, एक आकाश और काल असंख्य द्रव्य हैं। यह सब अमूर्त हैं। तो यदि अमूर्त करके अनुभव करे तो अमूर्त तो यह चीज़ भी हैं। आहाहा! इसलिए धर्मी जीव चेतना को अमूर्तपने करके नहीं अनुभवता। क्योंकि अमूर्तपना तो परद्रव्य में भी है। इसलिए अमूर्तपने नहीं अनुभव कर

सकता। आहाहा! अतिव्याप्ति कहते हैं। अमूर्तपने स्वयं भी है और अमूर्तपना धर्मास्ति, अधर्मास्ति में भी है। यदि इसको (अमूर्तपने से) अनुभव करे तो अतिव्याप्ति हो जाए। तो छोड़ देते हैं इसको (अमूर्तपने को)। समझ में आया? आहाहा! गहरे मिथ्यात्व के कुँए में पड़ा है वह असलिए इसको खबर नहीं कि यह क्या है।

एक बार एक व्यक्ति, आदमी जवान मर जाने का टाइम था। हमारे घर में ही था, बड़ा भाई था (संवत्) १९५७ की साल की बात है। ५७। उस समय ११ वर्ष की उम्र थी (हमारी)। इसकी बहू ऐसे बैठी थी तो रोती थी। क्या (किस प्रकार) रोती थी? यह वहाँ बाई रोती है ऐसी रोती थी। क्या (कहे)? अरे..रे..! (संसार) के गहरे कुँए में उतारकर डोरी काट दी (सहारा छोड़ दिया)। क्या डोरी...? कुछ कहते हैं।

मुमुक्षु : वरत काटा

पूज्य गुरुदेवश्री : वरत काटा। यह भाषा सब... वह कुँआ होता है न? फिर कुँए में नीचे उतारे और फिर वरत काट डाले (सहारा छोड़ दे)। ऐसे वहाँ वह बाई थी वह विधवा थी न? हमारे भाई के मरने की तैयारी थी, इसमें वह असाध्य हुआ था। १९५७ की बात है, शरीर बहुत सुन्दर था। मुम्बई में बड़ा लाठीवाला बड़ा गृहस्थ नहीं? सोनी। 'रामजी भगवान' के यहाँ नौकर था, बहुत होशियार था। पानी लगा था उसको मुम्बई का। उस समय बहुत था न? तो यह बाई रोती थी। अरे... क्या करना अब इससे। गहरे कुँए में उतारकर हमारी वरत काट दी। हाय.. हाय.. ऐसा करके रोये। लेकिन वह कुँआ (संसार-कुटुम्ब का विस्तार) गहरा नहीं है।

स्वरूप के भान बिना पर को अपना मानना, यह मिथ्यात्वरूपी गहरा कुँआ है। आहाहा! इसमें तुम गये, इसमें तुम्हारा स्वभाव कट गया है। आहाहा! समझ में आया? यह दुःखी, कहे! यह बाई दुःखी, लेकिन दुःखी की व्याख्या क्या? धनी मर गया इसमें दुःखी कहाँ से आ गयी? दुःखी तो यह है कि चैतन्य के स्वरूप को राग और पुण्यवाला मानना, यह जीव है, यह दुःखी जीव है, दुखिया जीव है। आहाहा! समझ में आया? बहुत-बहुत देखने का तो बहुत देखा हो न छोटी उम्र से। पिताजी की स्वतन्त्र दुकान थी। इसमें नौ वर्ष रहे। इसलिए अपने कोई पराधीन अथवा कहीं कोई ऐसा नहीं किया। घर का सब स्वतन्त्र

था। बहुत देखने को मिला। आहाहा! क्या करता है यह? कहा।

प्रभु! तुम चैतन्यस्वरूप हो न? यह अमृत के सागर हो। आहाहा! इसको नहीं स्वीकार करते इसमें जो पुण्य और पाप शरीर नहीं, उसका स्वीकार (करते हो) यह मिथ्यात्व के गहरे कुँए में डूब गये हो तुम, बापू! यह चैतन्य के अमृत के सागर को तुमने डोला डाला, नकार कर डाला। समझ में आया? ऐसी बात है।

यहाँ जीव का **जीवराशि जीव के निज स्वरूप को...** अमूर्तपने, स्पर्शपने नहीं अनुभवता। ऐसा आया न? है न? धर्मी जीव आत्मा को अनुभवता है, तब अमूर्तपने नहीं अनुभवता, कारण कि अमूर्तपना तो परद्रव्य में भी है; इसलिए यह अमूर्तपना इसका मूल लक्षण नहीं। आहाहा! समझ में आया? **कोई जानेगा कि 'जीव अमूर्त' ऐसा जानकर अनुभव किया जाता है सो ऐसे तो अनुभव नहीं।** क्या कहा यह, समझ में आया? है तो अरूपी, अमूर्त आत्मा। परन्तु अमूर्त इसका वास्तविक लक्षण नहीं है। अमूर्त तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश भगवान ने जो द्रव्य कहे हैं, यह सब अरूपी हैं, अमूर्त हैं। तो अमूर्त तो वहाँ भी है और अमूर्त तो यह भी है, इसलिए यह अमूर्तपने नहीं अनुभव किया जा सकता। आहाहा! ऐसी तो न्याय-लॉजिक से बात रखी है।

जीव अमूर्त तो है परन्तु अनुभव काल में ऐसा अनुभवता है कि... आहाहा! **'जीव चैतन्यलक्षण'।** आहाहा! यह चेतना जानने-देखने के स्वभाव के द्वारा अनुभव करता है। समझ में आया? ऐसा किस जाति का उपदेश होगा। भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! 'अनन्त काल भटक रहा बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान' सत्य बात क्या है यह सन्तों की (बात) वह सुनी नहीं। आहाहा! तुझे ऐसा लगा कि यह तो सब निश्चय है, यह तो सब ऐसा है, व्यवहार मेरा उड़ जाता है। ऐसा करके सत्य बात को उड़ा दिया है। आहाहा! परन्तु यह सत्य है, वह किसी समय नहीं उड़ता। आहाहा!

कहते हैं कि धर्मी जीव आत्मा को अमूर्तरूप से नहीं अनुभव करते, क्योंकि अमूर्तपना तो परद्रव्य में भी है। यह चेतन लक्षण से, चैतन्य से अनुभवते हैं। क्योंकि यह चैतन्यपना दूसरे में नहीं। आहाहा! दूसरे आत्माओं में चेतन है परन्तु यह चेतनपना वह उनमें नहीं। समझ में आया? ऐसी बात, लो!

अरे.. ! तीन लोक के नाथ केवली परमेश्वर यह कौन है ? बापू ! इसकी लोगों को कहाँ (खबर है ?) यह तो णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं.. (बोलकर) हम पंच परमेष्ठी को मानते हैं। बापा.. ! यह अरिहन्त को पहचानना और उनकी आज्ञा जानना, यह कोई अपूर्व बात है। आहाहा ! यह जिनेश्वरदेव जिनको 'क' बोलें इसमें असंख्य समय निकले, इनको एक समय में तीन काल-तीन लोक (को जानते हैं) उनका अस्तित्व है, इसलिए जानते हैं - ऐसा नहीं (लेकिन) इनकी पर्याय में जानने की ताकत है, इसलिए जान लेते हैं। आहाहा ! ऐसे अरिहन्त परमेश्वर का हुकम यह है कि धर्म करनेवाले को चैतन्यस्वभावी आत्मा द्वारा उसको अनुभव करे, उसे धर्म होता है। आहाहा ! कोई दया पाले या व्रत पाले और भक्ति करे, इसलिए इसको धर्म हो, ऐसा नहीं। यह तो लॉजिक-न्याय से तो कहा जाता है। लौकिक में लॉजिक होता है, इसको तो माने, यह लॉजिक क्या है इसकी खबर न मिले। आहाहा !

'जीव चैतन्यलक्षण'... देखा ? आहाहा ! इस लक्षण के द्वारा जानने में आता है, अनुभवता है। यह जाननेवाला जाननेवाला स्वभाव जो है, यह चैतन्य है, यह चैतन्य है। ऐसा जाननेवाला स्वभाव के लक्षण से अनुभवता है। आहाहा ! यह अमूर्तपने जीव को नहीं अनुभवता, क्योंकि अमूर्तपना है, यह मूल लक्षण नहीं। अमूर्तपना तो पर में भी जाता है। आहाहा !

मुमुक्षु : अमूर्तपना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अतिव्याप्ति हो गयी। आहाहा !

अचेतन द्रव्य... जिस कारण से अचेतन द्रव्य दो प्रकार का है। क्या कहते हैं अब ? कि आत्मा को धर्मी जीव अमूर्तपने नहीं अनुभवता। क्यों ? कि अमूर्त दो प्रकार से हैं। वर्णादि सहित और विरहित। अजीव दो प्रकार के हैं। **वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श से संयुक्त है,...** यह शरीर आदि, वाणी, शरीर, लड्डू, दाल, भात, साग, पैसा यह सब रंग, गन्ध, रस, स्पर्श पुद्गल जड़ हैं। एक यह (अजीव)। **क्योंकि एक पुद्गलद्रव्य ऐसा भी है। तथा वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित भी है,...** कौन ? धर्मास्ति एक धर्मद्रव्य है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने चौदह ब्रह्माण्ड में धर्मास्तिकाय तत्त्व देखा है। जीव

और जड़ ऐसे गति करे, तब उनको गति में निमित्त हो, ऐसा एक अरूपी धर्मास्ति नाम का तत्त्व है। यह सर्वज्ञ जैनशासन में केवली ने ही देखा है, बाकी दूसरे कहीं (यह बात) नहीं है। यह चौदह ब्रह्माण्ड है, चौदह राजू लोक। पुरुष खड़ा हो ऐसे कमर पर हाथ रखकर ऐसा यह जगत चौदह ब्रह्माण्ड पुरुष के आकार का ऊँचा है। असंख्य योजन। ऐसा चौदह ब्रह्माण्ड में धर्मास्ति नाम का एक तत्त्व भगवान ने कहा है कि जो जीव और जड़ (पुद्गल) गति करते हैं, तब यह धर्मास्ति निमित्त बनता है।

जैसी पानी में मछली का निमित्त है। मछली गति करे, तब पानी निमित्त है। यह बाह्य की बात है। वैसे जीव और जड़ गति करे तो अभ्यन्तर में यह धर्मास्ति एक अरूपी तत्त्व है, वह इनको निमित्त है। यह अमूर्त है। एक अधर्मास्ति तत्त्व है कि जो जीव और जड़ (पुद्गल) को गति करते स्थिर हो तो उसको स्थिरता में अधर्मास्ति नाम का (द्रव्य निमित्त है)। जैसे पथिक को मार्ग पर चलते वृक्ष आये और बैठ जाए, उसको यह वृक्ष निमित्त कहलाये। वृक्ष नहीं कहता कि यहाँ बैठ जाओ। परन्तु बैठे तो उस वृक्ष को निमित्त कहने में आये। वैसे गतिपूर्वक स्थिरता करते जीव, स्थिरता करते एक अधर्मास्ति नाम का तत्त्व है कि जो स्थिरता में निमित्त है। परन्तु किसको? गति करते स्थिर हो इसको। समझ में आया? आहाहा! यह भी अरूपी है। परमेश्वर जिनेश्वरदेव का देखा हुआ यह तत्त्व अरूपी है। अभी अंग्रेजी में कुछ कहते तो हैं दूसरा।

मुमुक्षु : ईथर...

पूज्य गुरुदेवश्री : ईथर-ईथर, हाँ ईथर कहते हैं। अंग्रेजी में इसको ईथर कहते हैं। लेकिन यह कोई ईथर नहीं। यह तो अलौकिक दूसरी चीज़ है। अंग्रेजी में.. इनको कहाँ..? इनका जो विज्ञान है, यह तो सब समझने जैसा है और यह तो सर्वज्ञ का विज्ञान है। यह तो विज्ञान का विज्ञान है।

यह अधर्म (हुआ)। काल है। यह चौदह ब्रह्माण्ड में आकाश के असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु है। सूक्ष्म बात है। कालाणु अरूपी एक पदार्थ है। ऐसे असंख्य अणु हैं कालाणु द्रव्य है। ये अरूपी हैं। भगवान ने, परमेश्वर ने केवलज्ञान में देखे हैं। यह अरूपी हैं। आकाश सर्वव्यापक है। लोक में भी है और इस लोक की

स्थिति है, यह असंख्य योजन में है यह जगत है न ऐसे चौड़ा और ऐसे ऊँचा, वह असंख्य योजन में है और फिर खाली भाग है, वहाँ भी आकाश तो है। असंख्य योजन का यह चौदह ब्रह्माण्ड का जहाँ अन्त आया तो फिर क्या? फिर लोक नहीं। जीव-जड़ उसमें नहीं। यह खाली एक आकाश है। यहाँ और यहाँ ऐसा सर्वव्यापक आकाश है। आहाहा! यह भी अरूपी अमूर्त है, इसलिए अमूर्तपने का ध्यान करके आत्मा का अनुभव कर सके, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आत्मा भी अमूर्त और ये भी अमूर्त हैं। परन्तु दो अमूर्त में दो का खिचड़ा आया। आहाहा! ऐसी बात अभी बापू..! यह तो ज्ञान का मार्ग है। आहाहा!

चार द्रव्य और भी हैं, वे अमूर्तद्रव्य कहे जाते हैं। वह अमूर्तपना अचेतन द्रव्य को भी है। इसलिए अमूर्तपना जानकर जीव का अनुभव नहीं किया जाता,... आहाहा! कारण कि अमूर्त यह जीव का मूल लक्षण नहीं। मूल लक्षण चेतना-जाननेवाला-देखनेवाले के लक्षण से लक्षित हो, यह आत्मा है। ऐसी बातें, लो!

मुमुक्षु : अपनी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। है न? इसमें है इसका अर्थ होता है। इसमें है या नहीं? पढ़ना भी आना चाहिए न फिर? अपनी दृष्टि रखकर पढ़े तो समझ में कुछ नहीं आये।

चेतन जानकर जीव का अनुभव किया जाता है। ठीक! यह योगरूप। आहाहा! यह तो चेतन जानना-देखना, जाननेवाला-देखनेवाला वह भगवान आत्मा है। यह चेतना लक्षण से अन्दर में जाने पर अनुभव होता है। इसका नाम धर्म और इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह ४२ हुआ।

कलश-४३

(वसन्ततिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो वत नानटीति।।११-४३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'ज्ञानी जनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्वयं अनुभवति' [ज्ञानी जनः] सम्यग्दृष्टि जीव [लक्षणतः] जीव का लक्षण चेतना तथा अजीव का लक्षण जड़, ऐसे बड़ा भेद है; इसलिए [जीवात्] जीव से [अजीवं] पुद्गल आदि [विभिन्नं] सहज ही भिन्न हैं [इति] इस प्रकार [स्वयं] स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से [अनुभवति] आस्वाद करता है। कैसा है जीव? 'उल्लसन्तं' अपने गुण-पर्याय से प्रकाशमान है। 'तत् तू अज्ञानिनः अयं मोहः कथं अहो नानटीति वत' [तत् तु] ऐसा है तो फिर [अज्ञानिनः] मिथ्यादृष्टि जीव को [अयं] जो प्रगट है ऐसा [मोहः] जीवकर्म का एकत्वरूप विपरीत संस्कार [कथं नानटीति] क्यों प्रवर्त रहा है, [वत अहो] आश्चर्य है। भावार्थ इस प्रकार है कि सहज ही जीव-अजीव भिन्न है, ऐसा अनुभवने पर तो ठीक है, सत्य है; मिथ्यादृष्टि जो एक कर अनुभवता है, सो ऐसा अनुभव कैसे आता है, इसका बड़ा अचम्भा है। कैसा है मोह? 'निरवधिप्रविजृम्भितः' [निरवधि] अनादि काल से [प्रविजृम्भितः] सन्तानरूप से पसर रहा है।।११-४३।।

कलश - ४३ पर प्रवचन

४३।

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो वत नानटीति।।११-४३।।

आहाहा! **'ज्ञानी जनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्वयं अनुभवति'** [**ज्ञानी जनः**] धर्मीजीव **सम्यग्दृष्टि जीव, जीव का लक्षण चेतना तथा अजीव का लक्षण जड़ ऐसे बड़ा भेद है...** आहाहा! शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव भी अजीव है। ऐसा कहते हैं। इनमें चेतना जीव इनमें नहीं। ऐसी बात मुश्किल पड़े। ज्ञानी को राग आये, परन्तु वह राग अजीव रूप से जानकर इससे भिन्न अपने को जानता है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं तुम्हारे? स्कूल-कॉलेज.. कॉलेज.. कॉलेज में प्रोफेसर आये, यह एक घण्टे भाषण दे। फिर वह समझे या न समझे (कुछ नहीं)। एक घण्टे भाषण इसमें पूछने भी नहीं दे। जयसुखभाई! कॉलेज में हजार, दो हजार, पाँच हजार लड़के हों, एक घण्टे भाषण दे। उसको समझने का अवसर नहीं रहे, बस, कहते हैं यह सुनो। प्रश्न का अवकाश नहीं। यहाँ परमात्मा कहते हैं कि हम कहते हैं, वह सुनो और समझो। यह वीतराग प्रोफेसर हैं। आहाहा! हम कहते हैं वह सुनो और समझो, तुम्हारे प्रश्न को यहाँ अवकाश नहीं। आहाहा! ऐसा स्वभाव है, उसकी हम बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव, जीव का लक्षण चेतना तथा अजीव का लक्षण जड़... यह अजीव में सब आ गये, हों! शुभ और अशुभभाव भी अजीव में रह गये। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य लक्षण से... आहाहा! अन्दर विराजमान प्रभु हैं, कहते हैं। तुम स्वयं (हो) लेकिन तुम्हें तुम्हारी कीमत नहीं। तेरी तुझे खबर नहीं, तेरी चीज़ का महात्म्य क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं। बाहर की चीज़ देखने निकला। आहाहा! यह बेटी की जब विदाई करते हैं न? तब पच्चीस-पचास हजार लाख दे न? वींझणा को क्या कहते हैं? वींझणा (पंखा), सोना, पाँच हजार (का) तोला सोना देते हैं, खाट पर बिछायें और सब देखने आये। सबको बुलाये। लड़की को दहेज में देते हैं, दहेज न?

मुमुक्षु : पहेरावणी

पूज्य गुरुदेवश्री : पहेरावणी-पहेरावणी। यह भी भाषा भाई तुम्हारी... पहेरावणी सब बिछाये ऐसे पलंग के ऊपर। घर में था न हमारे ये सब देखा है। फिर सब कुटुम्बी देखने आयें। इतना इतना देते हैं। पचास साड़ियाँ हैं, फिर फलाना है। यह एक-एक साड़ी

पाँच सौ-पाँच सौ की है। इसकी किनारी होती हैं न किनारी? इसमें सुनहरी जरी पतली क्या कहलाती है? गुँथा हुआ हो यह सब ऊपर रखें यह साड़ी सुनहरीवाली है, यह फलानावाली है। करियावर समझते हो सेठ? दहेज-दहेज। सेठ तो सब बेटियों को लाखों रुपया दें, मारवाड़ में तो ऐसा रिवाज है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इन लोगों का मारवाड़ में ऐसा बहुत रिवाज है। करियावर बहुत दें। लाख-लाख रुपया साधारण व्यक्ति खर्च करे मारवाड़ी। बेचारा घिसा जाए। करोड़पति हो इसको कोई तकलीफ नहीं लेकिन साधारण हो इसको बेचारे को मुश्किल पड़े ऐसा है। यहाँ तो परमात्मा ने पहेरावणी निकाली है तेरी। चेतनास्वभाव यह तेरा स्वरूप है, यह तेरी पहेरावणी। इसमें देखने तो आओ। जानने तो आओ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न?

जीव का लक्षण चेतना तथा अजीव का लक्षण जड़ ऐसे बड़ा भेद है इसलिए जीव से पुद्गल आदि सहज ही भिन्न हैं, इस प्रकार स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करता है। आहाहा! धर्मी जीव अपने चेतनस्वभाव से आत्मा को, पर से भिन्न आस्वादता है, इसका स्वाद लेते हैं, कहते हैं। आहाहा! है? सम्यग्दृष्टि जीव इसको कहना कि पुण्य और पाप को पर से भिन्न अपने आत्मा के चैतन्य का स्वाद लेता है। अनुभव अर्थात् स्वाद लेते हैं। आहाहा! आत्मा का स्वाद ले। अरे..रे..! दाल का स्वाद और चूरमा का स्वाद और पतरवेलिया का (स्वाद)... यह अरबी के पत्ते होते हैं न? पतरवेलिया नहीं बड़ा लंबा, फिर बेसन डाल के बीड़ा बनावे, फिर टुकड़ा करके तले। चूरमा के लड्डू हों इसमें पतरवेलिया... ऐसे करके... तृप्त हो गये। आहाहा! धर्म से भूखे हो बापू! तुम्हें भान नहीं। यह धराना नहीं। यह आत्मा के अन्तर स्वरूप में स्वाद में जाए तब तुझे तृप्ति मिले ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्येक कलश में अनुभूति की बात की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है न। आहाहा! अनुभूति यह ही धर्म है और अनुभूति यह ही आत्मा का आचरण है। बाकी सब थोथा है। आहाहा! क्या कहा?

इस प्रकार स्वानुभव प्रत्यक्ष... [**स्वयं**] यह कहा न? स्वयं जिसमें अब व्यवहाररत्नत्रय के राग की भी अपेक्षा नहीं। ऐसा भगवान चेतना स्वयं-खुद अपने से... आहाहा! **स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से...** स्वयं आस्वादन करो। आहाहा! समझ में आया? यह इसकी धर्म समझने, धर्म प्राप्त करने की रीति है। समझ में आया? महँगा लगे परन्तु मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

हलुआ बनाये तो इसकी सास अथवा इसकी माँ लड़की को सिखाये। ऐसे सिखाते हैं। पहले घी में आटा सेंकना और बाद में गुड़ और शक्कर का पानी डालना तो हलुआ बनता है। परन्तु कोई ऐसी डेढ़ सयानी लड़की निकली कि यह तो आटा घी पी जाता है तो क्या करना? फिर बाद में गुड़ का पानी डालना है न? तो पहले गुड़ के पानी में और शक्कर के पानी में आटा सेंक लो और बाद में घी डालो.. और पोटीश भी नहीं होगी, तुझे खबर नहीं। हलुआ तो कहाँ से होता था? इसकी विधि और रीति है, उसकी तो तुझे खबर भी नहीं। महँगा पड़ता है न? आटा घी में सेंकते घी, आटा पी जाता है। इसलिए फिर हलुआ महँगा पड़ता है। इसलिए हमें तो सस्ता बनाना है (हलुआ)।

ऐसे इस रीति से जिसको नहीं आता, इसको सस्ता धर्म करना है दूसरी रीति से। नहीं होगा। अरे.. मर जाएगा। हलुआ-बलुआ नहीं हो। आहाहा! समझ में आया? पोटीश-पोटीश नहीं होती यह? फोड़ा के ऊपर (लगाते हैं)। यह पोटीश में घी.. भी हो। अपने कुद किया नहीं है। लेकिन यह बाई लोग कहें। ऐसी पोटीश करे इसमें थोड़ा बहुत घी डालते हैं, ऐसा कहते हैं। थोड़ा ही घी डालें ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ क्या? थोड़ा बहुत अर्थात् घी बहुत भी नहीं डाले और थोड़ा डाले बिना नहीं रहे। इसका नाम जातु बलतु। ऐसे यह बाईयें कहें यह सुना है। अपने कोई ऐसा फोड़ा भी हुआ नहीं और ऐसी पोटीश (लगायी नहीं)।

इसी प्रकार जिसको भान नहीं कि आत्मा अन्तर चेतनास्वरूप से अनुभव हो सके, यह दूसरी रीति से यदि सरल करने जाएँ कि यह दया, दान और व्रत और भक्ति से हमको सरल मिले, यह सरल नहीं है। चार गति में भटककर मरेगा। यह हलुआ नहीं बने तेरा। ऐसी बातें हैं। आहाहा! गरीब व्यक्ति हो तो घी न डाले, तेल का बनाये। कोली का होता

हैं न ? साधारण व्यक्ति हो, वह तेल का हलुआ बनाये, लेकिन कोई पानी में हलुआ बनता होगा ? और पहले आटे में शक्कर का पानी डाले और सेंके और फिर घी डाले तो हलुआ बनता होगा ? उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, इसको चेतन के अनुभव से वह अनुभवन करने से धर्म हो ऐसा है। इसको महँगा पड़े दया, दान, व्रत, भक्ति से धर्म हो, ऐसा करने जाए तो तेरा सब चला जाएगा। तेरा यह अवतार व्यर्थ जाएगा, भाई ! कहो, शुकनलालजी जगत से सब बहुत उल्टा है। बापू ! यह तो। मार्ग ही भिन्न है, बापू ! आहाहा !

सस्ता करने (के लिये का) दृष्टान्त देते हैं न बहुत बार ? बनिया बहुत कंजूस होता है, फिर लौकी लेने जाए। गाँव से आया हो दो-पाँच मण, डेढ़ मण लेकर। और मण भर खप गया हो पाँच सेर रह गया हो। पहले तो दो पैसा और चार पैसा सेर था न ? अब फिर आठ आना सेर का। इसलिए फिर बिक गया हो और फिर थोड़ी छंटी हुआ बाकी रह गयी हो न थोड़ी छंटी हुई। ऐसी रही हो सेर, दो सेर, पाँच सेर लौकी। फिर कंजूस बनिया आया कि भाई ! देखो, हमने आठ आना सेर बेचा है। यह तुमको तीन आना, चार आना सेर देते हैं। कुछ दाग है, ऐसा कहे। दुबो समझते हो न ? डंक। सस्ता लेकर घर जाए, वहाँ पूरा दागी, कटका भी सच्चा नहीं मिलेगा। यह सस्ता करने गया वहाँ महँगा हो गया। आहाहा !

उसी प्रकार आत्मा का धर्म अन्दर चेतनास्वभाव का अनुभव चाहिए, यह छोड़कर यह सरल करने गया, दया, दान, व्रत, तप और भक्ति से आत्मा मिलेगा। यह सड़ गई हुई मिलेगी तुझे। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं। **आस्वाद करता है।** आहाहा ! **कैसा है जीव ?** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण शुक्ल १२, बुधवार, दिनांक २७-०७-१९७७
कलश-४३, प्रवचन-५१

कलश टीका अजीव अधिकार है, ४३। ४३वाँ कलश है। फिर से।

खण्डान्वय सहित अर्थ - थोड़ा चला है। फिर से। **'ज्ञानी जनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्वयं अनुभवति'** कहते हैं कि धर्म किसको कहते हैं? और धर्मी कौन कहलाता है? आहाहा! ज्ञानी, **सम्यग्दृष्टि जीव...** कैसा है? कि **जीव का लक्षण चेतना...** भगवान आत्मा का लक्षण तो चेतना, जानना-देखना यह लक्षण है।

मुमुक्षु : लक्षण अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्षण अर्थात् जिससे चीज़ लक्ष्य में आये, यह लक्षण है। जिस लक्षण से जो चीज़ लक्ष्य में आये, इसका नाम लक्षण है। तो चेतना जानना-देखना यह लक्षण, इससे जीव लक्ष्य में आता है, ध्येय में आता है, दृष्टि में आता है, उसको लक्षण कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! जैनधर्म वीतराग का धर्म बहुत सूक्ष्म है।

यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा जो है, इसका लक्षण चेतना है अर्थात् कि यह जानना-देखना इस लक्षण से आत्मा लक्ष्य में आता है और अजीव का लक्षण... है? **अजीव का लक्षण जड़...** अर्थात् यह शरीर, कर्म यह सब जड़ है। यह तो ठीक किन्तु अन्दर में जो दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प—राग उठता है, वह भी जड़ है। वह आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श, गन्ध नहीं। अरूपी है परन्तु उसमें ज्ञान का अंश, चैतन्य का अंश नहीं, इसलिए व्रत, तप, भक्ति और पूजा का जो विकल्प उठता है, (उसको जड़ कहने में आता है)। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो बहुत फेरफार हो गया है। आहाहा! यह प्रतिमा लेने का भाव, व्रत का भाव, भक्ति का भाव, पूजा का भाव, यह सब राग है, जड़ है।

मुमुक्षु : शास्त्र वाँचने का भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र वाँचने का विकल्प भी जड़ है। ऐसी बात है, भाई! धर्म का मार्ग सूक्ष्म है। लोग बाहर के आचरण से जाने, यह मान के बैठे हैं कि धर्म हो गया। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

जीव का लक्षण चेतना... अर्थात् यह जानना-देखने के स्वभाव से यह स्वभाववान अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। यह तीसरी लाईन है न? 'जीव का लक्षण चेतना...' इसका अर्थ होता है कि जीव जो भगवान आत्मा अन्दर है, वह तो ज्ञान-दर्शन, जानने-देखन के लक्षण से जानने में आता है और बन्ध का लक्षण राग है। चाहे तो व्रत, तप, भक्ति, पूजा का भाव होता है परन्तु यह सब राग है, वह बन्ध का लक्षण है, वह जड़ का लक्षण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात।

मुमुक्षु : जैनधर्म का लक्षण नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग, वह जैनधर्म ही नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! अभी तो बहुत परिवर्तन हो गया है। सबकी खबर है न। समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव की जो वाणी है, ये सन्त आनन्द में झूलनेवाले वीतरागी मुनि आढ़तिया होकर भगवान की वाणी बताते हैं कि माल यह है। आहाहा! समझ में आया? जयसुखभाई! कठिन बात, प्रभु! क्या कहें? अरे..रे.. अब तो अभी यह व्यवहार क्या, इसकी भी खबर नहीं। व्यवहार जो आता है दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप का विकल्प है यह राग है। यहाँ ये राग को जड़ कहा है। क्योंकि राग स्वयं को नहीं जानता और ये राग चेतन द्वारा जानने में आता है, इस कारण से राग को जड़ और अचेतन कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? बात सूक्ष्म है, भगवान! क्या कहें?

मुमुक्षु : कोई स्थान पर तो ऐसा कहा है कि आत्मा से निकल जाता है, इसलिए जड़ कहने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ ही यह है, इसमें चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, उसकी किरण इसमें नहीं। ज्ञान का, चेतन का जानना देखना यह अंश राग में नहीं। आहाहा! समझ में आया? जयसुखभाई! ऐसी बात है।

भगवान अन्दर आत्मा जो है, यह जीव कहो, आत्मा कहो, भगवतस्वरूपी आत्मा

है। उसका लक्षण तो जानना-देखना, जानने-देखने के लक्षण से जानने में आता है। वह कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से आत्मा जानने में आये, ऐसी चीज़-वस्तु नहीं है। आहाहा! ऐसा जिनेश्वरदेव का जगत को पुकार-हुकम है। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

अजीव का लक्षण जड़ ऐसे बड़ा भेद है... हिम्मतसिंहजी! है? कभी सुना न हो ऐसी बात है यहाँ। अभी तो कहा था न वह ज्ञानचन्दजी! गये थे न? परन्तु यह चीज़ दूसरी है, भगवान! क्या कहें? यहाँ दो बात में बड़ा भेद है।

आत्माान बिना जो कोई व्रत और तप और भक्ति आदि का भाव है, यह तो जड़ है, राग है। परन्तु आत्मज्ञान सहित, आत्मा का अनुभव हुआ कि मैं आनन्द और ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसा जो आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका पर से भिन्न हो करके, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! और इससे भिन्न जितने भाव हैं, यह सब जड़ और जड़ लक्षण हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! यह तो भाई आये न। मुझे लगा कि गुजराती समझते होंगे। इसलिए कल गुजराती लिया। ऐसा लगा कि गुजराती समझते होंगे। कल प्रश्न हुआ तो कहते हैं कि नहीं समझते। इसलिए आज हिन्दी लिया। हिन्दी भी सादी भाषा है। यहाँ बहुत कठिन भाषा नहीं।

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जैसा देखा ऐसा कहते हैं। यह वाणी सन्त, वीतरागी मुनि (जगत को प्रसिद्ध करते हैं)। आहाहा! मुनि तो इनको कहते हैं कि जिनको अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर आनन्द का वेदन हो। आहाहा! प्रचुर क्यों कहा? कि प्रथम सम्यग्दृष्टि में आनन्द का स्वाद है। इसकी अपेक्षा मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद प्रचुर होता है, बहुत होता है। आहाहा! यह कहेंगे अभी।

जीव का लक्षण चेतना... यह कोई कथा-वार्ता नहीं, यह तो अध्यात्म की बातें हैं, भाई! इसके एक-एक शब्द में बहुत मर्म भरा हुआ है। **जीव का लक्षण चेतना तथा अजीव का लक्षण जड़ ऐसे बड़ा भेद है...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो जड़ हैं, इसकी क्रिया भी जड़ है परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप का शुभ उपयोग, शुभराग, शुभ

उपयोग (उठता है).. आहाहा! इसको भी जड़ कहा जाता है। भगवान तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा और जड़ में बड़ा भेद है। दो में बहुत बड़ा विचक्षण भेद है। आहाहा! ऐसी बात अभी इसको कहाँ (बैठे) ? है ?

इसलिए जीव से पुद्गल आदि... अर्थात् जड़, रागादि, ऐसा सब लेना। आहाहा! आदि शब्द है न ? पुद्गल, जड़, शरीर, वाणी, मन, आदि। आदि में पुण्य और पाप के भाव यह सब जड़ है। आहाहा! **बड़ा भेद है, इसलिए जीव से पुद्गल आदि सहज ही भिन्न हैं...** स्वभाव से भिन्न है। आहाहा! भगवान अन्दर ज्ञानस्वभाव पड़ा है, यह ज्ञानस्वभाव से अनुभव में आता है। आहाहा! समझ में आया ? समझ में आये यह समझो, भाई! बात तो ऐसी है। वर्तमान दुनिया से विलक्षण बात है। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं और व्रत और प्रतिमा लेकर के बैठ गया। यह धूल भी नहीं, सुनो न। समझ में आया ? ग्यारह प्रतिमा, दस प्रतिमा, सात प्रतिमा, यह तो विकल्प—राग है। आहाहा! यह तो जड़ का लक्षण है। आहाहा! ऐसी बात है।

परमेश्वर जिनेश्वरदेव, जिसको आत्मा कहते है, इस आत्मा में तो यह पुण्य-पाप का विकल्प राग है, यह भी उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ? सदाचरण करो, राग मन्द करके सदाचरण (करो)। यह सदाचरण का राग है, वह भी जड़ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! सच्चा सदाचरण तो इसको कहते हैं कि जीव स्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप है, इस ज्ञान में एकाग्रता होना, वीतरागी पर्याय का होना, इसका नाम सदाचरण है। अरे..रे..! ऐसी बात अब ये वह क्या कहते हैं ? समझ में आया ? यह कहते हैं कि यह भिन्न है।

सहज ही भिन्न हैं... आहाहा! चैतन्यस्वरूप भगवान और रागस्वरूप विकार यह बड़ा भिन्न है, सहज ही भिन्न है। आहाहा! अन्दर स्वभाव से ही दोनों भिन्न हैं। समझ में आया ? कठिन बात है, बापू! यह मार्ग कोई... आहाहा! पाप का भाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ भाव, यह तो जड़ है, पाप भाव जड़ है। परन्तु यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, पुण्य भाव भी जड़ है। आहाहा! योगसार में तो ऐसा कहा है। योगसार पुस्तक नहीं ? गुजराती है, नहीं ? गुजराती है। है ?

परन्तु भाई गुजराती समझे नहीं। यहाँ तो अपने योगसार रखा है। पाट ऊपर रखा है। योगसार अभी छपा है न ? इसमें ऐसी बात आयी है। योगीन्द्रदेव कहते हैं। है नहीं यहाँ ? है कोई के पास ?

मुमुक्षु : पाप को पाप तो सभी कहें...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आता है। भाषा का क्या काम है ? इसकी तो खबर नहीं ? 'पाप को पाप सहू कहे, पण अनुभवी जीव पुण्य को भी पाप कहे।' आहाहा ! यहाँ पुस्तक नहीं। लेने गये होंगे। यहाँ अपने तो सब व्याख्यान में आ गया है। यह तो ४०-४२ वर्ष हुए। अरे.. ! योगीन्द्रदेव वीतरागी सन्त, मुनि थे। यह वीतरागी सन्त कहते हैं कि भैया ! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध के परिणाम तो पाप हैं परन्तु हम तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव भी पाप है। आहाहा ! क्योंकि आत्मा के स्वरूप से भिन्न चीज़ है और यह पुण्यभाव होता है तो स्वरूप से च्युत होता है। आहाहा ! कठिन बात है, भगवान ! आहाहा !

ये कहते हैं, देखो ! **सहज ही भिन्न हैं...** अन्दर में जो विकल्प राग उत्पन्न होता है... पुस्तक लाये ?

पापरूप ने पाप तो जाने जग सौ लोइ।
पुण्यतत्त्व पण पाप है, कहे अनुभवी बुध जोई॥

सम्यग्दृष्टि अनुभवी धर्मात्मा ऐसा कहते हैं कि पाप तो पाप है ही परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी पाप है। पुण्य है, वह पाप है। आहाहा ! ७१ (वाँ दोहा) है। थोड़ा-थोड़ा गुजराती नहीं समझता ? भाई ! हिम्मतसिंहजी ! थोड़ा-थोड़ा समझते हो ? यह रखो न। गुजराती है। परन्तु थोड़ा ध्यान रखना। ७१ है। ७० और १—७१ है न ? गुजराती बनाया है। है हिन्दी। योगीन्द्रदेव का योगीन्द्रदेव मुनि वीतरागी सन्त थे। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य हैं। ऐसे योगीन्द्रदेव आत्मा के आनन्द काा वेदन करनेवाले बाह्य में नग्न, अन्दर पंच महाव्रत का विकल्प था तो भी इनको जड़ मानते हैं। आहाहा ! पाप को पाप तो सब कहें, लेकिन धर्मी, अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहें। क्योंकि शुभभाव यह राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं। देखो !

सहज ही भिन्न हैं, इस प्रकार... अब चलती गाथा। **इस प्रकार [स्वयं] स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करता है।** क्या कहते हैं? समझ में आया? आहाहा! धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि इसको कहते हैं... आहाहा! अभी चौथा गुणस्थानवाला, हों! पाँचवाँ वाले श्रावक तो कोई भिन्न चीज़ है। ऐई! यह कोई इस सम्प्रदाय में वाड़े के श्रावक, वह श्रावक नहीं कोई। आहाहा! यहाँ तो स्वानुभवप्रत्यक्षरूप से... आहाहा! यह राग भिन्न है, मेरी चीज़ भिन्न है। **इस प्रकार [स्वयं] स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से...** क्या कहते हैं यह? अन्दर ज्ञान का अनुभव करना, जिसमें राग अथवा निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा सीधा आनन्द का अनुभव हो, वह प्रत्यक्ष है। वह परोक्ष नहीं। यह राग और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर चिदानन्दस्वभाव का अनुभव करता है, यह स्वानुभव प्रत्यक्ष आत्मा होता है। आहाहा! इसको सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। सूक्ष्म बात, बापू! अरे..! जगत कहीं-कहीं भटककर मरता है और कुछ का कुछ मानते हैं कि इसमें धर्म हैं। देवीलालजी! आहाहा!

प्रत्यक्ष स्वानुभव, स्व-अनुभव। ज्ञान और आनन्दस्वरूप जो भगवान आत्मा है, इसके आनन्द का वेदन। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को, धर्म की पहली सीढ़ीवाले को, धर्म की पहली सीढ़ी-सोपानवाले को आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसको अनुभव-आनन्द का स्वाद आता है। इसमें राग की जड़ता भिन्न हो गयी। आहाहा! कहो, जयसुखभाई! ऐसी बात है। आहाहा! है? **आस्वाद करता है।** क्या कहा? आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा है। उसमें सम्यग्दृष्टि सन्मुख हो करके आनन्द का स्वाद लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आम के स्वाद जैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे गुणस्थान की बात है।

मुमुक्षु : आम के स्वाद जैसा स्वाद?

पूज्य गुरुदेवश्री : आम का स्वाद कहाँ आता है? आम तो खट्टा-मीठा जड़ है। उसका स्वाद आत्मा को नहीं आता। आत्मा तो अज्ञानी यह आम ऊपर, आम ऊपर लक्ष्य करता है और 'यह ठीक है' ऐसा करता है, उस राग का स्वाद लेता है। आम का स्वाद

तो कोई अज्ञानी को भी नहीं आता। यह तो जड़ है, धूल है, मिट्टी है। मिट्टी का स्वाद, वह तो अरूपी पदार्थ है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो एक बार कहा था न? कि यह माँस, हड्डियों का शरीर है। स्त्री का शरीर और पुरुष का शरीर। यह दोनों विषय लेते हैं, रमण करते हैं तो इसको माँस का, हड्डियों का स्वाद इसको नहीं, भोग नहीं। आहाहा! किन्तु इसमें 'यह ठीक है'—ऐसी राग की वृत्ति उठती है, यह राग का स्वाद है, जहर का स्वाद है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : कितना ही मीठा जहर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा जहर नहीं होता, जहर मार डालता है।

यहाँ तो परमात्मा पाप को, अशुभभाव को तो जहर कहते हैं, परन्तु समयसार के मोक्ष अधिकार में तो पुण्यभाव जो शुभभाव है, उसको भी जहर का घड़ा कहा है। विषकुम्भ, ऐसा पाठ है। भाई! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! यह शुभभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शुभभाव। उसको भी जहर का घड़ा कहा है। क्योंकि अमृतस्वरूप भगवान इससे विरुद्ध भाव है, वह। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! आहाहा!

यह आस्वाद है, यह आनन्द का आस्वाद है। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान जब होता है, तब जो स्वाद आता है, वह आत्मा का अतीन्द्रिय स्वाद है। इस स्वाद में पुण्य-पाप के भाव के स्वाद का अभाव है। आहाहा! और पुण्य-पाप का रागभाव है, उसके स्वाद में चैतन्य के स्वाद का अभाव है। आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़े? क्या हो, मार्ग तो यह है, भाई! अभी तो बिखेर दिया है। बाहर में यह किया, यह करो, यह करो.. आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग भिन्न है, नाथ! तुम कौन हो अन्दर? प्रभु! तुम तो अतीन्द्रिय आनन्द के सागर हो न नाथ! वह अतीन्द्रिय आनन्द का तो सागर है। आहाहा! उसके अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम आत्मज्ञान और आत्मधर्म है। आहाहा! है? [**अनुभवति**] **स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से आस्वाद करता है।** आहाहा! यह तो अध्यात्मभाव है, भाई! यह कोई भाषा, कथा नहीं। यह तो थोड़े शब्दों में गम्भीरता भरी हुई है। आहाहा!

कैसा है जीव? यह भगवान अन्दर स्वरूप-जीव कहो, आत्मा कहो, यह कैसा है? **'उल्लसन्तं' अपने गुण-पर्याय से प्रकाशमान है।** आहाहा! यह तो अपना आनन्द

और ज्ञानगुण और इसकी पर्याय में आनन्द और ज्ञान की पर्याय में प्रकाशमान है। आहाहा! समझ में आया? अरे..! ऐसी बात कहीं (सुनने नहीं मिले)। कहो, देवीलालजी! इसलिए कितने ही कहते हैं न, यह सोनगढ़वाले ने कोई नया निकाला है। कोई नया नहीं। बापू! यह तो अनादि का है। तुमने सुना नहीं था, इसलिए तुमको नया लगता है। यह तो मुनि, दिगम्बर सन्त कह गये हैं। देखो! यह श्लोक किसका है? आहाहा!

धर्म तो बहुत अलौकिक बात है। धर्म तो इसको कहते हैं कि आत्मा आनन्द और ज्ञान स्वरूप से पूर्ण भरा हुआ है। उसके सन्मुख होकर के और दया, दान, व्रतादि के विकल्प राग से विमुख होकर.. आहाहा! यह स्वरूप के आनन्द के वेदन की वीतरागी दशा है, इसका नाम जैनधर्म कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई वाड़ा नहीं, वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

आत्मा जैसा अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागी स्वरूप प्रभु आत्मा है। अन्दर, हों! त्रिकाल वीतरागस्वरूप आत्मा है। पर्याय में वीतराग हो, यह दूसरी चीज है। आहाहा! पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था। किन्तु वस्तु तो त्रिकाल जिनस्वरूपी आत्मा है। 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' वीतरागी वाणी का मर्म यह है कि 'जिन सो ही है आत्मा', वीतरागस्वरूपी आत्मा, यह 'जिन सो ही आत्मा' है और अन्दर जितना पुण्य और पाप का विकल्प आदि उठता है, यह 'अन्य सो ही कर्म।' 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! मार्ग ऐसा है। 'जिन सो ही जिनवर और जिनवर सो ही जिन।' बनारसीदास के समयसार नाटक में आता है। समयसार नाटक है न? यह जिनस्वरूपी ऐसे जिनवर और यह ही जिनस्वरूप आत्मा है। आहाहा! कैसे बैठे?

मुमुक्षु : दिखता क्यों नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखनेवाला दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसने किया? यह दिखता है। दिखता नहीं, ऐसा किसकी अस्ति में निर्णय किया? यह ज्ञान की अस्ति में, ज्ञान की हयाती में निर्णय किया कि मैं दिखता नहीं। दिखता नहीं, यह ही दिखता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह तो १७-१८ गाथा में प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। समयसार की १७-१८ गाथा। यह ज्ञान की जो पर्याय है... सूक्ष्म है, भगवान! यह ज्ञान की जो वर्तमान दशा है प्रगट पर्याय, इसमें ज्ञेय-आत्मा ही जानने में आता है। क्या कहा? फिर से, शरीर, वाणी, मन एक ओर रखो, पुण्य-पाप के भाव एक ओर रखो किन्तु ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है न, जिसमें यह जानने में आता है, राग जानने में आता है। शरीर, वाणी, मन यह पर्याय में जानने में आता है, ऐसी जो प्रगट पर्याय है, इसमें आत्मा ही जानने में आता है, भगवान तो ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वर्तमान ज्ञान की दशा में... परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। कुन्दकुन्द आचार्य ऐसा कहते हैं समयसार की १७-१८ गाथा में कि चैतन्यज्योति वर्तमान ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है। आहाहा! यह राग को प्रकाशता है और स्व को भी प्रकाशता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान! क्या करे? यह मार्ग अपूर्व है। अनन्त-अनन्त काल हुआ, कभी इसने वास्तविक तत्त्व सुना ही नहीं। सुना है तो रुचि नहीं हुई। समझ में आया? अरे! यह दुःखी है.. दुःखी है। यह राग और पुण्य के भाव को मेरा मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि दुःखी है। आहाहा! और यह सुखी है। आस्वाद कहा न? अर्थात् आया न? **आस्वाद करता है।** जो कोई राग से भिन्न होकर अपनी चीज़ का आनन्द और ज्ञान स्वभाव का पता लेकर अनुभव करता है, यह प्राणी सुखी है।

'सुखिया जगत में सन्त, दुर्जन दुखिया रे।' 'सुखिया जगत में सन्त, दुर्जन दुखिया रे।' सुखिया जगत में सन्त का अर्थ... आहाहा! अपने आनन्द की चीज़ जो अनादि-अनन्त है, उसका स्वाद लेता है, यह समकिती जीव सुखी है। आहाहा! बाकी सब करोड़पति, अरबपति, राजा और सेठिया अथवा देव (यह सब) दुःखी हैं। क्योंकि अपने आनन्दस्वरूप से विपरीत पुण्य और पाप के भाव में... आयेगा अभी। एकत्वबुद्धि है, वह दुःखी है। यहाँ अभी आयेगा। अभी आयेगा।

कैसा है जीव? अपने गुण-पर्याय से प्रकाशमान है। आहाहा! यह तो अपने गुण से प्रकाशमान है। ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव से प्रकाशमान है। ज्ञान की पर्याय में यह प्रकाशित होता है, किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। अज्ञानी की दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है।

क्या कहा ? कि जो वर्तमान ज्ञान की व्यक्त प्रगट अवस्था अंश है, इसमें आत्मा ही जानने में आता है। त्रिकाली वस्तु ही जानने में आती है। जयसुखभाई! परन्तु अनादि से इसकी नजर वहाँ नहीं। नजर है वर्तमान पर्याय में, राग में, या निमित्त में नजर है। पर्याय में स्वप्रकाशक चैतन्य है, यह जानने में आता है तो भी इसकी दृष्टि इसके ऊपर नहीं। और दृष्टि पर्याय और राग ऊपर है तो इसका इसको ज्ञान हुआ नहीं। ज्ञान जिसका (ज्ञानस्वरूप का ज्ञान) होता है, इसका ज्ञान नहीं हुआ। आहाहा! फिर से.. यह तो वीतराग का मार्ग है। लॉजिक से-न्याय से (सिद्ध करते हैं)। आहाहा!

जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय है न ? जानते हैं न ? यह राग है, यह शरीर है, यह वाणी है, यह मन है, यह ज्ञान की दशा जानती है न ? तो यह ज्ञान की प्रगट पर्याय-अवस्था है। यह पर्याय में पर्यायवान द्रव्य ही जानने में आता है, भगवान तो ऐसे कहते हैं, क्योंकि ज्ञान की एक समय की पर्याय में स्व-परप्रकाशक उसका स्वभाव है। तो स्व-चैतन्य भगवान ही पर्याय में प्रकाशित होता है, अज्ञानी को भी। आहाहा! परन्तु अज्ञानी की नजर वहाँ अन्तर में नहीं, इसलिए जो ज्ञान में आता है, उसको वह नहीं जानता। आहाहा! और ज्ञान की पर्याय में पर जानने में आता है, वहाँ इसकी नजर है। आहाहा! जयसुखभाई! यह लॉजिक से तो बात आती है, बापू! यह परमात्मा के घर की वकीलात अलग जाति की है। आहाहा! अरे..! अनन्त काल हुआ, साधु अनन्त बार हुआ। हजारों रानी छोड़कर किन्तु आत्मवस्तु क्या है, इसके ऊपर दृष्टि नहीं की। आहाहा! समझ में आया ?

यह कल नहीं कहा था ? छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रेवेयक उपजायो..' मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रत, नग्नपना, हजारों रानी छोड़कर के त्यागी हुआ, परन्तु 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पाया।' यह छहढाला में आता है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात। अरे..रे..! जिन्दगी चली जाती है। ५०-५०, ६०, ७० निकल गये और जो भी समय जाता है, वह मरण के सन्मुख है। मरण नजदीक आता जाता है। आहाहा! इसमें यह चीज़ क्या है ? इसका ज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं किया तो सब थोथा है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

कैसा है जीव ? अपने गुण-पर्याय से प्रकाशमान है। 'तत् तू अज्ञानिनः अयं

मोहः कथं अहो नानटीति वत' आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि एक हजार वर्ष पहले हुए। उनका श्लोक है। यह अमृतचन्द्राचार्य (हैं), यह कुन्दकुन्दाचार्य, यह पद्मप्रभमलधारिदेव नियमसार की टीका करनेवाले हैं। यह अलौकिक बात है। तीनों भावलिंगी दिगम्बर सन्त हैं। वीतरागी आनन्द के वेदनेवाले (हैं)। करनेवाला नहीं, राग के कोई करता नहीं। समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य यहाँ कहते हैं।

ऐसा है तो फिर मिथ्यादृष्टि जीव को... अज्ञानी **जो प्रगट है ऐसा जीव कर्म का एकत्वरूप...** देखो, आया। है? **जीव कर्म का एकत्वरूप विपरीत संस्कार क्यों प्रवर्त रहा है,...** आहाहा! अरे..! चैतन्यस्वरूप भगवान अन्दर प्रगट है। ऐसा होने पर भी यह राग का परिणाम और आत्मा की एकत्वबुद्धि कैसे हुई? आहाहा! कर्म शब्द से रागादि। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर राग से भिन्न चैतन्य पदार्थ पड़ा है न! और **ऐसा है तो फिर...** ऐसा कहा न? जो प्रगट है। मिथ्यादृष्टि जीव को जो प्रगट है ऐसा **जीव कर्म का एकत्वरूप विपरीत संस्कार...** आहाहा! यह ज्ञानस्वरूपी भगवान में राग की एकत्वबुद्धि, यह मिथ्यात्व का मोह है, मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्य जलहल ज्योति चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर प्रभु है। आहाहा! कल दृष्टान्त दिया था कि बड़ा समुद्र हो परन्तु समुद्र के किनारे चार हाथ का ऊँचा कपड़ा लगाया तो चार हाथ का ऊँचा स्वयं हो और चार हाथ का कपड़ा लगा हुआ हो तो कपड़ा नजर में आये। समुद्र? आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द का सागर अन्दर है। परन्तु जिसकी पर्याय और राग ऊपर रुचि है तो यह दृष्टि में नहीं आता है। समझ में आया? राग की प्रेम की रुचि में, यह भगवान चैतन्य स्वरूप अन्दर है, वह इसकी नजर में नहीं आता।

यहाँ यह कहते हैं। अरे..! **मिथ्यादृष्टि जीव को जो प्रगट है ऐसा जीव कर्म का एकत्वरूप विपरीत संस्कार [कथं नानटीति] क्यों प्रवर्त रहा है,...** क्यों उसमें नाचता है? आहाहा! सन्त, वीतरागी दिगम्बर मुनि जगत को उलाहना देते हैं। समझ में आया? उलाहना समझते हो? हमारे गुजराती भाषा में ठपको कहते हैं। अरे..! प्रभु! अन्दर

चैतन्य आनन्द ज्ञान का सागर है न! ऐसी चीज़ ऊपर दृष्टि नहीं करते यह पुण्य और पाप के दया, दान के भाव, विकल्प राग है, उसकी एकत्वबुद्धि तुम क्यों करते हो? तुम क्यों ऐसे भाव में नाचते हो? आहाहा! आज तो पूरा हिन्दी चला। भाव तो सूक्ष्म है। रात्रि में विचार आया था कि भाई गुजराती नहीं समझते, हिन्दी लेना, गुजराती बराबर नहीं समझते। यह तो हिन्दी भी ऐसी। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। आहाहा!

क्यों प्रवर्त रहा है,... आहाहा! आचार्य महाराज सन्त-सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! तुम अनन्त आनन्द और ज्ञान का सागर अन्दर है न, भाई! इसको भूलकर यह राग और पुण्य के भाव के साथ एकत्वबुद्धि (में) क्यों नाचते हो? ऐसा मिथ्यात्व भाव क्यों करते हो तुम? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है या नहीं? यह कथा तो नहीं, भगवान! यह तो भागवत शास्त्र है। आहाहा! इसमें इतनी गम्भीरता भरी हुई है। आहाहा! कर्म शब्द से राग लेना। राग पुण्य के भाव से लेकर सब कर्म कहने में आता है? आहा! पहले जड़ कहा न? अजीव का लक्षण जड़। तो राग से लेकर के सभी जड़। अरे..! चैतनय भगवान ऐसा विराजमान अन्दर है। ऐसा होने पर भी यह राग के, पुण्य के परिणाम और शरीर की क्रिया और कर्म की क्रिया के साथ तुम एकत्व में क्यों नाचते हो? ऐसी मिथ्याबुद्धि में तेरा परिणमन क्यों नाचते हो? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

क्यों प्रवर्त रहा है,... आहाहा! [**वत अहो**] **आश्चर्य है।** है न? आचार्य कहते हैं आश्चर्य हुआ। अरे..! प्रभु! क्या हुआ तेरा? आहाहा! ध्रुव वस्तु प्रभु आत्मा, वह तो ज्ञान और आनन्द और स्वच्छता, ईश्वरता और यह (स्वभाव) अनन्त है। ऐसी वस्तु के साथ जो दया, दान, व्रत, भक्ति या काम, क्रोध का भाव, ऐसी चीज़ के साथ एकत्व करके किसलिए मिथ्यात्वरूप से परिणमते हो तुम? आहाहा! पहले सम्यग्दृष्टि कहा था न? [**ज्ञानी जनः**] **सम्यग्दृष्टि...** दूसरी लाइन। तो सम्यग्दृष्टि का परिणमन तो स्वरूप तरफ के आनन्द के अनुभव का परिणमन है। मिथ्यादृष्टि को आनन्द का अनुभव तो है नहीं, राग की एकताबुद्धि का परिणमन है तो ऐसा किसलिए तुम करते हो? आहाहा! अमृतसागर भगवान आत्मा के साथ पुण्य-पाप के जहर का प्याला, इन दोनों एक क्यों मानते हो? आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन, पैसा तो धूल कहाँ रह गयी। यह तो अन्दर दया, दान, व्रत,

भक्ति, पूजा का भाव, ऐसे राग के साथ तुम एकत्व क्यों करते हो ? आहाहा ! देवीलालजी ! ऐसी बात है, भाई ! आहाहा !

अभी तो सुनने मिले ऐसा नहीं। ऐसा सब फेरफार (परिवर्तन) हो गया है। भक्ति करो, पूजा करो, दान दो, दया पालो, पैसा-बैसा मिला हो तो पैसा खर्च करो। धूल में खर्च करे, यह तो राग मन्द हो तो पुण्य है। यह पुण्य भी जड़ है। पाँच-दस लाख, पच्चीस लाख का मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। धूल में भी नहीं, इसका अर्थ ? कि उसको पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं। आहाहा ! मैं बनाता हूँ, मैंने किया, मैंने लक्ष्मी दी। लक्ष्मी तो जड़ है। यह लक्ष्मी मेरी है, ऐसा मानकर देते हैं, तो मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है।

मुमुक्षु : दया करना, वह नुकसान है...

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन जड़ कहाँ इसके बाप का (था) ? पैसा कहाँ इसका था ? इसका कहाँ पैसा था कि पैसा गया और फिर पाप हुआ, ऐसा कहते हैं। लेकिन पैसा इसका कहाँ था ? यह तो जड़ का है। जड़, मिट्टी, धूल है। धूल को अपना मानकर देता है तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! ऐई.. ! देवीलालजी ! ऐसी बात है, बापू ! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, सन्तों के द्वारा, आढ़तिया द्वारा यह मार्ग कहते हैं।

अरे.. ! राग और आत्मा के **एकत्वरूप विपरीत संस्कार क्यों प्रवर्त रहा है, आश्चर्य है।** आचार्य महाराज कहते हैं कि हमको तो आश्चर्य होता है। आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर वनवासी सन्त हैं। सन्त तो जंगल में रहते थे और यह नग्न ही रहते थे। और यह अन्दर में भी नग्न थे। राग के वस्त्र छोड़कर वीतरागी पर्याय में रमते थे। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, बापू ! लोगों को ऐसा लगता है कि यह किस जाति का धर्म ? यह जैनधर्म ऐसा। जैनधर्म ऐसा है, बापू ! तुझको खबर नहीं। आहाहा !

भावार्थ इस प्रकार है... अब भावार्थ कहते हैं **कि सहज ही जीव-अजीव भिन्न है...** भगवान चैतन्यस्वरूप और अजीव रागादि, शरीरादि तो भिन्न हैं। स्वभाव से भिन्न है। दोनों का स्वभाव ही भिन्न है। आहाहा ! है ? 'ऐसा अनुभव करने पर तो बराबर है,...' ऐसा अनुभव करने पर तो बराबर है। राग, पुण्य, दया के विकल्प से भगवान

आत्मा को भिन्न अनुभव करे यह तो ठीक है। 'सत्य है...' देखो! यह सत्य है। आहाहा! क्या कहा?

सहज ही जीव-अजीव भिन्न है... राग और आत्मा का चैतन्यस्वभाव भिन्न भाव है। **ऐसा अनुभवने पर तो ठीक है, सत्य है;...** आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जो एक कर अनुभवता है...** आहाहा! जिसकी झूठी दृष्टि, असत्य दृष्टि (है)। मिथ्या कहो या झूठी कहो या असत्य कहो। असत्य दृष्टि, यह सत्य स्वरूप भगवान आत्मा को और राग को एक मानकर अनुभव करता है, यह असत्यदृष्टि है। आहाहा! भाषा तो सादी है। भाषा में कोई बहुत सूक्ष्मता नहीं। भाव तो जो है, यह है। आहाहा! अभी तो बहुत गड़बड़ कर डाली है। आहाहा!

शास्त्र में एक दृष्टान्त है। यह गुड़ का रवा होता है न? गुड़-गुड़ रवा को क्या कहा जाता है? गुड़ का रवा-रवा? कपड़े में बाँधा हुआ नहीं होता? दो-दो मन, तीन-तीन मन। इसमें सूर्य की धूप लगे तो इसमें से पतला गुड़ झरे और नीचे वहाँ गद्दा हो गद्दा। गद्दा समझते हो न? रुई का। गुड़ के पानी से गीला हो जाता है। यह सोने के लिये गद्दा, बिछाने का, यह बिछोने को जो कुत्ता आये, कुत्ता यह स्वाद लेने के लिये (गद्दे) को चूंथ डाले।

ऐसे परमात्मा कहते हैं कि वीतरागमार्ग चिदानन्दस्वरूप है। राग से भिन्न ऐसे अनुभव को वीतरागता और धर्म कहते हैं। इसमें अज्ञानी राग को अपना मानकर आत्मा को चूंथ डालता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! आज बैठे, कल बैठे, परन्तु यह बैठे तब ही छुटकारा है, नहीं तो चौरासी के अवतार में मर जाने का है। वहाँ कोई सेठाई या राजाई भी काम नहीं आती। धूल सब पड़ी रहेगी। यह फू... (होकर) चले जाओ। आहाहा! यह नवनीतभाई! गये न बेचारे, देखो न! क्षण में गिर गये। कुछ नहीं। अकस्मात हो गया। ऐसे सूजन तो थी। यहाँ तक सूजन, पग से यहाँ तक। यहाँ प्रमुख थे न? दो लाख का मकान है। हो गया। सब पड़ा रहा। इसकी लड़की बड़ी है। ३५ वर्ष की कुँवारी, यह साथ में थी। पेशाब करने के लिये गये होंगे, ज़रा सहारा (टेका) दिया होगा। ऐसे जहाँ आयी, बस वहाँ गिर गये, मर गये वहाँ के वहाँ ही। वहाँ ही देह छूट गया। यह तो देह की जिस समय जो स्थिति होनी है, वह होनी है, होनी और होनी, इसको कोई कालभेद रोक सके अथवा डॉक्टर-बोक्टर (आकर बचा सके, ऐसा तीन काल में नहीं)।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर भी मर गया। यहाँ अभी बड़ा सर्जन था। यहाँ भावनगर में... यहाँ आते थे। व्याख्यान में एक-दो बार आये थे। बड़े सर्जन। हेमन्तकुमार वह पटनी थे न प्रभाशंकर पटनी ? भावनगर दरबार के दीवान थे, इसके कुटुम्बी हों यह। आहाहा! सर.. सर.. बड़ा ऑपेरशन करते थे। ऐसे करते हुए (कहा), मुझे कुछ होता है। बस, यह ऐसे कुर्सी पर बैठे और मर गये बेचारे। डॉक्टर मर जाते होंगे! इसको इंजेक्शन देना नहीं आया। राग से आत्मा भिन्न ऐसे स्वरूप का इंजेक्शन देना चाहिए तो जीवता जीव रहे। समझ में आया ? अरे..! ऐसी बात अभी। साधारण व्यक्ति को तो पागल जैसी लगे, हों! ख्याल है न ? लोगों को खबर नहीं चैतन्य क्या है, वीतरागता क्या है, सम्यग्दर्शन क्या है... आहाहा! और कैसे हो ? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **मिथ्यादृष्टि जो एक कर अनुभवता है, सो ऐसा अनुभव कैसे आता है, इसका बड़ा अचम्भा है।** आहाहा! चैतन्यस्वभाव से भरा भगवान, त्रिकाली आत्मा और राग विभाव है, इसकी एकत्वबुद्धि के संस्कार करके तुझे अनुभव कैसे हो ? हमको आश्चर्य होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य महाराज तो कहते हैं, हमको तो अचम्भा होता है। अरे..! यह क्या हुआ ? अरे..रे..! चैतन्यस्वरूपी भगवान अन्दर विराजता है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द नाथ! आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के साथ राग के एकत्व का अनुभव करता अहि इसका हमको अचम्भा है। आहाहा! समझ में आया ? है ? **मिथ्यादृष्टि जो एक कर अनुभवता है...** क्यों ? जीव-अजीव भिन्न है न ? पहले कहा था न ? उसको **एक कर अनुभवता है, सो ऐसा अनुभव कैसे आता है, इसका बड़ा अचम्भा है।**

कैसा है मोह ? आहाहा! राग के साथ एकत्वबुद्धि करनेवाला मोह-मिथ्यात्व कैसा है ? **'निरवधिप्रविजृम्भितः'** [**निरवधि**] अवधि बिना। अवधि अर्थात् मर्यादा नहीं, ऐसा **अनादि काल से...** आहाहा! है ? अवधि नहीं, जहाँ मर्यादा नहीं अनादि काल से। आहाहा! मोह, मिथ्यात्वभाव सन्तानरूप से पसर रहा है। अनादि काल से। आहाहा! जब निगोद में था... यह काय, हरितकाय होती है न ? उसमें पहले था। बहुत काल तो वहाँ बिताया है। आहाहा!

जैसे स्त्री का पीहर पहले होता है न ? इससे यह जीव का पीहर पहला निगोद है। शास्त्र में सब देखा है। निगोद समझे ? यह पानी के ऊपर हरी काई होती है न काई ? एक-एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। तो वहाँ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त भव पहले रहा है। आहाहा! वहाँ से कोई निकलकर शुभभाव इसमें है तो इससे मनुष्य होता है। आहाहा! अनादि काल से कहते हैं। आहाहा! सन्तानरूप मिथ्यात्व का भाव (अर्थात्) राग मेरा है, पुण्य मेरा है, ऐसे मिथ्यात्व के संस्कार तो अनादि से चले आये हैं। आहाहा!

ऐसी बातें। जहाँ नजर नहीं पहुँचे। अरे..! भाई! वह नजर नहीं की। जहाँ भगवान चैतन्यस्वरूप विराजता है। वहाँ तुमने नजर नहीं की और उसके साथ राग की एकता की नजर तुमने की है। आहाहा! यह प्रवाह अनादि से चला आता है। समझ में आया ? आहाहा! अब तो छोड़, प्रभु! यहाँ मूल तो ऐसा कहते हैं। अनादि से तो राग की एकत्वबुद्धि करता आया है, प्रभु! तुम दु:खी हो। बाहर में देव जैसे अनुकूलता हो, नवमीं ग्रैवेयक के देव, अनुकूलता का पार नहीं। परन्तु यह राग की एकताबुद्धि से वहाँ देव में रहता है। मिथ्यादृष्टि। आहाहा! क्योंकि यहाँ भी पंच महाव्रत पालकर राग है, उसको अपना मान कर रहा था। यह शुभभाव था। स्वर्ग में गया तो वहाँ भी राग की एकताबुद्धि में मिथ्यादृष्टि दु:खी है। आहाहा! समझ में आया ? यह कहते हैं। यह तो **अनादि काल से सन्तानरूप से पसर रहा है।** आहाहा! अब फिर ४४ कलश कहेंगे... ४३ (पूरा) हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-४४

(वसन्ततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः।।१२-४४।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अस्मिन् अविवेकनाट्ये पुद्गल एव नटति' [अस्मिन्] अनन्त काल से विद्यमान ऐसा जो [अविवेक] जीव-अजीव की एकत्वबुद्धिरूप मिथ्या संस्कार उसरूप है [नाट्ये] धारा सन्तानरूप बारम्बार विभाव परिणाम, उसमें [पुद्गल] अचेतन मूर्तिमान द्रव्य [एव] निश्चय से [नटति] अनादि काल से नाचता है। 'न अन्यः' चेतनद्रव्य नहीं नाचता है। भावार्थ इस प्रकार है-चेतन द्रव्य और अचेतन द्रव्य अनादि हैं, अपना-अपना स्वरूप लिये हुए हैं, परस्पर भिन्न हैं, ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है। जिसको एकत्व संस्काररूप अनुभव है, वह अचम्भा है। ऐसा क्यों अनुभवता है? क्योंकि एक चेतन द्रव्य, एक अचेतन द्रव्य, ऐसे अन्तर तो घना। अथवा अचम्भा भी नहीं, क्योंकि अशुद्धपना के कारण बुद्धि को भ्रम होता है। जिस प्रकार धतूरा के पीने पर दृष्टि विचलित होती है, श्वेत शंख को पीला देखती है, सो वस्तु विचारने पर ऐसी दृष्टि सहज की तो नहीं, दृष्टिदोष है। दृष्टिदोष को धतूरा उपाधि भी है; उसी प्रकार जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोगरूप मिला ही चला आ रहा है, मिला होने से विभावरूप अशुद्धपने से परिणत हो रहा है। अशुद्धपना के कारण ज्ञानदृष्टि अशुद्ध है, उस अशुद्ध दृष्टि के द्वारा चेतनद्रव्य को पुद्गल कर्म के साथ एकत्व संस्काररूप अनुभवता है। ऐसा संस्कार तो विद्यमान है। सो वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष है। और दृष्टिदोष की पुद्गल पिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म का उदय उपाधि है। आगे जिस प्रकार दृष्टिदोष से श्वेत शंख को पीला अनुभवता है तो फिर दृष्टि में दोष है, शंख तो श्वेत ही है, पीला देखने पर शंख तो पीला हुआ नहीं है; उसी प्रकार मिथ्या दृष्टि से चेतनवस्तु और अचेतनवस्तु को एक कर अनुभवता है तो फिर दृष्टि का दोष है, वस्तु जैसी भिन्न है वैसी ही है। एक कर अनुभवने पर एक नहीं हुई है, क्योंकि घना अन्तर है। कैसा है अविवेकनाट्य?

'अनादिनि' अनादि से एकत्व संस्कारबुद्धि चली आयी है ऐसा है। और कैसा है। अविवेकनाट्य? 'महति' जिसमें थोड़ा सा विपरीतपना नहीं है, घना विपरीतपना है। कैसा है पुद्गल? 'वर्णादिमान्' स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण से संयुक्त है। 'च अयं जीवः रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः' [च अयं जीवः] और यह जीव वस्तु ऐसी है [रागादि] राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे असंख्यात लोकमात्र अशुद्धरूप जीव के परिणाम-[पुद्गलविकार] अनादि बन्धपर्याय से विभाव परिणाम-उनसे [विरुद्ध] रहित है ऐसी [शुद्ध] निर्विकार है ऐसी [चैतन्यधातु] शुद्ध चिद्रूप वस्तु [मय] उसरूप है [मूर्तिः] सर्वस्व जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार पानी कीचड़ के मिलने पर मैल है। सो वह मैलापन रंग है, सो रंग को अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है, सो पानी ही है। उसी प्रकार जीव की कर्मबन्धपर्यायरूप अवस्था में रागादिभाव रंग है, सो रंग को अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है, सो चेतनधातुमात्र वस्तु है। इसी का नाम शुद्धस्वरूप-अनुभव जानना, सो सम्यग्दृष्टि के होता है।।१२-४४।।

श्रावण शुक्ल १३, गुरुवार, दिनांक २८-०७-१९७७
कलश-४४, प्रवचन-५२

कलश टीका, अजीव अधिकार ४४वाँ कलश है।

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः।।१२-४४।।

क्या कहते हैं? **'अस्मिन् अविवेकनाट्ये पुद्गल एव नटति'** [अस्मिन्] विद्यमान। [**अस्मिन्**] अर्थात् विद्यमान। क्या विद्यमान? **जीव-अजीव की एकत्व बुद्धिरूप मिथ्या संस्कार...** भगवान आत्मा जीव ज्ञानस्वरूप और पुण्य और पाप के राग के भाव सहित सब अजीव, यह अजीव और जीव की एकताबुद्धिरूपी विद्यमान मिथ्या संस्कार है। आहाहा! आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और इसमें जो यह पुण्य और पाप

के भाव आदि, शरीरादि सब, यह सब उपाधिभाव हैं। इसमें एकत्वबुद्धि के संस्कार, यह मिथ्यात्वभाव है। जीव और अजीव दो की एकत्वबुद्धि अर्थात् मिथ्यात्व। और अजीव उसको कहते हैं कि चाहे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, परन्तु यह राग अजीव है। आहाहा! इसमें जीवस्वरूप, चेतनस्वरूप का अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग यह तो जीव की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से? किन्तु यह तो कहा। पर्याय तो इसकी है। किन्तु यह पर्याय मेरी है, ऐसी जो पर्यायबुद्धि की मान्यता है, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बात है।

अन्दर चैतन्य भगवान ज्ञानज्योति, ज्ञान का शीतल चन्द्र जैसा हो, ऐसा शीतल स्वरूप, ज्ञान शान्तस्वरूप, अविकारी शान्तस्वरूप चैतन्य को आत्मा कहते हैं, और इसमें जो यह राग और पुण्य और पाप के भाव (होते हैं), वे सब अजीव हैं। जीव का स्वभाव इनमें नहीं। वैसे जीव के स्वभाव में यह नहीं। आहाहा! यह दो में एकरूपी मिथ्या संस्कार विद्यमान है, कहते हैं। अनादि काल से विद्यमान हैं यह। आहाहा! कैसा है? [**नाट्ये**] **धारा सन्तानरूप बारम्बार विभाव परिणाम...** धारावाही जैसे.. आहाहा! प्रापत पड़ता है न जैसे? धारावाही पानी। नहीं, वह एक ठिकाने पर? कहाँ गये थे?

मुमुक्षु : जोग फाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। जोग फाल ऐसा ऊपर से पानी का प्रपात गिरे। धारावाही सदा ही गिरता रहे। धारावाही एक धारा। बहुत गहरा है, अपन एक बार देखने गये थे। बाकी एक बार यहाँ बगसरा है न? बगसरा, बगसरा, वहाँ दो तरफ नदी और नीचे नदी, तीन नदी हैं। यह बगसरा है न? तीन नदी, एक नीचे नदी, एक इस तरफ नदी। एक इस तरफ नदी। इसमें इस तरफ नदी में इतना सब पानी बहता था कि इसके प्रपात से मशीन चलाती थी। तुम्हारे गाँधी। वजुभाई के समधी, नहीं? गाँधी-गाँधी में से एक था कोई। मैं जंगल निकला था और बाहर जाने, वहाँ एक पानी का इतना प्रपात गिरता था कि यह मशीन ऊपर प्रपात गिरे, मशीन चलानी नहीं पड़े, यह मशीन ऐसे ऐसे चले, इसके ऊपर पानी का प्रपात गिरता ही रहे। इतना पानी। इससे मशीन चला कर यह कपास का कुछ था। यह तो

संवत १९८४ की बात है। ८४ के वर्ष। १६ और ३३ - ४९ हुए। गाँधी थे। पानी के प्रपात में इतना पानी आया करे कि इसके प्रपात के कारण तो मशीन घूमे।

ऐसे इस आत्मा में ऐसा कहते हैं, अनादि से अज्ञान का प्रपात चलता है। यह राग और पुण्य और पाप के भाव... यह देह तो जड़ है, यह तो स्पष्ट है, यह तो मिट्टी धूल है। अन्दर में कर्म है, यह अजीव और धूल तो सूक्ष्म रजकण है किन्तु यह दया, दान, व्रत, भक्ति और काम, क्रोध के शुभ-अशुभभाव (होते हैं), यह भी यहाँ तो अजीव गिनने में आया है। आहाहा! यह अजीव और भगवान आत्मा चैतन्यज्योत सूर्य चन्द्र, चैतन्य का यह शीतल चन्द्र है, ऐसे आत्मा के साथ.. आहाहा! इसको राग और पुण्य के, पाप के भाव, एकत्वबुद्धि के संस्कार अनादि से विद्यमान हैं, ऐसा कहते हैं और इसके कारण से धारावाही विकार चला करता है। आहाहा! मिथ्यात्व का प्रपात चलता है। आहाहा! है?

धारा सन्तानरूप बारम्बार विभाव परिणाम... अर्थात् कि राग, वह मैं हूँ— ऐसा जो मिथ्यात्व परिणाम, धारावाही अर्थात् टूटक हुए बिना यह मिथ्यात्वभाव के संस्कार अनादि के चलते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पर में सुखबुद्धि, यह मिथ्यात्वभाव धारावाही अनादि से चलते हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु है, इसको नहीं देखते, नहीं मानते, दृष्टि की विपरीतता के कारण से पर में, पैसे में, लक्ष्मी में, शरीर में, आबरू में सुख है, ऐसी जो बुद्धि मिथ्यात्व, यह विद्यमान संस्कार अनादि का धाराप्रवाही चलता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा है।

एक ओर दोपहर को कहे हैं कि यह राग है, वह जीव की पर्याय है और जीव उसका कर्ता है, यह अज्ञानभाव की बात है। समझ में आया? राग का विकल्प जो उठता है, वह है, तो आत्मा की पर्याय, आत्मा स्वयं करता है किन्तु वह अज्ञानभाव से उसका कर्ता होकर अपना मानता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ज्ञानस्वभाव चैतन्य है... आहाहा! चैतन्यचन्द्र शीतल.. शीतल.. शीतल.. शीतल.. स्वरूप भगवान आत्मा के स्वभाव के साथ राग है, यह आकुलता है, यह दुःख है। आहाहा! यह शीतल चैतन्यस्वभाव और दुःख स्वभाव, राग इसको एकत्व मानता है, वह मिथ्या श्रद्धा विद्यमान अनादिकाल से धारा प्रवाह चलता है। कहो, समझ में आता है या नहीं? आहाहा!

यह शरीरादि तो मिट्टी धूल है, यह तो अजीव है। यह कोई आत्मा नहीं। यह तो मिट्टी है। किन्तु अन्दर पुण्य और पाप के भाव हैं, इनको यहाँ तो अजीव कहा है। कल भाई ने प्रश्न किया था। हिम्मतसिंह आये थे न? बराबर इनको रस नहीं था। सब बाहर में हो-हा। यह सुनने में दिखता था न। बाहर में वह भाई गया हुआ न? ज्ञानचन्दजी, सम्मेदशिखर व्यक्ति इकट्ठे हुए थे। यह व्याख्यान करनेवाले बहुत मीठे व्यक्ति हैं। यहाँ की शैली से बहुत सरस करते हैं। ज्ञानचन्दजी। विदिशा न? कहाँ के? विदिशा के। इसमें इनकी मदद थी। यह हिम्मतसिंह बैठे थे न? किन्तु ऐसा ध्यान रखना और यह सब इसमें जाने हम.. इसको सुनने में बराबर रस नहीं था। जम्हाई आती थी।

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसा नहीं था?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आये तो इसको समझने के लिये तो यहाँ आया हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किन्तु सादी भाषा से तो चलता है। इसमें कोई संस्कृत और व्याकरण और कोई ऐसी बात नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस दुनिया में बुद्धिवाला कहलाये, वे सब समझने जैसे हैं सभी।

यहाँ तो आत्मा और राग की एकता बुद्धिवाले पागल और मूढ़ हैं, ऐसा कहते हैं। चाहे तो देव हो और चाहे तो यह बड़ा अरबपति व्यक्ति हो, यह चैतन्य नित्यानन्द प्रभु, अनाकुल आनन्द का कन्द आत्मा, इसको राग का भाव यह दुःख है। इसमें चैतन्य का, स्वभाव का अभाव है। आत्मा आनन्द है, उसका इसमें अभाव है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसका इस राग में अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपनी पर्याय में होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय इसकी है। कहा न? दृष्टिदोष है इसका। पुद्गल तो निमित्त है, ऐसा करके पुद्गल नाचता है, ऐसा कहेंगे। दृष्टिदोष है इसका कि जो स्वयं चैतन्य ज्ञानानन्द प्रभु (है), इसकी त्रिकाल अस्ति है, इसके ओर की इसकी नजर अनादि

से नहीं... इसकी नजर अनादि से पुण्य और पाप और इसके फलरूप से यह धूल आदि मिले इसके ऊपर नजर (है)। यह मिथ्यात्व के संस्कार की दशा अनादि की धाराप्रवाही चली आती है। आहाहा!

यह कहते हैं, देखो! **धारा सन्तानरूप बारम्बार विभाव परिणाम उसमें अचेतन मूर्तिमान द्रव्य निश्चय से अनादि काल से नाचता है।** अर्थात्? एकत्वबुद्धि में पुद्गल ही नाचता है, कहते हैं। क्योंकि उपाधि का भाव स्वयं किया किन्तु, उस उपाधि में निमित्त पुद्गल है। इसलिए पुद्गल का ही यह नाच है। आत्मा उसमें नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं ऐसा?

मुमुक्षु : आत्मा का दोष नहीं हो तो धर्म करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। दृष्टिदोष पहले ही कहा। दृष्टि इसकी चैतन्य स्वभाव ऊपर नहीं होने से, दृष्टि कर्म के निमित्त से होते उपाधिभाव.. होते हैं अपनी पर्याय में, किन्तु यह उपाधिभाव को अपना मानकर मिथ्यात्व संस्कार से, अनादि से धाराप्रवाह मिथ्यात्व का सेवन करता आता है। यह सब पुद्गल का नाच है, ऐसा कहते हैं यहाँ। चैतन्य का नहीं। चैतन्य तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात अब।

मुमुक्षु : पुद्गल का नाच हो, इसमें हमको क्या तकलीफ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दृष्टि किसकी है? यह राग ऊपर दृष्टि है, यह इसकी है या नहीं? ऐसा कहते हैं। इस दृष्टि में पुद्गल निमित्त है, इसलिए पुद्गल नाचता है—ऐसा कहने में आया है। क्योंकि आत्मा तो ज्ञान और आनन्द शीतल-शीतल शान्तस्वयप प्रभु, वीतरागमूर्ति आत्मा है। यह वीतरागमूर्ति राग में कैसे आये? आहाहा! यह आत्मा का नाच नहीं। आहाहा! ऐसा कहना है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, यह सब राग है और राग है, वह अपना है—ऐसा मानता है, ऐसे जो मिथ्या संस्कार यह पुद्गल का नाच है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! क्या हो? पूरी मूल बात पड़ी रह गयी और मूल छोड़कर सब (बातें)। दूल्हा छोड़कर बारात जोड़ दी है। आहाहा!

ऐसे चैतन्यमूर्ति प्रभु आत्मा की दृष्टि और उसके अस्तित्व की प्रतीति के अभाव

में पुण्य और पाप के भाव, इसकी अस्ति है.. यह कहा है न ? यह मेरा है, यह मानी हुई विद्यमान वस्तु है। यह नहीं है - ऐसा नहीं है। अज्ञानी कहता है कि भाई ! यह तो भ्रम है। परन्तु भ्रम है न ? ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा ! यह चैतन्यस्वरूप भगवान नित्यानन्द प्रभु, उसमें राग का भाव वह दु:खरूप आकुलता है और चैतन्य के ज्ञान का उसमें अभाव है और अतीन्द्रिय आनन्द का इसमें (राग में) अभाव है। आहाहा ! चाहे तो शुभराग हो अथवा अशुभ हो, शुभ उपयोग हो.. आहाहा ! यह पुद्गल के निमित्त से हुई उपाधि है। आहाहा ! स्वभाव में यह चीज़ नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। अजीव अधिकार है न ? अन्तिम गाथा है। आहाहा !

जिसकी नजर चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा के ऊपर नजर अनादि से नहीं और इसकी नजर में अनादि से यह पुण्य और पाप के भाव और इसके फलरूप से यह धूल आदि मिले कि यह सामग्री स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, बँगला, हजीरा मिले। हजीरा समझते हो ? जामनगर में नदी के किनारे हैं। हजीरा। यह लोटियावोरा होते हैं न ? लोटियावोरा। यह जामनगर में नदी के किनारे बड़ा हजीरा है। हजीरा अर्थात् जिसमें वोरा को दबाये।

मुमुक्षु : कब्रिस्तान...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कब्र परन्तु यह लोग इसको हजीरा कहते हैं। बड़ा हजीरा। नदी के किनारे है न ? हमने तो सब देखा है न ?

ऐसे यह आत्मा... आहाहा ! यह शरीर और वाणी और मकान, यह मेरे—ऐसी मान्यता में दब गया है। यह हजीरा में दब गया है यह। आहाहा ! समझ में आया ? जयसुखभाई ! यह इसकी दृष्टि का दोष है, किन्तु दृष्टि में पुद्गल का निमित्त है। इसलिए निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से पुद्गल नाचता है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा ! भारी बातें, बापू.. ! ऐसा मार्ग, ऐसा उपदेश अभी। कोई समय सुना नहीं हो। यह करो, और यह करो.. ऐई.. ! जयसुखभाई ! बापू.. ! प्रभु.. ! तेरा मार्ग भिन्न है, भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं अनादि काल से अचेतन मूर्तिवन्त पुद्गल ही नाचता है। आहाहा ! भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप का यह नाच कहाँ है ? आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, इसका नाच तो आनन्द और ज्ञान की परिणति—अवस्था होना, वह उसका नाच है। और यह राग

और पुण्य-पाप का नाच यह इसका नहीं इसलिए पुद्गल का है, ऐसा कहा है। आहाहा! अभी ऐसा उपदेश! यह क्या कहते (हैं)? सूक्ष्म बात, बापू..!

'न अन्यः' चेतनद्रव्य नहीं नाचता है। क्या कहा? देखा! भगवान चेतन तो आनन्द और ज्ञान का सागर है। यह विकार में नहीं आता। पुण्य-पाप के विकार में यह चैतन्य वस्तु है, यह नहीं आती। आहाहा! यह नहीं नाचता। आहाहा!

मुमुक्षु : जीव करे दोष...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष इसका अपना। दृष्टि कहा न? दृष्टि तो इसकी है। किन्तु यह दृष्टि में निमित्तपना पुद्गल का है, दृष्टि में निमित्तपना आत्मा का नहीं। अर्थात् कि विपरीत कारण में आत्मा नहीं, विपरीत दृष्टि में आत्मा नहीं। एक न्याय से तो यह विपरीत दृष्टि में द्रव्य है, वह निमित्त है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। वस्तु है, यह इसका मूलकारण नहीं अर्थात् निमित्त है ऐसा। विकारी दृष्टि और विकार का परिणाम यह मेरा, इस मान्यता में जीवद्रव्य है, ये तो निमित्त है। निमित्त अर्थात् कि उपस्थिति है, उससे विकार नहीं हुआ। उपादान तो पर्याय में विकार अपने से हुआ है। यह निमित्त तो नहीं, किन्तु विकार में इस तरफ की दृष्टि है.. आहाहा! पुद्गल ऊपर इसकी दृष्टि है, इससे पुद्गल नाचता है, ऐसा कहने में आया है। देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, बहुत सूक्ष्म, बापू! अरे..रे..! जन्म-मरण करके दुःखी है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा निमित्त तो उपादान...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान यह विकारी पर्याय है। यह विकारी पर्याय में वह निमित्त है, यह उपाधि में निमित्त है यह। उपाधि में वह निमित्त 'है' इतना। और यह तो उपाधि में वास्तविक निमित्त है। आहाहा! समझ में आया?!

चेतनद्रव्य नहीं नाचता है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, प्रभु! अतीन्द्रिय अनाकुल स्वरूप वह कोई राग में नाचे? आहाहा! इससे यह पुण्य और पाप के भाव अजीव स्वरूप हैं, उनको जीव स्वरूप के साथ एकत्व मानना और इसके कारण से धारावाही विभाव होता है, इस विभाव को यहाँ पुद्गल का नाच कहा है। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है–चेतन द्रव्य और अचेतन द्रव्य अनादि हैं,... भगवान चैतन्य वस्तु भी अनादि की है और पुद्गल अचेतन भी अनादि है। **अपना–अपना स्वरूप लिये हुए हैं,...** आत्मा, आत्मा के स्वरूप से, चैतन्यस्वरूप से, आनन्दस्वरूप से है और जड़, जड़स्वरूप से अनादि का है। **परस्पर भिन्न हैं...** चैतन्यस्वभाव और रागादि स्वभाव परस्पर भिन्न है। आहाहा! अभी तो ऐसा कहते हैं कि व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो, पंच महाव्रत धारण करो। यह तो सब राग है। आहाहा! इस राग को अपना मानना और राग से मुझे लाभ होगा, ऐसा मानना यह मिथ्या संस्कार, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह जीव में अजीव के संस्कार डालकर एकत्वबुद्धि की है। आहाहा! ऐसी बात कठिन बहुत, भाई!

ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है। क्या? **परस्पर भिन्न हैं, ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है।** राग और भगवान आत्मा दो भिन्न हैं। चैतन्यद्रव्य ही त्रिकाल भिन्न है। राग के विकल्प में चैतन्य द्रव्य है, यह नहीं आता। ऐसा प्रगट दोनों भिन्न हैं। आहाहा! इससे **ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है।** आहाहा! कैसे सुगम है? कि चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव है, यह तो त्रिकाली एकरूप से रहा हुआ है और राग है, उसमें यह चैतन्यद्रव्य आया नहीं। इसलिए राग से भिन्न चैतन्यद्रव्य का अनुभव सुगम है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव का (मार्ग है)।

मुमुक्षु : कोई स्थान पर ऐसा लिखा है, ऐसा अनुभव करना कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कठिन है, यह किस रीति से? एकत्व मानकर यह संस्कार है इसलिए। किन्तु यहाँ तो कहते हैं, वस्तु जहाँ अखण्ड अन्दर पड़ी है, इसलिए सुगम है।

दो अपेक्षाएँ हैं। अनादि के राग को अपना माना है, इस संस्कार के कारण से पृथक् पड़ना दुर्लभ है, अशक्य (नहीं)। दुर्लभ है। किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि चैतन्य त्रिकाली वस्तु विद्यमान है न? आहाहा! यह रागादि भाव तो क्षणिक, विकृत, क्षणिक होते हैं और भगवान आत्मा चैतन्य द्रव्य कायम अनादि-अनन्त शुद्ध द्रव्य भिन्न है। इसलिए 'है' इसका अनुभव करना सुगम है। ऐसा है। आहाहा! अरे..! बापू..! यह तो वीतराग परमेश्वर का मार्ग है, अभी तो बिखेर दिया है। और यह बात सुने तो इसको ऐसा (कहते हैं) कि यह तो निश्चय की बातें-निश्चय की बातें, ऐसा करके वह लोग मश्करी करे और उड़ा

देते हैं। करो, करो बापू! अनादि से वह (सब) ऐसा ही किया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है।** कैसे? कि **अपना-अपना स्वरूप लिये हुए हैं, परस्पर भिन्न हैं...** इसलिए। चैतन्य, चैतन्य स्वरूप से है, रागादि विकार, विकारस्वरूप से है। परस्पर दो स्वरूप से अपने से है और परस्पर भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? इससे **अनुभव प्रगटरूप से सुगम है। जिसको एकत्व संस्काररूप अनुभव है,...** जिसको एकत्व संस्कार, राग का और चैतन्यस्वरूप कायमी चीज़, इसने राग की क्षणिक उपाधि के साथ एकत्वबुद्धि है। है? **वह अचम्भा है।** यह तो आश्चर्य हो गया। प्रभु! यह क्या हुआ तुझे? आहाहा! यह ऐसा कहते हैं यहाँ। अजीव (अधिकार) का अन्तिम श्लोक है न? आहाहा!

चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द का चौसला अन्दर पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द का... चौंसला समझते हो? यह बर्फी का चौंसला करते है, ऐसे टुकड़ा करके? यह अतीन्द्रिय आनन्द का चौंसला अन्दर है। यह इसके स्वरूप से है, राग, रागस्वरूप से है। अपने-अपने स्वरूप से दोनों हैं और वह दोनों स्वरूप से भिन्न है। आहाहा! ऐसा कहकर... आहाहा! भिन्न हैं तो भिन्न का अनुभव (होना) सुगम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दोनों एक हो गये हों, तब तो अनुभव कठिन है। एक हुए नहीं। सुरेन्द्रजी! ऐसी बात है, भाई! दुनिया से निराली बातें। दुनिया क्या मानती है और... यह सब दुनिया के नाटक तो देखे हैं न। आहाहा!

एकत्व संस्काररूप अनुभव है, वह अचम्भा है। यहाँ तो यह कहते हैं। अरे..रे..! प्रभु! चैतन्य आनन्द का नाथ त्रिकाली विद्यमान पदार्थ (है), इसको यह राग के साथा एकत्वबुद्धि तो आश्चर्य है, अचम्भा है। यह तुमने क्या किया? आहाहा! यह अचम्भा है। भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वर ने कहा जो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा... किन्तु उसकी नजर कोई समय की नहीं, उसकी विद्यमानता इसको ख्याल में नहीं आती। जयसुखभाई! आहाहा! इसकी नजर में तो इसकी वर्तमानदशा अथवा राग, इसका फल बन्धन, इसका फल संयोगी चीज़ इसके ऊपर इसकी नजर है। समझ में आया? स्वयं चैतन्यद्रव्य...

ऐसा क्यों अनुभवता है? यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुझे क्या हुआ यह? चैतन्य ज्ञानस्वरूप से विराजमान प्रभु तेरा आत्मा है न? इसका अनुभव, वस्तु है, उसका अनुभव तो सुगम है और वस्तु में यह नहीं, इस चीज़ को एकत्वबुद्धि से अनुभवना, यह तो अचम्भा है। आहाहा! तुमने नहीं था-वह खड़ा किया है। अचम्भा है, बापू! आहाहा! (और) था, उसको तुमने छोड़ दिया। और वह रागादि, पुण्य आदि के भाव आत्मा में नहीं; नहीं, उसको तुमने माना, वह अचम्भा हुआ यह तो, भाई! ऐसा कहते हैं। ऐ..! हिम्मतभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरी लाईन में ऐसा कहते हैं, अचम्भा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अभी दो के बीच की बात है न? कि 'है' ऐसा भगवान आत्मा विद्यमान है, उसका अनुभव सुगम है और इसमें नहीं, ऐसे राग के संस्कार तुमने उत्पन्न किये, यह अचम्भा है, भाई! यह राग मेरा, ऐसा तुमने खड़ा किया, यह तो अचम्भा हुआ। वस्तु की अपेक्षा से वह अचम्भा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा क्यों अनुभवता है? क्योंकि एक चेतन द्रव्य, एक अचेतन द्रव्य ऐसे अन्तर तो घना। आहाहा! क्या कहा यह? ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु और रागादि अचेतन। आहाहा! **एक चेतन द्रव्य, एक अचेतन द्रव्य ऐसे अन्तर तो घना।** अन्तर तो बहुत है। दो के बीच अन्तर बहुत है कहते हैं। आहाहा! चैतन्य भगवान और राग यह दो के बीच अन्तर-फर्क बहुत है। आहाहा! एक अमृत और एक जहर, ऐसा दो के बीच अन्तर है। भगवान अमृत का-आनन्द का सागर और राग जहर का प्याला। आहाहा! विषकुम्भ कहा है न? जहर का घड़ा कहा। शुभभाव, हों! दया, दान, व्रत, भक्ति, का विकल्प उठे शुभभाव, वह जहर का घड़ा। भगवान अमृत का सागर, यह दो के बीच अन्तर बहुत। आहाहा! और अन्तर बहुत फिर भी तुमने एकत्व किया यह अचम्भा है, कहते हैं। समझ में आया?

अन्तर तो घना। अथवा अचम्भा भी नहीं,... दो भिन्न (हैं), इसमें अचम्भा नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तर भिन्न हैं, इसका अचम्भा नहीं है, ऐसा कहते हैं। इकट्ठा माना है, यह अचम्भा है। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जगमग ज्योति ज्ञान प्रकाश की मूर्ति प्रभु और रागादि

पर, यह दो भिन्न हैं। भिन्न है, इसलिए स्व का अनुभव सुगम है। और दो भिन्न है, इनको इस रीति से रखना, इसमें अचम्भा भी नहीं। आहाहा! अन्तर बहुत, इसमें अचम्भा भी नहीं। आहाह! अरे..! ऐसी बातें! लॉजिक से, न्याय से बात करते हैं, परन्तु अभी अभ्यास नहीं होता। अभी तो सब बात ही दूसरे रास्ते पर चढ़ा दी है। यह रेल होती है न, रेल? इसको पटरी पर चढ़ानी हो तो पटरी पतली होती है, देखा है न? हमारे वहाँ 'पालेज' में नजदीक ही था, इसलिए सब देखा है। एक पटरी पतली, ऐसी चढ़ा दे तो चली जाए, ऐसे चढ़ाए तो ऐसी चली जाए। पतली पटरी होती है, एक मोटी हो और इसके साथ पतली हो ऐसे करके... इसी प्रकार इसको विपरीत पटरी पर चढ़ा दिया है। आहाहा! यह शुभ और अशुभराग...

मुमुक्षु : ड्राईवर अच्छा हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा ड्राईवर बड़ा महाप्रभु है, ऐसा कहा न यहाँ तो, चैतन्य द्रव्य है न? कायमी चीज़ है न? शाश्वत वस्तु है न? और राग वह उपाधि और विकल्प और पुद्गल का नाच है। दोनों में अन्तर तो बहुत, इसलिए अचम्भा कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी बातें परन्तु भाग्यशाली को मिलें ऐसा है। प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : प्रगट भिन्न हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न ही हैं, इसमें अचम्भा क्या? कहते हैं। आहाहा! भिन्न को एक मानना, यह अचम्भा है। आहाहा! क्या शैली! राजमलजी टीका करनेवाले हैं। आहाहा!

चार-पाँच भाई हों न। देखा है न? एक अच्छी ओसरी हो, उस ओसरी में पहले से दो खम्बे साथ में रखे, ऐसे... ओसरी में देखा है? ऐसा कि बाप हो वहाँ तक ठीक लेकिन भाईयों ने फिर बेचना हो तो ओसरी में एक खम्बा और यहाँ खम्बा ऐसी साथ-साथ हों फिर ७-८ फिट दूर दो खम्बे हों अर्थात् भिन्न करना हो तो दो खम्बे के बीच वह डाल दे ऐसे। यह भिन्न है ही। ऐसा कहते हैं। पहले से भाईयों पाँच-छह-आठ हों तो ओसरी में सब खम्बे दो-दो रखे एक इस तरफ, एक इसकी तरफ। बीच में थोड़ी जगह रखे अर्थात् बीच में दीवाल करनी हो तो कर दे। और इसका दरवाजा ऐसा करना हो तो कर दे, सबका अलग-अलग। सुरेन्द्रजी! यहाँ कहते हैं कि यह दो खम्बे अन्दर भिन्न हैं। ऐसे राग और

आत्मा दो अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया?

अचम्भा भी नहीं,... क्या अचम्भा नहीं? अन्तर तो बहुत है, इसमें अचम्भा नहीं, ऐसा कहते हैं। दो में अन्तर है, इसमें अनुभव करना, यह अचम्भा नहीं। आहाहा! शुभ-अशुभराग और प्रभु चैतन्यद्रव्य, दो के बीच अन्तर बहुत है। क्योंकि यह ज्ञानस्वरूप, राग अज्ञानस्वरूप। ज्ञान के चेतन का अभाव। यह आनन्दस्वरूप, राग दु:ख स्वरूप, (ऐसा) दो में अन्तर बहुत। आहाहा! इससे दो भिन्न का अनुभव, वह अचम्भा नहीं है। शुकनलालजी! ऐसा वहाँ कहीं सुनने भी नहीं मिले। शिवपुरी कैसा? शिवगंज, आहाहा! शिवगंज तो आत्मा है। शिव अर्थात् निरुपद्रवी आनन्दस्वरूप का गंज है यह। और रागादि है, यह दु:ख का गंज है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रकाश और अन्धकार दो भिन्न भासित होते हैं, यह भिन्न क्यों नहीं भासित होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भिन्न है, वह इसको भासित नहीं होता इसलिए कहते हैं। भिन्न है ऐसा नहीं भासित होता, इसलिए इसको एकत्वबुद्धि है। भिन्न है, ऐसा भासित हो तो भिन्न है यह सुगम है। वह एक कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आठ भाई हों, चार भाई हों। पन्द्रह-बीस वर्ष इकट्ठे रहें। परन्तु पहले से इनके पिता को और सबको ऐसा हो कि दो खम्बे रखना। और भाई तो अलग ही रहें न? भाग ही करेंगे न? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार दो चीज़ें यहाँ भिन्न हैं। आहाहा! चैतन्य के प्रवाह की चीज़, भगवान आत्मा आनन्द चीज़ और राग का प्रवाह दु:खरूप और आकुलता की चीज़, दोनों अत्यन्त भिन्न हैं न, प्रभु! आहाहा! जयसुखभाई! वकीलात है यह। आहाहा! अन्दर दो चीज़ ही एक हो नहीं गयी न! यह दो में अन्तर बहुत है न। आत्मा ज्ञान और आनन्द और शान्तिस्वरूप और राग अचेतन, दु:ख अशान्तिस्वरूप। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! परन्तु है तो इसके घर की। आहाहा! भाई! भिन्न है, उसको भिन्न करना, इसमें तेरे विशेष क्या? ऐसा कहते हैं। भिन्न है, उसको एक माना है, यह अचम्भा हुआ है। है? आहाहा!

अचम्भा भी नहीं,... क्या अचम्भा नहीं? वह अचम्भा है, यह तो राग को, भिन्न

है, उसको एक माना है, यह अचम्भा है। भिन्न है, उसको भिन्न जानना, यह कोई अचम्भा नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा उपदेश, क्या परन्तु इसमें? इसमें यह जैनधर्म का उपदेश होगा? बापू! तुझे खबर नहीं। जैनधर्म ही यह है। और जहाँ राग को, पुण्य को धर्म मनवाते हैं, यह जैनधर्म ही नहीं। यह अन्य धर्म है। अन्यमति का यह धर्म है, जैन का नहीं। आहाहा! लोक में भी नहीं कहते? भाई! भाई! भाई-भाई तो भिन्न हो ही जाते हैं न? यह कोई कब तक साथ में रहें? आहाहा! क्या भाषा कुछ है न? भाई-भाई... यह कहते हैं सब भाषा। तुम्हारी सुनी हो यह मगज में रहे कुछ।

मुमुक्षु : भाई हों तो भाग पड़ें न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई हों तो भाग पड़े। बस, यह। भाई हों तो भाग पड़ता है, ऐसे अपने यहाँ कहते हैं। भाई हों तो भाग पड़े ही। यह कहाँ एक हैं, वह भाग नहीं पड़े? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह शब्द है। मगज में फिर याद आना चाहिए न। भाई हों तो भाग पड़े ही। सबके भाग भिन्न हैं तो पड़े। ऐसे भगवान आत्मा और राग दो भिन्न हैं तो दो भिन्न रहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। शिवलालभाई!

क्योंकि अशुद्धपना के कारण बुद्धि को भ्रम होता है। देखा? वस्तु है चिदानन्द भगवान और राग है भिन्न, इसका एकपना (होना), यह अचम्भा है किन्तु इसका भिन्न करना, यह अचम्भा नहीं। आहाहा! **अशुद्धपना के कारण बुद्धि को भ्रम होता है।** अर्थात्? कि पुण्य और पाप के भाव, वह अशुद्ध हैं, इसमें इसको भ्रम होता है कि यह मेरे हैं। समझ में आया? अरे..! वीतराग के मार्ग की सत्यता सुनने नहीं मिले। यह किस समय विचार करे और किस समय रुचि में ले। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में कहा था, वह यह है। आहाहा! समझ में आया? लो! पोना घण्टा निकल गया। चिमनभाई को सुबह में। अभी आये। अचम्भा नहीं अर्थात्? क्यों? **अशुद्धपना के कारण बुद्धि को भ्रम होता है।** शुद्धपना तो त्रिकाल है परन्तु पर्याय में अशुद्ध है, इसको भ्रम लग जाता है कि यह अशुद्धपना वह मैं...? आहाहा! क्यों हुआ? पोना घण्टा निकल गया। आहाहा!

जिस प्रकार धतूरा के पीने पर... अब दृष्टान्त देते हैं। **दृष्टि विचलित होती**

है,... धतूरा पीने पर इसकी दृष्टि विचलित होती है। वास्तविक दृष्टि नहीं रहती। **श्वेत शंख को पीला देखती है...** शंख सफेद होता है किन्तु जिसको... समझ में आया? धतूरा पीने पर जिसकी दृष्टि... यह पीलिया जिसको होता है न पीलिया? यह भी दूसरी चीज़ को पीली देखे आँख में पीलिया रोग होता है न? फिर पीलिया में से कमली हो जाए तब तो फिर बचने में जोखिम हो जाए। लेकिन पीलिया हो, वहाँ तक इसकी आँख में पीलास होती है तो सफेद वस्तु इसको पीली दिखे। यह दृष्टि का दोष है। धतूरा पीया है, इसकी कारण से इसकी दृष्टि बदल गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धतूरे की कारण दृष्टि (बदल गई है)?

पूज्य गुरुदेवश्री : धतूरा तो उपाधि है। यह कहेंगे। दृष्टि बदली है इसकी स्वयं की और स्वयं के कारण से, यह कहेंगे।

धतूरा के पीने पर दृष्टि विचलित होती है, श्वेत शंख को पीला देखती है सो वस्तु विचारने पर ऐसी दृष्टि सहज की तो नहीं,... यह दृष्टि सहज की नहीं। **दृष्टिदोष है।** देखा? इसकी दृष्टि का दोष है। **दृष्टिदोष को धतूरा उपाधि भी है...** निमित्त है, ऐसा कहते हैं। दृष्टिदोष को धतूरा उपाधि है, निमित्त, बस! आहाहा! समझ में आया? यह तो एक-एक श्लोक अमृत का सागर है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहाहा! एक क्षण में इसको हिला डाले। भाई! तुम हो या नहीं? और हो तो कौन हो? मैं तो आनन्द और ज्ञान के स्वरूप से विराजमान हूँ। यह क्या है? यह तो उपाधि का (भाव है)। दृष्टि अशुद्धता ऊपर पड़ी है, वह दृष्टि का दोष है। आहाहा! यह दृष्टि के दोष में धतूरा जैसे इसको निमित्त है, वैसे यहाँ कर्म का निमित्त है, ऐसा कहेंगे। दृष्टि का दोष तो इसने खड़ा किया है। आहाहा!

उसी प्रकार जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोगरूप मिला ही चला आ रहा है,... देखा! भगवान आत्मा अनादि से कर्म के संयोगरूप से, संयोगरूप से, हों! **संयोगरूप मिला ही चला आ रहा है, मिला होने से विभावरूप अशुद्धपने से परिणत हो रहा है।** जीवद्रव्य मलिनपने, अशुद्धपने, कर्म के संयोगपने होने से उसके लक्ष्य में यह अशुद्धरूप से परिणम रहा है। आहाहा! **अशुद्धपना के कारण ज्ञानदृष्टि अशुद्ध है,...** देखा? इसकी

दृष्टि अशुद्ध ऊपर है, इससे उसकी दृष्टि अशुद्ध है? **अशुद्धपना के कारण ज्ञानदृष्टि अशुद्ध है,...** यह ज्ञान को देखने की दृष्टि ही अशुद्ध हो गयी है। आहाहा! यह अपने कारण से, हों! आहाहा!

उस अशुद्धदृष्टि के द्वारा चेतनद्रव्य को पुद्गलकर्म के साथ एकत्व संस्काररूप अनुभवता है। देखा? यह अशुद्धदृष्टि जो है, राग वह मैं ऐसी जो अशुद्धदृष्टि है। इस दृष्टि द्वारा चेतनद्रव्य को पुद्गल कर्म के साथ एकत्वसंस्काररूप अनुभवता है। आहाहा! अशुद्धपने की दृष्टि है और शुद्धपने की दृष्टि नहीं। वस्तु शुद्ध चैतन्य है, उसकी दृष्टि नहीं और राग की उपाधि ऊपर जिसकी दृष्टि है, यह अशुद्धदृष्टि है। उस अशुद्धदृष्टि के कारण से ज्ञानदृष्टि भी अशुद्ध हो गयी है। इसको देखने की दृष्टि अशुद्ध हो गयी है। आहाहा!

चेतनद्रव्य को पुद्गलकर्म के साथ एकत्व संस्काररूप अनुभवता है। ऐसा संस्कार तो विद्यमान है। ऊपर कहा था न? **अनन्त काल से विद्यमान है...** दूसरी लाईन। अज्ञानी में यह संस्कार विद्यमान है। आहाहा! अध्धर से हुआ है और आत्मा की पर्याय में नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! **सो वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष है।** जैसे वह धतूरे की दृष्टि से हुई यह कोई सहज की दृष्टि नहीं। धतूरे के निमित्त से उपाधि की दृष्टि हुई है न? सफेद को पीला देखे। आहाहा! **वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष है।** आहाहा! जिसकी पुण्य और पाप की दृष्टि, इसके ऊपर, यह अशुद्धदृष्टि है। अशुद्धदृष्टि के संस्कार के कारण से ज्ञानदृष्टि अशुद्ध हो गयी। आहाहा!

वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष है। और दृष्टिदोष की... अब देखो आया। उसमें कहा था न? दृष्टिदोष को धतूरे की उपाधि भी है, ऐसा कहा था। है? ऐसे यह **दृष्टिदोष की पुद्गल पिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म का उदय उपाधि है।** आहाहा! कर्म का उदय निमित्त है। ऐसे यह दृष्टिदोष को उपाधि निमित्त है। आहाहा! उपादान तो स्वयं का किया हुआ है अशुद्ध। ऐसे उसको पीली दृष्टि हुई है, यह अपने से हुई है, इसके कारण से परन्तु इसमें धतूरा निमित्त है। ऐसे यह दृष्टि विपरीत-अशुद्ध की है, यह इसकी पानी है। यहाँ दृष्टिदोष है। इसमें यह कर्म की

उपाधि का निमित्त है। आहाहा! अरे..! वह तो सरल हो कि भाई! दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, डेढ़ महीने का उपधान करो, दो-चार लाख के बड़े मन्दिर बनाओ। ऊपर ध्वजा फहराये।

मुमुक्षु : मन्दिर हो तो करोड़ों वर्ष धर्म चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़ों किसको? धर्म साधन आत्मा में है कि बाहर में है? यह तो शुभभाव हो, तब सामने निमित्त में लक्ष्य जाए, इतना। शुभभाव आये, तब उसका लक्ष्य वहाँ जाता है इतना। इससे शुभभाव हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! मन्दिर और भगवान को देखने से इसके कारण से यहाँ शुभभाव हुआ, ऐसा नहीं। शुभभाव हुआ है, यह पर के ऊपर इसका लक्ष्य जाता है।

मुमुक्षु : बात में फर्क है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात में फर्क है। आहाहा! वह कहते हैं कि भगवान के दर्शन करते हैं, इसलिए शुभभाव होता है। यहाँ कहते हैं, शुभभाव होता है, तब उनके दर्शन में लक्ष्य जाता है। इतना फर्क है।

मुमुक्षु : अपनी उपाधि...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डाले सभी। यह अनादि का संस्कार विपरीत हो गया है न। यह सब यह ही कहते हैं, बस। भगवान का मन्दिर हो तो अपने को धर्मध्यान हो, इसके कारण से धर्मध्यान हो।

मुमुक्षु : अपने को मन्दिर की स्थापना करनी थी, तब यही बात तो चलती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस समय भी हो गयी थी सब। यहाँ तो शुरु से करते हैं, यह। आहाहा! और इससे मन्दिर बनाओ कि ऐसा कोई दिन हमने नहीं कहा कुछ। ऐसी जिसकी मर्जी हो और भाव आये और यह होना हो तो हो। यह करने का मैंने किसी समय नहीं कहा। कि यह मकान (मन्दिर) ऐसा करो। लोगों ने वह जयन्ती का दिवस मुम्बई में मनाया था। यह लोग ने कुछ नया करना है या नहीं? ऐसे विचार में बहुतों के मत माँगे। किसी का मत ऐसा पड़ा कि भाई कोई नया मकान (मन्दिर) बनाओ। याद रहे फिर... नक्की किया। मुम्बईवाले ने फिर खिसक गये। इसमें कोई भाग नहीं लिया।

मुम्बई : मुम्बईवाले तो होशियार होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर पहले से यह करना था पाँच लाख का। पहले तीन लाख हुए। अभी इसको तीन लाख का करना था, वहाँ पाँच लाख हुए। वहाँ ऐसा सुना। अपने तो किसी को कुछ कहा नहीं।

मुमुक्षु : कहनेवाला तो कोई अन्य हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरा हो। यह पाँच लाख हुए इसमें दस लाख का मन्दिर करना, ऐसा हुआ यहाँ। अकेले में एक-दो जन आये। हमारे चन्द्रकान्तभाई और इनके भाई रमणीकभाई दो अन्दर अकेले में आये। हमें तो पच्चीस लाख का करना है। बोलना नहीं। ऐसा कहा। दस लाख का कहते हैं इसमें पच्चीस लाख... मुझे तो उल्टा ऐसा कहना पड़ा था। दो मित्र थे न? चन्द्रकान्तभाई गुजर गये। मकान है न? यह और रमणीकभाई दोनों अन्दर ओरडी में आये थे कि हमें तो पच्चीस लाख का करना है। मैंने कहा ऐसा बोलना नहीं। लोग दस लाख का कहते हैं और तुम पच्चीस लाख कहाँ से करोगे? यह करते-करते छब्बीस लाख का हो गया। जो होने के काल में हो यह करे कौन?

मुमुक्षु : आपकी अनुमति होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने बात की मैंने सुनी। मैंने तो उल्टे उसको ना कहा। पच्चीस-पच्चीस लाख की बात मत करो।

मुमुक्षु : ...इतनी बड़ी रकम...

पूज्य गुरुदेवश्री : ना तो करे कोई। किसने कहा? विरोध किसने किया? पूनमचन्द? छींक आयी। आहाहा!

चेतन द्रव्य को पुद्गल कर्म के साथ एकत्व संस्काररूप अनुभवता है। ऐसा संस्कार तो विद्यमान है। सो वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्धदृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष है। राग को अपना मानना, यह अशुद्ध है, दृष्टिदोष है। **दृष्टिदोष की पुद्गल पिण्डरूप मिथ्यात्वकर्म का उदय उपाधि है।** निमित्त है। आहाहा! धतूरा से इसकी दृष्टि नहीं बदली, ऐसा कहते हैं। धतूरा तो इसमें निमित्त है। ऐसे इसको

अशुद्धदृष्टि में कर्म के कारण से अशुद्ध हुई है, ऐसा नहीं। (अशुद्धदृष्टि) की है स्वयं ने, तब कर्म का उदय इसको उपाधि-निमित्त कहा जाता है। आहाहा! तो भी दृष्टि में दोष है। आहाहा!

आगे जिस प्रकार दृष्टिदोष से श्वेत शंख को पीला अनुभवता है... दृष्टिदोष से सफेद को पीला जाने। **तो फिर दृष्टि में दोष है,...** आहाहा! **शंख तो श्वेत ही है, पीला देखने पर शंख तो पीला हुआ नहीं है...** आहाहा! वाह यह टीका वह... **उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि से चेतनवस्तु और अचेतनवस्तु को एक कर अनुभवता है...** मिथ्यादृष्टि अज्ञानी चैतन्य को और राग को एकपने अनुभव करे। आहाहा! **तो फिर दृष्टि का दोष है,...** यह तो दृष्टि का दोष है। आहाहा! **वस्तु जैसी भिन्न है, वैसी ही है।** दो वस्तु कोई एक नहीं हुई हैं। राग और आत्मा दो एक नहीं हुए, किन्तु दृष्टि के दोष के कारण राग, वह मेरा ऐसा अज्ञान मिथ्यादृष्टि से अनादि से माना है। आहाहा! यह अजीव को जीव माना ऐसा कहा है।

जैसी भिन्न है, वैसी ही है। एक कर अनुभवने पर एक नहीं हुई है,... देखा! राग वह आत्मा है, ऐसे एकपने माने तो भी एक नहीं होता। आहाहा! **क्योंकि घना अन्तर है।** दो के बीच बहुत अन्तर है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १४, शुक्रवार, दिनांक २९-०७-१९७७
कलश-४४-४५, प्रवचन-५३

कलश-टीका, ४४ वाँ (कलश) चलता है। **वस्तु जैसी भिन्न है, वैसी ही है।** पहली लाईन से है न? चैतन्य वस्तु, जो है, यह तो जैसी है वैसी ही है। और वह भिन्न है। है न? राग के विकल्प से और शरीरादि से तो अत्यन्त भिन्न है। वस्तु कभी एक हुई नहीं। आहाहा! **एक कर अनुभवने पर एक नहीं हुई है,...** वस्तु तो ज्ञानस्वरूपी भगवान को राग के साथ एकत्व अनुभव करते होने पर भी एक नहीं होती। आहाहा! क्योंकि चैतन्य, आनन्द का कन्द प्रभु चैतन्यस्वभाव यह तो तीनों काल राग से भिन्न है। आहाहा! उसको एक करके अनुभव करने से राग और विकल्प के साथ एकपने अनुभव करने पर भी वह एक नहीं हुई। माने भले। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

क्योंकि घना अन्तर है। आहा! चैतन्यस्वभाव और राग में बहुत अन्तर है। बहुत अन्तर, पूरा अन्तर। आहाहा! राग का जो विकल्प उठता है, यह अत्यन्त अचेतन है, जिसमें चैतन्यस्वभाव का अभाव है और भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वरूपी अनादि-अनन्त है। आहाहा! दो को एक करके अनुभव करने पर भी एक नहीं होते। आहाहा! जैसे शरीर-वाणी को अपना मानने से (वे) एक होते नहीं। वह तो पर, वह पर रहे हैं। आहाहा! ऐसे राग और आत्मा का त्रिकाली स्वभाव को एक करके अनुभव करने पर भी कोई एक नहीं हो जाते। आहाहा! **घना अन्तर है।**

कैसा है अविवेकनाट्य। जीव-अजीव की एकत्वबुद्धिरूप विभाव परिणाम? आहाहा! जीव और रागादि अजीव, इनकी एकत्वबुद्धि, भेदज्ञान का अभाव। आहाहा! **(एकत्वबुद्धिरूप विभाव परिणाम) अनादि से एकत्व संस्कारबुद्धि चली आयी है...** आहाहा! भिन्न है तो भी राग के शुभ-अशुभभाव के साथ एकत्वबुद्धि अनादि से चली आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मान्यता करके चली आयी है, ऐसा कहते हैं। एकपने मान

कर चली आयी है, किन्तु एक नहीं हुई। आहाहा! क्योंकि इससे भिन्न भगवान चैतन्य है, यह भिन्न ही है और वह पर के साथ कभी एकत्व है ही नहीं। तो भी एकपने मानकर अनादि से चली आयी है। आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव.. राग और भगवान आत्मा दो भिन्न अनादि से हैं। आहाहा! तो भी उसकी अनादि से राग की एकता की बुद्धि की मान्यता के संस्कार अनादि से चले आये हैं। ऐसी बात है। आहाहा!

चली आयी है ऐसा है। फिर ऐसा है, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो भिन्न है। राग से भिन्न बहुत अन्तर है। तो भी अनादि से राग के साथ... आहाहा! एकत्वबुद्धि अनादि से चली आयी है। पहले एकत्व नहीं था और फिर एकत्व हो गया – ऐसे नहीं, ऐसा कहते हैं। शुद्ध चैतन्य घन आनन्द प्रभु राग के साथ एकत्व पहले नहीं था और फिर हो गया, ऐसे नहीं। आहाहा! जैसी चीज़ जो है, यह राग से भिन्न सदा ही अनादि से चली आती है, उसी प्रकार यह राग के साथ एकत्वबुद्धि... आहाहा! यह भी अनादि से चली आती है। समझ में आया? आहाहा!

दो बात ली हैं। वस्तु जो चैतन्य वस्तु है, यह तो ज्ञानस्वभाव से, आनन्दस्वभाव से अनादि से राग से भिन्न ही है। ऐसा होने पर भी, अनादि से राग के साथ एकत्वबुद्धि भी चली आती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! अन्तर्मुख चैतन्य इसको अन्तर्मुख देखते यह चीज़ तो भिन्न ही है, ऐसा कहते हैं। यह राग के साथ कभी एक नहीं हुई। आहाहा! पर्याय को अन्तर में झुकाने पर यह चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा भिन्न ही है। आहाहा! तो भी उसका अभ्यास अनादि से नहीं... आहाहा! इसका अभ्यास है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की कली है पूरी। यह राग के विकल्प से भी दया, दान, व्रत, भक्ति (से भी प्राप्त नहीं होती)। कारण कि शुभराग तो एकेन्द्रिया में भी होता है। समझ में आया? यह हरित है न? यह लहसुन, प्याज इसके जीव को क्षण में शुभ और अशुभ होता है। आहाहा! यह शुभ और अशुभ की कर्मधारा उसको होती है। आहाहा! किन्तु उस शुभ के साथ और अशुभ के साथ एकत्वबुद्धि भी अनादि से चली आती है। आहाहा!

ऐसा **अविवेकनाट्य।** अविवेक नाटक... आहाहा! अर्थात् राग से भिन्न नहीं करना और राग से एकत्व करना, ऐसा अविवेक नाटक अनादि से चला आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग! यह मिथ्यादर्शन के कारण से इसने व्रत और तप और भक्ति भी अनन्त बार की, किन्तु राग के साथ एकत्वबुद्धि इसकी मिथ्यात्व की अनादि से चली आती है, यह नहीं छोड़ी। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है अविवेकनाट्य? जिसमें थोड़ा सा विपरीतपना नहीं है,...** आहाहा! परन्तु भारी टीका की है न! चैतनयज्योत वस्तु अन्दर ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है। इसको राग का दया, दान, व्रत, काम, क्रोध आदि परिणाम, इनके साथ एकत्वबुद्धि... आहाहा! है? **जिसमें थोड़ा सा विपरीतपना नहीं है,...** आहाहा! पूर्ण विपरीत। राग मेरा, दया, दान, विकल्प वह मेरी चीज़.. आहाहा! ऐसा मिथ्यात्वभाव बहुत विपरीत है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहाँ प्रभु चैतन्यज्योति और कहाँ राग विभाव दुःखरूप? इसकी एकत्वबुद्धि बहुत विपरीत (है), ऐसा कहते हैं। कहाँ स्वयं आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा और राग का विकल्प उठे, वह दुःखरूप। आहाहा! यह आनन्द के साथ दुःख का एकपने का संस्कार बड़ी विपरीतता कहते हैं। जयसुखभाई! ऐसा मार्ग! अभी तो गड़बड़ करके सब विपरीत कर दिया। सम्यग्दर्शन कैसे हो, इसकी खबर नहीं होती। सम्यग्दर्शन यह क्या चीज़ (इसकी खबर नहीं होती) और इसके बिना करो व्रत, तप, भक्ति और पूजा। प्रतिमा ले लो। कहते हैं कि यह सब विकल्प हैं, राग है। इसके साथ अनादि से एकत्वबुद्धि बहुत विपरीतपने चली आती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

थोड़ा सा विपरीतपना नहीं है,... 'महति' 'महति' है न? **घना विपरीतपना है।** आहाहा! कहाँ प्रभु चैतन्यस्वरूपी आनन्द का नाथ! और कहाँ यह विकल्प राग! वह विभाव, यह स्वभाव, यह सुख वह दुःख, यह नाकुल, वह आकुलता। आहाहा! इसके साथ अनादि से बहुत ही विपरीतता बुद्धि चली आती है। समझ में आया? आहाहा! जैन का दिगम्बर मुनि भी अनन्त बार हुआ किन्तु यह राग की क्रिया मेरी है, ऐसा मानकर हुआ। आहाहा! यह मिथ्यात्व का संस्कार बहुत विपरीत है, कहते हैं।

एक ओर आनन्द का नाथ प्रभु अनाकुल शान्तरस और एक और राग आकुलता।

यह राग, इसलिए ऐसा नहीं कि राग अर्थात् यहाँ तो दया, दान, व्रत, का विकल्प उठता है, यह राग है। अरे! गुणी और गुण दो भेद का विकल्प उठता है, यह राग है। वस्तु अखण्ड आनन्दमूर्ति, प्रभु, वह गुणी और उसमें आनन्दगुण है, ऐसा भेद उठे, वह विकल्प / राग है। आहाहा! उस राग के साथ एकत्वबुद्धि बहुत ही विपरीत है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! लोगों ने तो बाहर से क्रियाकाण्ड में भक्ति की, व्रत पाले, प्रतिमा ली इसलिए धर्म हो गया। मिथ्यात्व हुआ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे..! इसको आत्मा क्या चीज़ है? और यह राग का स्वभाव भाव और आकुलता क्या है? दो की एकता में इसको खबर नहीं। समझ में आया? **घना विपरीतपना है।** आहाहा!

कैसा है पुद्गल? स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण से संयुक्त है। एक तो यह बात यह। शरीर, वाणी, मन, यह सब जड़ यह तो रंग, गन्ध, स्पर्श सहित है। भगवान तो वर्ण, गन्ध, स्पर्श रहित आत्मा है। आहाहा! एक बात। दूसरी बात।

'च अयं जीवः रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः' आहाहा! **'च अयं जीवः'** यह जीव जो पदार्थ, प्रभु! यह तो **जीव वस्तु ऐसी है...** कैसी? राग बिना की है। आहाहा! यह राग है, यह पुद्गल का विकार है; चैतन्य का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे रंग, गन्ध, रस और स्पर्श है, यह शरीर है, वाणी है, इसका स्वरूप है। भगवान आत्मा में वर्ण, गन्ध, रस है ही नहीं। आहाहा! यह तो स्थूल बात की। सूक्ष्म में जो दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प राग, ये आत्मा में नहीं। यह तो पुद्गल का विकार है। चैतन्य का स्वभाव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह रागादि भाव शुभ रागादि भाव धर्म हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये अधर्म है। सूक्ष्म बात, बापू! सूक्ष्म है।

धर्म यह आत्मा का चैतन्य शुद्ध स्वभाव आनन्द; इससे राग है, वह विपरीत है। तो विपरीत है; इसलिए अधर्म है। आहाहा! अरे..! सूक्ष्म बात, भाई! ऐसे आत्मस्वभाव के साथ ऐसा राग जो अधर्म इसको एकपने मानना, यह बहुत विपरीतता है, कहते हैं। कठिन बात, बापू! अभी तो मुश्किल है। अभी जैन के नाम पर राग की क्रिया में जगत ने धर्म

मनाया है। आहाहा! और यह पैसावाले सेठियों आदि को फुर्सत नहीं हो। जैसे-तैसे घण्टे भर सुनने जाता हो, इसमें वह कहता हो, जय नारायण! फिर करो, मरो।

मुमुक्षु : करो अर्थात् मरो?

पूज्य गुरुदेवश्री : करो और मरो। इस जगत की क्रिया का कर्ता होना, यह मरना है। आहाहा! हमने यह किया.. हमने यह किया.. हमने यह किया.. हमने धन्धा किया, हमने पैसा प्राप्त किया, हमने पत्नी-बच्चों को पाला। यह सब करने की बुद्धि तो महा पाखण्ड है। आत्मा की शान्ति का इसमें नाश है। आहाहा!

मुमुक्षु : करना सो मरना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, यह मरना। भाई ने कहा था न। चिमनभाई कहते हैं न? भाई ने कहा है न? सोगानी, सोगानी है न? शुकनलालजी! द्रव्यदृष्टिप्रकाश है या नहीं? तुम्हारे पास है न? इसमें आया है। सोगानी कहते हैं, करना वह मरना है, आहाहा! मैं करूँ, राग करूँ, यह करूँ, यह करूँ, इसका करूँ,... आहाहा! यह कर्ताबुद्धि में तो आत्मा की शान्ति का मरण है। आहाहा! वस्तु बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

राग, द्वेष,... रहित प्रभु तो अन्दर है। आहाहा! यदि यह रहित न हो तो वीतराग होगा कहाँ से? आहाहा! यह वीतरागस्वरूप से ही प्रभु आत्मा अन्दर है। आहाहा! यह राग का भाव और द्वेष के भाव से वस्तु रहित है। यह कहेंगे, देखो! **'रागादिपुद्गलविकार-विरुद्धशुद्धचैतन्यधातु'** से अत्यन्त विरुद्ध भाव है। आहाहा! ऐसा उपदेश अभी।

मुमुक्षु : धर्म का मार्ग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म की वस्तु बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! एक सेकेण्ड भी धर्म हो, इसके जन्म-मरण का अन्त आ जाए। यह रागादि क्रिया से मेरी चीज़ अन्दर (भिन्न है), यह कहते हैं, देखो!

राग, द्वेष,... से रहित है। **क्रोध, मान, माया, लोभ...** से रहित है। आहाहा! यह सब विकार हैं, ये तो पुद्गल का विकार विरुद्ध चैतन्य से है। आहाहा! अजीव अधिकार के अन्तिम कलश हैं न? एकदम दो को तोड़ डालकर भिन्न-भिन्न (करते हैं)। आहाहा!

परम स्वभाव ज्ञायकस्वभाव भगवान... यहाँ तो आत्मा को ही भगवान कहते हैं। पामर को बैठना भारी कठिन। आहाहा! राग के लोलुपी ये पुण्य परनाम के लोलुपी, चैतन्यस्वभाव में नहीं तो भी लोलुपी यह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात है।

राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे असंख्यात लोकमात्र अशुद्धरूप जीव के परिणाम–... देखा! ये हैं तो जीव के परिणाम। अशुद्ध। आहाहा! **अनादि बन्ध पर्याय से विभाव परिणाम–उनसे...** ये पुद्गल का विकार है, कहते हैं। आहाहा! विभावपरिणाम... आहाहा! अमृतस्वरूप भगवान आत्मा में राग भाव आदि यह सब जहर का घड़ा है। आहाहा! भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु, इसमें जहर के घड़े से वह अमृत सागर भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? इसमें है या नहीं इसमें? कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़ ने नया निकाला। हम जो करते हैं यह व्यवहार, फलाना इसमें से नहीं। परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं? यह पुस्तक यहाँ का बनाया हुआ है? आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य के तो यह कलश हैं। हजार वर्ष पहले हुए। दो हजार वर्ष पहले हुए यह कुन्दकुन्दाचार्य, उनके श्लोक हैं। आहाहा! और इसका अभिप्राय अनादि से जैनदर्शन में चला आया है। कोई कुन्दकुन्दाचार्य ने ही कहा है, ऐसा कुछ नहीं।

मुमुक्षु : आपने बहुत स्पष्टीकरण किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है, दूसरा क्या हो? आहाहा! अरे..! चौरासी के अवतार में यह राग के संस्कार की एकताबुद्धि, यह मिथ्यात्वभाव, यह चौरासी लाख के अवतार का मूल है। आहाहा! भगवान आत्मा तो स्वभाव का सागर है। मोक्ष हो, वह स्वद्रव्य का स्वभाव है और यह तो परद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। रागादि दया, दान, व्रत, तप के परिणाम यह परद्रव्य हैं। पुद्गल का विकार है, ऐसा कहते हैं। इसलिए आत्मा से विरुद्ध हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

असंख्यात.. है न? **असंख्यात लोकमात्र..** हों! **अशुद्धरूप जीव के परिणाम...** है। आहाहा! ये राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, पुण्य, पाप के भाव असंख्यात लोक प्रमाण में विभाव परिणाम है। आहाहा! यह दुःखरूप है। भगवान आत्मा आनन्दरूप है। उससे विरुद्ध भाव है यह। आहाहा! [**पुद्गलविकार**] देखा? यह विभाव परिणाम है। आहाहा!

उससे विरुद्ध है। भगवान आत्मा तो इससे विरुद्ध है, रहित है। आहाहा! कब? अभी। अरे..! रागादिभाव, पुण्य-पाप के भाव, यह सब पुद्गल के विकार हैं। है चैतन्य का परिणाम... आहाहा! किन्तु यह सब पुद्गल के, जड़ के विकार हैं। विभाव परिणाम। इससे भगवान आत्मा जिसको प्रभु आत्मा कहते हैं और आत्मा है, यह इन भावों से रहित है।

निर्विकार है ऐसी... ऐसी चीज़ अभी आत्मा कैसी (चीज़) है? कि यह रागादि विकार रहित है और स्वयं निर्विकारी चीज़ है। आहाहा! है? राजमलजी की टीका भी देखो न! इसमें से बनारसीदासजी ने समयसार नाटक बनाया है। अब अभी के कितने ही पण्डितों को ऐसा लगता है कि यह बनारसीदासजी और टोडरमलजी अध्यात्म की भांग पी के नाचे थे, ऐसा कहते हैं। अर..र..! अरे..! प्रभु! क्या करते हो? भाई! आहाहा! वहाँ फलटन में कहा था। शास्त्री परिषद। आहाहा! ऐसा कहते हैं। बनारसीदासजी और टोडरमलजी अध्यात्म की भांग पी थी इन्होंने। आहाहा! इसमें यह नाचे थे, यह सब लिखाण करके। आहाहा! इसकी दृष्टि में पोसाय नहीं, रुचे नहीं, इसलिए यह लोग अध्यात्म की भांग पीकर नाचे (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! यह तो इसका स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'पुद्गलविकारविरुद्ध' अब स्वयं प्रभु अन्दर है कैसा? **निर्विकार है ऐसी** [**चैतन्यधातु**] आहाहा! शुद्ध चिद्रूप वस्तु है यह तो। शुद्धज्ञानस्वरूपी आत्मा है। यह दया, दान, व्रत आदि के विकल्प तो पर पुद्गल का विकार है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। फिर विरोध करे, विरोध करे कि ऐई..! यह व्यवहार करते-करते निश्चय हो, यह मानता नहीं; इसलिए एकान्त है। अरे..! प्रभु! सुनो न, भाई! तुम चर्चा करो। किसके साथ चर्चा करें? भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह सब पुण्य और पाप के (भाव), यह शरीर, वाणी, मन और स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी यह तो कहाँ भिन्न, इनका और तेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आहाहा! परन्तु अन्दर में होते पुण्य और पाप के भाव, यह पुद्गल का फड़फड़ाहट (है)। आहाहा! कठिन जमीन हो न? इसमें खार होता है। वैसे यह चैतन्य भगवान तो कठिन आनन्द का नाथ है। यह जमीन नहीं, जमीन? खार, खार होता है न? यह बाईयाँ इसमें से लेकर कपड़ा

धोयें। खार-खार होता है। जमीन पोली-पोली। वस्तु अन्दर कठिन है, यह भिन्न है। आहाहा! ऐसे भगवान नित्यानन्द धातु भिन्न है। यह ऊपर झाग सब खार जमीन के जैसा पुण्य और पाप के भाव सब फहफहाट धूल का, पूर का विकार है, पुद्गल का विकार है। आहाहा!

कैसा है भगवान? **शुद्ध चिद्रूप वस्तु... शुद्ध चिद्रूप वस्तु [मय] उसरूप है...** आहाहा! ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञानमय वस्तु है। राग से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! देखो न, टीका कितनी सरस की है। उसमें से 'समयसार नाटक' बनाया है। यह राजमलजी को तो अभी कुछ याद किया नहीं इन्होंने। लेकिन बनारसीदासजी ने किया। फिर बनारसीदासजी ने इसमें से बनाया है। यह सब भांग पीकर लिखते होंगे? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! ऐसा अनादर नहीं होता। यह चैतन्य की वस्तु को जिस रीति से आचार्य ने कहा है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। साधारण व्यक्ति संक्षिप्त भाव में नहीं समझे; इसलिए उसको स्पष्टीकरण करके समझाते हैं। समझ में आया? कि देखो भाई! पर से भिन्न-भिन्न यह सामान्य बात हुई। किन्तु पर क्या और स्व क्या? कि जो पर से भिन्न। तब आचार्य ने इसका स्पष्टीकरण किया। कहा न?

'च अयं जीवः रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः' आहाहा! है? अरे..! कोई समय पृष्ठ भी नहीं देखा हो। वह संसार के धूल के पृष्ठ फेरा करे, धूल के। पाँच लाख यहाँ दिये है, एक प्रतिशत के ब्याज पर, इतना ब्याज आया। मर गया। पृष्ठ फिरे, सोना झरे ऐसी पागल दुनिया कहती है। यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय पर्याय में जहाँ भिन्नता भासित हो वहाँ आनन्द झरे। आहाहा! समझ में आया? ऐई..! ऐसी बात हैं। अर्थात् लोगों ने को ऐसा हो कि यह तो निश्चय की बात करते हैं। किन्तु यह व्यवहार की बात नहीं कही? रागादि व्यवहार है, ऐसा नहीं कहा? व्यवहार है तो सही, किन्तु इससे वस्तु भिन्न है। आहाहा!

शुद्ध चिद्रूप... शुद्ध चिद्रूप, शुद्ध ज्ञानरूप, जिसमें रागादि के विकल्प विरुद्ध है अर्थात् इससे रहित है। आहाहा! वह तो विरुद्धभाव है। शुद्ध चिद्रूप से वह रागादि भाव तो विरुद्ध है। इसलिए उससे रहित है। आहाहा! तब है कैसा अविरुद्ध? शुद्ध चिद्रूप वस्तु है

यह तो। आहाहा! है न? पाठ हैं न? अमृतचन्द्राचार्य आचार्य दिगम्बर सन्त का (पाठ है)। चैतन्यधातु यह तो। इसने चैतन्य अर्थात् जाणक जाणक स्वभाव को धारण करके रखा है। इसने राग को धारण किया है और पुण्य को धरान किया है, यह वास्तु नहीं। आहाहा! चैतन्यधातु है। जैसे सोना सोनारूपी धातु है, यह सोने ने सोनापना धारण करके रखा है। ऐसे भगवान आत्मा ने चैतन्य को धारण करके रखा है। चैतन्यधातु इसकी चीज़ है। आहाहा!

शुद्ध चिद्रूप वस्तु 'मय' 'मय' का अर्थ **उसरूप है [मूर्तिः] सर्वस्व जिसका ऐसी है।** आहाहा! शुद्ध चैतन्यमय मूर्ति, इसकी व्याख्या की, कि शुद्ध चैतन्यमय उसरूप जिसका सर्वस्व रूप है। आहाहा! ज्ञान और आनन्द जिसका सर्वस्व कहा है—भगवान आत्मा का। वह इसका रूप है, वह इसका स्वरूप है। आहाहा! रागादि तो पुद्गल के विकारों से विरुद्ध स्वभाव है। स्वभाव से वह विरुद्ध है, और इनसे विरुद्ध वह स्वभाव है। आहाहा!

सर्वस्व जिसका... अर्थात् क्या कहा? ज्ञान और आनन्द जिसका सर्वस्व रूप है। सर्वस्व रूप अपना यह है। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, पवित्रता जिसका चैतन्यरूप सर्वस्व इसका उसमय है यह। आहाहा! ऐसी चीज़ में दृष्टि लगाने से सम्यग्दर्शन हो। अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी है। श्रावकपना और मुनिपना यह तो कोई भिन्न चीज़ है अभी। यह तो इसने सुना भी नहीं कि किसको श्रावक कहना। आहाहा! श्रावक श्रवण सत्य को करके और विवेक से जो अन्दर राग से भिन्न करे, उसको श्रावक कहिये। श्रा.. व... क तीन शब्द है न? एक तो ऐसी सत्य बात श्रवण करे, फिर विवेक से, राग से जीव को भिन्न करे और भिन्न करके उसमें ठहरे, ठहरे इसको श्रावक कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे सब सावज।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे सब सावज है। कहो, सेठ! ऐसी बात है यहाँ, भगवान! इनके भाई ही भगवान हैं न? यह तो सब भगवान हैं यहाँ तो। आहाहा! बापू! तेरा निधान जिसको चैतन्य को जीव कहते हैं, यह तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति सर्वस्व वह है। पूर्ण ज्ञान और आनन्द का सर्वस्व वह रूप है। आहाहा! इसको आत्मा कहते हैं, उसको जीव कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ... यह सर्वस्व कहा न ? सर्वस्व जिसका यह रूप है। आहाहा ! जाननस्वभाव और आनन्दस्वभाव, स्वच्छस्वभाव, शुद्ध स्वभाव, यह जिसका रूप उसरूप से, उसमय वह सर्वस्व उसका यह सार है। आहाहा ! शीशम में सार होता है न ? बीच की कठोर लकड़ी। शीशम की लकड़ी साधारण हो और इसमें से सार निकाल कर फिर तलवार इसमें डालते हैं न ? ऐसे आत्मा का सर्वस्व सार क्या है ? कहते हैं। आहाहा ! यह तो ज्ञान और आनन्द और शान्ति और वीतरागता जिसका सर्वस्व सार है। आहाहा ! ऐसे आत्मा को आत्मा रूप से न जाने और ऐसे आत्मा को रागवाला जाने और यह राग की क्रिया से आत्मा को लाभ हो, ऐसा माननेवाला राग को ही आत्मा माननेवाला है। आहाहा ! यह व्यवहार है—यह दया, दान, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि यह सब व्यवहार राग है और राग वह पुद्गल का विकार और स्वभाव से विरुद्ध है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यह तेरा सर्वस्व सार चीज़ में यह चीज़ नहीं। आहाहा ! इसकी वर्तमान में दृष्टि इसकी ऊपर डालकर इसका अनुभव करना... आहाहा ! इसका नाम अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? और सम्यग्दर्शन नहीं। और फिर ऊपर टपके यह सब व्रत और तप को करे, यह तो सब थोथा है। शुकनलालजी ! ऐसी बात है।

अब **भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार पानी कीचड़ के मिलने पर मैला है।** पानी-जल **कीचड़ के मिलने पर मैला है। सो वह मैलापन रंग है,...** मलिनपना एक रंग है। **सो रंग को अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है सो पानी ही है।** आहाहा ! यह कीचड़ के रंग को नहीं अंगीकार करते... आहाहा ! है ? उस रंग को नहीं अंगीकार करते... आहाहा ! **बाकी जो कुछ है सो पानी ही है।** पानी ही है। **उसी प्रकार जीव की कर्मबन्ध पर्यायरूप अवस्था में रागादिभाव रंग है,...** आहाहा ! जैसे पानी में कीचड़ का रंग है, यह कोई पानी नहीं। इसी तरह जीव में जो रागादि भाव है, यह रंग है। कीचड़ के रंग की भाँति रंग है। आहाहा ! **कर्मबन्ध पर्यायरूप अवस्था में...** आहाहा ! राग पुण्य-पाप के भाव, वह रंग है। उस रंग को अंगीकार नहीं करके... आहाहा ! उस रंग को आदर नहीं करके **बाकी जो कुछ है सो चेतन धातुमात्र वस्तु है।** आहाहा ! यह कीचड़ के रंग को नहीं मानता, अंगीकार नहीं करते वह पानी अत्यन्त भिन्न है। ऐसे यह

पुण्य और पाप के राग के रंग को अंगीकार नहीं करते अन्दर जो शुद्ध चैतन्य धातु वह रंग बिना की है। आहाहा! ऐसा स्वरूप अभी...।

चेतन धातुमात्र वस्तु है। आहाहा! **इसी का नाम शुद्धस्वरूप-अनुभव जानना...** इसका नाम शुद्ध स्वरूप का अनुभव (जानना)। आहाहा! यह पुण्य और पाप के राग के रंग को दृष्टि में नहीं लेकर, अन्दर शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसको अंगीकार करने पर उसका अनुभव करना यह धर्म है और इसका नाम समकित है। आहाहा! अभी तो समकित इसको कहिये। है? **इसी का नाम शुद्धस्वरूप-अनुभव जानना सो सम्यग्दृष्टि के होता है।** आहाहा! जिसको आत्मा की सत्य दृष्टि प्रगट हुई है, उसको शुद्ध चैतन्य धातु का अनुभव होता है। आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो सुनने मिलना मुश्किल पड़े। पूरी जिन्दगी उसमें डाली हो, ५०-६०-७० वर्ष, इसमें फिर यह नया निकले।

मुमुक्षु : ... बारम्बार...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहेंगे। भेदज्ञान का अभ्यास तुझे बारम्बार करना, ऐसा अन्तिम श्लोक में कहेंगे। है न? **'ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा'** यह कहेंगे। अन्तिम ४५वाँ श्लोक है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के राग का विकल्प है, यह पुद्गल का रंग है, जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! जीव तो चैतन्यमय है, ऐसे राग के रंग से भेद पाड़कर उसका अभ्यास करने से... आहाहा! यह भेदज्ञान का अभ्यास करने से, राग से भिन्न पाड़ने का अभ्यास करने से... आहाहा! तुझे आत्मा प्राप्त होगा, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

क्या हो? जगत को कठिन लगे यह। हम यह सब व्रत करते हैं, अपवास करते हैं, भक्ति करते हैं, बस ये राग? इसको राग कहना? राग तो यह स्त्री-पुत्र ऊपर करते हैं, धन्धे में करते हैं तो उसको राग कहो, परन्तु इसमें परजीव की दया पालना, भक्ति करना, भगवान का स्मरण करना, परमात्मा की आरती उतारें। जय नारायण। कहते हैं कि यह राग है। आहाहा! क्योंकि पर के ऊपर लक्ष्य गया है, वह राग बिना नहीं जाता। आहाहा! स्व का आश्रय वहाँ नहीं। आहाहा! यह राग से भगवान आत्मा भिन्न है। इसका जो अनुभव...

शुद्धस्वरूप-अनुभव जानना, सो सम्यग्दृष्टि के होता है। आहाहा! राग के

भाव से जिसने चैतन्य को भिन्न करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, इसको ऐसा अनुभव होता है। आहाहा! यह तो अभी चौथे गुणस्थान की बात चलती है। सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता, और व्रत और प्रतिमा धारण करके हो गया श्रावक और हो गया साधु। आहाहा! क्या हो?

वह ४४वाँ श्लोक हुआ। यह अजीव का अन्तिम श्लोक है। यह जीव की व्याख्या चलती है। रागादि सब अजीव हैं... आहाहा! अचेतन हैं। इनसे भगवानस्वरूप चैतन्य भिन्न है, ऐसा कहना चाहते हैं।

कलश-४५

(मन्दाक्रान्ता)

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे।।१३-४५।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'ज्ञातृद्रव्यं तावत् स्वयं अतिरसात् उच्चैः चकाशे' [ज्ञातद्रव्यं] चेतनवस्तु [तावत्] वर्तमान काल में [स्वयं] अपने आप [अतिरसात्] अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए [उच्चैः] सब प्रकार से [चकाशे] प्रगट हुआ। क्या करके? 'विश्वं व्याप्य' [विश्वं] समस्त ज्ञेय को [व्याप्य] प्रत्यक्षरूप से प्रतिबिम्बित कर। तीन लोक को किसके द्वारा जानता है? 'प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या' [प्रसभ] बलात्कार से [विकसत्] प्रकाशमान है [व्यक्त] प्रगटपने ऐसा है जो [चिन्मात्रशक्त्या] ज्ञानगुणस्वभाव उसके द्वारा जाना है त्रैलोक्य जिसने ऐसा है। और क्या कर? 'इत्थं ज्ञानक्रकचकलनात् पाटनं नाटयित्वा' [इत्थं] पूर्वोक्त विधि से [ज्ञान] भेदबुद्धिरूपी [क्रकच] करोंत के [कलनात्] बार-बार अभ्यास से [पाटने] जीव-अजीव की भिन्नरूप दो फार [नाटयित्वा] करके।

कोई प्रश्न करता है कि जीव-अजीव की दो फार तो ज्ञानरूपी करोंत के द्वारा किये, उसके पहले वे किसरूप थे?

उत्तर-'यावत् जीवाजीवौ स्फुटविघटनं न एव प्रयातः' [यावत्] अनन्त काल से लेकर [जीवाजीवौ] जीव और कर्म की एक पिण्डरूप पर्याय [स्फुटविघटनं] प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न [न एव प्रयातः] नहीं हुई है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सुवर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं। तथापि अग्नि का संयोग बिना प्रगटरूप से भिन्न होते नहीं, अग्नि का संयोग जब ही पाते हैं, तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं। उसी प्रकार जीव और कर्म का संयोग अनादि से चला आ रहा है और जीव, कर्म भिन्न-भिन्न हैं। तथापि शुद्ध स्वरूप-अनुभव बिना प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न होते नहीं; जिस काल शुद्ध स्वरूप-अनुभव होता है, उस काल भिन्न-भिन्न होते हैं।।१३-४५।।

कलश - ४५ पर प्रवचन

४५

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे।।१३-४५।।

आहाहा! देखो! यह सन्त दिगम्बर मुनि... आहाहा! दुनिया को, समाज को यह बैठेगा या नहीं, इसकी इनको दरकार नहीं है। समाज इसमें समतौल रहेगा या नहीं, इसकी दरकार नहीं। सत्य यह है। आहाहा! जिसको सत्य को जानना हो तो सत्य तो यह है, कहते हैं। आहाहा!

'ज्ञातृद्रव्यं तावत् स्वयं अतिरसात् उच्चैः चकाशे' आहाहा! [**ज्ञातद्रव्यं**] **चेतनवस्तु...** [**ज्ञातद्रव्यं**] की व्याख्या ही की। जानन स्वभावी चेतनवस्तु [**तावत्**] **वर्तमान काल में अपने आप...** आहाहा! इसको यह समझाने के लिये व्यवहार के राग की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह अभी कितने ही पण्डितों की

बड़ी तकलीफ यह है न ? कितने, हों ! कि यह व्यवहार दया, दान, व्रत, तप करो, भक्ति करो, यह करते-करते अन्दर अनुभव होगा।

मुमुक्षु : राग करते-करते वीतरागता हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। नहीं तो तुम एकान्त हो, ऐसा कहते हैं। कहो, भाई भगवान को। यह तो मुनि ऐसा कहते हैं। मुनियों को एकान्त कहो। लिखा था न भाई ने ? मक्खनलालजी ने कि शुभभाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। मक्खनलालजी (ने लिखा) तब इसके सामने भैया ने कैलाशचन्दजी ने लिखा, शुभभाव को हेय तो कुन्दकुन्द आचार्य मानते हैं तो मिथ्यादृष्टि हैं ? अरे..रे.. ! पण्डितों में पण्डित में चला। यह बात अन्दर नहीं थी। यह मक्खनलालजी है न ? इन्होंने लिखा था कि शुभभाव हेय माने, छोड़ने योग्य माने, यह मिथ्यादृष्टि है। उसका जवाब कैलाशचन्दजी ने दिया कि प्रवचनसाार में शुरुआत की गाथा में शुभभाव को हेय मानना चाहिए, ऐसा कहा है। तो कुन्दकुन्दाचार्य शुभभाव को हेय मानते हैं, ये मिथ्यादृष्टि हैं ? आहाहा ! यह बात अभी उखड़ी। नहीं तो सब ऐसी की ऐसी ही पड़ी थी। आहाहा !

यहाँ कहते हैं **वर्तमान काल में अपने आप अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए...** आहाहा ! चैतन्यवस्तु पर नजर पड़ते, राग से भिन्न पड़ते **अपने आप अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए...** आहाहा ! जो राग का स्वाद था, यह तो आकुलता का। इससे भिन्न पड़कर आत्मा का स्वाद जहाँ अन्दर आया, कहते हैं... आहाहा ! है ? यह फिर क्या होगा ? आत्मा अरूपी और फिर इसका स्वाद ! स्वाद तो यह भाई यह मैसूर का, दाल-भात का, आम का स्वाद आता है। इसका धूल में भी स्वाद नहीं। यह तो इसके ऊपर लक्ष्य करके राग करता है, इसका स्वाद इसको आता है। आत के रस का और रसगुल्ला का इसको स्वाद है इसको ? यह तो जड़ है। जड़ को आत्मा स्पर्श करे ? आहाहा ! इसके ऊपर लक्ष्य जाने पर यह ठीक है, ऐसा जो राग खड़ा करता है, यह राग का स्वाद अज्ञानी लेता है, दुःख का, आकुलता का। आहाहा ! आत्मा का स्वाद, कहते हैं कि राग से रहित है। आहाहा !

चेतनवस्तु वर्तमान काल में अपने आप... आहाहा ! देखा ! [**तावत्**] है न ? उस काल में। **अपने आप** [**अतिरसात्**] **अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए सब प्रकार**

से प्रगट हुआ। आहाहा! यहाँ अजीव का अन्तिम अधिकार है न? इसलिए अजीव के राग से रहित चैतन्यस्वरूप की दृष्टि अन्दर होते, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद सहित प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन में। आहाहा! चौथा गुणस्थान इसको कहते हैं.. आहाहा! जिसको आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आये। आहाहा! समझ में आया? जो अनादि से राग का, आकुलता का स्वाद जिसको है और यह मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भले जैन में साधु हुआ हो और श्रावक के बारह व्रत धारण किये हों, किन्तु यह क्रिया के काण्ड का जो राग है, यह मेरा और मुझे लाभ करता है, वह मिथ्यादृष्टि राग के स्वाद में पड़ा है। आहाहा!

समकिती... ऊपर कहा था न अन्तिम में? **सो सम्यग्दृष्टि के होता है।** अर्थात् सम्यग्दृष्टि चीज़ क्या है, यह कहते हैं। आहाहा! ज्ञानबिम्ब प्रभु, जैसे यह जिनबिम्ब प्रतिमा है, उसी प्रकार यह चैतन्यबिम्ब अन्दर है। आहाहा! स्वयं खुद ही पर की अपेक्षा रखे बिना, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, इसकी अपेक्षा रखे बिना। कारण कि इससे तो भिन्न किया है। आहाहा! **अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए...** भाषा [**अतिरसात्**] है न? [**अतिरसात्**] अत्यन्त अपने स्वाद सहित। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आये, ऐसा कहते हैं। इसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो और नव तत्त्व का भेद यह समकित है। अब व्रत ले लो। आहाहा!

हमारे सम्प्रदाय में ऐसा कहते थे। (संवत् १९८०) की साल में, ५३ वर्ष हुए। यहाँ जब नयी बात कहते थे, यह बात तो आती थी, १९८० की बात है। ८० की साल। ५३ वर्ष पहले। गुरुभाई ऐसा थे कि चौमासा पूरा हुआ, इसलिए अन्त में लोगों ने कहना शुरु किया। देखो! भाई! अपने को श्रद्धा तो गणधर जैसी मिली है। अब व्रत, तप और चारित्र करो। व्याख्यान में यह कहा कि भाई! यह सम्प्रदाय की श्रद्धा है, यह कोई सत्य नहीं। संक्षेप रुचि का अर्थ चलता था, उस समय ५३ वर्ष पहले। संक्षेप रुचि अर्थात् कोई ज्ञान कम हो परन्तु हम ऐसा मानते हैं, वह समकित है, ऐसी नहीं है वस्तु। संक्षेप रुचि का यह अर्थ नहीं। उसको विपरीत मान्यता का नाश हुआ है, विपरीत अभिप्राय ग्रहण नहीं है और जानपना उसको बहुत कम है, किन्तु उसको अखण्डानन्द प्रभु आत्मा का आश्रय लेकर

उसको समकित होता है। उसको संक्षेप रुचि कहते हैं। आहाहा! जिस सम्प्रदाय में जन्म हुआ, (उसकी) मान्यता रखकर यह समकित है-ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो ५३ वर्ष पहले की बात है। खलबलाहट-खलबलाहट हो गया। गुरुभाई बैठे थे, वह सुनते थे, सुनना नहीं सुहाता, भाग गये, जंगल में चले गये, दिशा को चले गये। तुम्हारी व्याख्या मुझे नहीं सुहाती नहीं जँचती, लेकिन सुनने में क्या तकलीफ थी? भाग गये। ऐसे के ऐसे। ऐसा कि यह तो अपने को जो यह स्थानकवासी की श्रद्धा मिली है, यह समकित है। अब समकित में व्रत और तप धारण कर लो इसलिए चारित्र हो जाए, बस हो गया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो फिर कहते थे, अपना ये जो चारित्र पालते हैं, व्रत और उससे धर्म हो, फिर अकेला ज्ञान, दर्शन रहेगा, फिर वहाँ चारित्र नहीं रहेगा। चारित्र तो स्वरूप की रमणता है। सिद्ध में भी चारित्र है, परिपूर्ण चारित्र है। आहाहा! क्योंकि चारित्र नाम का तो आत्मा का एक गुण है। इस गुण की प्रगट पर्याय पूर्ण हो, तब तो सिद्धदशा हो। यह चर्चा चली थी। इन्द्रिय का दमन या संयम, यह नहीं। किन्तु स्वरूप की अन्दर रमणता (हो)। आनन्द का सागर अपने अतीन्द्रिय स्वादसहित जहाँ सम्यग्दर्शन में भासित हुआ, यह स्वाद में मशगुल होना। आहाहा! अतीन्द्रिय के स्वाद में इतना रहे कि प्रतिकूल परीषह आये, उनको भी नहीं गिने। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया अतीन्द्रिय आनन्द में मशगुल रहे, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! लोग तो कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं।

सब प्रकार से प्रगट हुआ। अब कहते हैं। अन्तिम है न। अजीव के भाव से... आहाहा! राग के स्वभाव के भाव से रहित प्रभु, ऐसा अनुभव होते यह वस्तु प्रगट हो गयी। आहाहा! **क्या करके? 'विश्वं व्याप्य' [विश्वं] समस्त ज्ञेय को प्रत्यक्षरूप से प्रतिबिम्बित कर।** आहाहा! भले सम्यग्दर्शन का श्रुतज्ञान हो, इस श्रुतज्ञान में भी इसकी लोकालोक जानने की शक्ति है। समझ में आया? आहाहा! **'विश्वं व्याप्य' [विश्वं] समस्त ज्ञेय को प्रत्यक्षरूप से प्रतिबिम्बित कर।** आहाहा! केवलज्ञान में साक्षात् प्रत्यक्ष है, यहाँ परोक्ष है। परन्तु आनन्द की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, इसलिए ज्ञान की अपेक्षा से भी ज्ञान में लोकालोक जानने में आता है, ऐसी रीति प्रत्यक्ष कहा है। आहाहा!

अब कहते हैं, ये **तीन लोक को किसके द्वारा जानता है?** है न? **'प्रसभविकस-द्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या'** [प्रसभ] **बलात्कार से प्रकाशमान है...** आहाहा! अपने पुरुषार्थ से ज्ञान की दशा जहाँ सम्यग्दर्शनसहित अनुभव में प्रगट हुई है, वहाँ जोर से लोकालोक को जानते है, कहते हैं। इसका स्वभाव ही ऐसा है। समझ में आया? इस रीति से प्रगट हुई। विशेष कहेंगे...

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १, रविवार, दिनांक ३१-०७-१९७७
कलश-४५-४६, प्रवचन-५४

भगवान की दिव्यध्वनि का दिवस है। भगवान महावीर को, परमात्मा को वैशाख सुद दशमी को केवलज्ञान हुआ। किन्तु वाणी ६६ दिन नहीं निकली। क्योंकि वाणी इनकी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाला नहीं हो, ऐसा नहीं हो सकता। और ६६ दिन में गणधर आये, इसलिए वाणी निकली। गणधर होने के लायक गौतम। प्रश्न किया कि महाराज! शकेन्द्र, इन्द्र तो समर्थ हैं तो यह गणधर होने लायक गौतम गणधर को पहले क्यों नहीं लाये? आहाहा! इन्द्र गणधर को पहले क्यों नहीं लाये? केवलज्ञान हुआ था। तब आचार्य जवाब देते हैं कि इसकी काललब्धि नहीं थी। गणधर को समझने की योग्यता का काल नहीं था इनको, इसलिए इन्द्र गणधर को नहीं ला सके। गणधर होने लायक नहीं (थे तब) गौतम। आहाहा! फिर भगवान की वाणी वैशाख शुक्ल दशमी केवलज्ञान होने पर भी श्रावण वद एक को गौतम आये, इन्द्र लाये तब वाणी खिरी। यह वाणी के छूटने का काल था, गौतम आये, इसलिए वाणी खिरी, यह भी एक निमित्त का कथन है। आहा..!

भगवान कोई वाणी के कर्ता नहीं। इनको तो इच्छा नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण आनन्द और वीतरागता से भरे हुए प्रभु के स्वाद के अनुभव में वे तो हैं। किन्तु पूर्व की प्रकृति बँधी हुई 'सर्व जीव तणु शासन रची' जीव धर्म प्राप्त करें ऐसी इच्छा पूर्व में हुई थी, आत्मज्ञान की भूमिका में, इसमें प्रकृति बँधी, इसलिए इसके फलरूप से उदय आता है और धर्म प्राप्त करनेवाला न हो, ऐसा नहीं बनता। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं कि वाणी निकली किन्तु धर्म प्राप्त करनेवाला कोई नहीं था। वाणी निष्फल गयी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा नहीं हो सकता। परमात्मा की वाणी अन्दर दिव्यध्वनि निकले और जिस भाव से बाँधी थी, यह भाव तो धर्म प्राप्त करनेवालों को (धर्म) प्राप्त कराऊँ, ऐसे भाव से थी। आहाहा! इसलिए यह वाणी निकलती है और धर्म प्राप्त करनेवाला नहीं हो, वाणी निष्फल जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : वाणी निष्फल जाए इसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी अर्थात् इसको सुननेवाला न हो और धर्म प्राप्त करनेवाला नहीं हो, ऐसा नहीं होता। वाणी का यह फल है। आहाहा! समझ में आया? यह वाणी आज निकली, गणधर हुए और गणधर ने चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना आज ही की। आहाहा! ऐसी ताकत और यह ही उसका समय। आहाहा!

'मुख ओमकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे' भगवान के श्रीमुख से इ%छा बिना की ध्वनि ओम निकले ओम। होंठ बन्द हों, कण्ठ हिले नहीं। शरीर की सम्पूर्ण भाग में से 'मुख ओमकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर शास्त्र रचें, आगम रचि भविक जीव संशय निवारें।' आहाहा! यह वाणी निकले और योग्य जीव को संशय रहे नहीं, ऐसी इनकी वाणी है।

कुन्दकुन्दाचार्य ने पाँचवीं गाथा में कहा न? मैं यह आत्मा का एकत्व निश्चय से बात करूँगा, पर से विभक्त, राग से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न। ऐसी बात करूँगा। '**एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणों सविहवेण।**' मेरे वैभव से मैं कहूँगा। '**जदि दायेज्ज**' और यदि दिखाने में आये... आहाहा! हे जीवो! प्रमाण करना। आहाहा! वहाँ भी यह सन्धि ली। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं जो वाणी करूँगा और धर्म को प्राप्त करनेवाले निकलेंगे ही। आहाहा! वहाँ तो ऐसा कहा कि मैं '**एयत्त विहत्तं**' स्वरूप की एकत्वता और राग की विभक्तता-पृथक्ता, ऐसी बात मैं कहूँगा और यदि करूँ तो प्रमाण करना। आहाहा! अनुभव करके प्रमाण करना ऐसा कहा है। ऐसे ही हाँ कर देना, ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा है। आहाहा!

यह स्वयं ऐसा कहते हैं, छद्मस्थ (है), मैं मेरा निज विभाव से कहूँगा। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप में हूँ, राग से भिन्न हो गया हूँ। आहाहा! मेरे राग के स्वाद से छूटकर आनन्द के स्वाद में आया हूँ। आहाहा! और यह आनन्द का स्वाद, यह मेरा वैभव है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद यह मेरा वैभव है। यह धूल का वैभव कहते नहीं? यह बँगला, फलाना और धूल। यह तो सब वैभव श्मशान के भभका जैसा है। यह तो मेरा वैभव परमात्मा... आहाहा! राग से भिन्न होकर मैंने मेरी चीज़ को अनुभव में आनन्द में प्रगट किया है। आहाहा! यह मैं दिखाऊँगा, प्रमाण करना। आहाहा! यदि व्याकरण शब्दों में कोई भूल हो

तो इसके ऊपर लक्ष्य मत रखना। तुमको यह व्याकरण और शब्द-शास्त्र का कदाचित् ज्ञान हो और वाणी में भूल हो तुझे पकड़ में आये सही परन्तु वहाँ नहीं खड़े रहना। मुझे जो परमार्थ कहना है, इसको तुम पकड़ना। आहाहा!

यह श्रावण वद एकम का दिवस है। गणधर हुए। आहाहा! भगवान की वाणी खिरी। गौतम मिथ्यादृष्टि अज्ञानी था, वेदान्त श्रद्धावाला। यह भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त करके, चार ज्ञान प्राप्त करके और शास्त्र को सुनकर रचना की। आहाहा! यह चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना का दिवस भी यही है, ध्वनि का दिवस यह है। गणधर होने की दशा का दिवस यह है और शास्त्र की रचना का दिवस यह है। आहाहा! यह तो परमागम की बात है, हों !

मुमुक्षु : अपन लोग परमागम मन्दिर में ही बैठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमागम है, देखो न! आहाहा! दिव्यध्वनि है, भगवान की है। सूक्ष्म बात, बापू! श्वेताम्बर के शास्त्र हैं, वे तो अपनी दृष्टि से बनाये हुए हैं। यह है ये तो भगवान की वाणी में से आये हुए हैं। आहाहा! कठिन लगे, क्या हो? आहाहा! पौने चार लाख शब्द परमागम हैं। देखो! यह भगवान की वाणी निकली, इसमें से यह रचे हुए हैं। आहाहा! यह आज इसका दिवस है। इतना।

अब ४५ (कलश) का वाँचन हो गया है। फिर से थोड़ा लेते हैं। **'ज्ञातृद्रव्यं तावत् स्वयं अतिरसात् उच्चैः चकाशे' चेतनवस्तु...** चेतनवस्तु-ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है। अजीव अधिकार का यह अन्तिम श्लोक है न? यह **चेतनवस्तु वर्तमान काल में अपने आप अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए...** आहाहा! इसको कहते हैं कि अजीव द्रव्य, दान के व्रत और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, इसकी इसको अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अब यह लोग कहते हैं कि शुभयोग है, यह मोक्ष का मार्ग है। अरे! क्या करते हो? भाई!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि को शुभयोग कैसा था...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभयोग तो कैसा किया था, नवमीं ग्रैवेयक गया, शुक्ललेश्या जिसकी, शुभयोग इतना ऊँचा, यह बन्ध का कारण है। ऐसे पंच महाव्रत आदि... 'मुनिव्रत

धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो' किन्तु आत्मज्ञान अन्दर राग से, विकल्प की, राग की जिसको अनुभव में जरूरत नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, आहाहा! इसको **अत्यन्त अपने स्वाद को लिये हुए सब प्रकार से प्रगट हुआ।** आहाहा! भाषा तो देखो! यह अजीव के राग से भिन्न पड़कर। यह अजीव कहा। दोपहर को दूसरी बात थी। भाई! दोपहर को तो यह था कि दूसरे जड़ और दूसरे चैतन्य की पर्याय परिणाम, वह परिणाम उसके चैतन्य के या जड़ के परिणाम है, उनका वह कर्म है। दूसरा आत्मा कहे कि मैं कर्ता और यह मेरा कर्म है, ऐसा नहीं। वहाँ तो पुण्य-पाप के भाव का कर्ता और यह करनेवाला उसका पुण्य-पापभाव वह कर्म। कर्म समझ में आया? कार्य। वहाँ तो यह सिद्ध करना है।

यहाँ तो अब अत्यन्त इससे भिन्न सिद्ध करना है। वहाँ तो परद्रव्य से भिन्न सिद्ध किया। अब यहाँ तो स्वद्रव्य में जो पुण्य और पाप, दया, दान, व्रतादि के विकल्प हैं ये भी अजीव हैं। आहाहा! इस जीव स्वभाव से वह भिन्न है और उसके अजीव के भाव से स्वभाव भिन्न है। ऐसे आत्मा का भान होने पर, आत्मा आनन्द के स्वाद सहित प्रगट हुआ, कहते हैं। आहाहा! अनादि जो राग के स्वाद में स्वयं था, वह मिथ्यादृष्टि था। आहाहा! यहाँ अब कहते हैं कि आत्मा के स्वाद सहित प्रगट हुआ। आहाहा! आनन्द का धाम भगवान, यह आनन्द का स्वाद लेकर प्रगट हुआ मैं तो आत्मा हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

अपने आप... अर्थात्? जिसने वीतराग की वाणी और वीतराग की वाणी सुन करके के शुभराग आया, इस राग की भी जिसको अपेक्षा नहीं। आहाहा! अथवा यह भगवान की वाणी सुनकर अपनी पर्याय में स्वयं से जो ज्ञान हुआ वह तो वाणी निमित्त है। समझ में आया? यह ज्ञान की भी जिसको स्वयं प्राप्ति में इसकी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! **अपने आप** [**अतिरसात्**] [**अतिरसात्**] राग से भिन्न होकर जहाँ स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द का रस आया, यह अतीन्द्रिय आनन्द के रस में से राग का पर्दा तोड़कर और अतीन्द्रिय आनन्द के रस से आत्मा प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? अरे..! ऐसा मार्ग है। आहाहा! **प्रगट हुआ।**

क्या करके? अकेला स्वाद तो लिया, अब ज्ञान भी लेते हैं। आहाहा! **'विश्वं व्याप्य'** [**विश्वं**] **समस्त ज्ञेय को प्रत्यक्षरूप से प्रतिबिम्बित कर।** आहाहा! जगत की जितनी चीज़ें हैं, वह सर्व ज्ञेय, उसको प्रत्यक्षपने ज्ञान में प्रगट करता। आहाहा! **प्रत्यक्षरूप से प्रतिबिम्बित कर।** इसका अर्थ ही यह। प्रत्यक्षपने उसका ज्ञान हुआ। प्रतिबिम्बित का अरहन्त की ज्ञेय यहाँ प्रतिबिम्बित हुए। ज्ञेय जितने है उसका यहाँ ज्ञान स्वयं से स्वयं के द्वारा प्रगट किया। आहाहा! ऐसी बात।

तीन लोक को किसके द्वारा जानता है? तीन लोक और लोकालोक को जो जानता है। श्रुतज्ञान में भी इतनी ताकत है। आहाहा! केवलज्ञान तो है, यह तो प्रत्यक्ष सब जाने। परन्तु राग से भिन्न होकर स्वभाव के आनन्द से सम्यग्दर्शन में प्रतीति में प्रगट हुआ, प्रभु! उस काल में जो ज्ञान है, वह ज्ञान भी लोकालोक को जानता प्रगट हुआ। आहाहा! **तीन लोक को किसके द्वारा जानता है? बलात्कार से प्रकाशमान है...** आहाहा! अपने पुरुषार्थ से ज्ञान का प्रकाश प्रगट किया है। जोर से प्रगट किया है अर्थात् कि ज्ञेयों को जानने की योग्यता अपने पुरुषार्थ से प्रगट की है। आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञेय हैं, इसलिए प्रगट हुई है ऐसा भी नहीं। आहाहा! अपने ज्ञान की पर्याय में अपने पुरुषार्थ के जोर से-बलात्कार से जितने ज्ञेय हैं, उनको जानने की शक्ति प्रगट की है। आहाहा! ऐसी बात अभी।

चैतन्य अन्दर जगमग ज्योति, चैतन्य के प्रकाश से पूरा.. पूरा.. पूर भरा हुआ है यह। आहाहा! इसके ऊपर नजर पड़ने पर, राग के विकल्प से भिन्न होने पर... आगे कहेंगे, यह ज्ञान के प्रकाश में बलात्कार से ज्ञेय जाने, ऐसी इसकी ताकत प्रगट हुई। जानने का कुछ बाकी रह जाए, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा स्व-पर प्रकाशक शक्ति के व्यक्तपने से प्रगट हुआ। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह अन्तिम कलश है न। अत्यन्त अजीव के विकल्प से भिन्न होकर। आहाहा!

बलात्कार से [**विकसत्**] **प्रकाशमान है** [**प्रसभ**] है न? [**व्यक्त**] **प्रगटपने ऐसा है...** प्रगट हुआ है। आहाहा! शक्तिरूप से जो सर्वज्ञ शक्ति थी, भगवान आत्मा में सर्वज्ञशक्ति तो त्रिकाल थी, कायम थी। इसने अपने जोर और पुरुषार्थ से पर्याय में

सर्वज्ञपना प्रगट किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब! और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसमें भी पुरुषार्थ से उसने भावश्रुतज्ञान प्रगट किया। यह दिव्यध्वनि में भावश्रुत का उपदेश किया, पाठ में ऐसा आता है। क्या कहा यह? भगवान को केवलज्ञान हुआ इसने केवलज्ञान का उपदेश नहीं दिया, ऐसा कहते हैं। भावश्रुतज्ञान का उपदेश दिया। किन्तु यह तो छद्मस्थ नहीं और केवली है और इनके पास (भावश्रुत) नहीं न। परन्तु वाणी में भावश्रुत का उपदेश आया, कहते हैं कैसे? कि सुननेवाले गणधरों को निमित्त रूप से जो द्रव्यश्रुत कान में पड़ती है, इनको भावश्रुत होता है वहाँ। इसलिए यह भावश्रुत भगवान ने कहा। आहाहा! केवलज्ञान भी भावश्रुत द्वारा जानने में आता है न? आहाहा! ऐसा पाठ है लो!

केवलज्ञानी परमात्मा जिनेश्वरदेव पूर्ण आनन्द और ज्ञान के प्रकाश के पूर जिन्हें प्रगट हुए, वे... आहाहा! भावश्रुतज्ञान द्वारा कहते हैं, ऐसा कहा। समझ में आया? आहा! वाणी है न? इसलिए वाणी में द्रव्यश्रुत आया, परन्तु उस वाणी में भावश्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत आया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह दिन आज है। भावश्रुत को वाणी द्वारा प्रकाशित किया है, वह आज का दिन है। आहाहा! और यहाँ भी अन्तिम गाथा (कलश) में यह है जिसे पुण्य, दया, दान, व्रत, देव-गुरु की श्रद्धा, ऐसा राग... आहाहा! उसकी भी अपेक्षा जिसे सम्यग्ज्ञान होने में नहीं है और वह ज्ञान पर की अपेक्षा बिना अपने प्रकाश के जोर से प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

प्रगटपने ऐसा है जो ज्ञानगुणस्वभाव उसके द्वारा जाना है त्रैलोक्य... अपने ज्ञानगुण का स्वभाव प्रगट हुआ उससे जाना है। यह ज्ञेय हैं, उनसे उनको जाना है—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने ज्ञान के प्रकाश द्वारा लोकालोक को जाना है। आहाहा! ऐसा ताकत श्रुतज्ञान की पर्याय में भी इतनी ताकत है, कहते हैं। मात्र केवलज्ञान में प्रत्यक्ष है, यहाँ परोक्ष हैं। तो भी महाँ तो प्रत्यक्षपने कहा। समझ में आया? आहा!

और क्या कर? प्रगट हुआ? केवलज्ञान अथवा श्रुतज्ञान और सम्यग्दर्शन किस रीत इसे प्रगट हुआ? आहाहा! धर्म की पहली दशा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, धर्म का पहला सोपान, पहली सीढ़ी कैसे प्रगट हुआ? **'इत्थं ज्ञानक्रकचकलनात् पाटनं नाटयित्वा'** [**इत्थं**] **पूर्वोक्त विधि से...** पूर्वोक्त विधि अर्थात्? राग के विकल्प से भिन्न करने की जो अभ्यास विधि.. आहाहा! यह राग के विकल्प हैं, चाहे तो दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र

की श्रद्धा का हो, किन्तु उससे राग से भिन्न होने की विधि से, भेदज्ञान के अभ्यास से। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कठिन काल में ऐसा किस रीति से हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन-बठिन काल नहीं है। काल पर है, इसमें आत्मा का क्या है? अपना स्वकाल प्रगट करता है, वहाँ परकाल की जरूरत नहीं। आहाहा! 'वचनामृत वीतराग के परमशांत रसमूल, औषध जो भवरोग के पण कायर को प्रतिकूल।' आहाहा! वीर की वाणी वीरों के लिये है। आहाहा! कायर, नपुंसक राग को रचनेवाला... आहाहा! और वहाँ (राग में) रुककर धर्म प्राप्त करूँगा ऐसे नपुंसक, हिजड़ा... कठिन बात है। शुभभाव, पुण्य का भाव, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग इसकी रचना में रुकना, यह तो नपुंसक है, कहते हैं। नपुंसक को जैसे पुत्र नहीं होता, वीर्य नहीं होता, इसलिए पुत्र नहीं होता। उसी प्रकार शुभभाव की रचना करनेवाले को धर्म की प्रजा नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? अभी कहेंगे। दो विभाग कर देते हैं ऐसे। समझ में आया?

कहते हैं, **भेदबुद्धिरूपी करोंत के बार-बार अभ्यास से...** है? भेदरूपी करोंत... करोंत। करोंत है न? तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं? करोंत लकड़ी के दो टुकड़े करते हैं, वैसे ही अन्दर पुण्य-पाप का दया, दान का राग का विकल्प राग और भगवान दो के बीच भेदज्ञानरूपी करोंत गिरी। आहाहा! अर्थात् कि अपना स्वभाव है, उसके सन्मुख होने पर राग से भेद पड़ा। यह राग का भेद के भेदज्ञान के अभ्यास से.. आहाहा! यह राग की क्रिया द्वारा भेदज्ञान हुआ, ऐसा नहीं कहा। राग को भिन्न करने के अभ्यास से भेदज्ञान हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा अभ्यास किस रीति से हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्तर में ज्ञानस्वरूप यह चैतन्यवस्तु है। यह राग है और यह चैतन्य वस्तु है, यह राग के ऊपर लक्ष्य है, उसको छोड़कर ज्ञानस्वभाव में लक्ष्य करना, यह राग से भिन्न करने का अभ्यास है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! वीतरागमार्ग परमेश्वर का (ऐसा है) आहाहा!

गणधर (पहले) मिथ्यादृष्टि थे, लो! एक क्षण में गणधर पद और चौदह पूर्व की रचना की। यह आत्मा की ताकत है। आहाहा! जो वेदान्त की श्रद्धा गौतम को थी, मिथ्यादृष्टिरूप से आये थे। समझ में आया? किन्तु जिसकी पात्रता थी और जहाँ वाणी निकली... आहाहा! वह यह समझ गये। वाणी बाद में निकली। समझ में आया?

यह दृष्टान्त पहले नहीं दिया था? शिवभूति। शिवभूति को द्रव्यश्रुत का विशेष ज्ञान नहीं था, किन्तु आत्मज्ञान था और अब इनको केवलज्ञान प्राप्त करने का प्रसंग है। मा-तुष और मा-रुष, ऐसा गुरु ने कहा था अर्थात् वीतरागता प्रगट करो। अनुकूलता में सन्तोष नहीं, प्रतिकूलता में द्वेष नहीं। मा-तुष, मा-रुष। इतने भी शब्द याद नहीं रहे। किन्तु एक बाई थी यह धुली दाल को... धुली कहते हैं न? सफेद-सफेद छिलका बिना की। पलानी करके ऐसे निकालती थी। एक बाई पूछे है कि बहिन! यह क्या करती हो तुम? यह तुष माष। तुष नाम छिलका और माष नाम उड़द दो को भिन्न करते हैं। मुनि ने यह सुना। आहाहा! एकदम विकल्पमात्र छिलका है। आहाहा! और मैं अन्दर निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु हूँ, इसमें ली हुए। अन्तर्मुहूर्त में केवल लिया। आहाहा! समझ में आया?

'अब नहीं जाना संसार में' राग का संसार इसमें से आत्मा हट गया। आहाहा! अब मैं राग को, संसार को मेरा नहीं मानता। आहाहा! और चिदानन्द भगवान आनन्द का दल है, ज्ञान का प्रकाश है, ज्ञायकभाव है, उसको अवलम्बन करके राग से भेदज्ञान का अभ्यास यह करवत है। आहाहा! अर्थात् कि स्वसन्मुख होकर राग से भिन्न होकर ऐसा जो अभ्यास। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : उपयोग बारम्बार राग तरफ जाता है, ज्ञान स्वभाव तरफ नहीं ढलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारम्बार राग से भिन्न पड़कर ज्ञायक तरफ लक्ष्य में जोर करे।

मुमुक्षु : यह नहीं जाता, इसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं जाता। पुरुषार्थ वहाँ (बाहर में) करे तो फिर जाए कहाँ से? यह तो वहाँ इसका लक्ष्य है, इसलिए वहाँ जाता है। आहाहा! किन्तु लक्ष्य को बदल दे तो लक्ष्य यहाँ जाए।

मुमुक्षु : अनादि की टेव (आदत) है...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनादि की है, यह क्षण में नाश हो जाती है। आहाहा! यह चकरी फिरती है न? ऐसे-ऐसे फिरे। एकदम खड़ी नहीं रह सके। ऐसे फिरते.. फिरते.. फिरते.. एक चक्कर ऐसी मारे तो रुक जाएगी। गुलांट खा जाए। इसी प्रकार राग की चकरी में अनादि से फिरता, राग मेरा और इसकी क्रिया मेरी। आहाहा! इसके चक्कर में से निकलकर राग का भेदज्ञान किया राग से। आहाहा! ऐसे अभ्यास से। ऐसा कहा था न? आहाहा! ज्ञान.. है न? [**क्रकच**] करौंत, इसका **'कलनात' 'कलनात'** अर्थात् अभ्यास अर्थात् अनुभव। आहाहा! यह मार्ग की विधि तो यह है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि चाहे जिस जाति का शुभराग हो, किन्तु उससे भिन्न पड़ने का अभ्यास करके प्राप्त किया जाता है। यह शुभराग से आत्मा प्राप्त किया जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

अभी यह सब तकरार लेते हैं, देखो! मक्खनलालजी का आया है न? कैलाशचन्दजी ने खुलासा किया है कि भाई! तुम शुभभाव को हेय मानने को मिथ्यादृष्टि कहते हो। तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हुए? ऐसा कैलाशचन्दजी ने जवाब दिया और इसको खलबलाहट हो गया, मक्खनलालजी को। बड़ा लिखान आया है। तुम अविवेकी, अज्ञानी, शुभभाव को हेय माननेवाले को मिथ्यादृष्टि मानते हो, ऐसा कहा, इसको ऐसा हुआ। बड़ा लिखान। चेलेंज देते हैं। अरे.. ! भगवान! क्या करते हो तुम? प्रभु! आहाहा! जिससे भिन्न करना है, इससे मोक्ष का मार्ग हो? आहाहा! कैलाशचन्दजी को चेलेंज दिया है। यहाँ यह बात तो एक तरफ रह गयी। अब दो पण्डित-पण्डित अन्दर। इतने वर्ष में जाने तुम? शुभभाव है नहीं और है ही, ऐसी दो तकरार। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव को जहर का घड़ा और अजीव कहा है। जहर का घड़ा कहा है। आहाहा! इससे तो बन्ध का कारण है। यह तो बन्ध का कारण है। जितने अंश राग, उतने अंश में बन्ध का कारण है। पाठ नहीं? वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि शुभ में कुछ राग का भाग है, वह बन्ध का कारण, बाकी तो शुद्ध है। इसमें दो भाग किये। आहाहा! अभी तो धर्म का पहला पाया। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वह शुभराग जो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, परन्तु उससे आत्मा भिन्न है, ऐसा भेद-अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। आहाहा! अभी तो धर्म का पहला पाया। आहाहा!

मुमुक्षु : भिन्न तो एक समय में पड़ता है फिर बारम्बार अभ्यास किस रीति से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बारम्बार अभ्यास (करे)। अन्दर बारम्बार वहाँ लक्ष्य जाना।

मुमुक्षु : भिन्न तो एक समय में होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में ही होगा तब एक समय में। किन्तु इसके अभ्यास तो चाहिए न ? ऐसा कहते हैं। उपयोग असंख्य समय का है अर्थात् इसको राग से भिन्न करने में असंख्य समय जाता है। भिन्न पड़ जाता है, एक समय में। आहाहा! ऐसी बात अब। यह ? किस जाति का उपदेश ? संसार के पाप में रचे-पचे पूरे समय। अब इसको धर्म प्राप्त करने की यह रीति। आहाहा! बापू! प्रभु का मार्ग यह है। यह संसार की सब क्रियाएँ और पाप.. आहाहा! इससे तो भिन्न (है)। किन्तु यहाँ तो कहते हैं। धर्म श्रवण करने में जो शुभराग आता है.. आहाहा! इससे भी भेद करने का अभ्यास कर। आहाहा! इससे होगा, ऐसा मत मानो। समझ में आया ?

बार-बार अभ्यास से [पाटने] जीव-अजीव की भिन्नरूप दो फार... दो विभाग। छुरी रखते दो टुकड़े हो जाते हैं। ऐसे राग और भगवान आत्मा दो भिन्न अभ्यास से दो विभाग पड़ जाते हैं, दो भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह कोई बाहर की होशियारी का काम है और ऐसा कुछ नहीं यह। और बहुत वांचा हो तो यह अभ्यास हो, ऐसा भी नहीं। इसको तो अन्दर में स्वसन्मुख होने का, राग से भिन्न पड़ने का अभ्यास करने पर वह दो विभाग पड़ जाते हैं। राग और भगवान दो भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह अजीवाधिकार है हाँ ? राग है, वह अजीव है। आहाहा! लोगों को कठिन पड़े। अरे..! शुभराग है, वह पुद्गल है। आहाहा!

मुमुक्षु : असंख्य समय का काल कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है, ऐसा कहते हैं यहाँ। इसका इस जाति का अभ्यास चाहिए न। इसमें अमृतचन्द्राचार्य ने तो कहा कि छह माह तो अभ्यास करो। जघन्य नहीं लिया, उत्कृष्ट नहीं लिया, मध्यम लिया।

मुमुक्षु : आत्मा और राग भिन्न है, ऐसा विचार करने से हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार करने से नहीं, भिन्न करने से। विचार करना, यह विकल्प है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

राग की दिशा पर सन्मुख है। राग की दशा की दिशा पर सन्मुख है। इसको स्व सन्मुख की दिशा में दशा को झुकाना। आहाहा! क्या कहते हैं यह?

मुमुक्षु : पहले समय की पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो गयी। यह तो गयी। यह तो अब नयी पर्याय करी, हुई और उसको झुकायी उसका एक समय है। आहाहा! ऐसा है। वीतराग का मार्ग, इसमें भी दिगम्बर सन्तों ने केवलज्ञान को खड़ा रखा है। आहाहा! जैसा सत् था, वैसा प्रसिद्ध किया है। ऐसी बात कहाँ है? और बात ऐसी बाहर आयी, तब लोगों को भड़का हो गया, अरे! यह तो एकान्त है। इसमें कोई व्यवहार नहीं आता।

मुमुक्षु : मोटर पहले नयी आयी... (तब भी ऐसा हुआ)

पूज्य गुरुदेवश्री : ...पहले कहा न। अरे..! रेल पहली आयी न तो खस के एक बाई थी। रेल पहले आई तो, ओहो..! यह तो खपरेल में धूप लेकर.. देवी है, यह देवी। रेल आयी। आहाहा! अपने आप चलती है! बैल नहीं, कुछ नहीं। यह बाई ने पूजा की थी। खस.. खस है न? यहाँ बोटाद के पास। यह अभी ही आयी पीछे से। बोटाद तो बहुत समय से है। वहाँ थी इसलिए इस बाई ने पूजा की। आहाहा! अरे! खबर न होती, बापू! कौन है? ऐसा तो अनन्त बार हुआ। लोग ऐसे आकाश में उड़ के जाते हैं न? आहाहा! कहाँ का कहाँ? पक्षी नहीं उड़ाते? चकला और... यह क्या? यह तो जड़ की गति है। गति कहाँ आत्मा करता है? जड़ की कार से यह तो गति होती है। आहाहा! भगवान अन्दर विराजता है, यह तो भिन्न है। उसमें भी गति होती है। किन्तु यह अपनी योग्यता से ऐसा होता है। जड़ के कारण से शरीर ऐसा चलता है अथवा शरीर के कारण से आत्मा चलता है, ऐसा नहीं। आत्मा को भी इस रीति से क्षेत्रान्तर होने की लायकात से स्वयं ऐसा जाता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा का स्वरूप जो कहा था, वह सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। यह अजीव अधिकार का अन्तिम श्लोक है न? अर्थात् अजीव जो रागादि दया, दान, व्रत,

भक्ति, पूजा यह सब शुभराग (है), इससे ये भेद का अभ्यास करते दो विभाग पड़कर दो भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! आहाहा! **दो फार (विभाग) करके।**

कोई प्रश्न करता है कि जीव-अजीव की दो फार तो ज्ञानरूपी करोंत के द्वारा किये, उसके पहले वे किसरूप थे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह राग का विकल्प अजीव है; भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप जीव है, दो के भेदज्ञान द्वारा, करवत द्वारा दो विभाग करके अर्थात् दो टुकड़े किये। यह पहले कैसा था? दो एक थे? अथवा कैसे हैं? क्या है? आहाहा! वह पहले कैसे थे?

वे किसरूप थे? उत्तर-'यावत् जीवाजीवौ स्फुटविघटनं न एव प्रयातः' अनन्त काल से लेकर... आहाहा! यह गाय, भैंस, बैल देखो न। यह शरीर, यह और यह.. बस यह मैं। मैं तो भिन्न हूँ, इस बात की भी खबर नहीं। पूरे समय चरते रहते हैं और ऐसा कि यह मैं हूँ। और इसको यह पोषण मिलता है। आहाहा! अनादि काल से जड़ और चैतन्य की एकताबुद्धि अनादि से चली आती है। समझ में आया? आहाहा! **अनन्त काल से लेकर जीव और कर्म की एक पिण्डरूप...** ये पुण्य परिणाम भी कर्म है, विकार है। **एक पिण्डरूप पर्याय प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न नहीं हुई है।** प्रगटपने भिन्न-भिन्न नहीं हुआ था। यह आनन्द है और यह राग है, ऐसा प्रगट नहीं हुआ था। आहाहा! यद्यपि राग और स्वभाव दो एक नहीं हुए थे, किन्तु प्रगट नहीं हुए थे। आहाहा! ऐसा धर्म का उपदेश.. वह तो व्रत पालना, अपवास करना, प्रतिमा लेना, महाव्रत लेना, नग्न मुनि होना सरल (था)। वह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा! यहाँ तो उससे भिन्न पड़ने की बात है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त काल से लेकर जीव और कर्म की एक पिण्डरूप पर्याय प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न नहीं हुई थी। प्रगटपने भिन्न-भिन्न नहीं था। शक्ति से, स्वभाव से तो भिन्न था। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह कोई रागरूप नहीं हुआ। ज्ञायकभाव जो चैतन्य रस है, वह रागरसरूप से हुआ ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह दो प्रगटपने भिन्न नहीं थे। शक्तिपने तो भिन्न थे ही। आहाहा! यह चैतन्य ज्ञानरस और रागरस दो शक्तिपने तो भिन्न ही है। किसी

समय एक नहीं हुए। किन्तु प्रगटपने भिन्न उसने जाना नहीं था। आहाहा! ऐसा नहीं हुआ था।

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सुवर्ण और पाषाण... सोना और पत्थर खान में दो साथ में होती हैं न? पत्थर निकाले तो सोना और पत्थर सभी साथ होता है। गिरनार के पत्थर में भी सोना है। गिरनार है न? इसमें वह किया था एक बार प्रयोग। परन्तु प्रयोग करते सुन रुपये का खर्च और अस्सी का सोना निकला। सौ रुपया का खर्च। इसलिए बन्द कर दिया। पत्थर में ऐसा सोना दिखायी देता है। चक.. चक.. चक.. परन्तु यह कोई निकालने जाए तो सौ रुपया खर्च हो और अस्सी की सोना निकले और यह तो पत्थर अन्दर ऐसा होता है। सोना और पत्थर दो इकट्ठे (होते हैं)। अग्नि का प्रयोग करे अर्थात् सोना और पत्थर दो भिन्न पड़ जाते हैं। समझ में आया?

सुवर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं। देखा! भिन्नरूप तो है। **तथापि अग्नि का संयोग बिना प्रगटरूप से भिन्न होते नहीं,...** आहाहा! सोना और पत्थर दो भिन्न तो हैं। ऐसे भगवान आत्मा जाणकरस ज्ञायक और राग अचेतनरस, दोनों प्रगट भिन्न ही हैं, किन्तु प्रगट भिन्न (हुए) नहीं। आहाहा! छठवीं गाथा में नहीं कहा? कि ज्ञायक चैतन्यस्वरूप जो चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य प्रकाशस्वरूप ऐसा ज्ञायकभाव, यह पुण्य-पाप के भावपने हुआ नहीं। क्योंकि ये पुण्य और पापभाव वह अजीव है; जीव नहीं। इससे ज्ञायकभाव पुण्य-पापपने हो तो जड़ हो जाए। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अब लोगों को बाहर से यह करें तो हो, यह करें तो हो। व्रत करें, यात्रा करें, भक्ति करें, शास्त्र बहुत वाँचे तो आत्मज्ञान हो। ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत नहीं वाँचे थोड़ा वाँचे तो हो जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा... इसको ऐसा कि बहुत वाँचे तो हो जाएगा। ऐसा भी नहीं, बापू! यह तो वँचन भी सब विकल्प है। आहाहा! ऐसी बात, लो! फिर लोग बेचारे कहें न। इसने सत्य अध्यात्म क्या है, इसने सुना नहीं। और बिना भान के यह बाह्य क्रिया में धर्म है ऐसा मानकर पन्थ चलाया। इसमें यह बात बाहर आयी, इसलिए एकदम भड़के। आहा! यह क्या यहाँ के हैं यह शास्त्र? यह तो हजार वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य के कलश

हैं और इनका सार तो कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में है और इनका अभिप्राय तो त्रिकाल है। अनादि का है। आहाहा!

कहते हैं कि प्रगटपने नहीं था। **जिस प्रकार सुवर्ण और पाषाण मिले हुए चले आ रहे हैं और भिन्न-भिन्नरूप हैं।** सोना और पत्थर खान में भिन्न ही हैं। **तथापि अग्नि का संयोग बिना प्रगटरूप से भिन्न होते नहीं,...** आहाहा! **अग्नि का संयोग जब ही पाते हैं, तभी तत्काल भिन्न-भिन्न होते हैं।** आहाहा! **उसी प्रकार जीव और कर्म का संयोग अनादि से चला आ रहा है...** खान में जैसा सोना और पत्थर अनादि के साथ है। ऐसे यह कर्म और आत्मा अनादि के एक साथ चले आते हैं। आहाहा! और जीव, कर्म भिन्न-भिन्न है। आहाहा! **तथापि शुद्ध स्वरूप-अनुभव बिना...** अग्नि बिना जैसा पत्थर और सोना भिन्न नहीं पड़ता। प्रगट शक्तिरूप से स्वभाव भिन्न है किन्तु प्रगट तो अग्नि बिना भिन्न नहीं पड़ता, ऐसे आत्मा और राग भिन्न ही हैं, किन्तु ध्यानाग्नि बिना भिन्न नहीं पड़ते। नहीं प्रगट भिन्न नहीं पड़ते।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन भी ध्यान में प्रगट होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में होता है न। सम्यग्दर्शन... द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा में नहीं लिया? '**दुविहं पि मोक्खहेऊ जाणे पाऊणदि जं मुणी नियमा।**' ध्यान में अर्थात् आत्मा के अन्तर स्वभाव में जाता है, तब उसकी पर्याय में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते हैं और वह ध्यान के काल में कोई राग बाकी रहा है, इसको व्यवहार का आरोप करके मोक्षमार्ग कहा जाता है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप के ध्यान में उसे ध्यान का विषय बनाकर त्रिकाल को, आहाहा! ध्यान में इसको सम्यग्दर्शन ज्ञान होता है और उस काल में राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहने में आता है। '**दुविहं पि मोक्खहेऊ जाणे पाऊणदि जं मुणी नियमा।**' ऐसा पाठ है। द्रव्यसंग्रह नेमीचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती '**दुविहं पि मोक्खहेऊ जाणे पाऊणदि जं मुणी नियमा।**' समझ में आया?

शुद्ध स्वरूप-अनुभव बिना... यह अग्नि। शुद्धस्वरूप चैतन्य के सन्मुख का अनुभव। शुद्ध भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु का अनुभव, इसको अनुसरण करके होती दशा, उस अनुभव बिना वह भिन्न प्रगट नहीं होता। भिन्न प्रगट नहीं पड़ता। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तर में तो दोनों एकपने भासित होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकपने है ही नहीं। माना है। माना है यह, है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी तो एकपने भासित होते हैं, क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भासित होता है, यह तो अज्ञान में, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक जैसे हुए है...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक हुए ही नहीं। आहाहा! यह पत्थर और सोना एक हुआ ही नहीं। पत्थर और सोना भिन्न-भिन्न ही है। आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी प्रभु और रागस्वभावी विभाव दो भिन्न है, किन्तु शुद्ध अनुभव बिना प्रगट भिन्न नहीं पड़ते। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप-अनुभव बिना प्रगटरूप से भिन्न-भिन्न होते नहीं; जिस काल शुद्ध स्वरूप-अनुभव होता है,... आहाहा! अशुद्धता की पर्याय और शुद्ध स्वभाव दो एक जैसे इसको लगते हैं। है तो दोनों भिन्न। अशुद्धता की पर्याय ही भिन्न है वास्तव में तो। परन्तु शुद्ध का अनुभव करे तब, वह अत्यन्त भिन्न प्रगट होता है। आहाहा! लो! यह सम्यग्दर्शन और धर्म प्राप्त करने की रीति यह है। ऐसी बात है। आहाहा! बालपना खेल में खोया, जवानी में स्त्री में मोहित हुआ, वृद्धपना देखकर रोया। करने का जो था, वह नहीं किया। वहाँ के वहाँ ही रुक गया। आहाहा! समझ में आया?

जिस काल शुद्ध स्वरूप-अनुभव होता है, उस काल भिन्न-भिन्न होते हैं। आहाहा! सारांश (किया)। यह जीव और अजीव अधिकार दो पूरे किया।

[३]
कर्ता-कर्म-अधिकार

कलश-४६

(मन्दाक्रान्ता)

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिम्।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्वम्।।१-४६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'ज्ञानज्योतिः स्फुरति' [ज्ञानज्योतिः] शुद्ध ज्ञानप्रकाश [स्फुरति] प्रगट होता है। कैसा है? 'परमोदात्तं' सर्वोत्कृष्ट है। और कैसा है? 'अत्यन्तधीरं' त्रिकाल शाश्वत है। और कैसा है? 'विश्वं साक्षात् कुर्वत्' [विश्वं] सकल ज्ञेय वस्तु को [साक्षात् कुर्वत्] एक समय में प्रत्यक्ष जानता है। और कैसा है? 'निरुपधि' समस्त उपाधि से रहित है। और कैसा है? 'पृथग्द्रव्यनिर्भासि' [पृथक्] भिन्न-भिन्न रूप से [द्रव्यनिर्भासि] सकल द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननशील है। क्या करता हुआ प्रगट होता है? 'इति अज्ञानां कर्तृकर्मप्रवृत्तिं अभितः शमयत्' [इति] उक्त प्रकार से [अज्ञानां] जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं, उनकी [कर्तृ-कर्मप्रवृतिं] जीववस्तु पुद्गलकर्म की कर्ता है, ऐसी प्रतीति को [अभितः] सम्पूर्णरूप से [शमयत्] दूर करता हुआ। वह कर्तृ-कर्मप्रवृत्ति कैसी है? 'एकः अहं चित् कर्ता इह अमी कोपादयः मे कर्म' [एकः] अकेला [अहं] मैं जीवद्रव्य [चित्] चेतनस्वरूप [कर्ता] पुद्गल कर्म को करता हूँ। [इह] ऐसा होने पर [अमी कोपादयः] विद्यमानरूप हैं जो ज्ञानावर्णादिक पिण्ड वे [मे] मेरी [कर्म] करतूति है। ऐसा है मिथ्यादृष्टि का विपरीतपना, उसको दूर करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर कर्तृ-कर्म अधिकार प्रारम्भ होता है।।१-४६।।

कलश - ४६ पर प्रवचन

अब कर्ताकर्म अधिकार। तीसरा। इसमें तीसरा लिया है। उसमें जीव-अजीव एक लेकर यह दूसरा लिया है।

४६ कलश।

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिम्।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्वम्।।१-४६।।

आहाहा! **'ज्ञानज्योतिः स्फुरति' शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है।** राग से भिन्न भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन में भिन्न पड़ता है, कहते हैं। आहाहा! इसको सम्यग्दर्शन कहते हैं, इसको अनुभव कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : अनुभव को तो बहुत बार चारित्र से कहने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चारित्र, 'अनुभव रत्न चिन्तामणि' यह सब तीनों साथ हैं। आता है न, अनुभव लक्ष प्रतीत। श्रीमद् में तीन आते हैं। लक्ष्य ज्ञान में जाता है, प्रतीति श्रद्धा में जाती है, अनुभव स्थिरता में जाता है। अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति। किन्तु यह अनुभव के काल में प्रतीति, ज्ञान और रमणता तीनों एक साथ होते हैं। स्वरूपाचरण की स्थिरता भी साथ में होती है, ऐसा कहते हैं। राग से अन्दर भिन्न पड़ते चैतन्यस्वरूप का अनुभव होते उस अनुभव के काल में उसका ज्ञान हुआ, उसकी प्रतीति हुई और उसमें रमणता का अंश भी हुआ। कलश में दो-तीन स्थान पर लिया है। तुम सम्यग्ज्ञान की बात करते हो किन्तु शास्त्र में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन आते हैं। यह तीनों साथ में आ गये। आहाहा! आत्मा आनन्द और ज्ञान का अनुभव करने पर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का अंश तीनों ही साथ आये। अनन्तानुबन्धी का ... गया, इतनी स्थिरता आयी। मिथ्यात्व गया इतनी श्रद्धा प्रतीति में आयी। आहाहा! और उसमें अज्ञान टला अर्थात् ज्ञान आया। आहाहा! समझ में आया? यह कर्ता-कर्म अधिकार विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण २, सोमवार, दिनांक ०१-०८-१९७७
कलश-४६-४७, प्रवचन-५५

कर्ताकर्म अधिकार, श्लोक पहला। श्लोक बोल लिया है। यह अधिकार कर्ताकर्म का है। आत्मा राग को करता नहीं और कर्म की पर्याय को भी नहीं करता। ऐसा इसका स्वरूप है। यह **'ज्ञानज्योतिः स्फुरति'** [**ज्ञानज्योतिः**] का अर्थ प्रकाश लेना है न? कैसा है? कैसा है? ऐसा कहना है, इसलिए प्रकाश लिया। नहीं तो ज्ञानज्योति कैसी है, ऐसा हो। किन्तु अर्थ करते हुए (ऐसा कहा) ज्ञान बोध ज्योति तेज। बोध का तेज है यह। तो वहाँ इसको ऐसा हो। तेज कैसा है? अर्थात् इसमें से तीन अर्थ उठते हैं। ज्ञानज्योति कैसी है? तो इसको कैसी है? कैसी है, ऐसा हो। जयचन्द पण्डितजी में ऐसा है। जयचन्द पण्डितजी में कैसी है - ऐसा है। और संस्कृत में इसको ज्ञानज्योति अर्थात् बोध का तेज। ज्ञान का तेज। तो तेज तो कैसा हो, परन्तु यहाँ दूसरी रीति से लिया है।

ज्ञानज्योति अर्थात् **शुद्ध ज्ञानप्रकाश...** आहाहा! चैतन्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन.. आहाहा! तो कहते हैं कि **ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है।** शक्तिरूप से, स्वभावरूप से तो है, किन्तु दृष्टि देने पर, जो दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है, इस दृष्टि को द्रव्य ऊपर करते ज्ञानज्योति अर्थात् **शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है।** समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है। आहाहा! शरीर की सुन्दर-असुन्दर अवस्था अथवा कृष और पुष्ट अवस्था अथवा बाल और यौवन अवस्था, यह सब जड़ की अवस्था है। यह चैतन्य का कार्य नहीं। समझ में आया? यह तो दोपहर को आया था न? भाई ने प्रश्न किया था न? ऐसा कि यह राग का कर्ता परिणामी द्रव्य है। परिणामी, ऐसा लिया है न? द्रव्य क्यों लिया? परन्तु यह परिणामी लिया जाता है। वास्तव में तो इसकी पर्याय राग की कर्ता और पर्याय राग का कर्म। परन्तु भाषा इसको समझाना हो, तब इसमें (समयसार नाटक सातवें श्लोक में) नहीं आया? कर्ता परिणामी द्रव्य। सातवें श्लोक में। आहाहा! यह तो इसे राग का कर्ता होता है, वहाँ तक की बात है। यहाँ तो यह निकाल देते हैं। समझ में आया?

जहाँ तक इसकी दृष्टि स्वभाव ऊपर नहीं और दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है, वहाँ तक वह राग का कर्ता है। समझ में आया ? यह अज्ञानभाव से शुद्ध चैतन्य की दृष्टि की जिसको खबर नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं; सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य ज्ञान के तेज का पूर प्रभु है, ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं, यह जीव राग का कर्ता अज्ञानभाव से होता है। यह द्रव्य होता है ऐसा कहा जाता है। सातवीं गाथा में है। 'कर्ता परिणामी दरब, कर्मरूप परिणाम, क्रिया पर्याय की फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम।' सूक्ष्म बात, बापू! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। आहाहा! कहते हैं कि यह कर्ता - राग का कर्ता वहाँ सिद्ध करना है। यहाँ कर्ता निषेध करना है। वहाँ तो परिणामी वस्तु है, उसका यह परिणाम है, ऐसा सिद्ध करना है। दोपहर को चलता है। आत्मा जो परिणामी चीज़ है, परिणामी का यह परिणाम है। पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध, यह परिणाम परिणामी का है। कर्म का नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

अब यहाँ सिद्ध करना है कि यह ज्ञानज्योति जहाँ दृष्टि पड़ी अन्दर में (तो) वह अज्ञान का नाश किया। आहाहा! और चैतन्यप्रकाश का तेज ज्ञानज्योति, अकेला ज्ञानबोध तेज। ज्ञान ज्ञायकस्वभाव का रूप अकेला.. आहाहा! इसके ऊपर दृष्टि पड़ने पर इसका सत्कार और स्वीकार होने पर ज्ञानज्योति प्रगट होती है। पर्याय में प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसी बातें..! आहाहा!

यह तो भाई का प्रश्न ऐसा था कि परिणामी द्रव्य कैसे ? परन्तु ऐसा बोला जाता है। वास्तव में तो पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म। षट्कारक का परिणमन ऐसा है। समझ में आया ? पंचास्तिकाय की ६२ गाथा है न ? इसमें इस रीति से लिया है। पुण्य और पाप रागादि भाव का एक समय की पर्याय वह षट्कारक रूप से परिणमति है। पर्याय राग की कर्ता, पर्याय का कर्म राग, पर्याय का साधन राग, यह साधन पर्याय, यह पर्याय साधन, पर्याय अपादान, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय ने राग करके रखा और पर्याय का आधार पर्याय। किन्तु इतना जरा एकदम कथन में मुश्किल पड़े, इसलिए इसको कहते हैं, परिणामी कर्ता द्रव्य। अज्ञानी को राग का कर्ता द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए यहाँ ज्ञानज्योति का अर्थ शुद्ध ज्ञानप्रकाश किया। इसलिए अभी कैसा-

कैसा आयेगा इसमें? कैसा है ज्ञानप्रकाश? और जयचन्द पण्डितजी ने ज्ञानज्योति, कैसी है ज्ञानज्योति? सब फिर ऐसे बोल लिये हैं। आहाहा! समझ में आया? और संस्कृत टीकाकार ने ज्ञानज्योति-बोध का तेज। आहाहा! ज्ञान अर्थात् बोध और ज्योति अर्थात् तेज। भगवान बोध का तेज, ज्ञान का तेज, शुद्ध ज्ञान का प्रकाश। आहाहा! यह **प्रगट होता है।** यह मांगलिक होता है। आहाहा! शक्तिरूप से तो था, ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, किन्तु इसका स्वीकार जहाँ दृष्टि में हुआ, इसलिए पर्याय में भी, अवस्था में भी श्रुतज्ञानप्रकाशपने प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है? प्रकाश लेना है अब? पाठ में तो ज्ञानज्योति है। फिर अर्थ किया शुद्ध ज्ञानप्रकाश। अब यह शुद्ध ज्ञानप्रकाश कैसा है? आहा! **'परमोदात्तं' परम-सर्वोत्कृष्ट है।** संस्कृत टीकाकार ने ऐसा लिया है। परम। परा उत्कृष्ट मा लक्ष्मी। परम का अर्थ किया है। परा-उत्कृष्ट-मा, ऐसा करके परम हुआ। ऐई..! पण्डितजी! यह तुम्हारी संस्कृत है। परा-मा-परम। परा-मा परम। परा—उत्कृष्ट, मा—लक्ष्मी। जिसकी ज्ञान और आनन्द लक्ष्मी उत्कृष्ट है, यह प्रगट होती है। आहाहा! परम उदात है और परम उदात है और परम लक्ष्मी परम-परम विशेष है। उदात्त है अन्दर भरी हुई। आहाहा! यह प्रगट हुई है। प्रगट हुए की बात है। आहाहा! और त्रिकाल की बात साथ में है इसमें। यह त्रिकाल है न? ज्ञानज्योति। यह ज्योति प्रगट होती है। यह ज्ञानप्रकाश कैसा है? ऐसा करके त्रिकाल की बात की है, कि सर्वोत्कृष्ट महा लक्ष्मी... आहाहा! अत्यन्त धीर है।

कैसी है ज्ञानलक्ष्मी त्रिकाली वस्तु? अत्यन्त धीर है। शाश्वत् है। **'अत्यन्तधीरं'** अर्थात् शाश्वत है, त्रिकाल शाश्वत है। आहाहा! **'अत्यन्तधीरं' त्रिकाल शाश्वत है।** आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानबोधस्वरूप प्रभु त्रिकाल शाश्वत है। यह दृष्टि का विषय है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय वह त्रिकाली ज्ञायक शाश्वत धीर त्रिकाली वह इसका सम्यग्दृष्टि का विषय है। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है प्रकाश? 'विश्वं साक्षात् कुर्वत्' [विश्वं] सकल ज्ञेय वस्तु को... 'विश्वं' अर्थात् समस्त। क्या समस्त? ज्ञेयवस्तु। यह ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयवस्तु। सभी द्रव्य, गुण और पर्याय। आहाहा! **सकल ज्ञेय वस्तु को [साक्षात् कुर्वत्] एक**

समय में प्रत्यक्ष जानता है।... केवलज्ञान की अपेक्षा से एक समय में प्रत्यक्षपने जानते हैं और श्रुतज्ञान की अपेक्षा से भी एक समय में सब जानते हैं। अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते हैं। पर्याय का ऐसा स्वभाव है कि स्व-परप्रकाशक पर्याय है अर्थात् स्व को तो जानते हैं किन्तु पर को भी यह जानते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान हुआ। चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान हुआ तो यह ज्ञान की पर्याय स्व को जाने और पर्याय का धर्म स्व-पर प्रकाशक है, इससे श्रुतज्ञानी भी पर को लोकालोक को जानते हैं, कहते हैं। आहाहा! यह पर्याय की ताकत इतनी है। यह द्रव्य-गुण के कारण से नहीं। आहाहा! द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है ही, किन्तु पर्याय में त्रिकाल वस्तु को जानने की ताकत प्रगट हुई। आहाहा! ऐसा है।

और कैसा है? 'निरुपधि' समस्त उपाधि से रहित है। 'निरुपधि' ज्ञानस्वरूपी भगवान पूर्णानन्द प्रभु ज्ञायकभाव, इसकी पर्याय में जो ज्ञान आया यह उपाधि बिना का है। इसको कोई उपाधि नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह विषय थोड़ा...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय प्रगट होती है इसकी अभी.. और त्रिकाल को लागू पड़ता है। परन्तु अभी सबको प्रगट हो गयी।

समस्त उपाधि से रहित है। और कैसा है? यहाँ कहा न? शुद्ध ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है। शुद्ध ज्ञान है, यह त्रिकाल है और प्रगट होती है, यह पर्याय है। आहाहा! **'पृथग्द्रव्यनिर्भासि'** कैसा है? **भिन्न-भिन्न रूप से...** आहाहा! अनन्त द्रव्य आत्मा, अनन्त परमाणु, यह भिन्न-भिन्नपने जैसे हैं, वैसा-वैसा वह ज्ञान जानता है। आहाहा! यह तो अभी कर्ता-कर्म का मांगलिक करते हैं। ७६ गाथा चलेगी। पहली गाथा में ज्ञान प्रगट होता है, यह इसकी मांगलिकता करते हैं। आहाहा!

'पृथग्द्रव्यनिर्भासि' भिन्न-भिन्न रूप से [द्रव्यनिर्भासि] सकल द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननशील है। सकल द्रव्य-गुण-पर्याय की जाननशील पर्याय है। आहाहा! देखा? भाषा क्या की? जाननशील है। जानने का जिसका स्वभाव है। आहाहा! यह जाननशील। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, इसका भान होते, इसको सम्यग्दर्शन होते

यह पर्याय में सर्व द्रव्य, गुण, पर्याय भासित हो इतनी ताकत है। आहाहा! है? **भिन्न-भिन्न रूप से...** भासित होता है। ज्ञान लेना है न? दर्शन हो तो अभेदपने देखे। ज्ञान तो यह आत्मा, यह इसका गुण, इसकी यह पर्याय, इस पर्याय में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद। सूक्ष्म बात बहुत, बापू! यह ज्ञान सब जानता है। यह ज्ञान की पर्याय की ताकत ही जाननशील है-जानने का इसका स्वभाव ही ऐसा है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

क्या करता हुआ प्रगट होता है? देखो! आता है न? **'इति अज्ञानां कर्तृकर्मप्रवृत्तिं अभितः शमयत्'** [**इति**] **उक्त प्रकार से जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं, उनकी कर्तृकर्म प्रवृत्ति को...** आहाहा! मैं कर्ता हूँ और विकारी परिणाम मेरा कर्म है। इसमें अकेला पुद्गल लिया है। परन्तु इसमें साथ में लेना है। **'कोपादयः'** है न पाठ? पहले पद का अन्तिम (शब्द) **'कोपादयः'** अर्थात् विकारी परिणाम और जड़कर्म दोनों का कार्य मेरा नहीं। अज्ञान में जो राग का कर्ता मानता था, राग मेरा कर्म है और मैं इसका करता हूँ, ऐसी **'कर्तृकर्मप्रवृत्तिं अभितः'** आहाहा! [**कर्तृ-कर्मप्रवृतिं**] **जीववस्तु पुद्गलकर्म की कर्ता है...** यहाँ पुद्गल लिया है किन्तु इसमें लेना है द्रव्यकर्म और भावकर्म। अन्दर टीका में दो हैं।

यहाँ तो पहले यह सिद्ध करना है कि राग ज्ञानी को होता है, तो भी यह राग का कर्ता नहीं और उस काल में इसको राग का निमित्त और कर्म का बन्धन होता है। पर्याय। यह राग के कारण से यह कर्म की पर्याय बन्धन हुई ऐसा नहीं है। यह कर्म की पर्याय षट्कारकरूप से कर्मरूप से होने की पर्याय से हुई है। ज्ञान इसका भी कर्ता नहीं और राग जिसका निमित्त हुआ, ऐसे राग का कर्ता भी नहीं। आहाहा!

सम्पूर्णरूप से दूर करता हुआ। अज्ञानभाव। आहाहा! चैतन्य का तेज, चैतन्य का चन्द्र शीतलस्वरूप भगवान, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन हुआ, वहाँ उसे प्रकाश जो हुआ... आहाहा! यह अज्ञानपने जो कर्ता था, इसका नाश करता है। है न? **सम्पूर्णरूप से दूर करता हुआ।**

वह कर्तृ-कर्मप्रवृत्ति कैसी है? आहाहा! **'एकः अहं चित् कर्ता इह अमी कोपादयः मे कर्म'** [**एकः**] **अकेला मैं जीवद्रव्य चेतनस्वरूप, पुद्गल कर्म को**

करता हूँ। मैं अकेला चैतन्यस्वरूप, जड़ की, कर्म की बन्धन की पर्याय को मैं करता हूँ। पुद्गल के परिणाम की कर्म की अवस्था का पुद्गल कर्ता है। यह नहीं। मैं अकेला उसका कर्ता हूँ। वह भी कर्ता है और मैं भी कर्ता हूँ, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? कर्म की पर्याय होती है तो यह पुद्गल इसका कर्ता है और मैं भी कर्ता हूँ, ऐसे दो नहीं। मैं अकेला उसका कर्ता हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा पाठ है न?

मैं जीवद्रव्य चेतनस्वरूप पुद्गल कर्म को... यह अकेला। ऐसा है न? [**एकः**] दो हो करके इसके परिणाम को भी करूँ और मेरे परिणाम को भी करूँ, ऐसे दो नहीं यहाँ तो। इसके परिणाम को मैं ही करूँ। आहाहा! राग के परिणाम को भी मैं ही करूँ। राग, राग से होता है और मैं करूँ तो होता है, ऐसे दो नहीं। समझ में आया? शुभ-अशुभ भाव, यह राग से राग होता है और मैं राग को करूँ, ऐसा नहीं। मैं अकेला राग का कर्ता हूँ... आहाहा! ऐसा अज्ञानी मानता है।

दोपहर को तो ऐसा सिद्ध किया कि यह परिणामी का परिणाम है। जीवद्रव्य-वस्तु परिणामी है, उसका यह परिणाम है। परिणामी—परिणाम अनन्य है, अभेद है। विकारी परिणाम और विकारी करनेवाला परिणामी भाव, दो एक अभेद हैं। यह तो अज्ञानी की दृष्टि स्थापित करने के लिये वहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया? अरे..! ऐसा कहाँ? सुबह कुछ, दोपहर को कुछ। किस अपेक्षा से सिद्ध करना है यह बात जाननी चाहिए न। आहाहा!

अरे! सत्य को समझे बिना अनन्त काल परिभ्रमण में गया। चौरासी के अवतार। आहाहा! क्रियाकाण्ड में घुस गया। तो कहते हैं कि यह क्रियाकाण्ड का जो राग है, यह राग, राग को करे और मैं करूँ—ऐसे दो नहीं। मैं अकेला राग का करनेवाला हूँ। अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? कहो, चिमनभाई! ऐसा सूक्ष्म है। ऐसा वीतरागमार्ग परमेश्वर सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने देखा, ऐसा कहा और ऐसा स्वरूप ही है। इसका परिचय और अभ्यास नहीं, इसलिए इसको ऐसा लगे कि यह क्या है? आहाहा! मैं अकेला विकार और कर्म की पर्याय का कर्ता हूँ... आहाहा! ऐसा अज्ञानी मानता है। मिथ्यादृष्टि जीव को जैन तत्त्व क्या है, आत्मतत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जैन के

सम्प्रदाय में, बाड़ा में रहा हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है, मैं अकेला राग का कर्ता हूँ। और कर्म के निमित्त से हुआ और राग राग से हुआ ऐसा भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जाना किसने? मैं कर्ता हूँ, वह जाना किसने?

पूज्य गुरुदेवश्री : किन्तु जानने का कहाँ भान है? यह तो अज्ञान से ऐसा मानता है। आहाहा! यह तो दूसरी गाथा में आता है। नहीं आता? अज्ञानपने। आता है, करता है। जानता है, यह इस राग को मैं करूँ, ऐसा आता है। दूसरी गाथा में। इसलिए जानता है का अर्थ? इसको खबर नहीं अन्दर, किन्तु यह जानने के ज्ञान में राग करता हूँ, ऐसा ही इसका परिणमन है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! वीतरागमार्ग-धर्म समझना यह बहुत सूक्ष्म है। और लोगों ने तो बाहर में अजैन को जैन धर्मरूप से स्वीकार लिया है। आहाहा! कहाँ किसी की सेवा करना, किसी की दया पालना, दया का राग करना, इसको धर्म माना है। यह जैनधर्म ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मैं चैतन्यस्वरूप... देखो! यहाँ तो कहा। परन्तु स्वरूप अर्थात्? यह चैतन्यस्वरूप अर्थात् आत्मा। **पुद्गल कर्म को करता हूँ।** कर्म की पर्याय बँधे, उसको मैं करता हूँ। और राग के पुण्य-पाप के, दया-दान के भाव आते हैं, उनका कर्ता होकर मैं अकेला करता हूँ। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि है। अरे..रे..! गजब बात है न? अब यहाँ कहते हैं दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत के परिणाम, यह राग और राग को मैं अकेला करनेवाला हूँ, यह मिथ्यात्व भाव है। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि यह व्रत और तप को करता है, यह धर्म है, बहुत फर्क, बड़ा फर्क। पूरा वीतराग मार्ग को उथला कर रख दिया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि राग को मैं करता हूँ, यह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो उठता है.. आहाहा! यह विकार, विकार से पर्याय में होता है—ऐसा नहीं, मैं इसका कर्ता हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सब समझना और इसमें कहाँ पार आये? बनिया को धन्धे के आगे फुरसत नहीं मिले। अब घण्टे भर सुनने मिले, इसमें ऐसा सूक्ष्म और वह ही सुनना हो दूसरा कि दया पालो, व्रत करो और अपवास करो (यह) सीधा-सट्ट था, भटकने का। आहाहा! ऐई..! धर्मचन्दजी!

'कोपादयः' है न इसका अर्थ किया। मात्र इतना है। **विद्यमानरूप हैं जो**

ज्ञानावर्णादिक... ऐसा लिया, देखा! कर्म लेते हैं न? **पुद्गल कर्म को करता हूँ।** मैं हूँ तो पुद्गल की कर्म अवस्था होती है। वह पुद्गलकर्म की अवस्था मैंने की है, इसी तरह मैं हूँ तो राग की अवस्था होती है। पर्याय में राग होता है और राग का कर्ता पर्याय है, ऐसा नहीं। अज्ञानी ऐसा मानता है। दया, दान, व्रत का भाव आया, वह राग है। उसका मैं कर्ता हूँ, अकेला उसका कर्ता हूँ, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया?

[**अमी कोपादयः**] **विद्यमानरूप हैं जो ज्ञानावर्णादिक...** यह चीज़ विद्यमान है, कहते हैं। **वे मेरी करतूति है।** आहाहा! यह मेरा कार्य है। ऐसे गुलाँट खाकर बात करे तो कहते हैं, विकार है वह पुद्गल का कार्य है और पुद्गल का यह कर्म है, यह भी अज्ञानी है। ऐसा कहते हैं कि पुद्गल की कर्म की पर्याय होती है और राग होता है, उसका मैं अकेला करता हूँ। यह दोनों अज्ञान हैं। आहाहा! ऐसा सब समझना कठिन पड़े।

मुमुक्षु : यह तो पुद्गल का कार्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल का कार्य नहीं यह तो जाननेवाला हूँ। सम्यग्दृष्टि धर्मी को राग होता है परन्तु राग का कर्ता मैं नहीं, रचनेवाला मैं नहीं। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। आहाहा! और उस राग के काल में थोड़ा कर्म बन्धन भी हो, उसका भी मैं जाननेवाला हूँ। यह ज्ञेयरूप से है यह पर, मैं ज्ञानरूप से हूँ स्व। स्वज्ञानरूप से मैं पर को ज्ञेय तरीके जानता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग!

ऐसा है मिथ्यादृष्टि का विपरीतपना... है? कर्म के निमित्त के सम्बन्ध की राग उपाधि है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानकर, यह राग का कर्तव्य मेरा है और उस काल में पुद्गल बँधता है, वह भी मेरे कारण बँधता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? भले फिर जैन का साधु नाम धराता हो और पंच महाव्रत के परिणाम हो... अभी तो यह पंच महाव्रत के परिणाम से जो नवमीं ग्रैवेयक गया, ऐसा कोई परिणाम अभी तो होते नहीं। आहाहा! लेकिन यह पंच महाव्रत के परिणाम यह राग है। अज्ञानी कहता है कि यह राग मेरा कर्तव्य है। यह हमारा कर्तव्य है। पर का जीवन बचाऊँ, पर को आहार-पानी की मदद करना, यह हमारा कर्तव्य है। ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! है?

ऐसा है मिथ्यादृष्टि का विपरीतपना उसको दूर करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। ऐसा कहना है। आहाहा! प्रभु! आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी प्रकाशमय वस्तु है। यह प्रकाश करे या किसी को करे? आहाहा! समझ में आया? जिसको यह व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा यह राग है; पंच महाव्रत का भाव, यह राग है; शास्त्र का पढ़ना, यह भी राग है। आहाहा! यह राग का कर्तव्य मेरा है और मैं इसका कर्ता हूँ—ऐसा मिथ्यादृष्टि का विपरीतपना (है), उसको ज्ञान समा देता है। आहाहा! मैं एक आत्मा चैतन्यप्रकाश का पुंज हूँ, ऐसी दृष्टि होते यह विपरीतपने का उसको नाश करता है। नाश करता है, यह इस उपाय से, स्वरूप की दृष्टि होकर के जो सम्यग्दर्शन होता है, तब इस विपरीत मान्यता का नाश होता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म। एक-एक बात (अलग)। वह सुनने जाए वहाँ तो दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, यह बात तो इसमें कहीं आयी नहीं। आयी? आयी परन्तु यह राग आया। राग का कर्ता और कर्तव्य यह मेरा, यह तो मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा!

ऐसा **ज्ञान प्रगट होता है।** विपरीतबुद्धि का नाश करते ज्ञान प्रगट होता है। मैं एक ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ। स्व और पर को प्रकाशित करनेवाला। राग को और पर को नहीं करनेवाला। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अब पण्डित नुक्स निकालते हैं, मक्खनलालजी कहते हैं... पत्रिका में बहुत आया है—शुभयोग, वह मोक्ष का मार्ग है। दया, दान, व्रत... दिगम्बर पण्डित (ऐसा कहते हैं), लो। इसके लिये चैलेंज दिया कैलाशचन्दजी को। कैलाशचन्दजी कहते हैं कि शुभ उपयोग वह हेय है। यह कहते हैं कि हेय माने वह मिथ्यादृष्टि है, मक्खनलालजी कहते हैं। तब कैलाशचन्दजी ने कहा कि कुन्दकुन्दाचार्य शुभराग को हेय मानते हैं तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हुए। यह दो पण्डितों में चला है। मूल तो यह बात यहाँ से निकली, तब यह सब (चर्चा होने लग गयी) तब मक्खनलालजी यह बड़ी चेलेंज दी थी। कैलाशचन्दजी को चेलेंज देता हूँ कि दिल्ली आओ और चर्चा करो। चेलेंज देता हूँ। शुभयोग है, यह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : ...शुभ करने से शुद्ध होगा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब खोटा। एक-एक खोटा। आहाहा! शुभ करने से शुद्ध

होगा, यह मिथ्यात्व है और शुभ का भाव है, यह मेरा कर्तव्य है—यह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बातें अद्भुत, भाई! वस्तु ऐसी है, भाई! वर्तमान में तो सब बातें उड़ गयी है। आहाहा! कोई तत्त्व की बात ही नहीं रही। यह करो, व्रत पालो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो, दान करो। (बस) हो गया।

मुमुक्षु : पंचाध्यायी के दूसरे भाग में भावार्थ लिखा है इसमें ऐसा ही लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह लिया है। किन्तु इसमें ही यह नहीं कहा? ५६८ गाथा, पंचाध्यायी में है ६६८ गाथा। शुभयोग है, वह दुष्ट पुरुष के जैसा दुष्ट कर्तव्य है, उसी प्रकार शुभभाव दुष्ट कर्तव्य है, इसका फल दुष्ट है। इन्होंने मक्खनलालजी ने इसका अर्थ किया है। बनाया है राजमलजी ने। पंचाध्यायी यहाँ है? नहीं होगा। ५६८ गाथा है, बतायी थी उस दिन। इसमें तो यह स्पष्ट लिखा है कि शुभयोग है, यह दुष्ट है। पाठ में व्रत आदि शब्द है। व्रत-व्रत। यह व्रत का भाव, वह शुभ है, यह दुष्ट है। अरे..! कैसे बैठे? इसको तो व्रत करना, यह संवर है और अपवास निर्जरा है। ऐसा सीधा सरल था भटकने का। आहाहा! व्रत पालना, अहिंसा, सत्य, दत्त यह संवर, अपवास करना, वह तप है और तप है, यह निर्जरा है और निर्जरा है, यह धर्म है। अज्ञानी का माना हुआ सीधा सरल था। आहाहा! यह ही प्रथा है न? सबमें (यह ही) प्रथा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि राग का कर्ता होता है, ऐसी जो उसकी विपरीत दृष्टि है, उसको ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा जाननेवाला नाश करता है। यह तो जाननेवाला है यह करे किसको? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर को तो नहीं करे किन्तु राग को भी नहीं करे। ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञान करे अथवा राग करे? आहाहा! ऐसा है स्वरूप। चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु है। यह चैतन्य के प्रकाश की पर्याय को करे। यह भी उपचार से कर्ताकर्म, भेद हुआ न इतना? इसमें है। आगे आयेगा। समझ में आया? है न कहीं? कर्ता-कर्म में है न? इस ही पृष्ठ पर आया, दूसरा पाना, देखो! इसके बाद का, है न? चौथा कलश। चौथा कलश। नीचे है, देखो! **जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है, वही परिणाम द्रव्य का किया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता...** नहीं है। है? नीचे। ५२ पृष्ठ पर है। आहाहा! आगे आयेगा। **अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं** । देखा?

अन्य द्रव्य का परिणाम को पुद्गल बाँधे अथवा पर की दया पाले, यह उपचारमात्र भी इसका कर्ता नहीं। है ?

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यात्व में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन दो में भेद करना इसलिए यह... आहाहा! पहले तो अभी समझना कठिन। क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। अरे..! जिनेश्वरदेव परमेश्वर का हुकम है कि राग का कर्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि है और यह परद्रव्य की दया पालनेवाला हो और पैसा मैंने दिया, ऐसे दान देनेवाला हो, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : उपचार मात्र से कर्ता नहीं तो उपचार क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार कहा न ? व्यवहार से भेद पड़ा है न। आत्मा कर्ता और परिणाम, वह कर्म—ऐसा यह भेद पड़ा न ? इसलिए उपचार कहा।

मुमुक्षु : भेद पड़ा तो राग हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प और भेद हुआ इतना जरा। अभेद में तो कर्ता-कर्म सब एक ही है। कर्ता में भी यह और कर्म में भी यह।

निश्चय से तो निर्मल परिणाम का कर्ता और निर्मल परिणाम कर्म, यह अभेद से परिणाम में है। द्रव्य की साथ इसका सम्बन्ध नहीं और विकार के परिणाम का भी पर्याय कर्ता और पर्याय उसका कर्म, इसका द्रव्य-गुण के साथ सम्बन्ध नहीं। पर के साथ तो सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! राग के परिणाम का आत्मा कर्ता और राग का परिणाम कर्म, यह उपचार व्यवहारमात्र से है। पर्याय में होता है इतना। आहाहा! यह तो नहीं करना सम्यग्दर्शन, नहीं करना सम्यग्ज्ञान और ले लो व्रत और तप को... साधु हो जाओ झट। प्रतिमा ले लो। रोटी तो चले। अरे..रे..! कोई तत्त्व की खबर नहीं मिले।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग का कर्ता माने तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग का कर्तव्य है, इतना भी भेद है—ऐसा कहते हैं। शुद्ध उपयोग का कर्ता और कर्मपना शुद्ध उपयोग में है। आत्मा शुद्ध उपयोग का कर्ता, यह भी भेद हुआ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो परमेश्वर, जिनेश्वर किसको कहते हैं।

यह किसको कहें ! आहाहा ! जो एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक जाने, प्रभु ! आहाहा ! उनका मार्ग वह कैसा हो.. ! भाई.. !

वास्तव में तो राग का कर्ता हूँ और राग इसका परिणाम, यह अज्ञानी के लिये भी भेद है, व्यवहार है। और ज्ञानी के लिये शुद्ध उपयोग मेरा कर्तव्य है और मैं इसका कर्ता हूँ, शुद्ध उपयोग कर्म यह भी भेद है। शुद्ध उपयोग जो है, यह ही परिणाम में कर्ता और कर्म है। आहाहा ! ऐसा है। परमात्मा वीतरागदेव ऐसा जगत को कहते हैं परन्तु जगत को मिला नहीं, इसलिए क्या करे ? कितने ही नये को तो यह सुनकर ऐसा लगे कि मानो यह तो धर्म का ही लोप हो जाता है। आहाहा ! भाई ! तुझे धर्म क्या, इसकी खबर नहीं, बापू.. ! आहाहा ! यह राग की क्रिया है, यह तो अधर्म है। आहाहा ! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अधर्म है। धर्म से बन्ध हो क्या ? आहाहा !

यह तो कहा था न ? (संवत्) १९८५ के वर्ष की बात है। ८५ के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ४८। ४८ वर्ष पहले व्याख्यान चलता था। तब तो मुहँपत्ती में थे न। बोटाद हजार-पन्द्रह सौ व्यक्ति आयें। बहुत बड़ी सभा भरे। हमारा नाम प्रतिष्ठित था न। कानजीस्वामी वाँचने बैठे हैं, ऐसा आये इसलिए लोग उमड़ पड़े। अपासरे में तो समायें नहीं लेकिन बाहर गली में भरें। फिर इस समय थोड़ा कहा। १९८५ के पौष महीने की बात है। कहा जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे यह भाव धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : धर्म से कोई समय बन्ध हो क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म से बन्ध हो ? कहा। बन्ध हो, यह तो भाव बन्ध का करण है। धर्म नहीं। और पंच महाव्रत के परिणाम, वह आस्रव हैं, ऐसा कहा। सम्प्रदाय में, हों ! बहुत बड़ी सभा थी। पंच महाव्रत के परिणाम वह विकल्प है, राग है, आस्रव है। धर्म नहीं। पर की दया पालूँ, पर को झूठ नहीं बोलूँ, ऐसा परलक्ष्यी भाव है यह तो। परलक्ष्यी भाव यह विकार है, आस्रव है। सभा में तो कोई न बोले, सम्प्रदाय में हमारी प्रतिष्ठा थी न।

मुमुक्षु : महाराज की (आजू-बाजू) केवलज्ञान फिरा करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोटाद में तो बहुत हमारा मान था न ! ५० वर्ष, ६० वर्ष पहले। ६४ वर्ष तो दीक्षा ली इसको हुए। ६४ वर्ष। आहाहा ! फिर यह साधु बैठा था, यह कहे,

बोसरे-बोसरे। उठ गया। अरे..! परन्तु बैठा रहना था न। आहाहा! तुमने क्या कहा यह लोगों ने नहीं सुना। मुझे खबर है तुमने क्या किया यह? ऐसा कहते हैं तुम्हारी बात झूठी है, यह श्रद्धा हमें नहीं चाहिए। नहीं चाहिए तो एक तरफ रखो। पंच महाव्रत के परिणाम और बारह व्रत के भाव, यह राग और आस्रव और बन्ध का कारण है। अरे..! यह वस्तु.. भगवान का अभी लोप कर दिया। आहाहा! वाडा बाँध के जैसे बकरे भर दिए, ऐसे भरे हैं। आहाहा! यह तो सिंह का मार्ग वीतराग का है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मुँहपत्ती त्याग की, फिर इसको झूठा ठहराया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुँहपत्ती के समय कहा था। यह क्या कहा? मुँहपत्ती के समय और तब पन्द्रह सौ व्यक्ति (संवत्) १९८५ के वर्ष। बोटाद में तो तीन सौ घर। अब बढ़ गये हैं। बहुत लोग आये, बहुत लोग आये व्याख्यान चले इसलिए। इस समय कहा था कि पंच महाव्रत के परिणाम, यह आस्रव (है) और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह अधर्म (है)। धर्म से बँधन नहीं हो सकता। धर्म तो आत्मा का वीतरागी परिणाम, चैतन्य के आश्रय से—अवलम्बन से हुआ वीतरागी भाव, यह धर्म है। आहाहा! अब यह वीतरागी भाव क्या और किसके आश्रय से हुआ, यह कभी सुना नहीं हो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं.. आहाहा! **मिथ्यादृष्टि का विपरीतपना उसको दूर करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है।** आहाहा! मिथ्यादृष्टि अज्ञानी राग का कर्ता होता है, यह उसका अज्ञान है। इसको ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है, वह अज्ञान का नाश करता है। आहाहा! यह राग का यह कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं। आहाहा! मैंने इतने शिष्य बनाये, इतने पैसा खर्चा किया और इतने मन्दिर बनाये, यह सब मान्यता अज्ञान है। आहाहा! तुमने यह नहीं बनाया? यह रामजीभाई ने नहीं किया बस लो! छब्बीस लाख रुपया का बड़ा मन्दिर। किये बिना हुआ होगा यह?

मुमुक्षु : मेरे नाम का एक प्रतिशत भी आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो न, यह प्रमुख नहीं थे तो... अभी चारों ओर से लोग ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो गये हैं। कल कोई कहता था। हिम्मतभाई, नहीं? कल नहीं? रामजीभाई ने यह स्वीकार किया, यह बहुत अच्छा किया। लेकिन एकदम इस समय यह ही था न?

नवनीतभाई के समय कौन (था)। अच्छे धीर व्यक्ति हैं, यह जाएँगे तब खबर पड़ेगी लोगों को। आहाहा! पर का कर नहीं सके कुछ भी, हों! ऐसी बातें। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अज्ञान को दूर करता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। **भावार्थ इस प्रकार है कि यहाँ से लेकर कर्तृ-कर्म अधिकार प्रारम्भ होता है।** शुरुआत होती है अब। कर्ता-कर्म की गाथा (संख्या) ७६ है। इसमें पहली गाथा में मांगलिक किया। आहाहा! शुद्ध ज्ञान का प्रकाश। जैसी शक्ति है, ऐसा सम्यग्दर्शन होते शुद्ध ज्ञान का प्रकाश पर्याय में प्रगट होता है। यह पर्याय में प्रगट होता है, यह कर्ता का कर्म है, यह उपचार से। आहाहा! ऐई! कारण कि द्रव्य को पर्याय का कर्ता कहना, यह व्यवहार से (है)। द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव कहाँ परिणमता है? परिणमन में कार्य होता है? परिणमन में कार्य होता है, यह परिणमन नहीं करनेवाला, इसको कर्ता कहना, यह तो उपचार व्यवहार से है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ही इसमें होता है, इतना सिद्ध करते हैं। निश्चय से तो पर्याय जो शुद्ध धर्मपने परिणमति है, उसका कर्ता द्रव्य और गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे..! ऐसी बातें। अभी अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे यह—वह जैनधर्म की बात होगी यह? हमने तो इतने ५० वर्ष निकाले और ६० वर्ष निकाले इसमें तो ऐसी बात सुनते नहीं थे... ऐई..! यह स्थानकवासी के अग्रेसर जादवजीभाई रहे। यह हमारे मेहमान नहीं आये? यह स्थानकवासी के हैं। यह प्रेमचन्दभाई यहाँ तो बहुत स्थानकवासी ही हैं न? यह हमारे 'तुरखिया' यह स्थानकवासी, इनके पिता। आहाहा! श्वेताम्बर के कोई ही हैं, बाकी स्थानकवासी के बहुत। उसमें ही थे न इसलिए बहुत इधर मुड़े। यह भी स्थानकवासी थे। लो न।

मुमुक्षु : सब भोले हैं, इसलिए आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग ऐसा कहते हैं। माथे कहें, यह भोले व्यक्ति सुनें.. अरे..! प्रभु..! तुम सुनो, भाई! आहाहा! भोले लोग हाँ करें वहाँ। आहाहा! यह एक श्लोक हुआ.. आहाहा!

मुमुक्षु : पहला

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला हुआ।

कलश-४७

(मालिनी)

परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा-
निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः।
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः।।२-४७।।

खण्डावन्य सहित अर्थ-'इदं ज्ञानं उदितं' [इदं] विद्यमान है ऐसी [ज्ञान] चिद्रूप शक्ति [उदित] प्रगट हुई। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञानशक्तिरूप तो विद्यमान ही है, परन्तु काललब्धि पाकर अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ। कैसा होता हुआ ज्ञान [चिद्रूपशक्ति] प्रगट हुआ? 'परपरिणतिं उज्झत्' [परपरिणतिं] जीव-कर्म की एकत्वबुद्धि को [उज्झत्] छोड़ता हुआ। और क्या करता हुआ? 'भेदवादान् खण्डयत्' [भेदवादान्] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय अथवा आत्मा को ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवता है-इत्यादि अनेक विकल्पों को [खण्डयत्] मूल से उखाड़ता हुआ। और कैसा है? 'अखण्डं' पूर्ण है। और कैसा है? 'उच्चैः उच्चण्डं' [उच्चैः] अतिशयरूप [उच्चण्डं] कोई वर्जनशील नहीं है। 'ननु इहं कर्तृ-कर्मप्रवृत्तेः कथं अवकाशः' [ननुः] अहो शिष्य! [इह] यहाँ शुद्ध ज्ञान के प्रगट होने पर [कर्तृकर्मप्रवृत्तेः] जीव कर्ता और ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड कर्म ऐसे विपरीतरूप से बुद्धि का व्यवहार उसका [कथं अवकाशः] कौन अवसर। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार को अवसर नहीं, वैसे शुद्धस्वरूप अनुभव होने पर विपरीतरूप मिथ्यात्वबुद्धि का प्रवेश नहीं।

यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध ज्ञान का अनुभव होने पर विपरीत बुद्धिमात्र मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है?

उत्तर इस प्रकार है कि विपरीत बुद्धि मिटती है, कर्मबन्ध भी मिटता है। 'इह पौद्गलः कर्मबन्धः वा कथं भवति' [इह] विपरीत बुद्धि के मिटने पर [पौद्गलः] पुद्गल सम्बन्धी है जो द्रव्य-पिण्डरूप [कर्मबन्धः] ज्ञानावरणादि कर्मों का आगमन [वा कथं भवति] वह भी कैसे हो सकता है।।२-४७।।

कलश - ४७ पर प्रवचन

दूसरा।

परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा-
निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः।
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः।।२-४७।।

आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त आनन्द के अनुभवी (हैं)। मुनि इनको कहना कि जिनको अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र अनुभव होता है, इनको मुनि कहते हैं। कपड़ा छोड़े और नग्न हुए इसलिए मुनि (है), ऐसा नहीं है। आहाहा! यह कपड़ेवाले बिल्कुल द्रव्यलिंग भी नहीं। समझ में आया? कपड़ेवाले को साधु मानते हैं, यह तो कुलिंग है। यह तो लिंग भी नहीं। परन्तु जैनधर्म का नग्न लिंग धारण करे, यह द्रव्यलिंग है। वह द्रव्यलिंग भी जो इसको अट्ठाईस मूलगुण बराबर सही हों, पंच महाव्रत निरतिचार हो तो द्रव्यलिंगी कहलाये। दृष्टि मिथ्यात्व है और इसमें धर्म मानते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

भावलिंग राग से भिन्न पड़कर निर्विकल्प प्रभु चैतन्यमूर्ति का अनुभव करे, तब तो इसको सम्यग्दर्शन हो। आहाहा! और फिर स्वरूप जो आनन्दमूर्ति ज्ञान, ज्ञान के नूर का तेज, प्रभु! ऐसा जो अनुभव में आया, उसको अभी इसमें—आनन्द में लीनता करना, अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में लीनता करना, इसका नाम चारित्र है। अरे..! व्याख्या भी दूसरी, बात दूसरी। समझ में आया? तब तो उसको रागादि, पंच महाव्रत आये, किन्तु यह उनका कर्ता नहीं होता। उस काल में वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा या है न? १२वीं गाथा। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वरूप चैतन्य का जहाँ भान हुआ, इससे इसको अभी राग-व्यवहार आता है सही, परन्तु इसका यह कर्ता नहीं होता, उसका यह ज्ञाता रहता है। आहाहा! वीतरागी धर्म की दशा जिसको प्रगटी हो, उसको राग आये, इसका यह कर्ता न होकर ज्ञाता होता है। यह कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति पर से भिन्न पड़ जाती है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ३, मंगलवार, दिनांक ०२-०८-१९७७
कलश-४७, प्रवचन-५६

कलश-टीका। ४७ कलश है। फिर से बोलते हैं।

परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा-
निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः।
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः।।२-४७।।

आहाहा! '**इदं ज्ञानं उदितं**' (**इदं**) यह विद्यमान ज्ञानस्वरूप आत्मा, शुद्धस्वरूप है, उसे यहाँ चिद्रूप शक्ति कहा है। त्रिकाल जो चिद्रूप शक्ति ध्रुव है, वह प्रगट हुई। यह सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यक् दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ने पर, द्रव्य जो ध्रुवस्वरूप चैतन्य... भबूतमल नहीं आये?

मुमुक्षु : आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देरी से। पहली शुरुआत हुई उसमें से...

क्या कहा? यह आत्मा जो है, वह चैतन्यस्वभाव, चेतनास्वभाव, आनन्दस्वभाव ऐसी जो शाश्वत् नित्य ध्रुव चीज़ है, उसके ऊपर दृष्टि पड़ने पर, ऐसा ध्रुवस्वभाव उसका उसे दृष्टि में स्वीकार होने पर... आहाहा! उसकी परिणति आत्मस्वभावरूप हो जाती है, ऐसा कहते हैं। है?

विद्यमान है ऐसी चिद्रूप शक्ति प्रगट हुई। अर्थात् कि जो ज्ञानस्वरूप ज्ञायकभाव, पर्याय में उसका परिणमन ज्ञान और आनन्द की दशा का परिणमन हुआ, वह चित्शक्ति प्रगट हुई। ऐसा सूक्ष्म मार्ग है। कर्ता-कर्म अधिकार है न? यह चैतन्यवस्तु है एक समय में ध्रुव, उसे जिसने दृष्टि से उसका स्वीकार किया, अर्थात् चित्शक्ति अर्थात् आत्मशक्ति, उसका जो त्रिकाली स्वभाव, उसका परिणमन पर्याय में आनन्द और ज्ञान की दशा का परिणमन हुआ। यह आत्मा प्रगट हुआ कहो या चिद्रूप शक्ति प्रगट हुई कहो। ऐसी बातें!

समझ में आया ? उसे धर्म हुआ, ऐसा कहते हैं। धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य, उसको उन्मुख होने पर उस त्रिकाली स्वभाव का स्वीकार होने पर पर्याय में वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उस शक्ति की व्यक्तता प्रगट दशा हुई, वह चिद्रूप शक्ति प्रगट हुई, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया ? सूक्ष्म मार्ग है, भाई! आहाहा! यहाँ तो अभी... **प्रगट हुई।**

भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञानशक्तिरूप तो विद्यमान ही है,... देखा! जीव वस्तु है, वह ज्ञानस्वभाव ऐसी शक्ति से तो त्रिकाल विद्यमान है, मौजूद है, अस्तिवाला वह तत्त्व है। आहाहा! **परन्तु काललब्धि पाकर...** लो! अर्थात् कि जिस समय में वह पर्याय होनेवाली है, उस समय में उस स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ करके उस काल में वह दशा प्राप्त हो, वह काललब्धि से प्राप्त हुआ भाव, वह भवितव्यता। आहाहा!

फिर से। आत्मा आनन्दस्वरूप है। यहाँ ज्ञान प्रधान से बात है। क्योंकि प्रगट अंश है न, इसलिए ज्ञान की मुख्यता ली है। बाकी आनन्दस्वरूप जो वस्तु, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम वह स्थल-उसका अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान, ऐसी जो विद्यमान चैतन्यवस्तु, उसे वर्तमान काललब्धि पाकर अर्थात् कि उस सन्मुख पुरुषार्थ करके। आहाहा! ऐसी बात है। दया पालना... काम ऐसा, ऐसा। देरी से क्यों आये ? व्यापार में तो झट पहले जाते हैं, पहले दुकान खोलते हैं।

हमारे वहाँ पालेज दुकान में कुँवरजीभाई थे, वे जल्दी उठे। बुद्धि साधारण थी परन्तु वर्ष की दो-दो लाख की आमदनी। हमारे भागीदार थे। बुआ के पुत्र। पहले आवे। वे लड़के इनकार करें। बापू! परन्तु अब हम सब हैं। नहीं, पहले आऊँगा। नौकरों को उठाऊँगा और संजवारी... क्या कहलाता है वह ? साफ करे। जलावे न। ऐसा करे। अन्त में मरते हुए ममता बहुत न, मरते हुए मस्तिष्क पागल हो गया। मैंने किया, यह किया, यह किया। आहाहा! धूल में भी कुछ नहीं।

मुमुक्षु : वे लौकिक कमाई में पहले आने का कहते थे, यह... कमाई...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त तो इनके लिये दिया। भाई को पूछा था। मैंने कहा, भाई कहाँ गये ? कहे, आते हैं।

यहाँ यह गाथा ही अलौकिक, सूक्ष्म है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होवे तो किस प्रकार होवे और होवे तो वह क्या करता है? समझ में आया? कहते हैं कि वह चित्शक्ति **काललब्धि पाकर अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ।** पुस्तक दो न, भाई! कहाँ गया? नहीं? है? पढ़े तो सही, वे पुस्तकें पढ़ते हैं वहाँ यह।

मुमुक्षु : उसमें क्या सूझ पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें सूझ न पड़े, ऐसा कहते हैं। इसमें कहते हैं सूझ न पड़े, भाई! ऐसा कहते हैं। उसमें सूझ पड़ती है। आहाहा!

क्या कहा? पहले ऐसा कहा? कि **विद्यमान है ऐसी चिद्रूप शक्ति...** पहली। आत्मा।

मुमुक्षु : पहले विद्यमान अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : विद्यमान अर्थात् अस्ति है। यह अर्थ पहले हो गया है। विद्यमान अर्थात् अस्ति। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चित्स्वरूप अस्ति-मौजूद है। विद्यमान कहो या मौजूद कहो। आहाहा! चिद्रूप, आनन्दरूप, ज्ञानरूप, शान्तरूप, स्वच्छतारूप, ईश्वरतारूप, मौजूद चीज़ है। आहाहा! उस मौजूद चीज़ को... आहाहा!

प्रगट हुई। अब कहते हैं। उस पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन ऐसी जो पर्याय, उसकी पर्याय को वहाँ दृष्टि देने से उस शक्ति में जितना सामर्थ्य था, उसका कितना ही पर्याय में परिणमन हुआ। सम्यग्दर्शनरूप से, सम्यग्ज्ञानरूप से, आनन्दरूप से वह दशा हुई, उसका नाम धर्म। आहाहा! समझ में आया?

अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ। कौन? ज्ञान। पहले ज्ञान कहा था न? चिद्रूप शक्ति। **अनुभवशील हुआ।** आहाहा! यह क्या कहा? जो अनादि से राग और पुण्य-पाप के विकारभाव को अनुभवता था, वह मिथ्यात्वभाव था। आहाहा! वह भ्रान्ति और भ्रमभाव था। पुण्य-पाप का भाव, उन्हें वेदना और करना, वह भ्रान्ति मिथ्यात्वभाव था। आहाहा!

मुमुक्षु : हम बनिया हैं, ऐसा मानते हैं, वह मिथ्यात्वभाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया था कब? बनिया तो नहीं परन्तु यहाँ तो जरा दया, दान

के भाव आवें, उनका वह कर्ता और वेदता नहीं है। इसका नाम धर्म है। सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

क्योंकि वस्तु जो चैतन्यस्वरूप है, वह तो ज्ञान का पुंज है। वह तो अनाकुल आनन्द का ढ़ेर है। आहाहा! ऐसा जो विद्यमान टिकता त्रिकाली तत्त्व, उसे काललब्धि अर्थात् वर्तमान सन्मुख पुरुषार्थ से जिसने वर्तमान में उस आनन्द का पर्याय में परिणमा, ज्ञानरूप परिणमा, सम्यक्रूप हुआ। उसका अर्थात् अनुभवशील परिणमन कहलाता है। है? **अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ।** आहाहा! अनादि से पुण्य और पाप, राग-द्वेष, शुभ या अशुभभाव का जो करनापना और भोगनापना था, वह मिथ्यात्वभाव था। आहाहा! वह अब अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूप का अनुभवशील हुआ। अरे! ऐसी व्याख्या। क्या कहा यह?

पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग, उससे भिन्न पड़कर चैतन्यस्वभाव का जहाँ स्वीकार हुआ, तब वह जैसे राग और पुण्य के भाव को कर्ता और भोक्ता, वह भाव गुलाँट खा जाता है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन का आदर करने पर उसकी पर्याय में अपने स्वरूप का अनुभव स्वभाव हुआ। पर्याय में अनुभवशील हुआ। मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! वह तो सीधा-सट्ट (था) कि भाई मन्दिर बना दो चलो, धर्म हो जाए। यहाँ कहते हैं कि धर्म नहीं होता, लो! ऐई! भभूतभाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो पुण्य के भाव होते हैं, उनसे भी चैतन्य भिन्न है—ऐसा जो भान करे, उसे राग का परिणमन अनुभव न होने से उसे आनन्द का, ज्ञान का अनुभव स्वभाव होता है। आहाहा! सेठ नहीं आये न? काम में रुके होंगे। यहाँ बेचारे बैठते सामने। ३५ वर्ष की उम्र। क्या हो गया? हार्टफेल हो गया। कौन जाने दरवाजा बन्द और ताला बन्द अन्दर। ऐसा दूसरा कोई निकला नहीं कुछ। एकदम जवान था। सवेरे यहाँ पीछे बैठता, दोपहर को यहाँ बैठता। यहाँ बैठता यहाँ। मोरेना का था। मोरेना। आहाहा! यह देह की स्थिति जिस समय में पूरी होनेवाली हो, उसे कोई निमित्त तो होवे न? एकदम चला जाए।

यहाँ तो कहते हैं कि दोनों को भिन्न करना, वह तेरा कार्य है। आहाहा! पुण्य और

पाप के भाव हों, हों, परन्तु उनसे चैतन्यस्वरूप भिन्न है, उसे भिन्न करके अनुभवशील हो। आहाहा! कठिन बात। जन्म-मरण मिटाने का मार्ग तो यह है, बापू! अभी तो यह पहले सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा! क्या कहा?

अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ। तुम तो थोड़ा गुजराती समझते हो। इन्हें कहाँ... आहाहा! क्या अनुभवशील हुआ? कौन? ज्ञान अर्थात् आत्मा। ऐसा ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाली भगवान, उसे पुण्य और पाप के राग से भिन्न करके, स्वभावसन्मुख होकर ज्ञान अर्थात् आत्मा **अपने स्वरूप का अनुभवशील हुआ।** अपनी परिणति है, वह जो शुद्धस्वभाव है, ऐसा उसका परिणमन हुआ। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा होता हुआ ज्ञान (चिद्रूपशक्ति) प्रगट हुआ? आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञानसागर, पर्याय में-अवस्था में उसका परिणमन हुआ। वह स्वभाव है, उसका परिणमन हुआ। अनादि तो स्वभाव है, उससे विरुद्ध—पुण्य और पाप अर्थात् विभावभाव का परिणमन था, वह मिथ्याभ्रान्ति का परिणमन है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में उस पुण्य-पाप का परिणमन दूर हो गया। चैतन्य के स्वभाव का परिणमन हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह क्या कहते हैं? यह शरीर-बरीर तो धूल कहीं रह गयी। परन्तु अन्दर में होनेवाले पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, रागादि भाव, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है; इसलिए उनसे भिन्न पड़कर चैतन्यस्वरूप है, उसका सत्कार / स्वीकार होकर जो राग का, पुण्य का परिणमन था, उसके स्थान में शुद्धस्वभाव का परिणमन हुआ। पण्डितजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

किस प्रकार? कैसे प्रगट हुआ? आहाहा! **'परपरिणतिं उज्झत्' (परपरिणतिं)** अर्थात् कि पुण्य और पाप के भाव, वह परपरिणति है। वह स्व नहीं है, वह आत्मा की दशा नहीं है। वह परपरिणति पुण्य और पाप के भाव जो विभावभाव... यहाँ ऐसा कहा कि **जीव-कर्म की एकत्वबुद्धि को छोड़ता हुआ।** मूल यहाँ पण्डित जयचन्दजी ने ऐसा कहा कि परपरिणति अर्थात् विभाव को छोड़ता हुआ। यहाँ ऐसा कहा कि विभाव और आत्मा एक बुद्धि है, उसे छोड़ता हुआ। समझ में आया? ऐसा धर्म अब, भाई! चैतन्यस्वभाव

शुद्ध चैतन्य नित्य ध्रुव, उस पर दृष्टि पड़ने से उस चैतन्य का परिणमन, पर्याय में जो राग का-विकार का परिणमन था, उसके स्थान में उससे भिन्न पड़कर निर्विकारी परिणमन हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निर्विकारी परिणमन। इसका नाम आत्मा की पर्याय और धर्म। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? परपरिणति अर्थात् जीव और कर्म अथवा कर्म के सम्बन्ध से हुए विकारी भाव और जीव दोनों की एकत्वबुद्धि को तोड़ता हुआ। आहाहा! समझ में आया? **'परपरिणतिं उज्झत्'**।

और क्या करता हुआ? 'भेदवादान्' आहाहा! यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव, ऐसे तीन भेद का भेद है, उसे छोड़ता हुआ। आहाहा! एक बात तो यह कि चैतन्यस्वरूप भगवान का अन्दर स्वभाव का भान होने से उस स्वभाव की परिणति इस विकार परिणाम को छोड़ती है अर्थात् कि मुझमें है नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। आहाहा! लो, यह सम्यग्दर्शन अर्थात् कुछ नहीं। भगवान की श्रद्धा करो, लो व्रत और लो प्रतिमा। आहाहा! बापू! सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन। सम्यग्दर्शन न? सत्यदर्शन। तो सत्यदर्शन अर्थात् कि त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु ध्रुव, जो सत्य है, उसका दर्शन-प्रतीति होना, इसका नाम सत्यदर्शन है। आहाहा! उस काल में उसमें विकार के परिणमन को वह ज्ञानस्वभाव परिणमन छोड़ता हुआ और भेद को छोड़ता हुआ... आहाहा!

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य... आत्मा में नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी अवस्था व्यय हो और ध्रुवरूप से कायम रहे, ऐसा तीनपना है, ऐसे तीन के भेद को भी लक्ष्य में से छोड़। एक अखण्ड आनन्द के ऊपर दृष्टि पड़ने पर। आहाहा! समझ में आया? **'भेदवादान्' उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय...** आहाहा! वस्तु जो त्रिकाल है, वह द्रव्य है और उसमें ज्ञान, दर्शन और आनन्द उसके गुण हैं और वर्तमान उसकी हालत-दशा, वह पर्याय है। ऐसे तीन भेद को भी छोड़ता हुआ। आहाहा! अपने अभेद पर दृष्टि जाती है, कहते हैं। सम्यग्दर्शन की दृष्टि भेद पर नहीं है, ऐसा कहते हैं। केशरीमलजी! ऐसा है। ऐसी बातें! आहाहा!

अर्थात्? कि चिद्रूप वस्तु जो है, उसका आश्रय लेने पर वह निर्मल परिणमन होता है, वह स्वयं पुण्य-पाप के भाव विभाव हैं, उनका एकत्वपना छोड़ता है अथवा उनके

लक्ष्य को छोड़ता है, उनका आश्रय छोड़ता है। आहाहा! और उत्पाद-व्यय और ध्रुव ऐसे तीन भेद हैं, उन भेद पर लक्ष्य जाने से तो राग होता है। आहाहा! इसलिए चिद्रूप शक्ति प्रगट होने पर ऐसे भेद के लक्ष्य को भी छोड़ देता है। आहाहा! ऐसा धर्म! वह तो सीधा-सट्ट था। भगवान की पूजा करना, मन्दिर बना देना। यह भभूतभाई ने नहीं बनाया बड़ा? आठ लाख डाले हैं। वह धर्म होगा? राग मन्द किया, वह पुण्य है, शुभभाव है। स्त्री-पुत्र के लिये पैसे रखना, वह पाप है और यह पुण्य है।

यहाँ तो कहते हैं कि चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की जहाँ दृष्टि और स्वीकार होने पर उसकी परिणति जो ध्रुव शुद्ध है, वह राग को छोड़ती है और भेद को भी छोड़ती है। उसका लक्ष्य अब भेद पर नहीं है। अब सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य अभेद पर है। आहाहा! अब ऐसी बातें। मार्ग तो ऐसा है, बापू! क्या हो? आहाहा! समझ में आया?

'भेदवादान्' गजब बात है न! **अथवा आत्मा को ज्ञानगुण के द्वारा अनुभवता है...** आत्मा अपने ज्ञान द्वारा अनुभव करता है। यह भी एक विकल्प-राग है। आहाहा! आत्मा ज्ञान द्वारा—भेद पड़ा न? आहाहा! भेद के तीन प्रकार लिये :— उत्पाद-व्यय और ध्रुव; द्रव्य-गुण और पर्याय। आत्मा उसके ज्ञानगुण द्वारा अनुभव करता है। **इत्यादि अनेक विकल्पों...** है सब। यह राग है, कहते हैं। आहाहा! एक वस्तु अखण्ड वस्तु भगवान आत्मा, उसमें उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन भेद के विचार करना, वह विकल्प है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करना, वह विकल्प-राग है। और आत्मा गुण द्वारा ज्ञात होता है, ज्ञान द्वारा अनुभव करता है, ऐसा भेद भी विकल्प है। आहाहा! यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा!

इत्यादि... अर्थात् कि मैं शुद्ध हूँ, ध्रुव हूँ—ऐसा भी एक विकल्प है, उसे **'खण्डयत्' मूल से उखाड़ता हुआ।** मूल से उखाड़ता हुआ। आहाहा! अर्थात् भेद को मूल से छोड़ता हुआ। अकेला प्रभु चैतन्य ध्रुव, ऐसे अभेद पर दृष्टि डालता हुआ भेद के विकल्प को छोड़ता है। आहाहा! यह स्त्री छोड़े, पुत्र छोड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! वे तो छूटे पड़े हैं, अन्दर कहाँ घुसे हैं? पकड़े कहाँ हैं (कि) उन्हें छोड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो भिन्न ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो भिन्न ही हैं। उनका आत्मा में ग्रहण-त्याग है ही नहीं। आत्मा ने कभी ग्रहण नहीं किये कि उन्हें छोड़े, वह तो भिन्न चीज़ है। पुण्य और पाप के भाव इसकी पर्याय में ग्रहण किये हैं और स्वभाव को इसने अनादि से छोड़ा है। आहाहा!

अब कहते हैं कि चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, उसे पकड़ता हुआ, अभेद पर दृष्टि देता हुआ और भेद के विकल्प को छोड़ता हुआ। आहाहा! '**खण्डयत्**' खण्डित कर डालता है, तोड़ डालता है। मूल से उखाड़ डालता है। मूल से अर्थात्? यह गाय घास खाती है न? वह ऊपर-ऊपर से खाती है। उसे गोचर कहते हैं, गोचर। मूल नहीं उखाड़ती। और गधा होता है, वह खाता है तो मूल उखाड़ता है। वापस उसका मूल भी न रहे। वह गधा है और यह ज्ञानी पण्डित है। आहाहा! यह पुण्य-पाप के मूल तोड़ डालता है, कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा उपदेश भी न हो, वहाँ यह करो... यह करो... यह करो... प्रवृत्ति की बात। अब उसे...

अभी चर्चा चली है, भाई! मक्खनलालजी हैं न? पण्डित मक्खनलालजी। उन्होंने पत्रों में ऐसा लिखा था कि शुभभाव को हेय माने तो मिथ्यादृष्टि है। शुभभाव जो यह दया, दान है, उसे हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। तब कैलाशचन्दजी ने जवाब दिया है। कैलाशचन्दजी है न? कुन्दकुन्दाचार्य भी शुभभाव को हेय मानते हैं तो वे कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुए। वापस उनका लेख अभी आया था। चैलेंज करते हैं। चैलेंज देता हूँ, कैलाशचन्दजी को कहे। शुभभाव वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! कहो, गजब बात है। आहाहा! परन्तु यहाँ कहते हैं कि वह भाव है, उसे तो छोड़ता है। सम्यग्दृष्टि दृष्टि को अभेद में लक्ष्य में लेकर भेद को छोड़ता है, फिर राग को छोड़ता है, उसका तो प्रश्न कहाँ। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! जन्म-मरण का...

देखो न, वह जवान व्यक्ति यहाँ बैठता, लो! अब मर गया, लो! क्या हुआ होगा कौन जाने? यहाँ बैठता था। दोपहर को बैठे, सवेरे यहाँ बैठे। ३५ वर्ष की जवान अवस्था थी। एकाध दो कम ज्यादा होंगे। रात्रि में दरवाजा बन्द करके... मुर्दा... आहाहा! ऐसा है। अभी वहाँ अमेरिका में अपना काठियावाड़ी लड़का मर गया न? २६ वर्ष का था और अमेरिका में सबमें पास होकर नब्बे प्रतिशत से पास। उसका बड़ा भाई वहाँ इतने में होगा।

उसके पास जाना था और फिर देश में आना था। लोग कहे हम तुम्हें नहीं जाने देंगे। हम तुम्हें मान देंगे। तुम अमेरिका में नब्बे प्रतिशत से पास! बनिया और काठियावाड़ी। लोग कहे हम तुम्हें मान-सम्मान देंगे। रात्रि ग्यारह बजे तक बहुत मान-सम्मान दिया और सवेरे जाना था, इसलिए पोटला तैयार किया। वह सोता था, वह सोता था। सवेरे देखे वहाँ मर गया। अपने जलगाँव के वजुभाई की बहिन का लड़का। जलगाँव (के) वजुभाई की बहिन का लड़का। अमेरिका में कितने नम्बर से पास! कितने लाखों लोगों में नब्बे प्रतिशत से पास। इसलिए उसके भाई से मिलकर देश में विवाह करने को आना था। पोटला बाँधकर तैयार किये। सब मान-सम्मान (मिल जाने के बाद) ग्यारह बजे सोया। सवेरे देखे तो कुछ नहीं। क्या हुआ? हार्टफेल हो गया। देह की स्थिति पूरी होवे, उसमें कोई उसे रख (नहीं) सकता। आहाहा! इन्द्र का आत्मा भी उसे आकर रखे? आहाहा! उसका अपना शरीर रख नहीं सकता। अवधि पूरी हुई तो एकदम छूट जाएगा। चौरासी हजार देव शरीर की सेवा करे। इन्द्र को चौरासी हजार ऐसे, चौरासी हजार ऐसे चारों ओर उसके अंगरक्षक होते हैं। चार चौरासी हजार तो अंगरक्षक! आहाहा! वह जब देह छूटे तब अंगरक्षक भी ऐसे मुँह फाड़कर खड़े होते हैं। इन्द्रदेव गये। शरीर पड़ा रहा। आहाहा! ऐसा देह और आत्मा का स्वभाव अत्यन्त भिन्न, अत्यन्त भिन्न, कुछ लेना-देना नहीं होता। आहाहा!

वास्तव में तो यह रजकण हैं। यहाँ परसों बिच्छु निकला था। यहाँ तो पहले बहुत निकलते थे। यह जंगल था न? अब तो कम हो गये। उस बिच्छु के जो डंक के रजकण हैं न? वे रजकण अभी इसरूप आये हैं। पहले रजकण बिच्छु के डंकरूप हुए थे। वे रजकण यहाँ आये हैं। अब वे मेरे। बिच्छु के डंक से भागता है। आहाहा!

यहाँ तो शरीर को तो हेय कहा, वह तो भिन्न ही है, परन्तु अन्दर में पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण होनेवाले पुण्य और पाप के भाव, धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि चैतन्य के शुद्ध स्वभाव को ग्रहण करता हुआ, परिणमता हुआ उस राग के पुण्यभाव को भी स्वभाव में खड़ा रहकर तोड़ता है। आहाहा! अर्थात् कि उसका स्वामी नहीं होता। आहाहा! वह पुण्य का भाव आवे अवश्य परन्तु उसका वह स्वामी नहीं होता। आहाहा! स्वामी तो स्वद्रव्य-

गुण-पर्याय शुद्ध चैतन्य, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय का वह स्वामी है। दृष्टि तीन के ऊपर नहीं परन्तु स्वामी तीन का। दृष्टि एक अभेद के ऊपर। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरे! जन्म-मरण से छूटकर जाना, बापू! आहाहा! यह भव के अन्त की रीति ही कोई अलौकिक होती है न, भाई! आहाहा! चौरासी के अवतार कर-करके... आहाहा!

यहाँ बड़ा सेठिया अरबोंपति और करोड़ोंपति होवे और जहाँ देह छूटे, वह मरकर ढ़ोर में जाए। धर्म किया न हो तथा सत्समागम, शास्त्र वांचन आदि में रोज दो-चार घण्टे जाए, ऐसा पुण्य भी किया न हो। वह पुण्य है। आहाहा! वहाँ जाकर बकरी के गर्भ में या गधी के गर्भ में अवतरित होता है। यह दशा संसार की है। कहते हैं कि इस संसार का अन्त लाने की यह रीति है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अभेद वस्तु, जिसमें भेद भी नहीं, उस पर दृष्टि देने से उसका परिणमन शुद्ध और आनन्द का हो, उसमें उसे उत्पाद, व्यय और ध्रुव के ऊपर भी लक्ष्य नहीं है। आहाहा! दृष्टि तो अभेद के ऊपर है। समझ में आया?

(खण्डयत्) मूल से उखाड़ता हुआ। देखा न? राग की उत्पत्ति है, उसे मूल से तोड़ डालता हुआ। आहाहा! आनन्द की उत्पत्ति करता हुआ, राग की उत्पत्ति को मूल से तोड़ता है। आहाहा! उपदेश के वाक्य तो ऐसे ही होते हैं न! ऐसा होवे, तब वह उत्पन्न नहीं होता, उसे तोड़ डालता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

और कैसा है? आत्मा अखण्ड है। ज्ञानस्वरूप अर्थात् आत्मस्वरूप से पूर्ण है। आहाहा! है न? अखण्ड है। पूर्ण है। त्रिकाली वस्तु नित्यानन्द पूर्ण वस्तु है। **और कैसा है? 'उच्चैः उच्चण्डं' (उच्चैः) अतिशयरूप प्रचण्ड है...** आहाहा! प्रगट दशा हुई है, वह भी ऐसी है, कहते हैं। आहाहा! शुद्ध चैतन्य... आहाहा! शरीर की सुन्दरता, कृश और वृद्ध, पुष्ट। कृश और पुष्ट वह सब जड़ की-मिट्टी की दशा है। आहाहा! जहाँ पुण्य-पाप भी जिसकी दशा नहीं, वहाँ और यह कहाँ? आहाहा! जवान अवस्था और शरीर की सुन्दरता और... आहाहा! हाथी जैसा ऐसा हो। अरे! परन्तु वह तो मिट्टी है न, प्रभु! वह तो अजीव जड़, धूल है। पैसा, वह धूल होगा न?

मुमुक्षु : आप की दृष्टि में धूल, हमारी दृष्टि में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मेरी मानता है, वह भिन्न वस्तु है परन्तु है तो धूल। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि, वह वस्तु मेरी है—ऐसा तो मानता नहीं। हो, चक्रवर्ती का राज हो। सम्यग्दृष्टि हो, चक्रवर्ती का राज हो, तथापि वह मेरा है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! और अन्दर में पुण्य-पाप का राग हो, उसे वह अपना नहीं मानता। छोड़ने योग्य है, ऐसा जानकर जाननेवाला रहता है। आहाहा! क्योंकि उसका स्वरूप ही ज्ञान है, आनन्द है, इसलिए वह स्वयं उन्हें छोडकर ज्ञान में रहता है और ज्ञान उन्हें परज्ञेयरूप से जानता है परन्तु धर्मी राग को अपना मानकर सेवन करे, करे-यह है नहीं। आहाहा!

प्रचण्ड है अर्थात् कोई वर्जनशील नहीं है। अर्थात् क्या? कोई इसे नीचे गिराये... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन का जहाँ अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, उसे कोई गिरा सके, नीचे उतार दे, (ऐसी) ताकत किसी की नहीं है। कर्म का ऐसा उदय आवे तो उसे सम्यक् में से गिरावे? कि नहीं, नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। **प्रचण्ड है...** आहाहा! **कोई वर्जनशील...** उसे कोई वार सके-टाल सके, ऐसा किसी का स्वभाव नहीं है।

'ननु इहं कर्तृ-कर्मप्रवृत्तेः कथं अवकाशः' (ननुः) अहो शिष्य! आचार्य महाराज कहते हैं, **अहो शिष्य! यहाँ शुद्ध ज्ञान के प्रगट होने पर...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धरूप परिणमन करते हुए... आहाहा! शुद्ध ध्रुवस्वरूप है, उसमें पर्याय में शुद्धरूप परिणमते हुए, वह धर्मी। आहाहा! **शुद्ध ज्ञान के प्रगट होने पर...** है न? **जीव कर्ता और ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड कर्म ऐसे विपरीतरूप से बुद्धि का व्यवहार उसका कौन अवसर।** आहाहा! यह एक ही कर्म लिया, बाकी भावकर्म, द्रव्यकर्म दोनों लेना। वह जड़कर्म तो बाहर रह गया। वास्तव में तो कहते हैं कि जहाँ भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानरूप प्रगट हुआ, धर्म-समकित हुआ... आहाहा! उसे जीव कर्ता और विकारी परिणाम उसका कार्य, ऐसी विपरीत बुद्धि का व्यवहार, ऐसी विपरीत बुद्धि... आहाहा! **उसका कौन अवसर।** विपरीत बुद्धि का अवसर कैसा वहाँ? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन का भान और प्रतीति हुई, उसका परिणमन अनुभवशील स्वभाव और अनुभवशील स्वभाव हुआ, उस जीव को अब राग मेरा और राग

का कर्तव्य मेरा, उसका अवसर कहाँ है ? वह तो विपरीत बुद्धि का है। राग मेरा और राग का कर्तव्य मेरा, वह तो विपरीत बुद्धिवाले का काम है। उस विपरीत बुद्धि को यहाँ अवकाश कहाँ है ? आहाहा ! है ?

ऐसे विपरीतरूप से बुद्धि का व्यवहार... आहाहा ! स्त्री-कुटुम्ब मेरे, वह तो वहाँ है ही नहीं, परन्तु यहाँ अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव आवें तो कहते हैं... क्या कहा ? कि जीव / आत्मा कर्ता और विकारी परिणाम मेरा कार्य, ऐसा जो विपरीत बुद्धि का व्यवहार, वह अब सम्यग्दर्शन में कहाँ है ? आहाहा ! भाषा तो सादी है। भाव तो जो है, वह है। ऐसा मार्ग ! आहाहा ! इसे अभी सुनने को नहीं मिले, वह बेचारा क्या करे ? आहाहा ! अरे रे ! चौरासी के अवतार करते-करते गधे की भाँति सब अवतार किये हैं। उस अवतार का कारण जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा ! उस मिथ्यात्वभाव को जिसने स्वरूप की दृष्टि करके छेद दिया है, नाश किया है। आहाहा ! भव के कारणरूप भाव, उसका भव के अभावस्वभावरूप आत्मा का परिणमन किया... आहाहा ! क्योंकि आत्मा में भव और भव का भाव नहीं है। ऐसे चैतन्यस्वभाव का जहाँ परिणमन हुआ, उसमें यह भव और भव का भाव नहीं है। आहाहा ! ऐसा है।

यह तीन दिन पहले देखो न यहाँ ट्रक में तीन मर गये। यहाँ ट्रक के नीचे (तीन मर गये)। खाद है न वह विलायती खा आते हैं न ? वह ट्रक लेकर जाते होंगे। ऊपर तीन बैठे होंगे। एक जैन आदमी था और एक जैन दूसरे की लड़की थी और एक रेवारी था। ऐसे एक गाय आयी। उसमें जरा बेचारा... क्या कहलाता है ? ड्राईवर। तो गाय को वह करने (बचाने) गया, वहाँ ट्रक उल्टा पड़ गया तो तीनों वहीं के वहीं सिर कुचल गये। आहाहा ! यह स्थिति। किस उत्साह में जाते होंगे बेचारे ? देह छूटकर अन्यत्र चले गये। इस देह में देह के कारण कहाँ था ? अपनी पर्याय की योग्यता के कारण था। इतनी योग्यता छूट गयी; इसलिए निकल गया। दूसरी देह में (चला गया)। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि परन्तु धर्मी जीव जहाँ आत्मा नित्यानन्द प्रभु अभेद की दृष्टि करके जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, ऐसा धर्मी जीव, उसे पुण्य और पाप के भाव का मैं कर्ता और वह मेरा कार्य, ऐसी विपरीत बुद्धि का व्यवहार का वहाँ अवसर कहाँ है ?

कहते हैं। आहाहा! कहो, सुरेन्द्रभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह क्या कहा? टीका भी कैसी है!

जीव कर्ता और ज्ञानावरणादि पुद्गलपिण्ड कर्म... वह मेरा कार्य अथवा राग, पुण्य-पाप के भाव, वह मेरा कार्य, **ऐसे विपरीतरूप से बुद्धि का व्यवहार उसका कौन अवसर।** आहाहा! वह अवसर गया, कहते हैं। विपरीत बुद्धि से जो जीव कर्ता और पुण्य-पाप मेरा कार्य, वह व्यवहाररत्नत्रय का राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम वह राग, वह मैं जीव कर्ता और वह मेरा कर्तव्य, यह विपरीत बुद्धि का भाव तो अभी रहा नहीं। आहाहा! ऐसा है। क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन—स्वरूप की दृष्टि सम्यक् हुई, सत्य हुई, अब उसे जीव कर्ता और दया, दान, व्रत, पूजा के भाव मेरा कर्म / कार्य—ऐसी विपरीत बुद्धि को अवसर कहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसके बदले यह बाहर के सब यह किये... यह किये... यह किये... वह तो बाहर... कल बहुत आया था। मार्ग बापू! वीतराग परमेश्वर-जिनेश्वर का मार्ग अलग, भाई! कहीं दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा कैसी की है?

'कर्तृकर्मप्रवृत्तेः' अर्थात् आत्मा कर्ता और विकारी परिणाम और कर्म जड़। वह जड़ तो बाहर के निमित्त से बात ली है। उस जड़ को तो आत्मा स्पर्श कहाँ करता है? उसे तो—पुण्य-पाप के भाव तो पर्याय में छूआ है, स्पर्शा है। समझ में आया? विपरीत बुद्धि से स्पर्शा है। परन्तु अब कहते हैं कि सम्यग्दर्शन हुआ... आहाहा! अब अविपरीत ज्ञान हुआ, विपरीत गया। आहाहा! चिदानन्द भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उस आनन्द की खान का जहाँ स्वामी हुआ, तब जीव कर्ता और पुण्यपरिणाम मेरा कर्म, इस विपरीत बुद्धि का काल अब कहाँ है? अब वह अवसर कहाँ है? देखो तो सही! वह सब अवसर गया, कहते हैं। विपरीत बुद्धि में वह पुण्य का परिणाम मेरा कर्तव्य और मैं कर्ता, उसे अवसर था। आहाहा! सम्यग्दर्शन में सम्यक्बुद्धि जहाँ हुई, वहाँ राग मेरा कर्तव्य और मैं कर्ता, ऐसी विपरीत बुद्धि का अवसर अब नहीं है, भाई! वह अवसर गया। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? भगवान का ऐसा मार्ग है। साधारण दीन की भाँति समझाये ऐसा यह नहीं है। यह तो प्रभु का राजमार्ग, सिंह मार्ग है। आहाहा! **ऐसे विपरीतरूप से बुद्धि का**

व्यवहार उसका 'कथं अवकाशः' वहाँ अवकाश कहाँ है, कहते हैं। आहाहा! उसका अर्थ लिया है, **कौन अवसर।**

भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार को अवसर नहीं,... आहाहा! सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार को अवसर नहीं है। आहाहा! **वैसे शुद्धस्वरूप अनुभव होने पर...** आहाहा! शुद्धस्वरूप का प्रगटपना होने पर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में शुद्धस्वरूप का भान होने पर। आहाहा! शुद्ध का अनुभव होने पर **विपरीतरूप मिथ्यात्वबुद्धि का प्रवेश नहीं।** आहाहा! जैसे सूर्य के प्रकाश में अन्धकार नहीं है, उसी प्रकार चैतन्य सूर्य भगवान सम्यग्दर्शन, ज्ञान में ज्ञात हुआ और प्रकाश का परिणमन हुआ, उस प्रकाश में राग मेरा और (उसका) कर्तव्य मैं, यह विपरीत बुद्धि कहाँ है? यह तो अन्धकार है। जैसे सूर्य के प्रकाश में अन्धकार नहीं होता, उसी प्रकार चैतन्य के प्रकाश में राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा अज्ञान अब वहाँ कहाँ है? अन्धकार वहाँ अब कहाँ है? अब यहाँ तो अभी ऐसी प्ररूपणा चलती है-दया करो, दान करो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो। करते-करते तुम्हें धर्म होगा। वहाँ सेठ उसमें प्रसन्न होवें कि ठीक चलो, इतने से निपटता होवे तो। आहाहा! बापू! ऐसा है भाई! आहाहा!

देखो तुम! दृष्टान्त कैसा दिया है! उसमें तो दिया कि विपरीत बुद्धि का अवसर नहीं है। किसकी भाँति? कि अब सूर्य के प्रकाश में अन्धकार कहाँ है? आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वरूप वह पर्याय में—सम्यग्दर्शन-ज्ञान में प्रकाश आया, अब उसे विपरीत बुद्धि या राग-कर्तव्य मेरा और राग मेरा कार्य... आहाहा! इस मिथ्याबुद्धि का प्रवेश नहीं है। सूर्य के प्रकाश में अन्धकार का अभाव है। आहाहा! उसी प्रकार चैतन्य भगवान सम्यग्दर्शन में प्रकाशरूप आया, अब उसे राग मेरा और राग का कर्तव्य मेरा, ऐसा अज्ञान का विपरीतपने का प्रवेश कहाँ है? आहाहा! चैतन्य के प्रकाश में अन्धकार का प्रवेश, राग का प्रवेश कहाँ है? आहाहा!

यहाँ तो अभी परद्रव्य को न करे तो वह दिगम्बर (नहीं), परद्रव्य को न करे ऐसा माने तो दिगम्बर नहीं, ऐसी प्ररूपणा चलती है। यहाँ कहते हैं कि राग मेरा, ऐसा करे तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! एक-एक श्लोक तो देखो! एक-एक श्लोक में यह तो सन्तों

की वाणी है। दिगम्बर सन्त, वीतरागी मुनि... आहाहा! जो वीतरागी झूले में झूलते थे। अमृतचन्द्राचार्य... आहाहा!

अरे! प्रभु! तू जहाँ अन्दर जागृत हुआ, जहाँ जागृत हुआ... आहाहा! वहाँ तो ज्ञान और आनन्द, वह मैं हूँ। ऐसा जहाँ प्रकाश आया, अब उसमें राग का कर्ता मैं और राग मेरा कार्य, ऐसी मिथ्याबुद्धि का प्रवेश प्रकाश में कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो गले तक घुस गया हो। यह मेरा करते हैं, यह हम करते हैं और यह करते हैं। पुण्य के परिणाम हमने किये, हमने दया पालन की, व्रत पालन किये, भक्ति की। वह राग का कर्ता होकर माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। ऐसी गजब बातें हैं।

मुमुक्षु : परम सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा परम सत्य ही यह है। सत्य सूर्य जहाँ प्रगट हुआ... आहाहा! वह राग और पुण्य तो इस सत्य की अपेक्षा से असत् पर है। वह पर मेरा, ऐसी विपरीत बुद्धि का अन्दर प्रकाश में प्रवेश कहाँ है? जैसे सूर्य के प्रकाश में अन्दर अन्धकार कहाँ है? आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा!

यहाँ पर कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध ज्ञान का अनुभव होने पर (मात्र) विपरीत बुद्धिमात्र मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है? प्रश्न हुआ। आपने तो ऐसा कहा कि सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्ज्ञान होने पर उसे राग मेरा है, यह कर्ताबुद्धि जाती है, विपरीत बुद्धि जाती है। कर्ताबुद्धि अर्थात् विपरीत बुद्धि। आहाहा! अब यहाँ व्यवहाररत्नत्रय है, वह शुभराग है, वह मेरा कर्तव्य है—यह विपरीत बुद्धि है। आहाहा! अरे! मध्यस्थ से वाँचन भी करे नहीं। क्या चीज़ है, यह भी (जाने नहीं) और ऐसी का ऐसी अभिमान में अभिमान में जिन्दगी चली जाती है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान होने पर विपरीत बुद्धि टलती है। यह तो ठीक, परन्तु कर्मबन्धन मिटता है या नहीं? ऐसा कहो न। है? **विपरीत बुद्धि मिटती है कि कर्मबन्ध मिटता है?** आहाहा!

उत्तर इस प्रकार है कि विपरीत बुद्धि मिटती है, कर्मबन्ध भी मिटता है। यह बन्धन जो अल्प राग है, वह इसका नहीं। यह तो ज्ञानधारा में है। वह कर्मधारा भिन्न है।

समझ में आया? **कर्मबन्ध भी मिटता है। 'इह पौद्गलः कर्मबन्धः वा कथं भवति' विपरीत बुद्धि के मिटने पर पुद्गल सम्बन्धी है जो द्रव्य-पिण्डरूप ज्ञानावरणादि कर्मों का आगमन वह भी कैसे हो सकता है।** इतनी बात है। यहाँ सम्यग्दर्शन में एकदम बन्ध का ही अभाव लेना है। क्योंकि बन्ध के भाव का वह कर्ता नहीं है। इसलिए उस बन्ध के भाव से बन्ध होता है वह उसकी चीज़ नहीं है। आहाहा! वह तो ज्ञातादृष्टा के... 'करे कर्म सो हि कर्तारा' जो राग को कर्ता है, वह कर्ता मिथ्यादृष्टि है। 'जो जाने सो जाननहारा'। राग होता है, उसे अपने में रहकर जाने कि है इतना। कर्ता मैं नहीं और कर्ता नहीं, इसलिए उसे विपरीत बुद्धि तो टल गयी है और इसलिए उसका बन्धन होता था, वह भी गया है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-४८

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवं विरचय्य सम्प्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम्।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान्।।३-४८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'पुमान् स्वयं ज्ञानीभूतः इतः जगतः साक्षी चकास्ति' [पुमान्] जीवद्रव्य [स्वयं ज्ञानीभूतः] अपने आप अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ; [इतः] यहाँ से लेकर [जगतः साक्षी] सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर [चकास्ति] शोभता है। भावार्थ इस प्रकार है कि यदा जीव को शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है, तदा सकल परद्रव्यरूप द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में उदासीनपना होता है। कैसा है जीवद्रव्य? 'पुराणः' द्रव्य की अपेक्षा अनादिनिधन है। और कैसा है? 'क्लेशात् निवृत्तः' [क्लेशात्] दुःख से [निवृत्तः] रहित है। कैसा है क्लेश? 'अज्ञानोत्थितकर्तृ-कर्मकलनात्' [अज्ञान] जीव-कर्म के एक संस्काररूप झूठ अनुभव से [उत्थित] उत्पन्न हुई है। [कर्तृ-कर्मकलनात्] जीव कर्ता और जीव की करतूति ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड ऐसी विपरीत प्रतीति जिसको, ऐसा है। और कैसी है जीववस्तु? 'इति एवं सम्प्रति परद्रव्यात् परां निवृत्तिं विरचय्य स्वं आस्तिघ्नुवानः' [इति] इतने [एवं] पूर्वोक्त प्रकार से [सम्प्रति] विद्यमान [परद्रव्यात्] परवस्तु जो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म उससे [निवृत्तिं] सर्वथा त्यागबुद्धि [परां] मूल से [विरचय्य] करके [स्व] शुद्ध चिद्रूप को [आस्तिघ्नुवानः] आस्वादती हुई। कैसा है स्व? 'विज्ञानघनस्वभावं' [विज्ञानघन] शुद्ध ज्ञान का समूह है [स्वभावं] सर्वस्व जिसका ऐसा है। और कैसा है स्व? 'परं' सदा शुद्धस्वरूप है। 'अभयात्' [जीववस्तु शुद्धचिद्रूप को] सात भयों से रहितरूप से आस्वादती है।।३-४८।।

श्रावण कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक ०३-०८-१९७७
कलश-४८, प्रवचन-५७

कलश टीका, कर्ता-कर्म अधिकार। ४८ वीं गाथा (कलश)।

इत्येवं विरचय्य सम्प्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम्।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान्।।३-४८।।

'पुमान् स्वयं ज्ञानीभूतः इतः जगतः साक्षी चकास्ति' क्या कहते हैं? यह जीवद्रव्य जो वस्तु है, वह जब धर्म प्राप्त करता है, तब क्या होता है, ऐसा कहते हैं। **जीवद्रव्य (स्वयं ज्ञानीभूतः) अपने आप अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ...** आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसे व्यवहार के राग की अपेक्षा बिना स्वयं अपने आप आत्मा का अनुभव करे, उसे धर्मी और उसे ज्ञानी कहते हैं। आहाहा! उसे धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। जो स्वयं अपने आप, ऐसा कहकर उसे राग की मन्दता की क्रिया थी तो यह स्वभाव का भान और सम्यक्त्व हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! बहुत व्रत, तप, भक्ति और पूजा ऐसे शुभभाव थे, इसलिए आत्मज्ञान हुआ, धर्म हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

तब **अपने आप...** स्वयं अपना शुद्धस्वरूप जो त्रिकाली पवित्र स्वरूप, पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग के अभावस्वरूप और शुद्ध का अस्तित्वस्वरूप। पूर्ण शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा के **अनुभवन में समर्थ हुआ;...** आहाहा! जो पुण्य और पाप के राग के भाव, उन्हें अनुभव में अज्ञानरूप से जो अनादि से समर्थ है, वह अपने आप शुद्धस्वरूप का अनुभव होने को समर्थ है। क्या कहते हैं? आहाहा!

यह स्वयं शुद्ध चैतन्यवस्तु है, पवित्रता का पिण्ड प्रभु है, उसका इसे भान नहीं था तब तो उसके स्वभाव के अज्ञान से उत्पन्न हुए पुण्य और पाप के भाव का इसे अनुभव था। आहाहा! अनादि मिथ्यादृष्टि की भूमिका में विकार के भाव का इसे वेदन और अनुभव था। अधर्म का अनुभव था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप आनन्द है। मृग की नाभि में कस्तूरी है, उसकी उसे कीमत नहीं है। हिरण-मृग। उसी प्रकार जिसके स्वभाव में आनन्द और पवित्रता भरी है, उसके अनजान अज्ञानी को उसकी कीमत नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। उस शुद्धस्वरूप के अज्ञान में, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है, उसके अज्ञान से उसके भान बिना इसे दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध, पुण्य-पाप के भाव (होते हैं)। उनका इसे अनुभव और वेदन था। आहाहा! अब कहते हैं कि वह अनुभव गुलाँट खाता है। आहाहा! जो स्वयं **अपने आप अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ;...** आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! राग से भिन्न करके अपने आप शुद्ध का अनुभव किया। यह तो कहा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना अर्थात् दूसरी कौन सी? यह। शुद्ध स्वरूप का अनुभव, वह भावना। 'आतमभावना भावता जीव लहे केवलज्ञान।' श्रीमद् में आता है। परन्तु वह भावना अर्थात् क्या? आहाहा! वह भाव जो शुद्ध चैतन्य आनन्दघन, उसका अन्तर में अनुभव होना, एकाग्र होना, यह उसकी भावना है। समझ में आया? बापू! मार्ग ऐसा है। लोगों ने इसे बिगाड़ दिया है।

'आतम भावना'—तो आत्मा तो शुद्धस्वरूप, पवित्रस्वरूप है, उसकी भावना। अर्थात् उसके सन्मुख होकर उसमें एकाग्रता, वीतरागी पर्याय की एकाग्रता होना, वह भावना है। वीतरागी त्रिकालीस्वरूप, उसे वीतरागी पर्याय से एकाग्र होना, इसका नाम भावना। अरेरे! ऐसी बातें! भारी शर्तें।

मुमुक्षु : भावना का अर्थ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव की भावना। परमस्वभावभाव ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव परमात्मस्वरूप अपना, वह भाव। उसकी भावना। आहाहा! यह तो अपूर्व बातें हैं, बापू! अरे! अनन्त काल हुआ। पुण्य-पाप के कर्मचेतना का वेदन और राग का वेदन, वह

कर्मचेतना है। राग और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह राग है और राग का वेदन है, वह कर्मचेतना है। आहाहा! उसका जो अनुभव है, वह दुःखरूप है, वह जहर का अनुभव है। आहाहा! और वह संसार में भटकने की जड़ है। आहाहा! तब आत्मा वस्तु है न? वस्तु है तो उसमें कोई बची हुई-रही हुई शक्तियाँ है या नहीं? आहाहा! उसमें अनन्त बसी हुई-रही हुई शक्तियाँ हैं। वह शुद्ध शक्तियों का भण्डार है। आहाहा! लो! भण्डारी! यह शुद्ध शक्ति, हों! भण्डारी है या नहीं? भण्डारी है न? कोई कहता था।

अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञान के अनन्त अपरिमित स्वभाव से भरपूर, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द की बेहद शक्ति से भरपूर, वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान... आहाहा! उसे अपने अनुभव द्वारा... आहाहा! यह कहते हैं न, देखो न! **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ;...** आहाहा! स्वरूपसन्मुख होकर अब अनुभव में समर्थ हुआ। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। आहाहा! मार्ग तो यह है। यह (कलश) ७५ गाथा के बाद का है न? भाई! ७५ का है न? आहाहा! धर्मी हुआ हो, वह कैसा होता है? उसका यह श्लोक है। अनादि की अधर्म की बातें की। भगवान आनन्द का कन्द प्रभु एक ओर रह गया। उसे छोड़कर पुण्य और पाप के भाव का कर्ता होकर वेदन किया। आहाहा! अज्ञानी भी पर का कर्ता तो भले है नहीं। माने भले ही परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प, वह वृत्ति का उत्थान है। चैतन्य गंज प्रभु में यह वृत्ति का उत्थान है, वह राग है। आहाहा! उस राग का करना और राग का वेदना, वह कर्मचेतना का करना और कर्मचेतना के फल का—हर्ष-शोक का भोगना, ऐसा जीव ने स्वरूप को भूलकर अनन्त बार किया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। लोग कहते हैं। ऐई! वह तो निश्चय... निश्चय... अरे! परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् आरोपित-उपचारिक कथन। आहाहा! आचार्यों की शैली तो देखो! बहुत संक्षिप्त। संक्षिप्त और तत्त्व की महत्ता को बतानेवाली। आहाहा!

स्वयं अपने से शुद्धस्वरूप के अनुभव में समर्थ हुआ। समर्थ हुआ। आहाहा! ज्ञान और आनन्द जिसका—प्रभु का / आत्मा का त्रिकाली स्वरूप है, उसके अपने स्वरूप का अनुभवनशील हुआ। अनुभव समर्थ हुआ। आहाहा! अनुभव में समर्थ हुआ। राग से भिन्न

पड़कर, चाहे तो दया, दान, व्रत, यात्रा, भक्ति, पूजा का विकल्प हो परन्तु वह राग है। आहाहा! और प्रभु आत्मा है, वह तो वीतरागस्वरूप है। 'जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! इसे कैसे जँचे? कभी लक्ष्य में लिया नहीं, देखा नहीं, जाना नहीं। सुनने में ऐसा आत्मा है, वैसा मिला नहीं। आहाहा! यह तो चैतन्यरत्न है। चैतन्य हीरा, वह हीरा जैसे सैकड़ों पासावाला होता है, उसी प्रकार चैतन्य हीरा अनन्त शक्तिरूप गुण से भरपूर इसके पासा ऐसा हीरा है। पासा समझते हो न? हीरा को पहल (पाड़े वह)।

भगवान! बात तो ऐसी है, हों! प्रभु! ऐसा जो अपना स्वभाव, उसे अपने आप... आहाहा! गुरु से नहीं, देव से नहीं, वाणी से नहीं, राग से नहीं। ऐसी बातें हैं। आहाहा! है न? देखो न बापू! आया न? **अपने आप...** दूसरी लाईन। उसका अर्थ यह है। आहाहा! भगवान! तेरी महिमा बहुत, प्रभु! परन्तु तुझे तेरी महिमा आयी नहीं। आहाहा!

अपने आप... आहाहा! जीवद्रव्य **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में...** आहाहा! एक डेढ़ लाईन में तो गजब काम किया है। जिसमें वाणी की जरूरत नहीं, जिसमें व्यवहाररत्नत्रय का जो राग, उसकी भी जिसे जरूरत नहीं। आहाहा! अभी तो यह शोर मचाते हैं न? शुभयोग, वह मोक्ष का मार्ग है। अभी मक्खनलालजी बाहर लाये हैं। कैलाशचन्दजी को चैलेंज दिया है। शुभयोग मोक्ष का मार्ग है और तुम कहते हो कि शुभयोग हेय है। लो! दो पण्डितों को विवाद। यह यहाँ का निकलने के बाद। नहीं तो सब ठग गये थे।

मुमुक्षु : ऐसा का ऐसा चलता जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा चला जाता था, बापू!

शुभयोग, वह तो राग है। राग का अनुभव, वह तो विकार का अनुभव, दुःख का अनुभव है। आहाहा! उससे मोक्ष का मार्ग होगा? प्रभु! तू यह क्या करता है? शुभयोग हो, धर्मी-ज्ञानी को भी होता है परन्तु वह जानता है कि यह दुःखरूप है। मैं अन्दर पूर्ण स्थिर होने के योग्य अभी नहीं हूँ; इसीलिए कमजोरी से मुझे यह भाव आता है परन्तु है वह शुभभाव बन्ध का कारण। आहाहा! धर्मी को। जितना आत्मस्वरूप अपने आप पर की

अपेक्षा बिना अनुभव करे, उतनी धर्मधारा और बीच में पूर्ण न हो, उसे रागादि आवें, उतनी कर्मधारा। आहाहा! कर्मधारा बन्ध का कारण, धर्मधारा अबन्ध का कारण। आहाहा! अरे! आहाहा! यह देह छूट जाएगी, बापू!

हमारे वढवाण में गाते थे। (संवत्) २०१० के वर्ष में। 'करीलेने आतमनी ओलखाण एक दिन जावुं छे निर्वाणी।' एक दिन निश्चित जाना है, बापू! देह छूट जाएगी, भाई! 'करीलेने आतमनी ओलखाण, एक दिन जावुं छे निर्वाणी।' निश्चय से एक दिन देह छूट जाएगी, प्रभु! तेरा देह, कहीं तेरी चीज़ नहीं है। वह तो जड़ आकर खड़ी रहेगी। वह उसके कारण आयी और उसके कारण वह खड़ी है। तेरे कारण वह आयी नहीं। आहाहा! तो फिर यह सब पैसे का क्या करना? पैसा उसके कारण से आकर उसके कारण से खड़ा है। तेरे कारण से नहीं और तुझमें नहीं और तुझसे नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको मिला ही नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले। धूल मिला है इसे, मिली है ममता। ऐसे बाहर आये तो कहे, मुझे मिले। वह ममता मिली है। आहाहा!

इसके अतिरिक्त दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह भी राग है। आहाहा! गजब बात! अभी यह बड़ा विवाद उठाया है। कैलाशचन्दजी को बड़ा चैलेंज दिया है। आहाहा! मक्खनलालजी ने पहले लिखा था कि शुभयोग वह मोक्ष का मार्ग है। फिर कैलाशचन्दजी ने जवाब दिया। कैलाशचन्दजी पण्डित है न? (उन्होंने) जवाब दिया कि शुभयोग तो बन्ध और हेय है। मक्खनलालजी कहे - शुभयोग को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। कैलाशचन्दजी कहते हैं शुभयोग को हेय कुन्दकुन्दाचार्य ने माना है, तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हैं? ऐसी बात है। परन्तु ऐसी चर्चा खड़ी कहाँ से हुई अब? इतने वर्ष में! आहाहा! यह सब चलता था, उसमें ऊपर-ऊपर से। कैलाशचन्दजी को बड़ा चैलेंज दिया है। दिल्ली आओ, मैं मुरैना से आता हूँ। वे मुरैना के थे बेचारे? वह मर गये वे। वे मुरैना के थे। कल-परसों मर गये न? दोपहर को यहाँ बैठता था बेचारा। जवान व्यक्ति ४२ वर्ष हुए थे।... आहाहा! लो! सेठ के कमरे में देह छूट गया। कहाँ का जन्मा, कहाँ का... उस कमरे में देह छूट गया।

'कहाँ जन्मे, कहाँ बिछड़े, कहाँ लड़े वो लाड़, न जानूँ के रुख तले जाई पड़ेंगे हाड़।' हीराजी महाराज स्वर्गस्थ हुए, तब मैंने यह कहा था। सम्प्रदाय के हमारे गुरु थे। बेचारे बहुत शान्त और नरम थे। तब इतना तत्त्व तो था नहीं इसलिए... परन्तु ऐसी क्रिया निर्दोष आहार-पानी। उनके लिये आहार-पानी या बिल्कुल ले नहीं। कपड़ा-बपड़ा भी कोई लावे और दे तो न ले। दुकान में जाए ऐसा बढ़िया हो, भाई! हिलना नहीं, चलना नहीं। कपड़ा छह-आठ हाथ ले। मुश्किल-मुश्किल से ले। वह तो बेचारा कहे, अरे प्रभु! लो न। बहुत व्रती, परन्तु वस्तु की खबर नहीं, कुछ तत्त्व की खबर नहीं, वे मार्ग में गुजर गये। चलते-चलते मार्ग में दम घुटा (संवत्) १९७४ के चैत्र कृष्ण अष्टमी। रास्ते में गुजर गये। फिर कहा... ओहोहो! मारवाड में-पाली में जन्मे। 'कहाँ जन्मे, कहाँ बिछड़े' काठियावाड़ में वृद्धि को प्राप्त हुए। साधुपने का नाम (धराते थे) साधु मानते न, उस जाति की वस्तु... लोगों ने उठा लिया था। 'हीरा एटला हीर बाकी सूतणा फालका।' ऐसा लोग कहते थे। ऐसे मनुष्य थे। शान्त... शान्त... शान्त... 'हीरा एटला हीर जगतमां...' हीर-हीर समझते हो न? रेशम। 'हीरा एटला हीर बाकी सूतणा फालता।' उनके अतिरिक्त सब सूत के ढ़ेर हैं। रेशम तो एक हीरा था। वे जब रास्ते में मर गये... आहाहा!

हम दूसरे गाँव थे। उस गाँव से उठकर गये। 'कांप' में रास्ते में गुजर गये। दूसरे दिन गये तब पालथी में उठाया और पालथी में उठाते समय लाखोंपति लोग, आर्यिकायें, साधु पुकार करें। बीस वर्ष का लड़का मर जाए और अर्थी में उठावे, ऐसे रोते थे। लोगों को ऐसा प्रेम और सम्प्रदाय की दृष्टि से वे थे भी ऐसे। आहाहा! रोवे... रोवे... रोवे... अरे! आज मेरा हीरा जाता है। अरे रे! आज हमने हीरा खोया। ऐसे बेचारे रोवे। बड़े लाखोंपति, हों! और सूखड़ की लकड़ी में जलाते थे न? सूखड़ से, चन्दन से जलावे। सेठिया लकड़ियाँ लेकर जलाने ले गये (परन्तु सब) रोवे-रोवे। परन्तु यह चीज़ नहीं, बापू! आहाहा! अरेरे! उन्हें सुनने को मिली नहीं।

वे ऐसा कहते थे कि पर की दया पालना, वह अहिंसा और वही सिद्धान्त का सार। इतना कहते, लो! यहाँ कहते हैं कि जीव पर की दया पाल नहीं सकता। आहाहा! पर की दया पालने का रागभाव करे, वह शुभराग है, वह अधर्म है।

मुमुक्षु : आकाश-पाताल का अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अन्तर-बहुत अन्तर। वे बेचारे बहुत कहते, हों! बहुत ब्रह्मचर्य का रंग बहुत। उनकी सभा में बड़ी संख्या में हजारों लोग (आते थे)। बहुत इज्जत, बहुत इज्जत। गम्भीर व्यक्ति ऐसे चले तो मानो... पाली के थे। ४६ वर्ष की दीक्षा ऐसे हजार-दो-दो हजार लोग आवें परन्तु सामने न देखे। भगवान! ऐसा कहते हैं, भाई! .... भगवान की पूजा और भक्ति में पाप हो, उससे धर्म माने, वह अनार्य धर्म है, ऐसा कहे। आहाहा! बहुत शान्त। आहाहा! यह चीज़ क्या है? अरे रे! इसे कठिन लगे। यह शुभयोग की क्रिया, वह धर्म नहीं? यह भगवान की भक्ति और यात्रा तथा पूजा, वह यह सब किया किसलिए? यह सब। यह सेठ ने नहीं किया? भभूतमलभाई ने नहीं किया वहाँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने तो आठ लाख डाले हैं। चार लाख... आहाहा!

स्व-रूप। आहाहा! कितनी बात की है। **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ;...** आहाहा! तत्त्व-जीवद्रव्य। जीव द्रव्य वस्तु भगवान अपने आप शुद्ध जो स्वरूप पवित्र है, उसे राग से भिन्न करके शुद्धस्वरूप के अनुभव में समर्थ हुआ। शुद्धस्वरूप के अनुभव में ताकतवाला निकला। आहाहा! यह लोगों को एकान्त लगता है। पण्डितजी! मार्ग यह है, भाई! इसे तू हाँ तो कर कि मार्ग तो यह है। इसके बिना तेरी हाँ के बिना हालत नहीं होगी। आहाहा! कठिन लगे, दूसरा लगे, भाई! क्या हो? आहाहा!

देखो न, वनस्पति कितनी उगी है। ओहोहो! असंख्य, असंख्य, एक-एक पत्ते में असंख्य जीव। एक-एक राई जितने टुकड़े में असंख्य जीव। एक-एक शरीर में एक जीव। यह प्रत्येक है इसलिए, हों! ढ़ेर दिखता है। आहाहा! और कचूमर (निकल जाता है)। ऊपर बैल चले, घोड़ा चले, गाड़ियाँ चले, मोटरें चले। आहाहा! यह चेतन है, यह भगवान है। पर्याय में भूल है। वस्तु से तो सब भगवान है। आहाहा!

मुमुक्षु : इस घास के टुकड़े में असंख्य जीव?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक घास के राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर और एक-एक

शरीर में एक-एक जीव। भभूतभाई!

मुमुक्षु : .... एक-एक जीव में एक।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। एक शरीर में एक। परन्तु शरीर हैं असंख्य। एक यह नीम का पत्ता है न? उसमें असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक-एक जीव भिन्न है। ऐसी बात। आहाहा!

परमात्मप्रकाश में कहा नहीं? सर्व जीव भगवानस्वरूप है, भाई! आहाहा! पर्याय में अल्पज्ञता और विकार हो। वस्तु है, वह तो भगवत्स्वरूप पूर्ण है। सर्व जीव, सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में, सर्व पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान है। आहाहा! तू ऐसी भावना कर, ऐसा आया था। परमात्मप्रकाश में (आया था)। आहाहा! उसके शरीर को न देख। यह शरीर दिखता है। यह नीम जो दिखता है। वह कहीं उसका आत्मा नहीं, वह तो शरीर दिखता है। ऊपर का शरीर है। इस शरीर के अन्दर जो आत्मा है, वह एक पत्ते में असंख्य शरीर दिखते हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव। आहाहा!

इसी प्रकार लहसन और प्याज के राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर हैं। और एक-एक शरीर में अनन्त जीव उसमें है। इसमें एक-एक जीव और उसमें अनन्त। आहाहा! यह लहसन की कली, प्याज घी में सेंककर खाते हैं न? लहसन की कली को। बापू! भगवान! उस कली में असंख्य तो शरीर। कली नहीं परन्तु कली का एक राई जितना टुकड़ा, उस राई जितने टुकड़ें में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुने जीव हैं। आहाहा! वे सब जीव द्रव्य से तो शुद्धस्वरूप ही है। पर्याय में भूल, मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण भटकते हैं। आहाहा! समझ में आया?

एक बार तो श्रीमद् कहते थे कि यह सब्जी बनती हो तो ऐसा देख न सकें, ऐसा कहे। अरर! सत्ता स्वीकार की है न? उसमें अनन्त जीव है। असंख्य जीव है, ऐसी सत्ता स्वीकार की है। उसमें वह छुरी द्वारा काटते हैं। लौकी, लहसन, तोरई। तोरई है न क्या कहते हैं उसे? घीसोड़ा-घीसोड़ा। उस घीसोड़ा के ऊपर की रग। टुकड़े करने से पहले वह रग काटते हैं न? घीसोड़ा के ऊपर की बारीक रग होती है न? उसे छुरी से काटते हैं और फिर टुकड़े करते हैं। परन्तु उस रग की एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर हैं।

एक-एक शरीर में एक-एक जीव। वह प्रत्येक (वनस्पति) है न? आहाहा! प्रभु! तू उसमें अनन्त बार रहा है, हों! आहाहा! काटा गया, छेदा गया... आहाहा! कोई मालिक नहीं था, प्रभु! यहाँ मरे तो रोवे। उसे मरे तो कौन रोनेवाला है? आहाहा!

इसीलिए एक बार कहा था न? सम्प्रदाय में कहा था। ५०-६० वर्ष पहले। जो कोई इस जीव का जितना स्वभाव है, उतना न मानकर उसे अल्पज्ञ माने, उसे रागवाला माने... आहाहा! वह आत्मा को आड़ देता है। आड़ देने से ऐसी जगह उपजेगा कि जहाँ जीव है, ऐसा दूसरे नहीं मानें, उस जगह उपजेगा। लहसन में इतने में जीव है, कौन स्वीकारेगा?

ऐसा क्यों हुआ? कि इसने चैतन्य की शक्ति की जितनी महत्ता है, उसका इसने अनादर किया है। अनादर करके उसे आड़ दी है कि मैं तो रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, मैं पापवाला हूँ, ऐसे विकारीवाला हूँ। ऐसा वह नहीं है। उसे ऐसी आड़ देकर इसने उसका अनादर किया है कि जहाँ मरकर जन्मा, वह आड़ देनेवाला वहाँ यह जीव है, यह माननेवाले उसे नहीं मानते। आहाहा! ऐसा है भभूतभाई! ऐसी बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उससे सत्ता इतनी तो मेरी सत्ता इतनी है, ऐसा उसका स्वीकार वह करता है। जिसकी सत्ता इतनी है, वह अल्पज्ञ में भासित नहीं होती। उसकी सत्ता का स्वीकार करे तो इतनी सत्ता तो मेरी है। आहाहा! और अपनी स्वसत्ता की महत्ता जिसे भासित हुई, उसे भी पर की सत्ता इतनी है, ऐसा उसे भासित होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। सुनने मिलना मुश्किल पड़ती है। आहाहा! परमात्मा जिनेश्वरदेव ने प्रत्यक्ष देखकर यह कहा है और ऐसा है। त्रिलोक के नाथ इन्द्र और गणधरों के समक्ष परमात्मा ऐसा कहते थे। वह बात यह है। आहाहा!

कहते हैं... आहाहा! अपने स्वरूप का अनुभव होता है। यहाँ आया न? अनुभवशील होकर। **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ; यहाँ से लेकर सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर...** आहाहा! अब तो कहते हैं कि जहाँ आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ। वह उन सब द्रव्य का जाननशील स्वभाव। सबको जानना, ऐसा उसका स्वभाव है।

किसी परद्रव्य को मेरा मानना या परद्रव्य को मार सकता हूँ या जिला सकता हूँ, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! पर जितने आत्मा के अतिरिक्त अनन्त आत्माएँ और आत्मा के अतिरिक्त अनन्त रजकण... आहाहा! उनके स्वरूप का जाननशील। बस!

आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप का भान और अस्तित्व का अनुभव हुआ। इसलिए उसे ऐसे सब ही आत्मा और दूसरे जड़ आदि रजकण, उनका वह जाननशील रहा। जाननेवाला, बस। किसी का कर्ता नहीं। किसी से लेता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जाननशील होकर...** सर्व द्रव्यों का जानन। अनन्त आत्माएँ हैं और अनन्त रजकण हैं, उनका जाननेवाला रहा, बस। ज्ञातारूप से ज्ञानी-धर्मी अपने शुद्धस्वरूप का भान होने पर वह तो ज्ञानस्वरूप है, ऐसी दृष्टि और अनुभव होने पर अपना तो ज्ञान हुआ, कहते हैं परन्तु परद्रव्य जितने हैं, उनका जाननशील रहा। जानने के स्वभाववाला। किसी का करने का या दया पाल सकूँ, वह कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह क्या कहा? कि अपना निजस्वभाव शुद्ध ज्ञान आनन्द है, उसका जहाँ अनुभव हुआ, इससे अपना जाननहार-अनुभवशील तो हुआ, परन्तु अपने अतिरिक्त जितने अनन्त द्रव्य हैं, उन्हें जानने के स्वभाववाला हुआ। आहाहा! किसी परद्रव्य को मेरा मानने का स्वभाव उसका है ही नहीं। तथा पर की दया पाल सकूँ या मार सकूँ, ऐसा मुझमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसका जाननस्वभाव है।

अनन्त निगोद है, अनन्त सिद्ध है, इससे अनन्त निगोद शुद्ध जीव भगवत्स्वरूप अन्दर है। इससे मैं उनकी रक्षा करनेवाला हूँ, ऐसा नहीं। मात्र वह सत्ता है, उसे जानने के स्वभाववाला मैं हूँ। आहाहा! ऐसे शरीर, वाणी, मन आदि अनन्त द्रव्य परमाणु है, उन सबका मैं रचनेवाला हूँ, मैं रचनेवाला हूँ, ऐसा नहीं। परन्तु उन सब द्रव्यों को मैं जानने के स्वभाववाला हूँ। आहाहा! 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी।' स्व को जानते हुए पर को जानने के स्वभाववाला हूँ। आहाहा! मेरे अतिरिक्त अनन्त आत्माएँ या रजकण, उनका भला कर सकता हूँ या बुरा कर सकता हूँ, यह मैं हूँ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि स्वसत्ता का जहाँ भान हुआ, तब परसत्ता को जानने के स्वभाववाला रहा। परसत्ता को करनेवाला या बचानेवाला या तोड़नेवाला या फोड़नेवाला...

आहाहा ! नहीं रहा । वह मानता था । यहाँ जानने के स्वभाववाला मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, ऐसा भान होने पर जगत की अनन्त आत्मा की चीज़ें और अनन्त रजकण उन सबकों जाननेवाला हूँ, बस । आहाहा ! अरे ! ऐसी बात ।

उसके घर की चीज़ इतनी । तेरा घर ऐसा है कि तुझे तू जान और पर को जान, वह तेरा घर है । तेरे जानने के स्वभाव में पर की मदद होवे तो ज्ञात हो, ऐसा नहीं है और तुझे अनन्त द्रव्य ज्ञात हों, उसमें अनन्त द्रव्यों का कुछ कर सके, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है । आहाहा ! ऐसा लोगों को एकान्त लगता है । सूक्ष्म पड़े न ? इसलिए एकान्त निश्चय... निश्चय... निश्चय... भगवान ! मार्ग यह है, बापू ! आहाहा !

तू तो 'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारे, तातैं वचनभेद भ्रम भारि, ज्ञेय शक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी ।' भासी, बस ! आहाहा ! यह भी पर को जानना, यह तो अपने पर्याय का स्वभाव है । पर अनन्त आत्मा और अनन्त रजकणों की सत्ता है, इसलिए उन्हें जानने की पर्याय यहाँ प्रगट होती है, ऐसा नहीं है । आहाहा ! उसका अपना जाननस्वभाव स्व-परप्रकाशक स्वभाव अपना ही है, इसलिए स्व को जानते हुए पर को जानता है, ऐसा उसका स्वरूप है । समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा कहकर ऐसा कहते हैं कि दूसरे आत्मा को मैं सुखी करूँ, आहार दूँ, औषध दूँ, अनाज दूँ—ऐसी चीज़ वस्तु के स्वरूप में ही नहीं है । जिस प्रकार से परद्रव्य है, उस प्रकार से तेरा जानने का स्वभाव है, बस । आहाहा !

सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर शोभता है। भाषा देखो ! **'चकास्ति'** है न ? **'चकास्ति'** । भगवान आत्मा स्वयं राग से भिन्न पड़कर चैतन्य का अनुभव किया, इसलिए वह स्वयं परद्रव्य को जानने के स्वभाव से शोभता है । परद्रव्य के जानने के स्वभाव से (शोभता है) । परद्रव्य का करना या... आहाहा ! बहुत काम किये, इसलिए बड़ा है (ऐसा नहीं है) । आहाहा ! एक बार नहीं थे, वे थे न ? वढवाण के सी.जी. शाह थे न ? सी.जी. शाह मुम्बई में हैं न एक ? सबने बेचारों ने सुना न हो, खबर नहीं होती । महाराज ! यह सिद्ध भगवान क्या करते हैं ? ऐसा प्रश्न किया । हीराभाई के मकान में । (संवत्) १९९२-९३ के वर्ष की बात है । भगवान सिद्ध होते हैं, वे क्या करते हैं ? कहा, आत्मा का अनुभव करते हैं । किसी का करते नहीं ? हम यह एक व्यक्ति पाँच-पच्चीस-पचास लोगों

का करते हैं और सिद्ध ऐसे बड़े (कुछ नहीं करते) ? कुछ खबर नहीं होती। विशाश्रीमाली थे। हमारे नाराणभाई के मित्र थे। कुछ बुद्धि नहीं होती और बाहर में कुछेक पैसा-बैसा हौ, मकान-बकान हो, मुम्बई में एक बिल्डिंग है वहाँ। वे तो मर गये। आहाहा! सिद्ध भगवान परमात्मा किसी का कुछ नहीं करते ? आहाहा! बड़े हुए वे कुछ नहीं करते ? हम छोटे हैं तो भी सबका कुछ करते हैं। अरे! भगवान! क्या कहें ? भाई! वे तो जाननशील हैं, तो स्व-पर को जानते हैं। किसी का तू भी कर नहीं सकता, वे भी नहीं करते। यह तो यहाँ कहा ?

परद्रव्य की सत्ता की अस्ति का जाननशील है। आहाहा! उसकी सत्ता तूने की नहीं, तथा उसकी सत्ता में फेरफार कर सके, वह तू नहीं। उसकी सत्ता में फेरफार हो, उसका जाननशील स्वभाव है। आहाहा! ऐसा उपदेश! आहाहा! तू चाहे जितना होशियार हो, अवधिज्ञानी हो, चार ज्ञानी हो परन्तु यह कहते हैं कि परद्रव्य को तो जानने के स्वभाववाला है। अवधिज्ञान में यह वस्तु है, ऐसा ज्ञात होता है, बस। मन:पर्ययज्ञान में यह वस्तु ऐसी है, ऐसा ज्ञात होता है। बाकी वह अवधि और मन:पर्ययज्ञान किसी का कुछ करे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अरे! जो ऐसे स्वरूप को जाने बिना दु:खी होकर भटकता है। सामने देखते रोने पर भी जिसके दु:ख दिखते नहीं। रोवे... रोवे... अरर! यह प्राणी ऐसा दु:खी! देखनेवाले को आँख में से आँसू के जलजलिया आवे। ऐसा दु:खी, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यह दूसरे के दु:ख जो हैं, उन्हें यह जानने के स्वभाववाला है। आहाहा! और अनन्त सिद्ध हैं, उन्हें यह जानने के स्वभाववाला है। है इतना बस। अनन्त निगोद के जीव हैं, उन्हें यह आत्मा जानने के स्वभाववाला है। उनकी दया पालने के भाववाला नहीं। आहाहा! समझ में आया ? वीतराग का मार्ग ऐसा है, बापू! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वीतराग ने कहीं किया नहीं है। जैसा है, वैसा जाना है, वैसा कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब उसके बेचारे को कहाँ खबर है। उसे जैन की श्रद्धा ही कहाँ है ? वह तो सब गाँधी की लाईन के मुँहपत्ती रखे। खबर है। आहाहा! प्रेम, सबके साथ प्रेम। किसका प्रेम ? सब है, उनका जाननेवाला रहे, वह प्रेम। सब एक है। ओहोहो!

सब एक हैं। मिथ्यात्व है। सभी तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। किसी के साथ किसी को कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है, वैसा जाने, बस। धर्मी जीव अपने शुद्धस्वरूप को जैसा जाने, वैसा यह पर की सत्ता जिस प्रकार पलटती हो, दु:खी हो, उसे वह जाने। बस। आहाहा! दु:खी को देखकर दु:ख को दूर करना, ऐसा उसे विकल्प आता है, परन्तु उसे वह जानता है। मैं दु:ख दूर कर नहीं सकता। अरे! बेचारा दु:खी है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह कितनों को ऐसा लगता है कि ऐसा मार्ग निकाला कहाँ से? हम तो भाई इतने वर्ष सुनते नहीं थे। बापू! वीतराग का मार्ग तो यह है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं। यह क्या कहते हैं? यह वीतरागी सन्तों की वाणी है। आहाहा! भावलिंगी सन्त वीतरागभाव में विराजमान सन्त यह फरमाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें यत्नाचार कहाँ आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यत्नाचार, इस आत्मा का यत्नाचार, वह यत्नाचार है। पर का यत्नाचार यहाँ नहीं है। पर है उसे... विकल्प उठता है परन्तु फिर भी उसका जाननेवाला आत्मा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! यत्न से चलना, यत्न से आचार... सुकनभाई प्रश्न किया, स्पष्ट करने के लिये। किसे करना? बापू! यत्न से चलेगा। यह चलना, वह आत्मा की क्रिया है? यह जिस प्रकार शरीर रहे, हो, उसे यहाँ जानने के स्वभाववाला आत्मा है। भभूतभाई! ऐसा है।

मुमुक्षु : मतलबी हो जाएगा, स्वार्थी हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने प्रयोजन को साधे, ऐसा ही यह है। ऐसा कहते हैं, हों! भाई कहते हैं कि वह तो स्वार्थी होगा। परन्तु सब स्वार्थी ही हैं। उल्टा मानता है। हम किसी का कर दें। किया है। पर का करना, वह मरना है। करना, यह मरना है। भाई में आया है न? न्यालभाई का आया है? द्रव्यदृष्टि प्रकाश, है? ठीक। सेठिया के घर में पहुँच गया। न्यालभाई का द्रव्यदृष्टि प्रकाश। अभी किसी की माँग आयी थी कि हमको भेजो-भेजो। वह भेजने का होगा? वह यहाँ आवे और उसकी योग्यता दिखे तो दिया जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोहनलालजी पढ़कर बहुत प्रसन्न होते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन?

मुमुक्षु : मोहनलालजी बैंगलोर से आये न ? वे भाई का द्रव्यदृष्टि प्रकाश पढ़कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी नहीं आते। बन्द हो गये।

मुमुक्षु : उनको हार्ट अटैक और उनके घर से कैंसर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो! यहाँ जमीन ली है। भाई के साथ थे न! आहाहा! वे अभी दो-चार दिन पहले याद आये थे। कि भाई मोहनलालजी नहीं आते। यहाँ जमीन ली है। वहाँ उनके घर गये थे। बैंगलोर में उनके घर गये थे। आहाहा! ....वह तो साधारण है। आहाहा!

क्या कहते हैं ? **'जगतः साक्षी चकास्ति'** आहाहा! धर्मी जीव ज्ञानस्वरूपी भगवान का जहाँ अनुभव हुआ, तब तो जगत के... आहाहा! साक्षीरूप से शोभित होता है। जगत की चीज़ को जाननेवाले के रूप में शोभित होता है। आहाहा! है ? बहुत संक्षिप्त, बहुत संक्षिप्त। आहाहा! **'जगतः साक्षी चकास्ति'** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि यदा जीव को शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है। तदा सकल पर द्रव्यरूप द्रव्यकर्म-** जड़, **भावकर्म-**पुण्य-पाप का भाव। देखा! पुण्य-पाप का भाव, उसे जाननशील है। आहाहा! जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा तो आया था। बारहवीं गाथा। वह यह सब बात है। आहाहा! धर्मी को भी दया, दान, व्रत का विकल्प आता है, तथापि उसका जाननस्वभाव है। है, ऐसा जाने; कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुण्य-पाप को जाने या मिटावे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने। मिटने पर भी जाने और रहने पर भी जाने। ३२० गाथा में है। उदय को जाने, निर्जरा को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष को जाने। आहाहा! आया है या नहीं ? ३१९-३२० (गाथा समयसार)। आहाहा! निर्जरा को करे नहीं। निर्जरा को जाने, ऐसा वहाँ आया है। क्योंकि इसका स्वभाव ही जहाँ ज्ञान है, ऐसा जहाँ अनुभव में, सम्यग्दर्शन में आया... आहाहा! तब वह परजीव की जो कुछ दशा होती है, उसका जाननशील है। आहाहा! इसके राग के भाव हों, उनका भी जाननस्वभाव है। उस राग का कर्ता नहीं तथा उस राग को मिटानेवाला भी नहीं। होता है, उसे जानता है; मिटता है, उसे जानता है। आहाहा! ऐसा है। बाबूभाई! ऐसी बात है, बापू!

गजब ! थोड़े शब्दों में भी कितना भरा है, देखो न ! आहाहा ! गणधर की वाणी तो कैसी ! यह तो सन्तों की वाणी है । वीतरागी दिगम्बर सन्तों की वाणी है । परमेश्वरतुल्य है । नियमसार में आता है न ! मुनि और परमेश्वर में किंचित् अन्तर है । बाकी अन्तर माने, वह जड़ है । आहाहा ! जिन्हें रागादि है, शरीर है, जिसे जानने का स्वभाव है । आहाहा ! यह भोजन लेते हैं, उसे जानने का स्वभाव है । जंगल (दस्त) जाते हैं, उसे जानने का स्वभाव है । दस्त करते नहीं, भोजन लेते नहीं, भोजन खाते नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? अब यह कहे चर्चा करो । बापू ! क्या करें ? भाई ! आहाहा ! ऐसी पूर्व-पश्चिम जैसी बातें हैं ।

भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म अर्थात् शरीर-वाणी, **उदासीनपना होता है।** आहाहा ! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, उनमें उदासीन भाव है । आहाहा ! पश्चात् कहते हैं, **कैसा है जीवद्रव्य ?** (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक ०४-०८-१९७७
कलश-४८, प्रवचन-५८

यह कलश-टीका चलती है। कर्ता-कर्म अधिकार। जरा सूक्ष्म है। सन्त कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए। दिगम्बर सन्त, वे भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। आहाहा! मौजूद केवली तीर्थंकर हैं, वहाँ गये, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य हुए। ये कुन्दकुन्दाचार्य हैं, ये अमृतचन्द्राचार्य हैं। इन्होंने यह टीका बनायी है। उसका यह कलश है ४८।

इत्येवं विरचय्य सम्प्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम्।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान्।।३-४८।।

यहाँ धर्म कैसे हो और धर्मी का क्या लक्षण है, वह कहते हैं। धर्मी किसे कहते हैं? धर्म का करनेवाला और वह धर्म कैसे हुआ? यह कहते हैं। [**पुमान्**] **जीवद्रव्य**... यह जीवद्रव्य वस्तु है। यह देह जड़ है, यह तो मिट्टी है। इससे तो भिन्न है। आहाहा! अन्दर ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म परमाणु हैं, वे भी जड़ हैं, अजीव हैं, धूल हैं; और अन्दर में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे भी अचेतन हैं। चैतन्य जीवद्रव्य जो चैतन्यस्वरूप है, उस चैतन्य का पुण्य-पाप के भाव में अंश नहीं है। राग है, वह राग अपने को नहीं जानता है। पुण्य-पाप का भाव, वह तो राग है। आहाहा! वह अपने को नहीं जानता और दूसरे के द्वारा जाना जाता है, इसलिए राग को अचेतन कहने में आता है। सूक्ष्म है, भगवान! बात सूक्ष्म है। आहाहा!

यह तो जड़, मिट्टी, धूल है। यह पुद्गल है। आहाहा! अन्दर ज्ञानावरणीय (आदि) आठ कर्म जो है, वह भी जड़, धूल है परन्तु जो पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव होते हैं, वह शुभभाव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह पापभाव है। दोनों भाव अचेतन हैं। चेतन का स्वरूप नहीं। आहाहा! उस अचेतन से भी चैतन्यद्रव्य

भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात! निर्णय करने के लिये निवृत्ति कहाँ है? ऐसा मार्ग है।

'पुमान्' अर्थात् जीवद्रव्य। पुरुष, पुरुष अर्थात् जीवद्रव्य। **(स्वयं ज्ञानीभूतः) अपने आप अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ;...** आहाहा! भगवान आत्मा जीवद्रव्य चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी आत्मा अन्दर है। उसे स्वयं-अपने से। शुभ-अशुभ राग है, उसकी अपेक्षा छोड़कर... आहाहा! अपने आप। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु। भगवान यहाँ आत्मा को कहते हैं। वह **जीवद्रव्य अपने आप...** अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूप के साथ अनुभव करता है। आहाहा! **अपने आप अपने शुद्धस्वरूप के अनुभव...** आहाहा! वह चैतन्य त्रिकाली शुद्धस्वरूप है, पवित्र है। आहाहा! उस शुद्धस्वरूप को अपने आप; राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर अपने शुद्धस्वरूप के आनन्द को भेदता है। यह अपने आप करता है। उसमें पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! प्रभु का मार्ग जिनेश्वर वीतराग एक समय में जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसे वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं कि धर्मी धर्म किस प्रकार पाता है? हमारी तो हिन्दी सादी भाषा है।

'पुमान्' अर्थात् भगवान आत्मा जीव द्रव्य वस्तु। ज्ञानानन्दस्वभाव से कायम अनादि-अनन्त विराजमान वस्तु आत्मा है। आहाहा! वह वस्तु अपने आप। अपने से, ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से; राग और व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, उसकी अपेक्षा छोड़कर। कहो, सेठ! आज तो तुम्हारा हिन्दी आया। मेहमानों के कारण। आहाहा! ऐसी वस्तु है, प्रभु! शरीर, वाणी, रजकण की तो उसमें अपेक्षा नहीं परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभभाव होते हैं, उनकी भी अपने अनुभव में पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा आत्मा **अपने आप...** है? **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ...** शुद्धस्वरूप का अनुभव। पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध है... आहाहा! मलिन है। वह आत्मा में से तो निकल जाता है, तो निकल जाए, वह चीज़ आत्मा की नहीं है। न्याय समझे? यह तो भगवान का मार्ग लॉजिक से-न्याय से है। ऐसा का ऐसा माने, ऐसी चीज़ नहीं है।

सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। वह सन्त-दिगम्बर सन्त आड़तिया होकर भगवान का माल दुनिया को देते हैं। मार्ग यह है, भाई! परमेश्वर

त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं। भगवान सीमन्धर प्रभु महाविदेह में साक्षात् तीर्थंकर विराजते हैं, वहाँ से यह माल आया है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे और वहाँ से यह लाये हैं। इसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य ने मूल शास्त्र बनाया। कलश बनाये वे अमृतचन्द्राचार्य हैं।

यह कहते हैं कि **अपने आप**... आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु है, उसके सन्मुख देखकर राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर। सूक्ष्म है, भगवान! प्रभु की वाणी बहुत सूक्ष्म है। सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली सीढ़ी। वीतरागमार्ग की, हों! दूसरी कहीं है नहीं। आहाहा! यह जिनेश्वर परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू अपने आप। तो अपने आप क्या? पुण्य-पाप तो तेरे नहीं। आनन्द और ज्ञान और शान्ति अपना स्वभाव है तो ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से अपने आप शुद्धस्वभाव का अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अपने आप... यह बहुत कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते अनुभव होता है, सम्यग्दर्शन होता है, उसका यहाँ निषेध करते हैं। आहाहा! यह तो अपने आप आत्मा प्राप्त होता है। जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी है परन्तु मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं है। कस्तूरी समझते हो न? हिरण (में होती है)। इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर में आनन्द में विराजता है। अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। पामर को उसकी पहिचान नहीं है। मृग की नाभि में कस्तूरी होने पर भी उसकी उसे कीमत नहीं है; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का भण्डार आत्मा है। आहाहा! लो! भण्डारी गये। नहीं? वे भण्डारी हैं? बैंगलोर से दो दिन आये थे। वे भण्डारी हैं, उनके पास दो करोड़ रुपये हैं। यहाँ आये थे। वहाँ बैंगलोर रहते हैं। कल गये। वहाँ बैंगलोर में अपना दिगम्बर मन्दिर बनाया है। है श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी। आठ लाख रुपये डाले हैं और एक स्थानकवासी जुगराजजी मारवाड़ी। वहाँ मुम्बई में (उनका) महावीर मार्केट है।

मुमुक्षु : महावीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बड़ा धन्धा है। वे करोड़पति हैं। उन्होंने चार लाख दिये हैं।

वे स्थानकवासी, यह श्वेताम्बर है। इन दोनों ने बैंगलोर में बारह लाख का मन्दिर बनाया है। हम वहाँ गये थे। कल गये। भण्डारी थे... यह आत्मा भण्डारी है। आहाहा!

जिसमें ज्ञान, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता पड़ी है, ऐसी अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान आत्मा है। अरे! इसे कीमत कहाँ है? इसकी नजरों में निधान कहाँ लेता है? नजर में राग, पुण्य और पाप और संयोग यह शरीर धूल... आहाहा! पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़ मिले। वह तो मिट्टी-धूल है। उस पर नजर करता है परन्तु अन्दर अनन्त लक्ष्मी आनन्दकन्द प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल आत्मा है। वह अपने आनन्द की दशा से अपना अनुभव करता है। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बात है। सागरवाले को पहिचानते हो? करोड़पति है। बड़ा बीड़ी का व्यापार है। परन्तु वह तो धूल है। आहाहा!

भगवान अन्दर आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! जिसमें ज्ञान का भण्डार भरा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अनन्त शान्ति, वीतरागता ऐसी शक्ति अन्दर पड़ी है। तो कहते हैं, प्रभु! अपने आनन्द के स्वभाव से अपने आप, पर की अपेक्षा बिना अपने आप अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! ऐसी बातें भारी कठिन, बापू! क्या हो? प्रभु! मार्ग तो यह है। भगवानदासजी! मार्ग तो यह है। बनियों को बैठता नहीं। पूरे दिन व्यापार-धन्धे में तल्लीन। भगवान क्या कहते हैं, इसका निर्णय करने की फुरसत नहीं है। अरेरे! मनुष्यपना चला जाता है। आयुष्य की जितनी अवधि है, उतना ही रहेगा। क्षण-क्षण जाता है, वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव कहते हैं **अपने आप...** महासिद्धान्त। आहाहा! अपने आनन्दस्वभाव से अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। आहाहा! **अपने शुद्धस्वरूप के अनुभवन में समर्थ हुआ;...** अन्दर ताकत प्रगट की है। आहाहा! राग और पुण्य-पाप से जो अनुभव करता था, वह तो अधर्म का अनुभव था। आहाहा! आकुलतारहित अपना अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द, वह जीवद्रव्य का अपना स्वभाव है, उसका अपने आप शुद्ध का अनुभव करता है.... आहाहा! ऐसा अनुभव में

समर्थ हुआ। उसका नाम सम्यग्दृष्टि है। धर्म का पहला सोपान, धर्म का पहला सोपान। आहाहा! सीढ़ियाँ होती हैं न? निसरनी का सोपान। उसी प्रकार यह सम्यग्दर्शन, वह पहला सोपान है। आहाहा! अभी यह तो सम्यग्दर्शन, हों! भगवान! आहाहा!

अपने आप... भाषा तो देखो! ओहोहो! सन्तों की वाणी तो रामबाण है। दिगम्बर सन्तों ने-केवलज्ञानी के पथानुगामियों ने केवलज्ञान को खड़ा किया है। भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव है, अन्तर में सर्वज्ञस्वभाव है, अन्तर में अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द है, अन्तर में अतीन्द्रिय सर्वदर्शी स्वभाव है। आहाहा! वह अपनी पर्याय में अपने स्वभाव से अनुभव करने में समर्थ हुआ। आहाहा! ऐसी बात हैं, प्रभु! आहाहा!

जन्म-मरण से छूटने का पन्थ तो यह है। बाकी तो जन्म-मरण कर-करके मर गया। थका नहीं। थकान नहीं लगी। ओहो! नारकी के अनन्त भव किये। पशु, तिर्यंच के अनन्त भव किये। अरबोंपति मनुष्य अनन्त बार हुआ तथा सौ बार माँगे और एक ग्रास मिले, ऐसा भिखारी भी अनन्त बार हुआ। आहाहा! स्वर्ग का देव अनन्त बार हुआ। उसमें क्या हुआ? उससे कोई जन्म-मरण का भव (मिटता नहीं)। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है। छहढाला है न? पंच महाव्रत धारण किये परन्तु पंच महाव्रत तो आस्रव और राग है, धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा!

इस आत्मा के आनन्द के स्वाद में सम्यग्दृष्टि समर्थ हुआ, कहते हैं। आहाहा! यह महाव्रतादि के परिणाम, वह राग है, आस्रव है। आहाहा! वह आत्मा का स्वरूप नहीं और उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! यहाँ तो भगवान ही कहते हैं, आत्मा अन्दर भगवान है। भगवान न हो तो पर्याय में भगवान कहाँ से आयेगा? सर्वज्ञ केवली भगवान हुए, वे कहाँ से आये? वह कोई चीज़ बाहर से आती है? आहाहा! समझ में आया?

क्या कहते हैं? कि अपने आनन्द-ज्ञानस्वभाव से अपने आत्मा के अनुभव में

समर्थ हुआ, तब से **'जगतः साक्षी'** आहाहा! **सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर...** बस! तब से धर्मात्मा ज्ञानी हुआ, अपने आनन्दस्वभाव का अनुभव करके समर्थ हुआ। तब से धर्मी जीव ज्ञानी हुआ, तब से अपने से परचीज़ जो अनन्त आत्मा आदि हैं, अनन्त जड़ आदि शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, धूल आदि है, उन सबका जाननशील हुआ। वह उसे जानता है, बस! वह चीज़ मेरी है, यह दृष्टि छूट गयी। समझ में आया? आहाहा! बापू! मार्ग अलग, भाई! आहाहा!

अनन्त काल से ऐसा का ऐसा मर गया। देखो न, वह बेचारा यहाँ बैठता था। बहुत प्रेम से, हों! चाहे जो कारण हो परन्तु यहाँ आने के बाद कहे, यहाँ बहुत शान्ति है। ऐसा कहता। वहाँ चाहे जो हो। उसकी हमें खबर नहीं। परन्तु यहाँ कहते हैं। पूनमचन्द कहते थे न? महावीरजी की अपेक्षा यहाँ बहुत शान्ति है। क्या हुआ? क्षण में समाप्त हो गया। ओहो! देह की स्थिति इतनी हो। उसमें कुछ (नहीं कर सकते)। वह समय नहीं बदलता और बढ़ता नहीं। देह छूटने का जो समय है, उस समय में ही देह छूटेगी। लाख डॉक्टर-इन्द्र आवे तो एक समय बढ़े, (ऐसा नहीं है)। ओहो! यह जन्म-मरण करके कचूमर निकल गया। दुःखी होकर। वह जन्म-मरण मिटाने का उपाय हो तो यह एक है।

मैं आनन्दस्वरूप हूँ, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप हूँ। 'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म; यही वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।' सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा' अन्दर आत्मा जिनस्वरूपी प्रभु है। जिनस्वरूपी है तो पर्याय में जिनस्वरूपी परमात्मा होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर है, वह मिलता है। आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म' पुण्य-पाप आदि राग, वह सब कर्म है, वह आत्मा नहीं है। 'यही वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।' त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की आगम की वाणी में उसका मर्म यह है। सूक्ष्म है, भाई! जगत के परिचय के कारण यह परिचय किया नहीं और अभी तो ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़ती है। यह करो... यह करो... व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो। यह सब राग की क्रिया है। यह धार्मिक क्रिया नहीं है। भगवान! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो प्रभु आत्मा इन पुण्य-पाप के राग से भिन्न, अपने शुद्धस्वरूप के अनुभव

में समर्थ हुआ, तब से वह ज्ञानी अपने से भिन्न अनन्त द्रव्य जो वस्तु है, उनका जाननशील रहा, जाननेवाला रहा। अपनेपन की मान्यता छोड़ दी। मैं उनका और वे मेरे, यह मान्यता छूट गयी। समझ में आया? भाषा तो सादी है। भाव सूक्ष्म है। ओहोहो!

यहाँ से लेकर सकल द्रव्यस्वरूप को... आहाहा! यह सर्वज्ञ परमात्मा हो तो भी आत्मा उनका जाननशील रहा। वे परमात्मा मेरे हैं, यह बात नहीं। वे तो परद्रव्य हैं। समझ में आया? और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, लक्ष्मी, धूल उन सब परद्रव्यों का, ज्ञानी हुआ-धर्मी हुआ तो उन परद्रव्यों का जाननशील हुआ। जाननेयोग्य है, ऐसा रहा। कहो, बात तो समझ में आये ऐसी है। इसमें कहीं सूक्ष्म बात नहीं है। संस्कृत और व्याकरण ऐसा कुछ नहीं है, भगवान! यहाँ तो सीधा मार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उन भगवान की वाणी में तो यह आया है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : अपना क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना आनन्द और ज्ञान। कहा न? अतीन्द्रिय आनन्द और अपना ज्ञान, वह अपना है। उसका अनुभव हुआ कि मैं तो यह हूँ। आहाहा! सम्यग्दर्शन में ऐसी चीज़ का अनुभव होकर प्रतीति हुई, तब से अपने से भिन्न द्रव्य का जाननशील रहा, जाननेवाला रहा। आहाहा! ज्ञानी और धर्मी उसे कहते हैं कि अपने से भिन्न चीज़ को, अपनी चीज़ को अपने में अनुभव किया, परन्तु अपने से भिन्न चीज़ का जाननशील रहा। ऐसी बात है, भगवान!

अरे! कभी इसमें किया नहीं। जन्म-मरण चौरासी के अवतार कर-करके बड़ा राजा हुआ, अरबोंपति (हुआ), जिसकी एक-एक दिन की अरबों रुपये की आमदनी। ऐसा एक राजा है। कौन-सा गाँव (देश)? इराक। एक दिन की पचास लाख की आमदनी है। भाई! एक दिन की पचास लाख-आधे करोड़ की आमदनी है। राज्य छोटा है परन्तु वहाँ पैट्रोल के कुएँ निकले हैं देश छोटा है परन्तु पेट्रोल इतना निकला है कि एक दिन की पचास करोड़ की आमदनी। अभी है। उसके पहले था, उसे उसके भाई ने मार डाला। ऐसी बड़ी आमदनी और वह तो अनार्यदेश। उसे भान तो नहीं होता कि आत्मा

जाएगा कहाँ ? वह तो मानता न हो। मारकर स्वयं गद्दी पर बैठा। एक दिन की पचास करोड़ की आमदनी ! ऐई ! आधा अरब। आधा अरब हुआ न ? सौ करोड़ का एक अरब, पचास करोड़ का आधा अरब। धूल में क्या ? मरकर नरक में जानेवाला। आहाहा !

यहाँ परमात्मा अन्दर अनन्त लक्ष्मी, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन जिसमें पड़ा है, उसका जहाँ स्वसन्मुख होकर अनुभव हुआ... पर से, राग से, निमित्त से, पर्याय से विमुख होकर त्रिकाली स्वभाव के सन्मुख होकर... आहाहा ! अपने आनन्द का अनुभव हुआ, तब प्रतीति हुई कि मैं तो ज्ञान और आनन्दमूर्ति हूँ और परद्रव्य है, वह मुझे जाननेयोग्य है। वे मेरे हैं, ऐसी बात रही नहीं। आहाहा !

भरत चक्रवर्ती छह खण्ड का राजा। ऋषभदेव भगवान के पुत्र थे। समकिती, आत्मज्ञानी थे। छह खण्ड का राजा, सोलह हजार देव तो सेवा करे। सोलह हजार देव और छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ गाँव परन्तु वह चीज़ मैं नहीं। मैं आत्मा आनन्द हूँ, आहाहा ! समझ में आया ? मेरी चीज़ में तो पुण्य-पाप भी नहीं। नव तत्त्व है न ? तो पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व और आत्मतत्त्व भिन्न-भिन्न है। नव है न ? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। आहाहा ! भगवान की वाणी तो देखो सरल !

कहते हैं कि भगवान ! शरीर, वाणी, मन, कर्म तो अजीव है। वे अजीव में गये। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के भाव पाप में गये और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वे पुण्य में गये और उनसे भिन्न रहा, वह आत्मा। आहाहा ! समझ में आया ? समझाय छे, यह गुजराती भाषा है। समझ में आया ? हमारी गुजराती भाषा आ जाती है।

यहाँ कहते हैं कि **सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर शोभता है।** आहाहा ! क्या कहते हैं ? परद्रव्य मेरे हैं, यह मान्यता तो अशोभनीय थी, मिथ्याभ्रान्ति थी। परन्तु अपना स्वरूप ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, उसका जहाँ भान हुआ, तब से परद्रव्य का जाननशील (रहा), उसमें उसकी शोभा है। उसे मेरा मानना, यह शोभा तो अशोभा है। आहाहा ! भगवन्त ! तेरी बात तो देख, भाई ! आहाहा ! कहो, पण्डितजी ! ऐसी बात है।

भाषा कैसी है ? कि **जाननशील होकर शोभता है।** है न ? **'चकास्ति'** आहाहा !

मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ तो अपने से परद्रव्य का जाननेवाला रहा, वह मेरी शोभा है। परद्रव्य मेरा, (ऐसा माने) वह शोभा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो भाषा तो बहुत सादी है। कोई संस्कृत और व्याकरण नहीं है। भगवान त्रिलोक के नाथ परमेश्वर की यह तो वाणी है, भाई! आहाहा! शरीर का भी जाननशील रहा, वह मेरी शोभा है। शरीर मेरा, वह मेरी शोभा नहीं। आहाहा! सेठ! आहाहा!

भगवान! क्या कहें! अरेरे! कहाँ से आ गये और कहाँ पड़े हैं? बापू! आहाहा! मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा! ऐसी जिनेश्वरदेव की पुकार है। ऐसी बात अभी तो बाहर में यह करो... यह करो... (चला है) परन्तु वस्तु क्या है, उसके भान बिना। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे जन्म-मरण के अन्त की पद्धति तो यह है। देव की गति भी दुःखरूप है प्रभु तो कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वहाँ राग है। आहाहा! इन्द्र और इन्द्राणियों के बीच राग। अरे रे! वह तो दुःखी है। वह सुखी नहीं। इन्द्र, पहले देवलोक का इन्द्र है। अभी शकेन्द्र है। बत्तीस लाख तो विमान हैं। सौधर्म इन्द्र के। सौधर्म-सौधर्म देवलोक। बत्तीस लाख विमान। एक-एक विमान में असंख्य देव। किसी में देव थोड़े हों। कोई विमान छोटे हैं। बाकी बहुत में तो असंख्य देव हैं। आहाहा! उनका साहेब शकेन्द्र। भगवान शास्त्र में कहते हैं कि वह एकावतारी है। अर्थात्? वहाँ से एक भव करके मोक्ष में जानेवाला है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञानी है। आहाहा! वह जाननशील है, परद्रव्य का जाननशील होकर रहा, उसमें शोभता है। वे मेरे हैं, उसमें शोभा नहीं है। आहाहा! बत्तीस लाख विमान, वह तो धूल, पर है। मैं तो उनका जाननशील, वह मेरी शोभा है। उन्हें मेरा मानना, वह मेरी शोभा नहीं है। और उसकी स्त्री इन्द्राणी है। मिथ्यादृष्टिरूप से उत्पन्न हुई थी। क्योंकि स्त्रीरूप से उत्पन्न हो, वह मिथ्यादृष्टिरूप से ही उत्पन्न होता है। सम्यग्दृष्टि स्त्रीरूप से उत्पन्न नहीं होता। आयी थी इन्द्राणी मिथ्यादृष्टिरूप से, सच्चा आत्मज्ञान को प्राप्त हुई है। भगवान तो आगम में-सिद्धान्त में ऐसा कहते हैं कि वह भी एकभवतारी है। एक भव में वह भी मोक्ष में जाएगी। पति-पत्नी दोनों एकभव में मोक्ष जानेवाले हैं। वहाँ से छूटकर एक मनुष्यभव होगा और वहाँ से मोक्ष जानेवाले हैं। वे जब भगवान की वाणी सुनते हैं, वह वाणी कैसी होगी? बापू!

सर्वज्ञ परमात्मा के पास जाता है न इन्द्र ? महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़पूर्व का आयुष्य है। यहाँ मुनिसुव्रत भगवान थे, तब तो दीक्षा (ली थी)। आगाामी चौबीसी के तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मोक्ष में जाएँगे। महावीर भगवान आदि तो णमो सिद्धाणं में गये। यह णमो अरिहन्ताणं में हैं। समझे ? शरीर है, वाणी है, परन्तु णमो अरिहन्ताणं में हैं। चार कर्म गये, चार बाकी हैं। महावीर परमात्मा मोक्ष में गये। यह है तो अरिहन्ताणं में हैं। आहाहा! इन्द्र और इन्द्राणी सीमन्धर भगवान के पास जाते हैं। अभी भी सुनने जाते हैं। एक भव में मोक्ष में जाना निश्चित हो गया है। तीन ज्ञान वर्तमान मति, श्रुत, अवधि है। आहाहा! वह बात कैसी होगी, बापू! वह धर्म की कथा अलौकिक है, बापू! भाई! यह दया पालो, वह तो कुम्हार भी कहता है। समझ में आया ? भाई! तेरा मार्ग अलग है।

यहाँ कहते हैं, यहाँ तो गजब किया है। जगत का साक्षी शोभता है, देखा! क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा जब आत्मज्ञान पाता है... आहाहा! यह राग का भाव, पुण्य का भाव, व्रतादि, इनसे भी भिन्न अपनी चैतन्यलक्ष्मी के पुंज के निधान पर नजर जाती है, अपने निधान पर नजर जाती है, तब आत्मज्ञान होता है, तब जगत को जाननेवाला रहता है, यह इसकी शोभा है। कोई भी जगत की चीज़, तीर्थंकर भी मेरे हैं, ऐसी मान्यता मिथ्या है, तो फिर, स्त्री, कुटुम्ब, भाई-बाई और सब... अरे! भगवान! किसका भाई ? वह तो जड़ परचीज़ है। आहाहा!

यहाँ आचार्य की भाषा तो देखो! कि जब से आत्मा सम्यग्दर्शन पाता है, राग से भिन्न अनुभव हुआ, तब से जगत का साक्षी (होता है)। अपने अतिरिक्त अनन्त निगोद के जीव, अनन्त सिद्ध के जीव, अनन्त रजकण (उनका साक्षी रहता है)। यह एक चीज़ नहीं है। यह तो अनन्त रजकण का पिण्ड है। अनन्त परमाणु का पिण्ड है। टुकड़े करते... करते... करते... अन्तिम टुकड़ा रहे, उसे परमाणु कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणु का पिण्ड है। यह अँगुली, हों! आहाहा! तो कहते हैं कि जब से आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, तब से जगत की सब चीज़—लक्ष्मी हो या चक्रवर्ती का राज हो, परन्तु धर्मी तो उसका जाननशील रहता है, उसमें उसकी शोभा है। समझ में आया ?

यहाँ तो जहाँ दो, चार, पाँच लाख मिले, वहाँ मानो हम बड़े पैसेवाले हो गये। अरे! भगवान! यह धूल की चीज़ तेरी कहाँ से हुई? यह मिट्टी है। यह तो जगत के रजकण-परमाणु हैं। ये आये हैं और राख होकर उड़ जाएँगे। यह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। यह तुझमें नहीं है। इनमें तू नहीं है, तुझमें ये नहीं हैं। आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, तब से जगत का साक्षी होता हुआ शोभता है। आहाहा! अनन्त परमाणु, अनन्त आत्माएँ, निगोद। निगोद समझते हो? काई होती है न। यह लहसन-प्याज, इसका एक टुकड़ा लो। लहसन समझते हो? लहसन को हिन्दी में क्या कहते हैं? यह लहसन का राई जितना एक टुकड़ा होवे न? तो उस राई जितने टुकड़े में असंख्य औदारिकशरीर है। एक शरीर में अनन्त सिद्ध हुए, उनसे अनन्तगुने जीव हैं। आहाहा! उन सब जीव का जाननशील रहा, ऐसा कहते हैं। पर की दया पालनेवाला, पर को मारनेवाला, यह रहा नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो वीतराग का मार्ग, भाई! आहाहा! यह परमवीतराग की वाणी सुनने को मिले, वह भी भाग्यवान होवे, उसे मिलता है। ऐसी चीज़ है। आहाहा! बाकी तो धूल-धमाका है।

क्या कहा? जगत का साक्षी **सकल द्रव्यस्वरूप को जाननशील होकर...** सकल द्रव्यस्वरूप। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं न? भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं। एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश, असंख्य कालाणु, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु हैं। भगवान ने यह छह द्रव्य जाति से देखे हैं। संख्या से अनन्त (देखे हैं)। आहाहा! यह जब से आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप का भान हुआ, तब से सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानी हुआ। ज्ञानी हुआ तो जगत की चीज़ का साक्षी हुआ। जगत की चीज़ का जाननशील होकर रहा, वह उसकी शोभा है। आहाहा! समझ में आया? भाई! भाषा तो बहुत सादी है, भगवान! यह भाई ने कहा था, सेठ ने कहा था, मेहमान आये हैं तो हिन्दी में माँगेंगे। पहले कहा था। तुम्हारे आने से पहले, हों! हिन्दी में लो। .... किसी दिन आते हैं तो... आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा गजब बात करते हैं। आहाहा! चार लाईनें कल चली थीं। एक बार हिन्दी में आया। ओहोहो! क्योंकि आत्मा तो ज्ञान का पिण्ड है। आत्मा चिद्रूप, ज्ञानरूप जिसका रूप ही ज्ञान है। जिसका स्वरूप स्व-अपना रूप ही ज्ञान है। इस शरीर का रूप

कहते हैं न ? वह तो मिट्टी-धूल का है। भगवान आत्मा का रूप, स्वरूप ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। आनन्द उसका रूप है। आहाहा ! शान्ति उसका स्वरूप है। स्व-रूप है। वीतरागता जिसका रूप और स्व-रूप है। आहाहा ! अरे रे ! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं वह कब विचार करे कब बैठे (जँचे) ? आहाहा ! दुर्लभ वस्तु है। आहाहा ! मनुष्यपने में करनेयोग्य हो तो यह करने का है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा !

जाननशील होकर शोभता है। आहाहा ! भाषा तो देखो ! अपने अतिरिक्त रागादि परवस्तु... ज्ञानी को भी राग होता है। अपने स्वरूप का भान होने पर भी स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता तो अशुभ से बचने को दया, दान, पूजा, भक्ति आदि का भाव आता है, परन्तु आता है, उसका जाननशील रहता है। यह उसकी शोभा है। आहाहा ! जब तक वीतरागता न प्रगटे, तब तक राग आता है। तब तक आत्मज्ञानी को भी अशुभ से बचने को शुभभाव आता है, परन्तु उसका जाननशील रहता है। उसका कर्ता-भोक्ता नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो समझ में आये, ऐसी भाषा है, प्रभु ! आहाहा ! तेरे घर की बात है न, नाथ ! आहाहा !

सन्तों ने गजब काम किया है। आहाहा ! दिगम्बर मुनि, सच्चे अन्तर आत्मज्ञान के आनन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलनेवाले मुनि हैं, उनका नाम मुनि है। आहाहा ! यह विकल्प आया तो शास्त्र बन गया। उस विकल्प का भी जाननशील रहा, ऐसा कहते हैं। देवीलालजी ! आहाहा ! जगत का साक्षी हुआ, ऐसा कहा न ?

'जगतः साक्षी' आहाहा ! **'जगतः साक्षी'** तेरे जगत के चक्षु जानन रहे, बस। राग से लेकर कोई चीज़ मेरी है, ऐसा समकिती नहीं मानते। आहाहा ! धर्म की पहली श्रेणीवाला जीव, धर्म की पहली श्रेणी में समकिती, ज्ञान, वह जीव अपने अतिरिक्त परजीव का, पर आत्मा का, पर परमाणु का जाननशील-जानने के स्वभाव मात्र होकर रहा, वह उसकी शोभा है। आहाहा ! तीर्थंकर मेरे हैं, ऐसी मान्यता समकिती को नहीं है। परद्रव्य है न ? आहाहा ! स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, पुत्र और यह मेरा पुत्र है, मेरी गाड़ी... धूल भी नहीं, सुन न ! आहाहा ! लोगों ने मूर्खता में ऐसे जीवन व्यतीत किये हैं। मूर्खता कहलाती है न ? आहाहा ! गजब काम किया है न !

एक तो अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर अनुभव किया। अनुभव। स्वरूप की चीज़ है, उसे अनुसरकर आनन्द में आया तो अनुभव हुआ, तो 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप; अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! तब से जगत का साक्षी (हुआ)। आहाहा! अनन्त आत्माएँ, परिवार बड़ा हो, चक्रवर्ती की छियानवें हजार स्त्रियाँ, बत्तीस हजार पुत्रियाँ, बत्तीस हजार दामाद। जमाई कहते हैं न? चौंसठ हजार पुत्र-चौंसठ हजार पुत्रियाँ परन्तु उस चीज को मैं जानता हूँ कि वह है। बस! आहाहा! यह तो गृहस्थाश्रम में होने पर भी सम्यग्दर्शन हुआ वह परचीज़ का जाननशील रहा। आहाहा! अरे! प्रभु! यह बात कहाँ है? नाथ! तू कौन, वह कहाँ? आहाहा! कहीं कोई चीज़ कभी एक नहीं होती। भिन्न तो भिन्न रहती है। दो चीज़ कभी एक नहीं होती। मानता है कि यह स्त्री मेरी, यह पुत्र मेरा, पैसा मेरा। आहाहा!

मुमुक्षु : जगत तो मानो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और फिर बतलाने के लिये वाणी निकले, वह पूरा अलग। वह तो वाणी निकलने के काल में वाणी निकलती है और वाणी का भी जाननशील है। वाणी का भी कर्ता नहीं।... **'जगतः साक्षी'** में सब सार आ गया। वाणी निकलती है, वह भी जड़ परद्रव्य है। वाणी जड़ है। ध्वनि उठती है। भगवान की वाणी... 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे...' तीन लोक के नाथ के मुख में से ॐध्वनि खिरती है। तीर्थंकर को ऐसी वाणी (छद्मस्थों जैसी) नहीं होती। ॐ पूरा... 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे, भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा! उनकी वाणी का कर्ता वे भगवान नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। चौथे गुणस्थान से वाणी का साक्षी हुआ। जगत का साक्षी कहा। जगत में सब आया। वाणी, मन, राग, पुण्य-पाप, उनके फल यह बाहर की धूल आदि मिलती है, वह (सब आया)। धूल मिली। आहाहा! उसका सम्यग्दृष्टि जीव, धर्म की पहली सीढ़ीवाला जीव अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूप को जाननेवाला और अपने अतिरिक्त परचीज़ का जाननशील (रहता है), मैं तो जानने के स्वभाववाला हूँ। आहाहा! वाणी निकलती है, उसे मैं करता नहीं हूँ, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो मान्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने वह बुद्धि। अन्दर जड़ की ध्वनि उठती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो तुमने कहा, उपदेश दे। उपदेश कौन दे? मार्ग ऐसा सूक्ष्म, बापू!

मुमुक्षु : उपदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकार करते हैं। उसकी योग्यता होवे तो समझता है, तब भाषा को निमित्त कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात बहुत यह तो...

मुमुक्षु : निमित्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से उसमें कुछ होता नहीं। तब निमित्त कहने में आता है कि निमित्त से उसमें कुछ होता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिना निमित्त के ही अन्दर चलता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तुम्हारी पर्याय की योग्यता है तो होता है। ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात है। जगत की विपरीतता का पार नहीं। आहाहा! अपनी उस समय की जानने की पर्याय स्वयं से होती है। उसमें उसे निमित्त गिनने में आता है। निमित्त से हुआ नहीं। निमित्त से हुआ? उसकी पर्याय तो स्वकाल में हुई है। सूक्ष्म बात है। द्रव्य की जो पर्याय है, सिद्धान्त में प्रभु ऐसा कहते हैं, वह जन्मक्षण है। उस-उस पर्याय की उत्पत्ति का काल वहाँ है, इसलिए उत्पन्न होती है। पर से नहीं। आहाहा! कठिन बात, बापू! वीतराग का मार्ग... जिनेश्वर की यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। जिनेश्वर के अतिरिक्त अन्य में वेदान्त और आत्मा सर्व व्यापक (माननेवाले) और सांख्य आदि सब मिथ्यामार्ग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त के भेद—उदासीन और प्रेरक...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक की एक बात है। वह तो एक निमित्त गति करे, उसे प्रेरक कहा जाता है, परन्तु पर के लिये तो वह उदासीन ही है। स्वामी पूज्यपाद के इष्टोपदेश की ३५वीं गाथा है कि सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् है। कोई निमित्त पर में कुछ करे, ऐसी

चीज़ नहीं है। जैसे जीव और शरीर गति करते हैं तो धर्मास्ति तत्त्व भगवान ने देखा है तो निमित्त कहने में आता है। परन्तु निमित्त से वह गति करते हैं, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है। अभी तो बहुत फेरफार हो गया है। यह तो सब खबर है न। चौंसठ वर्ष तो यहाँ दीक्षा ली, उसे हुए। चौंसठ वर्ष। शरीर को ८८वाँ वर्ष चलता है। ९० में दो कम। यह तो कोमल शरीर है, इसलिए दिखता नहीं। ८८, दो आठ। ९० में दो कम। परन्तु शरीर कोमल है, पुण्य है, इसलिए बहुत दिखता नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ध्वजा हिलती है न, ध्वजा? पवन है, वह प्रेरक निमित्त है परन्तु पवन से ध्वजा हिलती है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह ध्वजा की पर्याय ऐसी होनेवाली है, उसकी पर्याय का काल है। पवन को तो निमित्त कहते हैं। निमित्त से ध्वजा ऐसे हिलती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। परचीज़ तो उदासीन धर्मास्तिकायवत् है, यह इष्टोपदेश में है। पूज्यपादस्वामी। पूज्यपादस्वामी हो गये न? मुनि, दिगम्बर सन्त वनवासी। उन्होंने कहा, निमित्त धर्मास्तिकायवत् है। वह तो इच्छावन्त प्राणी, गति करनेवाला हो तो प्रेरक कहो, वह तो उदासीन निमित्त है। परन्तु पर के लिये तो सब उदासीन निमित्त है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! यह गजब किया यहाँ।

जाननशील होकर शोभता है। आहाहा! **'चकास्ति'** कहा न? धर्मी जीव को जब से सम्यग्दर्शन हुआ और शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ, तब से अपने अतिरिक्त अन्य वाणी, शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मित्र, शत्रु, वे सब जगत में हैं तो उनका जाननेवाला है। यह मेरा शत्रु है और यह मेरा मित्र है, ऐसा उसमें कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भगवान! न सुने उसे कठिन लगती है, बापू! सब खबर है। यहाँ तो दुनिया को देखा है और जाना है। आहाहा! ओहोहो!

वहाँ हमारे पालेज में दुकान थी न? तो वहाँ एक ब्राह्मण था। वेदान्ती, बहुत होशियार। हमारा क्या कहलाता है? ग्राहक था। वेदान्त की बातें करे। परन्तु हम तो छोटी उम्र से जैन। कहा, यह नहीं, यह नहीं। आते थे। उसके शिष्य चरणवन्दन करे। हमारे ग्राहक थे। ग्राहक समझते हो? ग्राहक। मैंने कहा, यह नहीं। पालेज में हमारी दुकान है। भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज है।.... वहाँ हमारी दुकान थी। अभी भी है। मुझे दुकान

छोड़े हुए ६४ वर्ष हुए। दुकान छोड़े हुए। साढ़े तेईस वर्ष में छोड़ दी थी। ६८ के वर्ष से छोड़ दी है। बड़ी दुकान चलती है। तीन लाख की आमदनी है। अभी दुकान चलती है। एक वर्ष की तीन लाख की आमदनी-उपज है। बड़ी दुकान है। उस समय से दुकान है। .... वहाँ ब्राह्मण आता था। ऐसा वेदान्ती मानो ऐसे दूसरों को ओहोहो! (हो जाए)। अत्यन्त झूठा। कहा, जैन परमेश्वर में कहे हुए मार्ग के अतिरिक्त दूसरा कोई सत्य मार्ग नहीं है।

एक बार कहा था। एक बार दो साधु आये थे। कबीर का साधु। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। लगभग ६५-६६ की। संवत् १९६५-६६। बहुत वर्ष हो गये। ६८ वर्ष। एक कबीर का साधु आया था और एक वेदान्त का आया था। हमारी दुकान के पीछे धर्मशाला है, तो वहाँ बड़ी चर्चा हुई। हम जैन लोग सुनने गये कि वह क्या कहता है? उस समय तो १७-१८ वर्ष की उम्र। सत्तर वर्ष पहले की बात है। सत्तर वर्ष पहले की। वह कहता है कि ईश्वर ने सृष्टि रची है—वह वेदान्ती कहता है और कबीर का साधु कहे कि ईश्वर ने सृष्टि रची तो कहाँ खड़े रहकर उसने सृष्टि रची। ईश्वर कहाँ खड़े थे तो उन्होंने सृष्टि रची। बड़ी चर्चा हुई। मैं वहाँ गया था। कबीर (का साधु) हमारे सामने देखता था? वह जैन है तो जैन ईश्वर को नहीं मानते। ईश्वर कहाँ खड़े थे? और ईश्वर को किसने बनाया? वहाँ वह भाई अभिमानी था। मेरा शिष्य बन तो समझाऊँ। परन्तु पहले कह तो सही, क्या है? आहाहा! ऐसे कहीं चलता है? यहाँ तो न्याय से वस्तु की स्थिति है, ऐसी जानना चाहिए। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त होता है, परन्तु निमित्त पर का कुछ करे तो उसे निमित्त कहने में नहीं आता। वह तो उपादान हो गया। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि यदा जीव को शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है। तदा सकल परद्रव्यरूप द्रव्यकर्म-जड़। **भावकर्म**-पुण्य-पाप का भाव, उनका जाननेवाला रहा; करनेवाला नहीं। भाव आता है परन्तु उन्हें करनेवाला ज्ञानी-धर्मी नहीं है, यह कहते हैं। देखो! **सकल परद्रव्यरूप**... देखो! भावकर्म को परद्रव्य कहा। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव वह पुण्य परद्रव्य है। अपना स्वरूप नहीं। आहाहा! अरे! **द्रव्यकर्म-भावकर्म-** परद्रव्य कहा न? **परद्रव्यरूप**... तीनों परद्रव्य। **द्रव्यकर्म**-जड़ आठ कर्म, वह परद्रव्य;

पुण्य-पाप के भाव, वह परद्रव्य; **नोकर्म...** वाणी और शरीर परद्रव्य। आहाहा! इनके **उदासीनपना होता है।** आहाहा!

धर्मी जीव को वह चीज़ होती है परन्तु उससे उदासीन है। मैं वह नहीं। मेरा आसन तो राग से, कर्म से, बाह्य से मेरी चीज़ का आसन भिन्न है। मेरी सत्ता उससे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत के परिणाम को भी यहाँ परद्रव्य कहा। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, उस भाव को भी यहाँ परद्रव्य कहा। क्योंकि पुण्य राग है। कठिन बात है, भाई! अभी चलता नहीं, इसलिए लोगों को बेचारों को सुनने को मिलता नहीं। इससे होता है—शुभयोग करते-करते धर्म होता है, ऐसी बातें चलती है, बेचारा क्या करे? यहाँ तो कहते हैं कि शुभयोग, वह परद्रव्य है। शुभयोग, शुभ उपयोग भावकर्म है, वह परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने में से निकल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाता है। वह कहाँ इसकी चीज़ है? सिद्ध हुए तो पुण्य साथ में रहा? वह विकल्प तो परद्रव्य था, विकार था, वह छूट गया। आहाहा!

उदासीनपना होता है। आहाहा! लो! यह तो कल यहाँ तक आया था। यह तो फिर से आया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक ०५-०८-१९७७
कलश-४८, प्रवचन-५९

कर्ता-कर्म अधिकार... चलता है न? **भावार्थ इस प्रकार है कि यदा जीव को शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है।** क्या कहते हैं? आत्मा शुद्ध पवित्र निर्मल है। उसका जब अनुभव होता है, अर्थात् शुद्धस्वरूप के सन्मुख होकर उसकी दशा का, आनन्द का, शान्ति का, ज्ञान का अनुभव होता है। है? **तदा सकल परद्रव्यरूप...** तब वह सम्यग्दृष्टि हुआ। आहाहा! जैसा शुद्धस्वरूप त्रिकाली पवित्र है, उसकी प्रतीति और अनुभव होने पर वह **सकल परद्रव्यरूप द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में...** आहाहा! उनसे धर्मी उदास है। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! **परद्रव्यरूप द्रव्यकर्म-** परद्रव्यरूप **भावकर्म-** है न? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय के भाव, उन्हें यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा!

जब वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, तब वह इन द्रव्यकर्म-भावकर्म और नोकर्म में उदासीन होता है। उनके प्रति आदर नहीं रहता। आहाहा! भावकर्म के प्रति भी उदासीन है, ऐसा कहते हैं। अर्थात्? चैतन्यसत्ता ज्ञायकभाव से भरपूर, ऐसी अन्तरदशा होने पर, उसे शुद्ध चैतन्य आत्मा पवित्र, वह उपादेयरूप रहता है और जड़कर्म तथा दया, दान या पुण्य-पाप के भाव के प्रति वह उदासीन है। उनका जाननेवाला है, ऐसा कहा। परन्तु वह जाननेवाला पर को अपना मानकर नहीं। उन्हें उदासीनरूप से जानता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। लो, इसका नाम धर्म।

आनन्दस्वरूप भगवान, सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु, उस पर दृष्टि होने से, अर्थात् कि पर से विमुख होकर, स्व पूर्ण स्वभाव-सन्मुख होकर ध्रुव को ध्यान में लेकर... आहाहा! जब आत्मा का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन (होता है), उसे आत्मा का अनुभव कहते हैं। आहाहा! तब से वह जीव अपने पूर्ण आनन्दस्वरूप को उपादेय जानता हुआ और रागादि-व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प उठें, उनके प्रति भी उदासीन है। आहाहा!

यह सब विवाद। व्यवहाररत्नत्रय शुभोपयोग हेय नहीं, उपादेय है - ऐसा कहते हैं। कल बात चली थी। वे आये थे न? मक्खनलाल। मुरैना के। जाते समय आ गये थे। मैंने कहा कि भाई! यह मक्खनलालजी शुभ उपयोग को हेय कहते हैं, हेय मानते हैं उन्हें मिथ्यात्वी कहते हैं। तो कहे, बराबर है। हेय माने, वह मिथ्यात्वी। ठीक!... कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसार के पहले भाग में तो ऐसा कहते हैं कि शुभभाव हेय है, सरागभाव हेय है। राग का सराग संयमपना, वह हेय है। शुद्ध उपादान में निर्मल परिणति वीतरागता, वह उपादेय है। ऐसी बातें, बहुत अन्तर, भाई!

यह यहाँ कहते हैं। **भावकर्म-नोकर्म...** शरीर और वाणी **में उदासीनपना होता है।** आहाहा! स्वरूप का आदर रहता है, पूर्ण स्वरूप का आदर रहता है और रागादि भाव में उदासीन रहता है। आहाहा! **कैसा है जीवद्रव्य? 'पुराणः' द्रव्य की अपेक्षा अनादिनिधन है।** वह तो प्राचीन है। जीवद्रव्य प्राचीन है, अनादि का है—ऐसा कहते हैं। **'पुराणः'** वस्तु है, वह तो अनादि की है। आनन्द और ज्ञान का भण्डार प्रभु ऐसा जो जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु पुरानी है, प्राचीन है, अनादि की है। आहाहा! समझ में आया? **अनादिनिधन...** अर्थात्? आदि नहीं और निधन अर्थात् अन्त नहीं। आदि और अन्तरहित की निधन। निधन अर्थात् मृत्यु। जिसकी मृत्यु नहीं और जिसकी शुरुआत नहीं। आहाहा! जिसका अन्त नहीं और जिसकी आदि नहीं। भगवान जीवद्रव्य की आदि क्या? वह है। आदि नहीं, उत्पत्ति नहीं, इसलिए आदि नहीं और नाश नहीं, इसलिए अनिधन-अविनाशी है। आहाहा!

और कैसा है? जीवद्रव्य। **'क्लेशात् निवृत्तः' क्लेश से अर्थात् दुःख से रहित है।** आहाहा! वह पुण्य के भाव भी दुःखरूप थे। आहाहा! देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, राग, पंच महाव्रत का राग और शास्त्र की ओर झुकती बुद्धि, वह राग। आहाहा! **दुःख से रहित है।** वह सब दुःख है। पहले भावकर्म से उदासीन कहा था। तब यह जीव है, वह अनादि-अनन्त है। आहाहा! और क्लेश से निवृत्त है। विकल्पमात्र उठे, वह दुःख है क्योंकि भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। उससे विरुद्ध चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठे... आहाहा! और पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का श्रवण करने का राग... आहाहा! वह सब दुःख है। दुःख से निवृत्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय माने नहीं। उसका आदर करता है, इसलिए इसका आदर नहीं, यह दु:ख है, बस। यह तो समझाने के लिये कहा जाता है कि वह हेय है। वह हेय करने जाए, वहाँ विकल्प है।

यहाँ तो शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु का जिसे अन्दर साक्षात्कार हुआ, अन्दर भगवान की भेंट हुई। आहाहा! परमानन्द की मूर्ति प्रभु की अन्तर्दृष्टि में भेंट हुई, ऐसा जो भगवान अनादि-अनन्त, वह क्लेश से निवृत्त हुआ है, दु:ख से निवृत्त हुआ। तथा एक ओर (कहते हैं), दु:ख से निवृत्त हुआ तथा एक ओर फिर ऐसा कहते हैं कि जब तक पूर्ण वीतरागता नहीं, तब तक उसे दु:ख के भाव आते हैं और वह दु:ख को भोगता है।

मुमुक्षु : उसका स्वामित्व नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामित्व नहीं परन्तु भोगता है। उसकी पर्याय में वह है। आहाहा! यह किस अपेक्षा? वह तो उसकी कमजोरी से उत्पन्न हुआ विकल्प, ऐसा गिनकर उसे वह वेदता है, ऐसा कहते हैं। वह पर्याय में वेदता है। वस्तुरूप से देखो तो वह दु:ख के भाव से निवृत्त है। आहाहा! वस्तुरूप से, वस्तु की दृष्टिरूप से जहाँ देखे... आहाहा! तो उस दृष्टि के विषय में विकल्प का दु:ख नहीं आता। केशरीमलजी! ऐसी बातें हैं। यह तो लोग बेचारे किसके साथ इसमें... आहाहा!

लोग यह रोग आवे और निर्धनता आवे, उसे दु:ख गिनते हैं। वह दु:ख नहीं है। वे तो दु:ख के निमित्त हैं। निमित्त उसे कहते हैं कि जो दु:ख न उपजावे। समझ में आया? निर्धनता, शरीर में रोग, परिवार का नाश हो जाना, अकेला रहना, वह कहीं दु:ख नहीं है। दु:ख तो अन्दर पुण्य और पाप के भाव उठावे, वह दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? यह तो दु:ख के निमित्त हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, उसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप का आदर और उपादेय हुआ। उसे वह पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्पों को दु:खरूप जानता है। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे वर्तमान पर्याय में जहाँ आनन्द की भेंट हुई, इस अपेक्षा से तो जो पुण्य का, दया, दान,

व्रत, भक्ति के और तप के तथा अपवास करूँ, ऐसे विकल्प भी दुःखरूप है। आहाहा! दुःख से निवृत्त है। क्योंकि आनन्द का नाथ जहाँ अनुभव में आया, अब वह तो दुःख से निवृत्त है। वह अतीन्द्रिय आनन्द के वेदनसहित है और दुःख के वेदन से रहित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब ऐसा मार्ग! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन क्या है, उसका भान नहीं होता और व्रत, प्रतिमा और महाव्रत लेकर बैठते हैं। बालव्रत और बालतप है। वह तो दुःखरूप दशा है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव वीतरागस्वभाव से विराजमान आत्मा अर्थात् कि अतीन्द्रिय आनन्द का, वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव प्रभु का... प्रभु अर्थात् आत्मा, हों! उसका जिसे सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ, चौथे गुणस्थान में, उस आनन्द का वेदन हुआ, वह क्लेश से निवृत्त है। आनन्द से सहित है, दुःख से रहित है, ऐसा कहते हैं। अस्ति-नास्ति अनेकान्त किया। आहाहा! समझ में आया? क्यों नहीं उतारने का तुझे? क्या हुआ? ठीक। हो गया होगा। कहो, समझ में आया? आहाहा! भाषा तो देखो!

आचार्य तो देखो! आहाहा! वे कहते हैं कि यह टीका करने के समय विकल्प उठा है, वह दुःख है। उससे हम तो निवृत्त हैं। आहाहा! समझ में आया? मुनिराज दिगम्बर सन्त अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन (प्रगट हुआ है)। समयसार की ५वीं गाथा में आता है न, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे अनुभव की मोहरछाप क्या? ट्रेडमार्क क्या? आत्मा का सम्यग्दर्शन हो और अनुभव हो, उसका मोहरछाप क्या? अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना, वह उसकी मोहरछाप है। आहाहा! वह अनुभव की मोहरछाप है, वह सम्यग्दर्शन की मोहरछाप है। आहाहा! ऐसी बातें। यह आचार्य महाराज सन्त, दिगम्बर सन्त अर्थात् तो वीतरागी मुनि। जिन्हें पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द उछल गया है, वे ऐसा कहते हैं कि हम तो अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में हम क्लेश जो पुण्य का विकल्प है, उससे तो हम निवृत्त हैं। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है क्लेश? और पुण्य का भाव उत्पन्न होता है, वह क्लेश है। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प उठता है, वह राग है और क्लेश है। आहाहा! **कैसा है क्लेश? 'अज्ञानोत्थितकर्तृ-कर्मकलनात्' जीव-कर्म के एक संस्काररूप झूठ अनुभव**

से... आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और वह रागस्वरूप। पुण्य-पाप का भाव, वह कर्मस्वरूप। कर्मस्वरूप कहो या रागस्वरूप कहो। उसका एक संस्कार (अर्थात्) वे सब एक हैं। यह दया, दान, व्रत का विकल्प उठा है, वह और आत्मा एक है, ऐसा झूठा अनुभव। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **झूठ अनुभव से उत्पन्न हुई है। जीव कर्ता और जीव की करतूति ज्ञानावरणादि द्रव्यपिण्ड...** वह पुण्य और पाप सब एक ही हैं।

क्या कहते हैं? राग और आत्मा एकत्वबुद्धि से—ऐसे झूठे अनुभव से निपजी है क्या? जीव कर्ता और राग उसका कार्य, ऐसी विपरीत प्रतीति जिसे उत्पन्न हुई है। एकरूप संस्कारवाले को। आहाहा! ज्ञानानन्द ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव और यह विकल्प जो राग होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि, व्रत, तप, अपवास आदि, वह सब विकल्प उठता है। वस्तु की खबर नहीं और वस्तु का भान होने पर भी वह जो विकल्प उठता है, (वह परज्ञेय में जाता है।) जीव कर्ता और राग का भाव मेरा कर्म, ऐसी विपरीत प्रतीति जिसका लक्षण है। आहाहा! अथवा वह अज्ञानस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। पुण्य के भाव और आत्मभाव दोनों एक हैं, यह अज्ञानस्वरूप ही है। यहाँ तो कर्ताकर्म की प्रवृत्ति अज्ञान से उत्पन्न हुई, ऐसा सिद्ध करना है न? परन्तु वह अज्ञानस्वरूप ही है। आहाहा!

यह क्या कहा? आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी आत्मा। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वरूप के साथ राग की एकताबुद्धि, वह अज्ञानभाव है। उस अज्ञान से उत्पन्न हुई कर्ता-कर्म प्रवृत्ति, वह तो अज्ञानभाव ही है। आहाहा! समझ में आया? अब इसमें पहुँच नहीं सके, इसलिए बेचारे बाहर में झगड़े खड़े करते हैं। आहाहा! यह शुभ उपयोग (को), हेय माने तो मिथ्यात्व है—ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि शुभोपयोग को अपना माने वह मिथ्यात्व-अज्ञान है। पण्डितजी! है इसमें? आहाहा! भगवान! मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव के कथन दिगम्बर सन्त आड़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! प्रभु! ऐसी बात! अन्यत्र कहीं नहीं है। सब धर्म के नाम भले धराते हों, समझ में आया? वेदान्त और श्वेताम्बर और इन सबमें यह बात नहीं है, प्रभु!

आहाहा! और अभी तो दिगम्बर सम्प्रदाय में भी गड़बड़ उठी है।

मुमुक्षु : घर में आग लगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में आग लगी। अरेरे! प्रभु!

यहाँ यह कहते हैं, अज्ञान से उत्पन्न हुआ कर्ता-कर्म का अभ्यास हुआ न? आहाहा! '**कलनात्**' विपरीत प्रतीति, विपरीत अनुभव-अभ्यास। आहाहा! यह क्या कहा? भाई! यह तो धीरज का काम है, बापू! यह कहीं कोई... आहाहा! अन्दर प्रभु आत्मा है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है और अतीन्द्रिय ज्ञान का वह पुंज है। उसे जीवद्रव्य कहते हैं। ऐसे जीवद्रव्य के साथ यह राग मेरा है, ऐसी अज्ञान से उत्पन्न हुई कर्ता-कर्म की बुद्धि, वह अज्ञानस्वरूप है अथवा अज्ञान से उत्पन्न हुई कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति है। समझ में आया? यह अन्दर है या नहीं? अभी तो लोगों ने पूरी बात बहुत बदल डाली। आहाहा! जैनधर्म को अजैनधर्म के नाम से रच दिया। यह प्रतिमा ली, व्रत लिये, तप किये, यह स्त्री-पुत्र छोड़े, वस्त्र छोड़े, हो गया इसे धर्म। धूल भी नहीं है, सुन न! आहाहा! जो कुछ अन्दर में से एकत्वबुद्धि छोड़ना चाहिए, वह तो छोड़ी नहीं। आहाहा! मुद्दे की रकम में परमात्म चिदानन्दस्वरूप आत्मा ध्रुव आनन्द का नाथ, उसके साथ कृत्रिम राग की एकता तो छोड़ी नहीं। सुमुकु—अपितु उसमें ऐसा माना है कि यह राग करते हैं, क्रिया करते हैं और यह व्रत की, तप की, भक्ति की क्रिया, वह धर्म है और धर्म का कारण है, ऐसा अज्ञानी ने माना है। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। क्या हो? भाई! मार्ग तो यह है।

मुमुक्षु : सब कुँओं में भाँग पड़ी रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। किसने कहा?

मुमुक्षु : ....भाई ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात। भाग्यशाली हो। आ गये, ऐसा कहो न। यह बात सुनने में आ गये न? आहाहा! भाँग पीकर सब बात पूरी...

मुमुक्षु : अध्यात्म की भाँग...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो फिर अध्यात्म की भाँग। यह तो भाई ऐसा कहते हैं कि विपरीत मान्यता की भाँग पी है। कुएँ में भाग पड़ी। कुएँ में से तो सब पानी ले। आहाहा! तुझे सम्यग्ज्ञान क्या है, अभी उसका तो निर्णय कर। आहाहा! यह मूल रकम है। उसका तो निर्णय कर। आहाहा!

कहते हैं कि '**कर्तृकर्मकलनात्**' उपजी है अज्ञानपने की कर्ताकर्म की बुद्धि। आहाहा! '**कलनात्**' अर्थात् उसका अध्यास हो गया है। '**कलनात्**' अर्थात् अनादि का अनुभव हो गया है। यह शुभराग आदि जो विकल्प-राग है, वह मेरी चीज़ है, ऐसा इसे अनादि का संस्कार और अभ्यास हो गया है। आहाहा! उसके कारण अज्ञान से उत्पन्न हुई 'राग मेरा कर्तव्य है और मैं उसका कर्ता हूँ'—ऐसी कर्ताकर्म की बुद्धि अज्ञान से उत्पन्न हुई है। समझ में आया? मार्ग बहुत दूसरा, बापू! आहाहा! लोगों ने दूसरे रास्ते चढ़ाया है, इसलिए यह बात इसे ऐसी लगती है। यह शास्त्र कहते हैं, भगवान कहते हैं। कौन कहते हैं? वे कहे ऐई! सोनगढ़वालों ने निश्चय का अकेला नया निकाला। निश्चयाभास निकाला, ऐसा कहते हैं। कहो, बापू! प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं है, भाई! आहाहा!

यह आनन्द का कन्द प्रभु है, ज्ञान का सागर है, चिद्रूपोऽहं। यह तो ज्ञानरूप मेरा स्वरूप। ज्ञानरूप मेरा स्वरूप, ज्ञानरूप यह स्वरूप। उसमें राग के विकल्प की गन्ध ही नहीं है। आहाहा! राग की गन्ध कहाँ? वस्तु में तो वीतरागता पड़ी है। आहाहा! रागरहित उसका—भगवान आत्मा का स्वभाव तो वीतरागमूर्ति है। उसे राग के साथ एकत्व के अभ्यास-संस्कार-'**कलनात्**' आहाहा! अरे! तूने अभ्यास किया है, माना है—ऐसा कहते हैं। है नहीं एक? क्या कहा यह? इस राग के विकल्प का तूने अभ्यास किया है कि यह मेरे हैं। अभ्यास किया होने पर भी वे एक नहीं हुए। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप है, वह कभी रागरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! ज्ञायकभाव है। छठवीं गाथा में कहा न? कि ज्ञायकभाव यदि पुण्य और दया, दान, व्रतरूप होवे तो यह दया, दान के विकल्प हैं, वे तो अजीव हैं, अचेतन हैं तो आत्मा ज्ञायकभाव पुण्य-पापरूप होवे तो आत्मा जड़ हो जाए। गजब बातें की हैं! आहाहा! भाई! परमात्मा का सन्देश कोई सूक्ष्म है। समझ में आया? ज्ञायक जाननस्वभाव से भरपूर प्रभु; वह जो पुण्य और पाप के विकल्प हैं, वे तो अचेतन

हैं, जड़ हैं। अरर्र! गजब बात, भाई! यह महाव्रत के परिणाम, दया, दान के परिणाम, वे अचेतन हैं। अर्थात्? उनमें चैतन्य के ज्ञायक का कोई अंश उनमें नहीं है। वे रागादि भाव तो अन्धकार है। आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो भुक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भुक्ति है। कल आया नहीं था? कहा नहीं था? निकाला था न, धवल में पहले भाग में और तेरहवें भाग में दो जगह आया है। महाव्रत के परिणाम, वे तो राग का अनुभव—राग की भुक्ति है। आहाहा! यह सिद्धान्त समयसार तो कहता है परन्तु धवल व्यवहार ग्रन्थ है, उसमें पहले भाग में और तेरहवें भाग में दो जगह कहा है। 'स एव' भगवान उत्पन्न ज्ञान दर्शन खरे... जिसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है (ऐसे) परमात्मा जगत के गति-आगति को जानते हैं, जगत के प्राणी राग को भोगते हैं और महाव्रत को भोगते हैं, यह दो राग का भोग है। आहाहा! राग को भोगना, वह अशुभराग का अनुभव है। अनुभव, महाव्रत का अनुभव, वह शुभराग का अनुभव परन्तु है राग। आहाहा! ऐई! अपने निकाला था न? आहाहा! धवल के पहले भाग में है और एक तेरहवें भाग में है। महाव्रत का परिपालन अर्थात् कि बराबर पालना, वह अनुभव भुक्तिभाव है। आहाहा! सुरेन्द्रभाई! ऐसी बातें हैं। परमात्मा तेरी बातें दुनिया से निराली हैं, नाथ! आहाहा!

मुमुक्षु : भेदाभेदरत्नत्रय...

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदरत्नत्रय है, वह राग और भुक्ति है। यह शुभराग आया न? व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, वह सब भुक्ति-राग है। भगवान! कठिन है, नाथ! तेरी चीज़ में वह स्पर्शा भी नहीं है। तूने '**कलनात्**' मानकर अभ्यास किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अभेदरत्नत्रय तो स्वरूप है, वह तो आत्मा का स्वरूप है। वह आनन्द का अनुभव है। भेदरत्नत्रय, वह दुःख का अनुभव है। आहाहा! कठिन बातें, नाथ!

प्रभु आत्मा आनन्दस्वरूप... आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतीति

सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, वह तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तीन है। मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह निश्चय जो है, वह तो आनन्दस्वरूप है और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह दुःखस्वरूप है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। एक पराश्रयभाव और एक स्व-आश्रय। परन्तु वह तो इसे अभी स्वाश्रय-पराश्रय में वह नहीं बैठता। वह तो दुःख है, स्वरूप से विपरीत है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को... बेचारे क्रिया करते हों, व्रत और भक्ति। वह भी क्रिया कहाँ है? नौवें ग्रैवेयक में गया और वह क्रिया जो इसने की है... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' वह तो है ही कहाँ? ऐसी क्रिया भी अभी कहाँ है? आहाहा! समझ में आया?

नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार उपजा है। इसने पंच महाव्रतादि की—शुक्ललेश्या की क्रिया इतनी की है कि जो अभी वह भाव है नहीं, तो भी वह पंच महाव्रतादि परिणाम दुःख का कारण था। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मा के अनुभव बिना इसे आनन्द नहीं मिला। वे पंच महाव्रत के परिणाम, वह दुःखरूप है। ऐसा हुआ न। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ कि महाव्रत के परिणाम भी दुःखरूप हैं। यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! अब उस दुःखरूप से आत्मा को धर्म हो? महाव्रत, वह संवर है और अपवास, वह निर्जरा है, यह अज्ञानियों की मान्यता के सब भनकार विपरीत हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : करणलब्धि को सम्यग्दर्शन का कारण कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपेक्षा... पूर्व में परिणाम थे इतना। पूर्व में थे इतना। वास्तव में तो शुद्धात्मा के सन्मुख है, उसमें से होता है। वहाँ से छूट जाता है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं कि अज्ञान से उत्पन्न हुआ कर्ताकर्म का अभ्यास। आहाहा! आत्मा करनेवाला और दया, दान के विकल्प का कार्य करे, ऐसी अज्ञान से उत्पन्न हुई वह कर्ताकर्म की प्रवृत्ति का इसे अभ्यास हो गया है। वह मिथ्यादृष्टि का अभ्यास है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कल एक आया था न? ब्राह्मण का लड़का बी.ए. में फेल हुआ। बी.ए.-बी.ए.।

वह सहन नहीं कर सका। अरे! बापू! क्या हुआ? सेठ! बी.ए.-बी.ए.। यह पढ़ाई नहीं? बी.ए. की पढ़ाई में फेल हुआ, तो यहाँ 'खोडियार' है न? 'सीहोर' के पास 'खोडियार'। वहाँ तालाब है। कुटुम्बियों को लिखा कि मैं फेल हुआ हूँ, मैं सहन नहीं कर सकता। मैं यह दुनिया छोड़ देता हूँ। गिरकर मर गया। अरे! प्रभु! कहाँ है वहाँ? कल समाचार-पत्र में आया था। यहाँ 'सीहोर' के पास 'खोडियार' है न? अज्ञानी 'खोडियार' बहुत जाते हैं। देवी है देवी। 'खोडियार' हमारे 'उमराला' में देवी है। 'खोडियार' 'उमराला' में बाहर है, वहाँ बहुत बार गये हुए। ब्राह्मण का लड़का बी.ए. में फेल हुआ, वह कुटुम्ब को लिख गया, मुझसे सहन होता नहीं, मुझे अन्दर दुःख लगता है। मैं पूरी दुनिया को छोड़ देता हूँ।

समाधिशतक में कहा है कि शुरुआत में अन्दर जाने पर उसे दुःख लगता है और बाहर में सुख लगता है। भाई! समाधिशतक में कहा है। ऐसा कठिन लगे न, इसलिए अन्दर में जाने में इसे उकताहट लगती है और बाहर में आने पर इसे सुख लगता है। समाधिशतक में है। पूज्यपादस्वामी दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है। आहाहा! दिगम्बर सन्त, वे तो केवलज्ञानी के पथानुसारी, (उन्होंने) केवलज्ञान को खड़ा रखा है। आहाहा! ऐसी बात कहीं है नहीं। जिसमें है, उन्हें भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अज्ञान से कर्ता-कर्म '**कलनात्**' समझे न? आहाहा! अज्ञान से कर्ता-कर्म का '**कलनात्**' आहाहा! स्वरूप आनन्द का नाथ भगवान है, उसकी जिसे खबर नहीं, ऐसे जीव अपने आनन्दस्वभाव के साथ उस राग के विकल्प की एकत्वबुद्धि को उत्पन्न करके उस अज्ञानपने से कर्ताकर्म मान रहे हैं। यह राग मेरा कर्तव्य है और मैं इसका कर्ता, यह अज्ञानपने से मान रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् में आता है। विभाव का इसने अभ्यास किया है कि मेरा है। विभाव इसका है नहीं। आहाहा! काम बहुत (कठिन) आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाना, बापू! वह साधारण मार्ग होगा? पंच महाव्रत पालन किये, स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, इसलिए हो गया धर्म। धूल भी नहीं है। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य बन्ध अधिकार में तो कहते हैं कि पंच महाव्रत ऐसे चुस्त पालन किये... वह तो अभी तो उनके लिये चौका करके आहार ले तो पंच महाव्रत का भी

ठिकाना नहीं है। एक भी महाव्रत का और एक भी समिति का ठिकाना नहीं है। उसके लिये चौका-आहार करके लेते हैं। उनके लिये बनाते हैं। पानी दस सेर-आधे मण उकालते हैं। एक-एक बूँद में असंख्यात जीव। उनके लिये बनावे और वह सब दे। सेठिया ने भी दिया होगा न ? .... बड़े व्यक्ति, सामने कहलाये तो उनके घर में तो पहले... बसन्तीलालजी ! इन्होंने भी किया होगा। आहाहा ! अरे ! पानी की एक बूँद, असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में असंख्य जीव। ऐसा दस सेर-आधे मण पानी (गर्म करे)। महाराज का आहार है, महाराज के लिये बनाते हैं। अरर ! गजब है, भाई ! यह जैनधर्म को कलंक लगा दिया है। आहाहा ! और वापस ले तो उसे बुलावे कि कैसा है ? आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध। सब झूठ। सेठ ने किया होगा। ऐसा बोलना पड़ता है न सेठ ? बात सत्य है। यह प्रथा थी न, भगवान ! यह थी ही, दूसरी नहीं थी। आहाहा ! मन शुद्ध है, वचन शुद्ध है, काय शुद्ध है, आहार शुद्ध है। परन्तु अब कहाँ से आहार शुद्ध ? अभी उनके लिये सब बनाया न ? मौसम्बी ले आये, रोटी बनाते हो, पकवान बनाते हो, आम का रस उनके लिये निकाला। और शुद्ध कहाँ से ? झूठ कितना ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में किया है न, बात सत्य है। आहाहा ! सामने बड़े व्यक्ति हैं तो फिर उनके प्रमाण में करना पड़े न ?

यहाँ कहते हैं कि प्रभु ! तू सुन। भगवान आनन्द का नाथ, उसके साथ राग का विकल्प उठा है, उसे तूने एकत्वबुद्धि के संस्कार से तूने अनुभव किया है। आहाहा ! मानकर अनुभव किया है। वस्तु एक हुई नहीं। ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। चिदानन्द-सच्चिदानन्द प्रभु। आहाहा ! परन्तु इसमें राग की एकताबुद्धि के अभ्यास से अज्ञानपने से उत्पन्न की हुई... अथवा यहाँ तो अज्ञान से उत्पन्न की हुई, उसका अर्थ यह किया कि अज्ञानरूप ही है। की हुई और करता क्या ? ऐसा भी नहीं। टीका में ऐसा किया है। समझ में आया ? आहाहा !

एक ओर भगवान आनन्द का नाथ, उसे राग से भिन्न करके आत्मा का अनुभव (करना), वह आनन्द का अभ्यास, वह धर्म का अभ्यास; और राग की एकताबुद्धि, वह

दु:ख का अभ्यास, अज्ञान का अभ्यास। आहाहा! ऐसा है। पैसे में मुझे ठीक पड़ता है, वह दु:ख है। इसका उसे अभ्यास हो गया है, कहते हैं। आहाहा! धूल में भी कहीं सुख नहीं है। पैसे में, स्त्री में, इज्जत में, कीर्ति में। वह तो सब परज्ञेय है। उनके ऊपर लक्ष्य जाने से तो राग ही होता है।

मुमुक्षु : दु:ख में निमित्त तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। दु:ख में निमित्त का अर्थ? यह तो बात करते हैं। निमित्त अर्थात् कुछ करता नहीं, उसका नाम निमित्त। दु:ख की दशा तो स्वयं अज्ञानभाव से करता है। उसमें वह निमित्त है। निमित्त है अर्थात् कुछ नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त कर्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-विमित्त कर्ता तो कोई है नहीं। यह बड़ी मिथ्यात्व-भ्रमणा है। सब निमित्त से होता है, ऐसा मानते हैं, वे तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। उस द्रव्य की उस क्षण में, स्वयं से उत्पन्न होने के समय की पर्याय, उसे निमित्त बनावे, निमित्त है, इसलिए हुई, ऐसी अत्यन्त (झूठी) भ्रमणा अज्ञानियों की है। समझ में आया?

बनारसीदास ने नहीं कहा? 'उपादान बल जहाँ-तहाँ, नहीं निमित्त को दाव...' जहाँ-तहाँ अपनी पर्याय अपने से होती है, वह उपादान का बल है। निमित्त का दाव कभी आया नहीं। निमित्त का दाव-पेंच आया ही नहीं। कौन माने? मानी हुई बात में धक्का लग जाता है न। प्ररूपणा ऐसी और सुननेवाले भी सब ऐसे। आहाहा! मार्ग अलग, भाई!

मुमुक्षु : हिसाब लगावे तो बात बराबर समझ में आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ बराबर कहते हैं। मिलावे, मिलान करे (तो) ख्याल में आ जाए। आहाहा!

और कैसी है जीववस्तु? जीववस्तु। **'इति एवं सम्प्रति परद्रव्यात् परां निवृत्तिं विरचय्य स्वं आस्तिघ्नुवान:'** आहाहा! **इतने पूर्वोक्त प्रकार से विद्यमान...** क्या कहते हैं? हैं, परद्रव्य है, पुण्य-पाप के भाव हैं, वाणी-मन है। **उससे सर्वथा त्यागबुद्धि...** आहाहा! है, उनसे त्यागबुद्धि; नहीं है, उनसे त्यागबुद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य और

पाप, शरीर, वाणी, मन सब है। एक ओर भगवान आत्मा आनन्द का नाथ है और एक ओर यह वस्तु है। नहीं, आकाश के फूल की भाँति नहीं—ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु **परवस्तु जो द्रव्यकर्म–**... जड़कर्म **भावकर्म–**... अर्थात् शुभयोग आदि पुण्य-पाप के भाव **नोकर्म**... अर्थात् वाणी, शरीर **उससे सर्वथा त्यागबुद्धि**... भाषा देखो। **'निवृत्तिं'** समकिती को तो उन सबमें सर्वथा त्यागबुद्धि होती है। इसका नाम त्याग है। बाहर का त्याग करके अनन्त बार मर गया। आहाहा! समझ में आया? स्वरूप की ग्रहणबुद्धि और रागादि की त्यागबुद्धि।

'निवृत्तिं' यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के परिणाम से (निवृत्ति)। ये सब परद्रव्य हैं। आहाहा! ये सब परद्रव्य हैं। गजब बात है न? है न परद्रव्य है न? **'परद्रव्यात् परां निवृत्तिं'** स्वद्रव्यात आदर, शुद्ध उपादान आनन्द का नाथ उपादेय और परद्रव्य जो दया, दान, व्रत, उनसे सर्वथा निवृत्ति।

मुमुक्षु : पहले बहुत मन्द करे फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मन्द करे फरे, इसलिए छूटता है, ऐसा नहीं है। जिसे पर की अपेक्षा है ही नहीं। सम्यग्दर्शन में स्व की अपेक्षा और पर की अपेक्षा नहीं। स्व की अपेक्षा है, पर की अपेक्षा नहीं। ऐसी बात है। कठिन पड़े, भाई! लोगों को अभ्यास ही सब उल्टा हो गया है। आहाहा! वाड़ा बाँधकर बैठे रे अपना पन्थ करने को। वीतरागमार्ग क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! भाषा क्या ली है?

इतने पूर्वोक्त प्रकार से विद्यमान है, **'एवं'** की व्याख्या की है पूर्वोक्त प्रकार से। और **'इति'** है न? **'इति'** पहला शब्द है। **इतने [एवं] पूर्वोक्त प्रकार से [सम्प्रति] विद्यमान...** है। **'सम्प्रति'** अर्थात् वर्तमान-विद्यमान। क्या? परवस्तु। क्या? द्रव्यकर्म, पुण्य-पाप के भाव और नोकर्म-वाणी। उनसे सर्वथा त्यागबुद्धि है। यह मूल से त्यागबुद्धि करके... आहाहा! सम्यग्दृष्टि ने तो उसे-राग को मूल से त्यागबुद्धि करके... आहाहा! और मूल से आनन्द के स्वरूप को उपादेय करके, राग की सर्वथा त्यागबुद्धि करके... आहाहा! शब्द प्रयोग किया कितना सर्वथा। नहीं तो निवृत्ति है।

भगवान आनन्दस्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में परिणति प्रवृत्ति है, उसका आदर

और उसके अतिरिक्त के रागादि सर्व जो परद्रव्य कहलाते हैं, उनसे सर्वथा निवृत्ति है। आहाहा! स्वद्रव्य में प्रवृत्ति है और परद्रव्य से निवृत्ति है। आहाहा! लॉजिक से-न्याय से भी पकड़े तो पकड़ में आये ऐसा है, परन्तु अब आग्रह ऐसे पकड़कर पड़े हैं। आहाहा! मिथ्यात्व की प्ररूपणा ही उल्टी। यह व्रत करो, अपवास करो, प्रतिमा लो, यह धर्म होगा। प्ररूपणा ही मिथ्यात्व की है। आहाहा! तुम राग की क्रिया को धर्म मानकर करो।

यहाँ कहते हैं कि उससे सम्यग्दृष्टि को सर्वथा निवृत्ति है। आहाहा! सर्वथा त्यागबुद्धि है। '**निवृत्तिं**' का अर्थ किया—त्यागबुद्धि। **मूल से करके 'स्व' शुद्ध चिद्रूप को...** अब वहाँ आदर आया। स्व अर्थात् शुद्ध चिद्रूपज्ञानरूप पवित्र भगवान '**आस्तिघ्नुवानः**' आहाहा! **शुद्ध चिद्रूप को आस्वादती हुई।** आहाहा! जीववस्तु। जीववस्तु शुद्ध आनन्द को आस्वादती हुई और पर के त्याग की सर्वथा त्यागबुद्धि से। आहाहा! गजब बात है न! एक-एक श्लोक में कितनी बात की है! शुद्धचिद्रूप को आस्वादती हुई जीववस्तु। जीववस्तु कैसी है? जीववस्तु जो भगवान आत्मा, वह अपने स्वरूप के आनन्द को आस्वादती, विद्यमानरूप से और रागादि के विद्यमान से सर्वथा त्यागबुद्धि। आहाहा! उसे सर्वथा त्यागबुद्धि हुई तो अब आदर क्या हुआ? आनन्द का अनुभव हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव को आस्वादती जीववस्तु। आहाहा!

कैसा है स्व? स्व को आस्वादती हुई। जीववस्तु अपने आनन्द को अनुभवती हुई। **कैसा है स्व? 'विज्ञानघनस्वभावं'** आनन्द अकेला डाला था न? अब वापस विज्ञानघन डाला। आहाहा! अब ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। एकान्त लगता है, हों! एकान्त है... एकान्त है... निकाल डालो। आत्मा को निकाल डालो। आहाहा! तीन बातें की हैं। एक तो राग और आत्मा की एकत्वबुद्धि से उत्पन्न हुआ अथवा अज्ञानभाव, वह कर्ताकर्म बुद्धि है। अब वह जीववस्तु सर्वथा परद्रव्य दया, दान, व्रत, द्रव्यकर्म, जड़कर्म से सर्वथा त्यागबुद्धिरूप से और स्वस्वभाव के स्वादरूप है। तो स्व चीज़ कैसी है? जिसका-आनन्द का आस्वाद आता है, वह स्व चीज़ कैसी है? आहाहा! कि वह तो विज्ञानघन-वह **शुद्ध ज्ञान का समूह है...** आत्मा तो अकेला ज्ञान का पिण्ड है। ज्ञातादृष्टा का भण्डार है। आहाहा! उसमें दया, दान के विकल्प का तो अवकाश नहीं। वह वस्तु में है कहाँ? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! सम्प्रदाय में होवे तो रहने भी न दे।

अभी नहीं कहा? फलटन में। टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे थे। अरेरे! प्रभु! तू क्या करता है? भाई! उन्होंने अध्यात्म की भाँग पी है टोडरमल और बनारसीदास ने। जिससे आत्मा के अनुभव की बात की, रागादि के त्याग की बात की। वे अध्यात्म की भाँग से नाचे हैं। आहाहा! टोडरमल तो आचार्यकल्प जैसे हैं। आचार्य नहीं, मुनि नहीं।

मुमुक्षु : टोडरमलजी की टीका पढ़कर ही पण्डित बने हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात तो सत्य है। उनका मोक्षमार्ग (प्रकाशक) गोम्मटसार, उनका अर्थ किया हुआ है। अब उन्हें ऐसा सिद्ध करते हैं। कोई पूछनेवाला नहीं होता। वीतराग का विरह पड़ा, केवलज्ञान की उत्पत्ति का अभाव रहा। आहाहा!

विज्ञानघनस्वभाव। कैसा है प्रभु आत्मा जीववस्तु? **शुद्ध ज्ञान का समूह है 'स्वभावं' सर्वस्व जिसका ऐसा है।** विज्ञानघन ही जिसका सर्वस्व है। आत्मा एक चीज़ कैसी है? कि विज्ञानघन ही जिसका सर्वस्व है। आहाहा! दया, दान, व्रत के विकल्प, वह उसका स्वरूप ही नहीं है। वह उसमें है ही नहीं। आहाहा! **और कैसा है स्व? 'परं' सदा शुद्धस्वरूप है।** देखा! **आस्वादती हुई।** उसका सर्व स्वभाव विज्ञानघनस्वरूप है और **सदा शुद्धस्वरूप है।** वह तो सदा शुद्ध पवित्र प्रभु है। पुण्य-पाप के भाव तो अशुद्ध और मलिन हैं। जीव है, वह तो सदा शुद्धस्वरूप है। **'अभयात्' (जीववस्तु शुद्धचिद्रूप को) सात भयों से रहितरूप से आस्वादती है।** आहाहा! जिसमें कोई भय नहीं। भगवान आत्मा **शुद्धचिद्रूप को सात भयों से रहितरूप से आस्वादती है।** ऐसा वह जीव है, लो! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं, जीव कहते हैं। आहाहा!

कल किसी का प्रश्न आया था। मैं यहाँ सुनने आता हूँ। महाराज! आप आत्मा कहते हो, घड़ीक में वस्तु कहते हो, घड़ीक में जीव कहते हो। क्या है? कल था। मध्यस्थ से पूछता था। परन्तु यहाँ कहाँ लिखते हैं। यहाँ तो आवे वह सुने। आहाहा! इस आत्मा को वस्तु भी कहते हैं, आत्मा को जीव भी कहते हैं, आत्मा को आत्मा भी कहते हैं और आत्मा के त्रिकाली स्वभाव को परमात्मा भी कहते हैं। विशेष बात कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-४९

(शार्दूलविक्रीडित)

व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृ-कर्मस्थितिः।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण भिन्दँस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान्।।४-४९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'तदा स एष पुमान् कर्तृत्वशून्यः लसितः' [तदा] उस काल [स एष पुमान्] जो जीव अनादि काल से मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था, वही जीव [कर्तृत्वशून्यः लसितः] कर्म के करने से रहित हुआ। कैसा है जीव? 'ज्ञानीभूय तमः भिन्दन्' [ज्ञानीभूय] अनादि से मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, जीव-कर्म की एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था सो छूटा, शुद्ध चेतन-अनुभव हुआ, ऐसा होने पर [तमः] मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को [भिन्दन्] छेदता हुआ। किसके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार छूटा? 'इति उद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण' [इति] जो कहा है [उद्दाम] बलवान् है ऐसा [विवेक] भेदज्ञानरूपी [घस्मरमहोभारण] सूर्य के तेज के समूह द्वारा। आगे जैसा विचार करने पर भेदज्ञान होता है, वही कहते हैं-'व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेत्' [व्याप्य] समस्त गुणरूप वा पर्यायरूप भेद-विकल्प तथा [व्यापकता] एक द्रव्यरूप वस्तु [तदात्मनि] एक सत्त्वरूप वस्तु में [भवेत्] होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सुवर्ण पीला, भारी, चिकना ऐसा कहने का है, परन्तु एक सत्त्व है; वैसे जीव द्रव्य ज्ञाता, दृष्टा ऐसा कहने का है, परन्तु एक सत्त्व है। ऐसे एक सत्त्व में व्याप्य-व्यापकता भवेत् अर्थात् भेदबुद्धि की जाये तो व्याप्य-व्यापकता होती है। विवरण-व्यापक अर्थात् द्रव्य परिणामी अपने परिणाम का कर्ता होता है। व्याप्य अर्थात् वह परिणाम द्रव्य ने किया। जिसमें ऐसा भेद किया जाये तो होता है, नहीं किया जाये तो नहीं होता। 'अतदात्मनि अपि न एव' [अतदात्मनि] जीव सत्त्व से पुद्गलद्रव्य का सत्त्व भिन्न है, [अपि] निश्चय से [न एव] व्याप्य-व्यापकता नहीं है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है, वही परिणाम द्रव्य का किया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं है, क्योंकि एक सत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व हैं। 'व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते कर्तृ-

कर्मस्थितिः का' [व्याप्य-व्यापकभाव] परिणाम-परिणामीमात्र भेद की [सम्भवं] उत्पत्ति के [ऋते] बिना [कर्तृ-कर्मस्थितिः का] ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म का कर्ता जीवद्रव्य ऐसा अनुभव घटता नहीं। कारण कि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक सत्ता नहीं, भिन्न सत्ता है। ऐसे ज्ञान सूर्य के द्वारा मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटता है और जीव सम्यग्दृष्टि होता है।।४-४९।।

श्रावण कृष्ण ८, रविवार, दिनांक ०७-०८-१९७७
कलश-४९, प्रवचन-६०

कलश टीका चलती है। यह गुजराती में चलती है। कर्ताकर्म, कलश ४९।

व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृ-कर्मस्थितिः।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण भिन्दँस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान्।।४-४९।।

जरा सूक्ष्म अधिकार है। ध्यान रखना। **'तदा स एष पुमान् कर्तृत्वशून्यः लसितः' उस काल...** अर्थात् कि आत्मा राग से भिन्न पड़कर, अपने स्वरूप का राग से भेदज्ञान किया। कर्म से तो भिन्न है परन्तु दया, दान, व्रत, पूजा, पुण्य-पाप के भाव से भिन्न पड़ा हुआ उस काल में जीव। ऐसा कहना है। आहाहा!

मुमुक्षु : भिन्न कैसे किया जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह, भेदज्ञान। अन्दर आयेगा। बलवान भेदज्ञान से भिन्न पड़ता है। आहाहा! ऐसी बात है। गुजराती समझते हो? अब हिन्दी आयेगी। कलश है न? क्या कहा? यह अन्दर है, देखो! **'उद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण'** है? **'उद्दाम'** अन्दर उद्यम। राग के भाव से पर्यायबुद्धि है, वह छूटकर, राग से भिन्न उद्यम विवेक में भेदज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान राग से भिन्न पड़कर अपना स्वरूप, उसका अन्तर अनुभव होना, उसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। सूक्ष्म बात है, बापू! क्या हो? आहाहा!

अरे! चार गति में यह दु:खी है। दु:ख की दशा में डुबकी मारकर यह दु:खी है। आहाहा! जैसे पानी में अन्दर जीवित व्यक्ति गिरे और फिर हिचकोले खाये और दु:ख हो। उसी प्रकार यहाँ अन्दर में राग और द्वेष और मिथ्याभ्रम में, विकार में डुबकी लगायी है, वह दु:खी है।

मुमुक्षु : पैसा न हो, वह दु:खी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब पैसे-वैसे की यहाँ बात ही कहाँ? धूल। यह पैसेवाले सब करोड़पति बैठे। सेठ करोड़पति, यह करोड़पति। इस ओर नहीं कोई।

मुमुक्षु : इस लाईन में नहीं है। सेठिया इस ओर बैठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोपटभाई को अपने प्रमुख ठहराया है। मुम्बई में प्रमुख। मैंने कहा था, हों! मैंने अपने से... जब यह नवनीतभाई गुजर गये और एकदम विकल्प आया था कि अब पोपटभाई आयेंगे। अभी तो तुम्हारा वहाँ इकट्ठा किया और कमेटी हुई। यह क्या? बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! यह राग, द्वेष, पुण्य और पाप अन्तरंग के परिणाम, वे पुद्गल के परिणाम, प्रभु! तेरे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह शरीर, वाणी, पैसा, उनकी तो बात ही कहाँ? वे तो बेचारे उनके कारण से आते हैं और जाते हैं। वे पैसे आत्मा के हैं कहाँ? यहाँ तो पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हों, वह भी पुद्गल द्रव्य का परिणाम है, आत्मा का परिणाम नहीं। आहाहा!

जिसे राग से भिन्न भेदज्ञान होता है, उसे वह राग के परिणाम, पुण्य-पाप के भी कर्म के परिणाम पुद्गल के हैं। वे निमित्त के लक्ष्य से होते हैं, वे उसके हैं। आहाहा! मेरा नाथ भगवान तो शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! वह व्यापे तो उसका व्याप्य निर्मल वीतरागी परिणाम उसका कार्य है। व्याप्य अर्थात् कार्य और व्यापक अर्थात् पसरनेवाला-करनेवाला। व्यापक अर्थात् करनेवाला, व्याप्य अर्थात् कार्य। आहाहा! आत्मा व्यापक कर्ता और उसका कार्य तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी परिणाम, वह उसका व्याप्य है। केशरीमलजी! आहाहा!

मिट्टी का कार्य घड़ा है, वह कुम्हार का कार्य नहीं है। आहाहा! कुम्हार ने घड़ा नहीं किया है। आहाहा! परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, मिट्टी वह कर्ता-व्यापक है और घड़ा उसका व्याप्य, वह कार्य है। कुम्हार वह उसका व्यापक कर्ता और घड़ा उसका कार्य, ऐसा नहीं है, प्रभु! भिन्न-भिन्न द्रव्य है। भिन्न द्रव्य के कार्य के भिन्न कर्ता ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ **उस काल...** कहा है न? **उस काल...** का अर्थ, जिस काल में वह राग और विकल्प के भाव से भिन्न पड़ता है, भेदज्ञान करता है। आहाहा! **उस काल (स एष पुमान्) जो जीव... 'पुमान्'** अर्थात् जीव। **'स'** अर्थात् वह जीव। **अनादि काल से मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था...** आहाहा! अनादि काल से राग मेरा कर्तव्य और राग का मैं कर्ता, ऐसा जो मिथ्यात्वरूप से, मिथ्या अर्थात् झूठी बुद्धिरूपी से हुआ था। हुआ था, कहते हैं। आहाहा! **वही जीव...** है न? **'स एष पुमान्' 'स' वही जीव...** जो मिथ्यात्वरूप परिणमा था, वही जीव। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म और अपूर्व है, भाई! आहाहा! चौरासी के समुद्र में, देखो न भवसिन्धु, भवावधि, जिसे परमात्मा भवावधि (कहते हैं)। भवरूपी अवधि... ओहोहो! कहाँ-कहाँ भव? कैसे-कैसे दुःख के भाव? उसमें भटक मरा है।

प्रभु ऐसा कहते हैं, एक बार सुन, प्रभु! आहाहा! तू जो चीज़ है, वह जब राग के भाव मेरा कार्य है और उस राग मैं कर्ता हूँ—ऐसा मिथ्यात्वरूप से उसका परिणमन था, अब उससे भिन्न पड़ता है, उस काल में... आहाहा! ऐसा है, भाई! सूक्ष्म बात, बापू! क्या हो? अभी तो लोगों को कठिन पड़ता है। यह दया, दान, व्रत, तप करें (तो) धर्म हो। अरे! प्रभु! सुन न, भाई! यह दया, दान, व्रत, तप का विकल्प राग है, वह मेरा कर्तव्य है और मैं उसका कर्ता हूँ, यह मिथ्यात्वरूप से परिणमन है। छोटाभाई! ऐसी बात है, बापू! क्या हो? अरे! परमात्मा का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में भगवान नहीं। भगवान है, वह स्वयं है अब। आहाहा! इसका इसे विरह था। पुण्य और पाप के भाव मेरा कर्तव्य और वह मेरा कार्य, (इस मान्यता में) इसे भगवान का विरह था। कौन से भगवान का? आहाहा! वह परमात्मा तो यहाँ है। आहाहा!

वहाँ परमात्मा चिदानन्दस्वरूप, उसका इसे अनादि से... है न अनादि से ? **अनादि काल से मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था...** आहाहा ! अरे रे ! इसे आत्मा का विरह पड़ा था। उस राग का इसे संयोग और राग का भाव मेरा कर्तव्य, ऐसे कर्ता होकर कर्तव्य मानता था, वह मिथ्यात्वरूप परिणमा था। आहाहा ! भाषा सादी है। सेठ तो बराबर कहते हैं, पकड़ में आता है, ऐसा कहते हैं। वह तो पकड़ में आये, ऐसी बात है, बापू ! आहाहा ! वह कोई पक्ष की बात नहीं है। आहाहा !

इसे ख्याल में, ज्ञान में इसका निर्धार तो करे कि राग का कर्तव्य मेरा और कर्ता मैं, यह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! क्योंकि राग है, वह निश्चय से तो पुद्गल के परिणाम, पुद्गल है। गजब बात है, बापू ! अनादि से उसरूप परिणमा था। राग और पुण्य के, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वह मेरा व्यापक का व्याप्य, मेरे कर्ता का कार्य... ऐसी बात है। ऐसे मिथ्यात्वरूप परिणमा था, वहाँ प्रभु का इसे विरह था। आनन्द का नाथ सागर... आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र अन्दर उछलता है, ऐसा स्वस्वरूप भगवान आत्मा राग के, पुण्य के परिणाम का कर्ता मैं और वह कार्य मेरा, उसमें भगवान का उसे अन्तर पड़ गया था, विरह पड़ गया था। केशवलालजी ! ऐसी बात है। आहाहा ! कहो, शुकनलालजी ! ऐसी सूक्ष्म बात है, भगवान ! कहते हैं कि नित्यानन्द प्रभु ऐसा जो भगवत्स्वरूप प्रभु आत्मा, उसे इस राग के कार्य में रोककर उसका इसे विरह पड़ गया है। आहाहा ! पर के कार्य तो कर सकता नहीं परन्तु राग के कार्य करूँ, ऐसा मान सकता है। मान सकता है। आहाहा ! समझ में आया ? कर्ता-कर्म अधिकार है। बहुत अलौकिक बात है।

कहते हैं, वह **मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था वह जीव...** वापस ऐसा हुआ न ? '**स एष**' जीव, ऐसा है न ? वही निश्चय जीव। जो जीव पुण्य-पाप के भाव, राग वह मेरा कार्य / व्याप्य है और मैं उसका व्यापक / कर्ता हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्वरूप परिणमा था, वही जीव अब... गुलाँट खाता है, विवेक करता है-भेदज्ञान करता है। आहाहा ! अरे रे ! कहाँ शरीर ? कहाँ वाणी ? कहाँ कर्म ? कहाँ स्त्री और कुटुम्ब ? कहाँ पर ? उनके साथ कुछ लेना-देना है नहीं। आहाहा ! भटकते हुए दोनों इकट्ठे हुए। आहाहा !

एक बार (संवत्) १९८७ के कार्तिक महीने में 'चीतल' में थे न ! हमारे कुँवरजीभाई

का मनसुख है न? उसकी सगाई करने आया था। आणन्दजी। १९८७ का चातुर्मास अमरेली था। १९८६ के कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को पोरसे उठे और चीतल गये, वहाँ आया। उस मनसुख की सगाई करने वहाँ आया था। कुँवरजीभाई का। फिर उसने पूछा, महाराज! यह क्या है? कहाँ का आदमी? कहाँ की स्त्री? यह सब इकट्ठा होता है, वह क्या है? पोपटभाई! हमारे आणंदजी नहीं था? पैर से वैसा था। हमारा भागीदार। कुँवरजीभाई का भागीदार था। फिर लड़का-लड़की नहीं, इसलिए पति-पत्नी दो ही थे। दोनों गुजर गये। परन्तु बड़ा भाग बाहर था। दो-दो लाख की आमदनी थी। पश्चात् उसने छोड़ दिया। कुछ नहीं था। लड़के को सौंप दिया। मनसुखभाई को। वह कहता है, यह मनसुख कहाँ उमराला का और कहाँ पालेज का और यह लड़की, मेल क्या?

मैंने कहा, देख भाई! ऐसी बात है। एक जीव थोर में से आवे। थोर-थोर समझते हो? क्या सेठ? उसमें से आवे और एक आवे कीड़ा में से। कीड़ा होता है, उसमें से आवे। दोनों पति-पत्नी इकट्ठे हों। ऐसा मेल है, बापू! आहाहा! वह आये थे, हों! वहाँ लालचन्द सेठ की... आहाहा! यह क्या है? मैंने कहा, बापू! ऐसा है, भाई! एक-दूसरे के कर्म के मेल में ऐसा संयोग होता है। वह कीड़े से आवे, वह थोर में से आवे, यहाँ हो जाए पति-पत्नी। बापू! किसका पति? कौन पति? आहाहा! धूल-धाणी। धुँऐं को बाँहों में भरना है। धूम समझते हो न? धुँआ-धुँआ। धूम को पकड़े। पकड़ में आयेगा? धुँआ नहीं होता। यह लकड़ी में से होता है। भरो थैली में। उस धुएँ को बाहों में नहीं भरा जाता। बापू!

अरे! प्रभु! वे परद्रव्य तेरे नहीं हैं। आहाहा! वह बात तो कहीं रह गयी। कर्म भी तेरे नहीं हैं। वह बात भी कहीं रह गयी परन्तु कर्म के लक्ष्य से तेरी कमजोरी से पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत के भाव होते हैं, वह भी मेरा कार्य और मुझे और उसे सम्बन्ध है... आहाहा! मुझे और उसके—राग के सम्बन्ध है... आहाहा! प्रभु! त्रिलोकनाथ का नाथ सच्चिदानन्द आनन्दमूर्ति प्रभु वह ऐसा मानता है कि राग के साथ मुझे सम्बन्ध है। इसीलिए राग मेरा कार्य है और मैं उसका कर्ता हूँ, वह अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्वरूपी दशा है। आहाहा!

वही जीव... है न? **वही जीव 'कर्तृत्वशून्यः लसितः'** क्या कहते हैं? **कर्म के**

करने से रहित हुआ। '**कर्तृत्वशून्यः लसितः**' उस राग के कार्य से भिन्न पड़ गया। वह कार्य मेरा नहीं। आहाहा! उस राग के कार्य से '**लसितः**' भिन्न पड़ गया। आहाहा! **कर्म के करने से रहित हुआ।** आहाहा! इसका नाम भेदज्ञान और इसका नाम प्रथम धर्म की सीढ़ी। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! अरे! कोई स्वामी नहीं। आहाहा!

अभी तो सुनते हैं न, उस परीक्षा में फेल हो और पानी में गिरकर मरे। अरे! बापू! क्या करता है? भाई! आहाहा! जवान लड़के बीस-बीस वर्ष के, हों! अभी यहाँ ब्राह्मण का लड़का बी.ए. में फेल हुआ। बापू! मुझे कहीं शान्ति मिलती नहीं। पिताजी को पत्र लिखा। मैं फेल हुआ हूँ तो मुझे कहीं सुहाता नहीं। मैं पूरी दुनिया छोड़ देता हूँ। ऐसा कहकर यहाँ 'खोडियार' है न? वहाँ तालाब है। उसमें गिरकर-पानी में डूबकर मर गया। आहाहा! फिर तो उलझन में आकर मरते हुए उसे बहुत हो, हों! हाय... हाय... इसकी अपेक्षा तो... गिरने के बाद मुँह में पानी जाए, हो गया। आहाहा!

इसी प्रकार यह अनादि से पुण्य और पाप के राग में कूद पड़ना और वह मेरा कार्य और मैं कर्ता, (इस मान्यता में) अन्दर मर गया है। आहाहा! इसमें आत्मा को मार डाला। अर्थात्? मार डाला अर्थात्? कि जो सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव नित्यानन्द है, उसका अनादर किया और राग का आदर किया। इसलिए यह नहीं और यह मैं हूँ। पण्डितजी! ऐसा है, भगवान! आहाहा! भगवान को भूल गया और राग की माला गिनी। है न?

कहते हैं कि वह जीव कर्तृत्व शून्य हुआ। अब गुलाँट खाता है। आहाहा! वे राग के भाव मेरा कार्य, मेरा व्याप्य और मैं कर्ता, यह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! कठिन काम, भाई! परमेश्वर का वीतरागमार्ग, ऐसा कहीं है नहीं। यह तो तीन लोक के नाथ की पुकार है। दिव्यध्वनि से प्रभु का पुकार है। भगवन्त! तू विकार के कार्य में रुककर तूने तेरे आत्मा का खून किया है। आहाहा! अब एक बार गुलाँट तो खा। आहाहा!

वही जीव कर्म के करने से रहित हुआ। यह पुण्य और पाप के भाव मेरा कार्य, इनसे भेदज्ञान होने पर वह कार्य मेरा, इससे रहित हुआ। समझ में आता है न? भाई! यह भाषा तो सादी है। जरा गुजराती है। भाव सरस है। आहाहा! यह तो लड़कों को समझ में आये ऐसा है। भाषा सादी है। आहाहा!

भगवान ! तू कोई पदार्थ है या नहीं ? कोई वस्तु है या नहीं ? कोई मौजूद चीज़ है या नहीं ? वह तो भगवतस्वरूप है, आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा ! ऐसी चीज़ को दृष्टि में न लेकर पुण्य और पाप के भाव को वर्तमान मौजूद वह चीज़ है, वह मैं हूँ— ऐसा करके उसका कर्ता होता है और उस कार्य को अपना मानता है... आहाहा ! अरे ! इसने जम्पलाव्यू अज्ञान में। स्वभाव को जम्पलाव्यू अज्ञान में। अब गुलाँट खाता है, पलटा खाता है। वह कर्तृत्व से शून्य हूँ। मैं तो ज्ञान आनन्दस्वरूप हूँ, इसलिए राग के व्याप्य-कार्य से मेरा कर्तापना भिन्न है। आहाहा ! है ?

कैसा है जीव ? 'ज्ञानीभूय तमः भिन्दन्' (ज्ञानीभूय) अनादि से मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, जीव-कर्म की एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था... जीव तथा राग के भाव वह सब कर्म का कार्य है। आहाहा ! अभी यहाँ व्यवहाररत्नत्रय जो कहलाता है, वह राग है, वह कर्म है। प्रभु ! यहाँ कहते हैं कि वह तो कर्म है। भगवान ! तुझे खबर नहीं। यदि तेरा कार्य होवे तो प्रत्येक अवस्था में होना चाहिए। समझ में आया ? आहाहा ! वह जीव और राग के **एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था...** राग की पर्याय मेरी और द्रव्य मैं। मेरे द्रव्य की पर्याय वह राग। आहाहा ! उसने आत्मा को अशुद्ध माना। मैं एक आत्मा द्रव्य हूँ, वह कर्ता और राग मेरी पर्याय। द्रव्य मैं पर्यायवान और राग मेरी पर्याय... आहाहा ! ऐसा मानता था, वह मिथ्यात्वभाव था।

मुमुक्षु : अज्ञानी को द्रव्य की....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने यह पढ़ा तो बहुत। ग्यारह अंग पढ़ा है। द्रव्यलिंगी ग्यारह अंग पढ़ा नहीं ? और जैन सम्प्रदाय में जन्मा हो तो द्रव्य-गुण-पर्याय के नाम तो आते हों न ? अभी तो इनका भी कहाँ ठिकाना है ? द्रव्य-गुण-पर्याय क्या ? यह तो उल्टे रास्ते करो व्रत और करो तप और करो प्रतिमा। (यह सब) मिथ्यात्व का सेवन है। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, भगवान ! यह तो पूरे जन्म-मरण को बदल डालने की बात है। आहाहा ! क्या हो ? इसे माननेवाले थोड़े हों, इससे सत्य तो कहीं कम नहीं होता। अधिक माननेवाले हों तो सत्य बहुत कहलाये, ऐसा है कहीं ?

मुमुक्षु : कोई माननेवाला नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : न भी हो। मात्र एक स्वयं ही हो। आहाहा!

कहते हैं कि **मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ था वही जीव...** कर्म अर्थात् राग और आत्मा-जीव दोनों को एक पर्यायस्वरूप परिणमता था। आहाहा! मानो यह दया, दान के परिणाम, वह मेरी पर्याय है और मैं उसका—पर्याय का करनेवाला द्रव्य मैं हूँ। आहाहा! ऐसा मानता था। भाषा तो सादी है। बहुत कठिन नहीं है। भाव भले सूक्ष्म हैं। ऐसा है, बापू! आहाहा! **एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था, सो छूटा,...** आहाहा! शुभ-अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध के भाव, वह मेरी पर्याय / अवस्था है और मैं उसका कर्ता द्रव्य हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव था, वह छूटा। आहाहा! समझ में आया? रविवार को बात अच्छी आती है। शान्तिभाई! यह भावनगरवाले हैं।

मुमुक्षु : भावनगर का दिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगर का दिन है। भाव-भावनगर। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? और वाद-विवाद करे, अरे! चर्चा करो, भाई! किसके साथ वाद करना? भाई! तेरी चीज़ जो है, उसकी तुझे खबर नहीं और राग से तुझे लाभ मानना है, अब किसके साथ यह चर्चा करना। अरे!

यहाँ कहते हैं, इस शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ। शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ। आहाहा! यह राग, वह पर्याय मेरी नहीं। मेरी पर्याय तो निर्मल होती है। इस प्रकार राग से भिन्न पड़कर और शुद्ध चैतन्य का अनुभव करे, कि मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ, वह हूँ। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम भेदज्ञान। आहाहा! जिसके जन्म-मरण के छोर-अन्त आ गये। और इसमें अनन्त आनन्दरूपी मुक्ति की प्राप्ति की शुरुआत हो गयी। आहाहा! ऐसा है, भाई! यह तो हो... हा... हो... हा... बाहर में धमाधम। व्रत किये, तप किये, ग्यारह प्रतिमा ली। आहाहा! भाई! तू कौन है, इसकी खबर बिना यह सब विकल्प है, वह मेरा कार्य है, यहाँ तक तो वह मूढ़ जीव है, मिथ्यादृष्टि है। अब गुलाँट खाता है।

छूटा,... यह राग का कार्य मेरा और मैं कर्ता, यह बुद्धि छूटी। आहाहा! **शुद्ध चेतन-अनुभव हुआ,...** शुद्ध चेतन। राग, वह अशुद्धता थी और मैं तो शुद्ध चेतन हूँ। आहाहा! ऐसा अशुद्धता के भाव से, उस पुद्गल के भाव से भगवान को भिन्न जाना, तब

उसे शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा है। पुस्तक देना। क्या कहा? आहाहा! जीव अनादि काल से, ये पुण्य के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव आदि कर्म के भाव हैं, उन्हें अपना मानकर कर्ता होकर मिथ्यात्वरूप परिणमता था। आहाहा! क्योंकि अन्दर में पुण्य और पाप के भाव, वे विकारी भाव, वे पुद्गल के निमित्त से हुए पुद्गल है। वह जीव का कार्य नहीं। यह जीव पुण्य के परिणाम को मेरा व्याप्य-कार्य और मैं कर्ता, यह बुद्धि मिथ्यात्व है। आहाहा! **सो छूटा,...** ऐसा कहा, देखा! **(ज्ञानीभूय) अनादि से मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ, जीव-कर्म की एक पर्यायस्वरूप परिणत हो रहा था सो छूटा,...** राग से भिन्न मेरी चीज़ तो शुद्ध चेतन है। आहाहा! यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन और भेदज्ञान की पहली सीढ़ी की बात है। आहाहा!

शुद्ध चेतन-अनुभव हुआ,... मैं तो पवित्र शुद्ध चैतन्यघन हूँ, ज्ञान का पिण्ड हूँ, आनन्द का कन्द हूँ। आहाहा! जैसे वह शकरकन्द होता न? शकरकन्द? शक्करिया। वह लाल छाल से अन्दर जो कस है, वह शकरकन्द है। मिठास का पिण्ड है। शक्कर की मिठास का पिण्ड है, इसलिए उसे शकरकन्द कहते हैं। ऊपर का छिलका है, वह कहीं शकरकन्द नहीं है। इसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव, वह लाल छिलका हैं, वे कहीं आत्मा नहीं हैं। आहाहा! अब यह शरीर तो कहीं रह गया, कर्म तो कहीं रह गये। यह धूल पैसा-बैसा को, लक्ष्मी और स्त्री-पुत्र, अरे! प्रभु! वे तो कहीं भिन्न रह गये। तुझे और उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है।

यहाँ तो राग के भाव और मुझे सम्बन्ध है, सम्बन्ध है... आहाहा! सम्बन्ध है। आहाहा! राग से बँधा हुआ हूँ, राग मेरा कार्य है... आहाहा! ऐसा मिथ्यात्वभावरूप था, कहते हैं कि जहाँ उससे भिन्न पड़ा... आहाहा! जो राग से भिन्न चीज़ है, वह शुद्ध चैतन्य पवित्र प्रभु है। वह राग से भिन्न पड़ने पर उसका विवेक होकर शुद्ध का अनुभव हुआ। तब कहते हैं कि वह अनुभव हुआ, वह पर्याय व्याप्य—कार्य और आत्मा उसका कर्ता। आहाहा! समझ में आया? है?

ऐसा होने पर मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को छेदता हुआ। आहाहा! मैं शुद्ध चैतन्य वस्तु पवित्र भगवान आत्मा हूँ, इस प्रकार राग से दृष्टि उठाकर शुद्ध चैतन्य पर दृष्टि जाने

से शुद्ध चैतन्य का अनुभव होने पर मिथ्यात्व अन्धकार का नाश होता है। अस्तिरूप से शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्राप्त होता है और अन्धकार नास्तिरूप नाश पाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है।

किसके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार छूटा? है? आहाहा! **'इति उद्दामविवेक-घस्मरमहोभारेण' जो कहा है, बलवान् है ऐसा...** भगवान आत्मा **भेदज्ञानरूपी सूर्य के तेज के समूह द्वारा।** आहाहा! राग के विकल्प से भेदज्ञान करने पर सूर्य के तेज के समक्ष जहाँ अन्धकार नहीं होता, आहाहा! वैसे राग से भिन्न पड़ने पर बलवान भेदज्ञानरूपी सूर्य... देखा! उसके तेज के समूह द्वारा... आहाहा! अन्धकार का नाश हो जाता है। राग मेरा कर्तव्य और मैं कर्ता, यह अज्ञानबुद्धि का वहाँ नाश होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अभी इसके निर्णय की खबर नहीं होती। अनुभव तो बाद में। ऐसी बात है, भगवान! क्या हो? किसके साथ वाद करे? विवाद और वाद किसके साथ करे? भाई! भगवान तो विकल्प से रहित है न! आहाहा! उस विकल्प का कार्य मेरा और मैं कर्ता, विकल्प मेरी पर्याय और मैं उसका द्रव्य-यह मिथ्यात्व है, भाई! आहाहा! कहो, नेमीचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा। पूजा और भक्ति, दया और दान, व्रत और तप, यह सब विकल्प है, राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : कितने ही ऐसा कहते हैं कि वह पहले आता तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर पहले आवे और पश्चात् अमृत हो, उसका प्रश्न क्या? वह तो जहर है। आहाहा! अज्ञानी को तत्त्व की खबर नहीं है। समझ में आया? राग है, उसे तो जहर पुद्गल कहा है। पुद्गल पहले आवे तो सही न, पश्चात् चैतन्य ज्ञात हो, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : सब ऐसी दलील करते हैं, अशुभ मिटकर शुभ होता है और शुभ मिटकर शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह सब शुभ भी अशुभ है। शुभ भी पाप है, ऐसा कहा न? 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगसार में योगीन्द्रदेव ने (कहा है)। भाई! मार्ग ऐसा है, प्रभु! पाप को पाप तो दुनिया बहुत कहती है परन्तु दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम को भी समकिती उसे पाप कहता है। क्योंकि अपने पवित्र स्वरूप में से हटकर पाप में आया है। आहाहा! पुण्य को पाप कहा है। योगीन्द्रदेव ने भी कहा और उसमें भी कहा है। अन्त में पुण्य-पाप के अधिकार में कहा है। भाई! पाप अधिकार चलता है, उसमें तुमने पुण्य की कहाँ बात की? वह पुण्य भी पाप है, सुन! स्वरूप चिदानन्द भगवान आनन्द का दल प्रभु, उसमें से हट जाता है, वह राग, वह पाप है। आहाहा! निश्चय से पाप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा का पक्ष किये बिना जाए किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्ष अर्थात् अन्दर आश्रय करना। पक्ष करना वह भी एक विकल्प है। यहाँ तो कठिन बात है, बापू! इस राग से भिन्न अर्थात् स्व का आश्रय करने से राग से भिन्न रह जाता है। राग का आश्रय करने पर भगवान भिन्न रह जाता है, भगवान पृथक् रह जाता है और स्व का आश्रय करने से राग भिन्न रह जाता है। ऐसा है। यह उसकी पद्धति है। समझ में आया? महँगा पड़े तो भी मार्ग तो यह है।

हलुआ का दृष्टान्त तो बहुत बार नहीं देते? हलुआ-हलुआ। हलुआ में पहले घी आटा पी जाए। फिर डाले गुड़-शक्कर का पानी। पश्चात् वह शीरा-हलुआ होता है। परन्तु ऐसी कोई चतुर की लड़की निकले कि यह तो आटा सब घी पी जाता है तो क्या करना? कि गुड़ बाद में डालने का है, तो पहले शक्कर के पानी और गुड़ के पानी में आटा को सेंके और फिर डाले घी। पोटिश भी नहीं होगी। तुझे खबर नहीं है। समझ में आया? जिसकी रीति और विधि है, उससे उल्टा करने जाएगा तो मर जाएगा। आहाहा! ऐई! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! उसमें नहीं आता? वीर का बोल, प्रभु तू बोल। आहाहा! तेरे में प्रभु डोलता है, आहाहा! तेरा प्रभु तेरे में डोले। भगवान तो भगवान के पास रह गये। अरे! तेरा भगवान अन्दर है न, प्रभु! तुझे खबर नहीं। बड़ा व्यक्ति आवे और सामने न देखे और बालक के साथ बात करने में दो घड़ी निकाल डाले तो बड़ा व्यक्ति चला जाएगा। इसी प्रकार प्रभु बड़े के सामने न देखकर यह राग और पुण्य के सामने बालक-अज्ञान के सामने देखता है।

मुमुक्षु : दृष्टान्त में तो भूल नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त में भी होता है। लड़का खेलने आया हो और बड़ा व्यक्ति आया हो तो कहे बैठो, मेरे लड़के के साथ। यह कहता है कि मेरे पास समय ही नहीं है। चला जाएगा। इसी प्रकार तीन लोक का नाथ चिदानन्द प्रभु... आहाहा! हाजरा हुजूर भगवान है। उसके सन्मुख न देखकर, जो उसमें नहीं है, ऐसे राग के सामने देखकर वहाँ अटक गया, भाई! तेरे स्वरूप की तूने हिंसा की है। आहाहा! उस जीवित ज्योति को उस प्रकार से तूने स्वीकार नहीं किया है। उसे रागवाली स्वीकार किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कैसे हुआ यह विवेक? **किसके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार छूटा? जो कहा है, बलवान् है ऐसा भेदज्ञानरूपी सूर्य के तेज के समूह द्वारा।** आहाहा! राग से जहाँ आत्मा का ज्ञान भिन्न पड़ता है, वहाँ उसके तेज द्वारा अन्धकार नाश हो जाता है। सूर्य के पास अन्धकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार राग से भिन्न पड़ने पर चैतन्यसूर्य जागृत होने पर राग की एकताबुद्धि का अज्ञान नाश हो जाता है। स्वभाव में एकता होने पर स्वभाव के तेज द्वारा राग की एकता का भाव नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। पोपटभाई! तुम्हारी टाईल्स में भी नहीं हैं। तुम्हारी टाईल्स-फाईल्स में धूल में पूरे दिन...

मुमुक्षु : टाईल्स किस प्रकार बनाना, इसकी विधि होती है न? या वह पद्धति छोड़कर की जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे? टाईल्स के रजकण टाईल्सरूप होनेवाले हों, वे परिणमते हैं। इसका कर्ता परमाणु है। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : इसके लिये विलायत से...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर टाईल्स में खांच डाले। वह एक बार वहाँ जामनगर देखा था न। अपने... वहाँ .... रुके थे। सब बताया था।

अरे! प्रभु! अन्तर अनन्त शक्ति के चित्रामवाला प्रभु (मौजूद है)। आहाहा! उसे अन्तर में राग के परिणाम से भिन्न करने पर चैतन्यसूर्य के तेज द्वारा जैसे अन्धकार नाश पाता है, वैसे स्वभाव की एकता होने पर राग की एकता का भाव नाश को प्राप्त होता है।

आहाहा! समझ में आया? उसकी पद्धति यह है। कोई दूसरी पद्धति करने जाए तो नहीं मिलेगा, भाई! समझ में आया?

आगे जैसा विचार करने पर भेदज्ञान होता है, वही कहते हैं–क्या कहते हैं? कि भेदज्ञान कैसे होता है? **जैसा विचार करने पर भेदज्ञान होता है, वही कहते हैं– 'व्याप्य–व्यापकता तदात्मनि भवेत्'** क्या कहते हैं? **समस्त गुणरूप वा पर्यायरूप भेद–विकल्प...** यह व्याप्य–कार्य। और **'व्यापकता' एक द्रव्यरूप वस्तु एक सत्त्वरूप वस्तु में होता है।** यह क्या कहते हैं? कि गुण और पर्याय जो निर्मल है, वह उसका व्याप्य है और आत्मा उसका व्यापक है। आहाहा! शुद्ध स्वभाव का जो परिणमन होता है, पर्याय निर्मल, वीतरागी पर्याय होती है, वह जीव का व्याप्य अर्थात् कार्य है और जीव उसका कर्ता है। आहाहा! ऐसा है। बाहर का तो कहीं गया। आहाहा! समझ में आया?

'**व्याप्यव्यापकता**' यहाँ व्याप्य–व्यापक। व्यापक अर्थात् करनेवाला–पसरनेवाला। और व्याप्य अर्थात् पर्याय अर्थात् कार्य। भगवान आत्मा द्रव्य–गुण से शुद्ध से व्यापक है और उसकी पर्याय जो है, वह व्याप्य है। निर्मल पर्याय, वह उसका व्याप्य और कार्य और कर्म है। आहाहा! भाषा तो पकड़ में आये ऐसी है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, क्या हो भाई?

अरेरे! चौरासी के अवतार कर–करके कहीं इसे चैतन्य की गन्ध नहीं आयी। इसमें जहाँ हो वहाँ राग और पुण्य और पाप के भाव की गन्ध और उसकी सुगन्ध देखकर वहाँ मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! अन्दर भाव में, हों! बाहर के फल यह पैसा और धूल यह चीज़ तो कहीं रह गयी। आहाहा! शरीर की सुन्दरता, स्त्री–कुटुम्ब की अधिकता, विशाल परिवार, पैसे की अधिकता, विशाल मकान। प्रभु! वह तो पर है, उसके साथ तुझे क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

यहाँ तो होते पुण्य और पाप के भाव, वे तेरे स्वभाव को और उन्हें क्या सम्बन्ध है? समझ में आया? यह विचारने पर व्याप्य–व्यापक... आहाहा! अर्थात् कि अपनी निर्मल पर्याय, वह मेरा सत्त्व और मैं उसका कर्ता द्रव्य। एक सत्त्व में यह हो सकता है। राग मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता, यह नहीं हो सकता। आहाहा! क्योंकि उनकी सत्ता ही भिन्न है। राग–पुण्य–पाप की सत्ता अशुद्ध भिन्न है; भगवान की सत्ता शुद्ध भिन्न है। अर्थात् आत्मा

स्वयं शुद्ध परिणति का व्यापक—कर्ता, शुद्ध परिणति उसका व्याप्य-कार्य और आत्मा उसका व्यापक कर्ता। वह एक सत्त्व में सम्भव है। भिन्न सत्त्व में वह सम्भवित नहीं है। राग, वह भिन्न सत्त्व है, उसका व्यापक आत्मा और व्याप्य राग, यह सम्भवित नहीं है। आहाहा! ऐसा है, शान्तिभाई!

एक द्रव्यरूप वस्तु। भाषा है? **समस्त गुणरूप वा पर्यायरूप भेद-विकल्प...** उसका जो अभेद एक द्रव्य **एक सत्त्वरूप वस्तु में होता है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे सुवर्ण पीला,...** सोना-सोना **पीला, भारी, चिकना ऐसा कहने का है, परन्तु एक सत्त्व है...** सोना का सत्त्व और पीलापन, चिकनापन, वजन का सत्त्व अर्थात् अस्तित्व दोनों एक हैं। **वैसे जीवद्रव्य...** आहाहा! भगवान आत्मा जीवद्रव्य ज्ञाता-दृष्टा... आहाहा! उस ज्ञाता-दृष्टा का भाव और उसके परिणाम और जीव दृष्टा और ज्ञाता। **ऐसा कहने का है,...** ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम का आत्मा कर्ता और आत्मा उसका कार्य, आत्मा का वह ज्ञाता-दृष्टा परिणाम कार्य... आहाहा! **ऐसा कहने का है, परन्तु एक सत्त्व है।** आहाहा! जानने-देखने के परिणाम और जानने-देखनेवाला एक सत्त्व है। जानने-देखनेवाला व्यापक सत्त्व और राग उसका सत्त्व, कार्य—ऐसे दो सत्त्व एक नहीं हैं। दो के सत्त्व अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

ऐसे एक सत्त्व में व्याप्य-व्यापकता होती है। यह क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञाता-दृष्टा और उसके ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम सब एक सत्त्व है। एक सत्त्व में व्याप्य-व्यापकता होती है। अर्थात् कि आत्मा वस्तु है, वह कर्ता / व्यापक-पसरनेवाला और निर्मल पर्याय उसका व्याप्य-कार्य, ऐसा हो सकता है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग सूक्ष्म, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर की बात का अभी बहुत लोप हो गया है। फेरफार-फेरफार। आहाहा! अभी तो ऐसा हो गया, वह चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा है। यह बात करते हैं कि यह तो निश्चय की बातें, अकेले निश्चयाभास की बातें एकान्त है। अरे! प्रभु! सुन न! यह सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आहाहा! भगवान अनन्त तीर्थंकर,

केवली पुकार कर गये हैं। महाविदेह में भगवान यह पुकार करते हैं, वह वाणी यहाँ आयी है। ये कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त थे। वहाँ प्रभु के पास दो हजार वर्ष पहले गये थे। आठ दिन रहे थे। कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! वहाँ से आकर यह वाणी आयी है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान का यही सन्देश है। परमात्मा का यह फरमान है कि कर्ता और कर्म, व्यापक और व्याप्य एक सत्त्व में होता है। एक हो, उसमें होता है। भिन्न सत्त्व में कर्ता-कर्मपना नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, रतिभाई! ऐसी बातें हैं। यह तुम्हारे सट्टा-बट्टा के धन्धे और कौन करता होगा? आहाहा! एक रजकण भी बदल नहीं सकता, प्रभु! आँख की पलक फिरती है, वह परमाणु की पर्याय है। वह परमाणु का कार्य है, तेरा नहीं। वह तो कहीं रह गया। वह तो स्थूल बात। परन्तु भगवान का स्मरण करने का विकल्प आया... आहाहा! वह विकल्प जीव का व्याप्य और जीव व्यापक, इन दोनों का सत्त्व एक नहीं है। दो का अस्तित्व भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसी बात कहाँ मिले? परमात्मा के अतिरिक्त कहीं है नहीं। अन्यमत में सूक्ष्म बातें सब भले वेदान्त ने की हो। ऐसी कहीं नहीं है। आहाहा! और यह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? दुःख लगे, क्या हो? हमारा सम्प्रदाय मिथ्या? ऐसा कहे। भाई! बापू! सत्य समझना! आहाहा! खोटे-सच्चे का झगड़ा छोड़ दे।

यहाँ प्रभु क्या कहते हैं? कि शुद्ध चैतन्यवस्तु जो शुद्ध है, उसमें द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है और उसकी पर्याय शुद्ध, वह उसका एक सत्त्व है। क्या कहा? द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, उसकी वीतरागी पर्याय शुद्ध हो, उसका एक सत्त्व है। परन्तु आत्मा शुद्ध है, उसकी पर्याय या गुण, वह कर्ता और राग अशुद्ध, वह उसका कर्म, इन दोनों का सत्त्व ही एक नहीं है। दो की सत्ता ही भिन्न है। आहाहा! ऐसा है। अरेरे!

मुमुक्षु : अनात्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनात्मा है। पुद्गल है। राग पुद्गल का परिणाम कहकर फिर पुद्गल कह दिया है। वह राग अजीव है, जीव नहीं। राग अचेतन है, चेतन नहीं। राग जड़ है। शुकनलालजी स्पष्ट कराते हैं न। आहाहा!

भगवान आत्मा तो अन्दर चैतन्य का दल है। चैतन्यसूर्य है। उसके परिणाम शुद्ध होते हैं, वे उसके परिणाम हैं। क्योंकि तीनों का सत्त्व एक ही है। और राग की सत्ता का सत्त्व अशुद्ध जड़ अजीव है। आहाहा! इस जीव के सत्त्व से, उसका सत्त्व भिन्न है। समझ में आया? शब्द तो बहुत वैसे हैं परन्तु भाव तो, बापू! आहाहा! चौरासी लाख के अवतार कर-करके एक निगोद में, एक श्वास में अठारह भव। भाई! यह क्या है? यह भूल गया, भूल गया। एक निगोद में एक श्वास, उसमें अठारह भव। उसकी पर्याय में कितना दुःख होगा? आहाहा! जिसके ज्ञान का उघाड़ एक अक्षर के अनन्तवें भाग रह गया। वस्तु तो पूर्ण है। वे निगोद के जीव अनन्त हैं, वह वस्तु पूर्ण प्रभु है, भगवान है परन्तु उसकी पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग उघाड़ रह गया, वह कितना दुःख होगा? नारकी को संयोग देखकर लोग दुःख मानते हैं। परन्तु यहाँ हीनता हो गयी, उसका दुःख है, उसका माप करना नहीं आता। समझ में आया? आहाहा!

एक अक्षर के अनन्तवें भाग की निगोद की पर्याय रह गयी। आहाहा! मूल तो कितने ही निगोद को तो जब चैतन्यरूप मनुष्य था, तब चैतन्य के महासत्त्व का अनादर किया, आरोप दिया। यह इतना नहीं... इतना नहीं (ऐसे) आरोप दिया। आहाहा! इससे ऐसी स्थिति में गया कि जगत उसे जीव माने, ऐसी स्थिति में वह नहीं रहा। आहाहा! एक लहसुन की कली के राई जितने टुकड़े में, एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर में सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुणे जीव। आहाहा! भविष्यकाल के पर्याय के समय की अपेक्षा अनन्तगुणे जीव। आहाहा! वह द्रव्य तो भगवानस्वरूप ही है, वहाँ भी शुद्ध ही है। पर्याय में इतना विकास अनन्तवें भाग रह गया। उसे तो मैं जीव हूँ, उसकी खबर भी नहीं परन्तु दूसरे उसे जीव माने, ऐसी स्थिति में गया नहीं। आहाहा! अरे! बापू! इसमें किसे शरण करना? किसे प्रसन्न रखना? किससे प्रसन्न होना? आहाहा!

ऐसे एक सत्त्व में व्याप्य-व्यापकता भवेत् अर्थात् भेदबुद्धि की जाये तो व्याप्य-व्यापकता होती है। यह क्या कहते हैं? थोड़ा सूक्ष्म कहा। कहते हैं कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र, उसके वीतरागी परिणाम, वह व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसी भेदबुद्धि करे तो दो पड़े। निर्मल परिणाम में, हों! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक ०८-०८-१९७७
कलश-४९, प्रवचन-६१

कलश-टीका ४९वाँ कलश। विवरण-विवरण। है ? आया ? पोपटभाई को आया ? विवरण करते हैं। (जो) बात हो गयी, उसे जरा स्पष्ट करते हैं। **विवरण-व्यापक अर्थात् द्रव्य परिणामी...** जो यह आत्मा है, वह द्रव्य वस्तु है। उसे परिणामी और व्यापक कहते हैं। व्यापक अर्थात् पसरनेवाला द्रव्य।

मुमुक्षु : द्रव्य तो अपरिणामी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भेद से कथन है, भेद से कथन है। यह अभी बाद में कहेंगे।

व्यापक अर्थात् द्रव्य परिणामी अपने परिणाम का कर्ता होता है। क्या कहते हैं ? आत्मा, वह वस्तु है, व्यापक अर्थात् कायम रहनेवाली। और उसके जो परिणाम हैं, वे अभी यहाँ धर्म के परिणाम लेना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के जो परिणाम हैं, वे परिणामी के परिणाम हैं, वे द्रव्य के परिणाम हैं। कर्म की पर्याय होती है, वह आत्मा के परिणाम नहीं हैं। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव-विकार होते हैं, वह भी आत्मा के परिणाम नहीं हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव का पिण्ड है। उसमें से द्रवे तो चैतन्यपना द्रवे-आवे। उसमें रागपना कहाँ से आवे ?

जिसकी चैतन्यवस्तु है, उस पर जिसकी-धर्मी की दृष्टि पड़ी, उसके परिणाम में विकार परिणाम उसे नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। उसके परिणाम तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी परिणाम (हो), वे द्रव्य परिणामी के वे परिणाम हैं। द्रव्य व्यापक है, परिणाम व्याप्य अर्थात् कार्य है। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। यह सब लोहे-बोहे के और टाईल्स के कार्य नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे भी व्यापक ऐसा आत्मा, उसका व्याप्य अर्थात् कार्य वह नहीं है। आहाहा! यह चैतन्यद्रव्य वस्तु है। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसे जब परिणामी कहते हैं, तब उसके परिणाम का वह कर्ता कहलाता है। आहाहा! यह परिणाम जो अन्तर्दृष्टि में होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी (परिणाम हों, वह व्याप्य-कार्य है)। सूक्ष्म तो है, भाई!

आहाहा! यह वस्तु है। वस्तु है, उसके परिणाम, वस्तु स्वयं व्यापक अर्थात् कर्ता और उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि वीतरागी परिणाम, वह उसका व्याप्य अर्थात् उसका कार्य है। आहाहा!

द्रव्य परिणामी अपने परिणाम का कर्ता होता है। व्याप्य अर्थात् वह परिणाम द्रव्य ने किया। आहाहा! वह निर्मल वीतरागी पर्याय हुई, उसे द्रव्य ने किया। **जिसमें (एक सत्त्व में) ऐसा भेद किया जाये...** आहाहा! यह क्या कहते हैं? द्रव्य वस्तु है, वह परिणामी त्रिकाली चीज़ है। बदलनेवाली नहीं। परन्तु बदलते हैं, वे परिणाम उसके हैं। बदलनेवाला आत्मा नहीं, वह तो वस्तु त्रिकाली है। अब उसके परिणाम हैं, वह उसका व्याप्य-कार्य है। ऐसा भेद डालना, वह भी व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! अर्थात्? कि वीतरागी परिणाम धर्म के (हों)... आहाहा! एक व्याप्य अर्थात् कार्य और द्रव्य परिणामी, वह उसका कर्ता है, यह तो भेद हुआ। निश्चय से तो वीतरागी परिणाम का कर्ता और कर्म परिणाम ही है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग के मार्ग की गहन बातें हैं, प्रभु! अभी तो यह सब लोप जैसा हो गया है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि यह चैतन्यद्रव्य जो अन्दर वस्तु है, जिसमें अनन्त शक्ति का संग्रहालय, संग्रह का आलय-स्थान द्रव्य स्वरूप है। उसे अपने जब व्यापक और कर्ता कहना हो तो उसके निर्मल परिणाम उसका कर्म, ऐसा भेद से कहने में आता है। आहाहा! और भेद न डालें, तब तो द्रव्य कर्ता और परिणाम कर्म, यह भी नहीं है। वीतरागी सम्यग्दर्शन आदि धर्म के परिणाम, वे परिणाम कर्ता और परिणाम कर्म, उसमें द्रव्य कर्ता-ऐसा भेद भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : घड़ीक में द्रव्य कर्ता, घड़ीक में पर्याय कर्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से कहा? वस्तु द्रव्य स्वयं है, वह परिणामी अर्थात् परिणामी स्वभाव, उसे जब व्यापक और कर्ता कहना हो, तब भेद से वीतरागी परिणाम का कार्य उसका है, ऐसा कहने में आता है। ऋषभलालजी! सूक्ष्म बातें, बापू! भगवान का मार्ग ऐसा है। अभी तो... आहाहा! अरे! सत्य बात आने पर इसे ऐसा हो जाता है, यह तो सब (निश्चय है)। भाई! मार्ग तो ऐसा है। चिदानन्द ज्ञानस्वरूप प्रभु एक वस्तु है। वह

तो ध्रुव है। वह तो पलटती नहीं। पलटती तो पर्याय है। वह पलटती पर्याय कार्य और आत्मा उसका कर्ता, यह भेदबुद्धि से कहें तो कहो। आहाहा! सेठ! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

प्रभु! अकेले पवित्र चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान के पवित्र परिणाम, उसका कार्य कहना, वह भी भेद से है, कहते हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, मन और पर के कार्यों की तो बात है ही नहीं, बापू! आहाहा! कर्म है, वे कर्म के परमाणु भी कर्म पर्यायरूप परिणमते हैं। वे पुद्गल परमाणु कर्म की पर्यायरूप परिणमते हैं। उसमें भी उन परमाणुओं को कर्ता कहना और कर्म की पर्याय होती है, उसे उसका कार्य कहना, यह भी भेद से कथन है। आहाहा! परमाणुओं में कर्मरूपी अवस्था होती है, वह पर्याय, उसका कर्ता पर्याय है, वह परमाणु भी नहीं, ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरेरे!

जिसके भेदज्ञान का फल अनन्त आनन्द की प्राप्ति...! आहाहा! प्राणी अनादि से अनन्त दुःख में पड़ा है। उसे अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, वर्णन न हो सके ऐसा आनन्द, वह भी अनन्त आनन्द, उसके कारणरूप के उपाय की क्या बात करना? आहाहा! समझ में आया? यह अगम्य और गहन लगता है परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है।

कहते हैं कि उस आत्मपदार्थ को परिणामीरूप से कहकर निर्मल परिणामरूपी धर्मदशा,.. पुण्य-पाप की तो यहाँ बात ही नहीं, आहाहा! वह धर्मदशा जो वीतरागी परिणाम हुए, उनका कर्ता द्रव्य और पर्याय कार्य, ऐसा दो का भेद करने पर ऐसा कहा जा सकता है। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! अरेरे! सत्य बात को लोग असत्य कहकर उत्थापित कर डालते हैं। प्रभु! तुझे क्या हो? भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : संसार... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार... आहाहा! एक-एक अवतार कलंक है, प्रभु को कलंक है। अवतार धारण करना, वह कलंक है। आहाहा! और अवतार के कारणरूप पर्याय भी कलंक है। आहाहा! उसके विकारी परिणाम से भिन्न भगवान आत्मा चैतन्य आनन्द का कन्द प्रभु है, ऐसी दृष्टि होने पर उसमें सम्यग्दर्शन आदि के परिणाम हों, उनका वह आत्मा कर्ता और वह (परिणाम) उसका कर्म। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर के यह किये... यह

किये... यह किये... अरे! प्रभु! क्या हो? अनन्त काल से लुट रहा है, बापू! यहाँ तो सन्त परमात्मा के आड़तिया होकर बात करते हैं। माल तो सर्वज्ञ के घर का है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने खोला, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! आहाहा! दूसरे चाहे जो कहो। अरे! प्रभु! क्या करता है? यहाँ तो यह कहते हैं, ऋषभलालजी! आहाहा!

भाई! तेरा शरीर, देश की सेवा और यह कार्य तो तेरे नहीं। अरे! दया पालने की क्रिया का भाव, वह भी तेरा नहीं। दया पालन कर सके, ऐसा कार्य तो तेरा नहीं। पर की दया का कार्य तो पर में होता है। उसका तू कर्ता, यह तो है ही नहीं। परन्तु पर की दया का भाव राग हो, वह भी आत्मा का कर्तव्य नहीं है। आहाहा! वह अज्ञानभाव से मेरा कर्तव्य है, ऐसा इसने माना है। आहाहा! तब इसका वास्तविक कर्तव्य है, वह तो राग को जानना-देखना (वह इसका कार्य है)। ज्ञाता-दृष्टा कहा था न? **वैसे जीव द्रव्य ज्ञाता, दृष्टा ऐसा कहने का है,...** ऊपर आया था। आहाहा! गजब बात है न! यह जानने-देखनेवाला परिणामवाला है, यह भी व्यवहार से कहते हैं। ऐई!

भगवान तो नित्यानन्द ध्रुव चोसला है न! उसे कर्ता कहना और निर्विकारी परिणाम, उसका कार्य कहना, वह भी भेद से कथन है। आहाहा! यह कहा न? **जिसमें ऐसा भेद किया जाये तो होता है, नहीं किया जाये तो नहीं होता।** आहाहा! वह वीतरागी परिणाम उस काल में उससे-स्वयं से हुए हैं, उनका आत्मा कर्ता, इस भेद से नहीं। वे तो इस प्रकार स्वतन्त्र परिणाम, वीतरागी परिणाम उस समय के स्वतन्त्र षट्कारक से परिणमते हुए उत्पन्न हुए हैं। आहाहा! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, बापू! अरेरे! यह चौरासी के अवतार कर-करके यह दु:खी है। जैन साधु हुआ परन्तु वह राग की क्रिया मेरा कार्य है, ऐसा मानकर इसने... आहाहा!

'सर्वविशुद्ध अधिकार' में २३६ गाथा में आता है कि जिसने राग का कण और देह दो को मेरा माना है, वह प्राणी बाह्य में कुछ हिंसा न करता हो तो भी वह छह काय की हिंसा करनेवाला है। क्योंकि राग का कर्ता होकर आत्मा के स्वभाव को घातता है। आहाहा! और काया-शरीर अत्यन्त भिन्न चीज़ है। उसकी क्रिया, वह मेरा कर्तव्य है, वह छह काय की

हिंसा का करनेवाला है और पाँच इन्द्रिय के पूरे विषय का भोगनेवाला है। आहाहा! वैसे शरीर से बालब्रह्मचारी हो परन्तु प्रभु कहते हैं कि राग और काया के कण को अपना मानता है, वह पाँच इन्द्रिय के विषय का पूरा भोगनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात सुनने पर कठिन पड़ती है। मार्ग की रीति, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा के पन्थ की यह रीति है। आहाहा!

कहते हैं, **जिसमें ऐसा भेद किया जाये तो होता है,...** है? **नहीं किया जाये तो नहीं होता।** आहाहा! ... यह वीतरागी परिणाम जीव का कार्य और जीव कर्ता, ऐसा भेद करें तो, बाकी वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान के-धर्म के वीतरागी परिणाम हुए, वे स्वयं से स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र षट्कारक परिणमन से हुए हैं। समझ में आया? सब अव्वलदोम की बाते हैं। कहाँ मुम्बई और कहाँ यह! वहाँ तो होली सुलगती है। मोहमयी नगरी। आहाहा! पूरे दिन लुटता-लुटता है वहाँ।

नहीं किया जाये तो नहीं होता। आहाहा! **जीव सत्त्व से पुद्गलद्रव्य का सत्त्व भिन्न है,...** भगवान आत्मा की जो अस्ति है, उससे कर्म की अस्ति, सत्त्व, हयाति / अस्तित्व अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा और राग का सत्त्व भी भिन्न है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चैतन्य भगवान आत्मा का सत्त्व अर्थात् अस्तिपना और दया, दान और पुण्य-पाप, पूजा-भक्ति, व्रत, तप का विकल्प, उसका सत्त्व चैतन्य सत्त्व से अत्यन्त भिन्न सत्त्व है। आहाहा! दोनों की मौजूदगी ही भिन्न है, कहते हैं। चैतन्य का सत्त्व, वह राग का सत्त्व—ऐसा नहीं है और राग का सत्त्व, वह आत्मा का सत्त्व है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

किसी की दलील आयी है कि भाई! यह सब लोग आवे, उसमें से कोई साधारण आयेगा, शक्ति का वर्णन सूक्ष्म नहीं पड़ेगा? परन्तु अब सुने तो सही, बापू! आहाहा! क्या हो? ऐसी दलील आयी है। यह अनजाने हैं। अरे! बापू! इतने-इतने वर्ष हुए। यह ४३वाँ वर्ष तो यहाँ चलता है। यह बात मूल चीज़ है, वह इसे दृष्टि में, सुनने में न आवे तो वह कहाँ जाएगा? कितनों का तो आयुष्य पूरा होने को आया। देह छूटने के नजदीक हो गया। अब उसे यह नजदीक आत्मा नहीं करे तो क्या करे? बापू! उसने आत्मा को दूर वर्ताया

है, राग के, निमित्त के प्रेम में आत्मा को दूर कर डाला है। आहाहा! अलग-थलग कर डाला है। उसे राग से भिन्न करके पर्याय से भी अलग-थलग—भिन्न है, ऐसा निर्णय कर। आहाहा! समझ में आया?

बापू! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर का पंथ कैसा होगा? यह ऐरे-गैरे मानते हैं, वह नहीं, बापू! आहाहा! एकावतारी, एकभवतारी इन्द्र और इन्द्राणियाँ भी जिनकी वाणी सुनने भगवान के पास जाते हैं। आहाहा! यहाँ प्रभु थे, तब एकावतारी, एक भवतारी इन्द्र आते थे। बापू! वह भाव कैसा होगा? यह दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, यह तो कुम्हार भी कहता है।

यह तो हमारे उमराला में कहा नहीं था? उमराला में वहाँ ऐसा रिवाज था। महाजन की छाप बड़ी। महाजन स्थानकवासी। वहाँ स्थानकवासी का जोर। मन्दिरमार्गी कम। रोकड़ सेठ, नगर सेठ थे। खानदानी व्यक्ति। ऐसे गरीब हो गये परन्तु खानदानी व्यक्ति। उन लोगों का रिवाज कि जब श्रावण महीना आवे, तब दो-चार सेठिया इकट्ठे होकर पाँच-पाँच सुपारी लेकर घानी पेलनेवाले के पास जाए। इसलिए वे समझें कि अब बनियों के श्रावण शुक्ल एकम् से अपने को घानी बन्द करनी पड़ेगी। ऐसा चलता था। मुसलमान घानी बन्द करे। भाई! ऐसा रिवाज था। हमें खबर है। आहाहा! कुम्हार के यहाँ जाए और पाँच सुपारी रखे, इसलिए ऐसा कि अब एक महीने निभाड़ा नहीं होगा। ऐसा श्रावण महीने का निभाड़ा नहीं होगा। निभाड़ा समझे? पकाने का। जगह करके पकावे। पूरे एक महीने नहीं होगा। घानी पेलनेवाला, कुम्हार।

मुमुक्षु : धोबी-धोबी...

पूज्य गुरुदेवश्री : धोबी। धोबी की तो बहुत खबर नहीं। इन दो की बहुत खबर है। खबर है, इसलिए कहा। और वह एक महीने तो बन्द करे परन्तु बाद में शुरुआत कौन करे? शुरुआत करे, उसे अधिक पाप लगे, इसलिए शुरुआत करते-करते देरी लगे। मुसलमान, हों! आहाहा! ऐसा तो छोटी उम्र में, १०-१२ वर्ष की उम्र में (देखा है)। १३ वर्ष में तो उमराला छोड़ा है। १३ वर्ष में पालेज गये। वहाँ तक यह सब देखा है। सेठियों की छाप ऐसी। जैनधर्म की ऐसी छाप। सब कोई ऐसे पैसेवाले नहीं, परन्तु ऐसी छाप।

सेठिया आये हैं। इनके पर्यूषण के दिन आये। श्रावण महीना शुरु हो, उससे पहले घानीवाला घानी चलावे नहीं। घानी कहते हैं न ? कुम्हार बर्तन करे नहीं। आहाहा! दो का (याद) है। दूसरे होंगे।

मुमुक्षु : यह बात हमें करने का क्या प्रयोजन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात तो वे कुम्हार करते थे, ऐसा मेरा कहना है। मुसलमान भी पालते थे। बापू! मार्ग अलग है, भाई!

यहाँ कहते हैं **जीव सत्त्व से पुद्गलद्रव्य का सत्त्व भिन्न है,...** चैतन्य की अस्ति से पुण्य और पाप के भाव, वे निश्चय से पुद्गल हैं। उनका सत्त्व-अस्ति भिन्न है। **निश्चय से व्याप्य-व्यापकता नहीं है।** वास्तव में आत्मा कर्ता और पुण्य-पाप के भाव कर्म / व्याप्य / कार्य—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से व्याप्य-व्यापकता नहीं है, व्यवहार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का अर्थ क्या कहा ? उसका व्यवहार, भेद पाड़ना, उसका नाम व्यवहार। पर का तो है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, भाई!

अरे! सर्वज्ञ परमेश्वर किसे कहें! बापू! यह तो एक मान लिया है कि णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... परन्तु अरिहन्त अर्थात् क्या प्रभु ? जिन्हें एक 'क' बोलें उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसके एक समय में तीन काल-तीन लोक जिन्होंने पर के जाने, वह पर्याय जानने पर ज्ञात हो जाए। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी जिनकी ताकत प्रगट हुई, उन परमात्मा की 'मुख ॐकारध्वनि, सुनी, अर्थ गणधर विचारे। उनके मुख में से ॐ की ध्वनि उठती है। उन्हें कहीं ऐसी वाणी नहीं होती। मुख ॐकार ध्वनि, ॐकार ध्वनि... आहाहा! 'सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' लायक प्राणी हो, वे संशय निवारे। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात को ऐसा कर डाले कि यह तो निश्चय है, व्यवहार से निश्चय (होता है) अरे! प्रभु! व्यवहार तो यहाँ पुद्गल कहा न ? आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव को तो यहाँ पुद्गल कहा। अब पुद्गल से आत्मा होगा ? दोनों के सत्त्व भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया ? पुस्तक सामने

है न? चिमनभाई! पुस्तक है न? यह इसका अर्थ चलता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है,... आहाहा! उपचार से कहते हैं, हों! व्यवहार से। आहाहा! क्यों? कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धर्म परिणाम, वे द्रव्य से भिन्न चीज़ है। इसलिए भिन्न चीज़ का कर्ता कहना, वह उपचारमात्र है। वीतरागी परिणाम का कार्य जीव का और कर्ता जीव, यह उपचारमात्र से कथन है। आहाहा! यह लॉजिक से तो है। भगवान लॉजिक से-न्याय से तो बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : लॉजिक में कर्ता-कर्म नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। परिणाम में द्रव्य निमित्त ही है। निमित्त का अर्थ कि कुछ करता नहीं।

यह अभी कैलाशचन्दजी ने स्थापित किया है। यहाँ की बात का। कैलाशचन्दजी। पहले वर्णीजी के साथ चर्चा हुई, तब तो सब अन्तर था। किसी समय निमित्त से होता है, क्रमबद्ध नहीं है, ऐसा था। समझे न? क्रमबद्ध नहीं। यह तीन बड़ी चर्चा हुई। (संवत्) २०१३ के वर्ष, बीस वर्ष पहले। तब सब बैठे थे। तब यह बात उन्हें नहीं बैठी परन्तु अब अखबार में लिखते हैं, क्रमबद्ध है। क्रमबद्ध निर्णय करने जाए, तब तो उसका सब फैसला हो जाए। जिस समय में जो पर्याय निर्मल होनेवाली है, उस काल में वह होगी। आहाहा! यदि ऐसे क्रमबद्ध का निर्णय करे तो उसकी दृष्टि ज्ञायक पर जाती है। पर्याय में रहकर पर्याय का निर्णय नहीं किया जा सकता। पर्याय द्रव्य पर जाकर लक्ष्य करके निर्णय पर्याय करेगी परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ जाएगा।

मुमुक्षु : क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करनेवाले को निमित्त का...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। वहाँ नजर जाएगी। क्रमबद्ध तो पर्याय है। पर्याय का निर्णय इस प्रकार से है, यह कौन करेगा? कौन जानेगा? कहते हैं। आहाहा!

मूल तो पूरे शासन का सार वीतरागता है और वीतरागता का अर्थ यह स्व का आश्रय ले तो वह वीतरागता हो, वह इसका सार है। बारह अंग, चौदह पूर्व और चार अनुयोग। आहाहा! पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में नहीं कहा? शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता

है, ऐसा कहा। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा। उसका अर्थ क्या हुआ? चरणानुयोग में दूसरा कुछ और (करणानुयोग में) दूसरा, (ऐसा नहीं है)। इन चारों अनुयोगों का सार तात्पर्य वीतरागता है। यहाँ वीतरागता कब उत्पन्न होती है?—कि स्व का आश्रय ले तो। इसलिए चारों ही अनुयोग में कहने का आशय (यह है कि) स्व का आश्रय ले। आहाहा! ऐसी बात बहुत सीधी और मीठी मधुर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है,...** आहाहा! हम पर के काम कर दें, यह मैं करूँ, ऐसा करूँ, दुकान की पेढ़ी पर बैठा, इसलिए मानो यह सब काम मैं करता हूँ, व्यवस्थित काम करता हूँ। २५-५० नौकर बैठे हों, वहाँ बहियाँ लेकर ध्यान रखूँ, कहीं नजर न करूँ। धूल?

मुमुक्षु : नौकरों से काम कौन ले?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ले? धूल? यह तो सब अनुभव की हुई बात है। हमारे बोटाद में रायचन्द गाँधी थे। गृहस्थ व्यक्ति बड़े दिनशाहजी के घर में... क्या कहलाता है वह? व्यापार। पचास हजार की आमदनी। उस समय, हों! साठ वर्ष पहले। रायचन्द गाँधी का बड़ा मकान है। बोटाद के अन्दर घुसते ही दरवाजे के सामने। रायचन्द गाँधी जैसे सब वहाँ सुनने बैठे थे। क्या कहना था?

मुमुक्षु : दुकान में व्यापार....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सेठ थे। दुकान में नौकर थे। जब तक सेठ न आवे, तब तक नौकर ऐई... लम्बे पैर करके बैठे हों। लम्बा बाजार। बाजार के कौने में सेठ को आता देखे तो सब नौकर बहियाँ लेकर सावधान होकर बैठ जाए। रायचन्द गाँधी थे। अभी उनके लड़के मुम्बई में हैं न? हीरालाल और चम्पक मुम्बई है। नवीना है। परन्तु वह सेठ जहाँ ऐसे आवे... पूरे बाजार के छोर में उनकी दुकान और उस ओर के छोर से ऐसा लगे कि सेठ आये, वहाँ तो सब सावधान हो जाए।

मुमुक्षु : सब सबके काम के लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बहियाँ-वहियाँ हाथ में ले लेवे। उनके कारण होगा? वे

स्वयं शान्त, नरम व्यक्ति थे।... करे नहीं परन्तु गृहस्थ व्यक्ति और इज्जत बड़ी। जिनके घर में २५-५० लोग तो भोजन करते हों। चूरमा के लड्डू उड़े, आम का रस उड़े। आम-आम। वह तो बड़ा गृहस्थ राजा था। तब साठ वर्ष पहले। पैसे अधिक नहीं थे। पैसे पाँच-सात लाख परन्तु इज्जत बड़ी थी। तब की बात है, इसलिए अभी... तब के एक लाख और अभी के पच्चीस लाख दोनों समान हैं। तब उसके दबाव से सब कार्य करते होंगे?

यहाँ पर के कार्य आत्मा कर नहीं सकता, इसके लिये दृष्टान्त देते हैं। बराबर हुकम चलावे, इसलिए सब काम ठीक से हो... उस हुकम की वाणी का कर्ता तू नहीं है, फिर और पर के कार्य तूने कहाँ किये? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु यह सन्त वीतरागी मुनि तो परमेश्वर थे। मुनिपना अर्थात् गजब, बापू! आहाहा! जिन्हें आत्मा का अनुभव उछल गया है। पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आयी है। समुद्र में जैसे ज्वार आता है। बाढ़-बाढ़। बाढ़ कहते हैं न? उसी प्रकार मुनियों को तो पर्याय के किनारे अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़-ज्वार आया है। आहाहा! मुनिपना किसे कहते हैं? बापू!

मुमुक्षु : हमें विधि बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! अन्तर्मुख होने पर जो उग्रपना प्रगट होता है, वह विधि। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह शुद्धोपयोग आनन्द प्रगट हो, वह आत्मा का व्याप्य अर्थात् कार्य और आत्मा कर्ता, यह उपचारमात्र से है। आहाहा! भाषा तो सादी है, हों! थोड़ा हिन्दी आयेगा।

मुमुक्षु : दो सत्ता भिन्न-भिन्न हुई कर्ता-कर्म में।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भिन्न-भिन्न सत्ता है यह।

मुमुक्षु : गुण-पर्याय की एक ही सत्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह भेद से एक सत्ता कही। पर्याय की सत्ता पर्याय से, द्रव्य की सत्ता द्रव्य से। द्रव्य की सत्ता के कारण पर्याय की सत्ता नहीं और पर्याय की सत्ता के कारण द्रव्य की सत्ता नहीं। यह तो दोनों का सत्त्व एक है, ऐसा पर के सत्त्व से भिन्न करके

कहना है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। प्रभु तो अमृत का सागर है। आहाहा! 'वीर प्रभु का यह बोल तेरा प्रभु तेरे में डोले'। बापू! आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसमें विकार उसका कार्य कब हो? आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ जब जागृत हुआ और परिणति निर्मल हुई, वह उसका सत्त्व एक अर्थात् पर के सत्त्व से भिन्न परन्तु निश्चय से तो उस वीतरागी परिणाम का सत्त्व है, वह चैतन्य सत्त्व से भिन्न है और चैतन्य सत्त्व के प्रदेश से भी पर्याय की सत्ता के प्रदेश भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। अरेरे! चौरासी के अवतार में भटककर मर गया है। इसकी दया इसे नहीं है। इसे स्वयं की दया नहीं है, हों! जैसा इसका स्वरूप है, उसे उस प्रकार से नहीं मानता तो इसकी इसे दया नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो सत्ता भिन्न है तो फिर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कैसे कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, इस प्रकार से। यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का अर्थ ही यह कि कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। सर्व सम्बन्ध निषेधो। अपने समयसार के २०० श्लोक में नहीं आया? समयसार के २०० श्लोक में आ गया है। सर्व सम्बन्धो निषेधः है न इसमें? इसमें भी है। २०० में है न? कितने में है? यह रहा। देखो! यही आया। २००वाँ। पृष्ठ १८८ है। गुजराती है, हों! गुजराती.. गुजराती।

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभवे तत्कर्तृता कुतः॥२००॥

पर के साथ कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! सर्व सम्बन्ध निषेध है। यह तो वीतराग की वाणी, बापू! दिगम्बर सन्तों की वाणी अर्थात्... आहाहा! परमेश्वर केवली परमात्मा के यह वयन हैं। इन्हें समझना... आहाहा! इन्हें अन्तर में घड (तह) बैठाना, यह बापू! अपूर्व पुरुषार्थ है। आहाहा! यह कहीं बातों से बड़ा बने, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा से ऐसा कहे कि आत्मा और राग भिन्न, वह भिन्न चीज़ है परन्तु भाव से राग और आत्मा भिन्न (यह तह बैठाना)... आहाहा! यह कोई बात है? देखो! २००वाँ श्लोक ही आया है।

जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है, वही परिणाम द्रव्य का किया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं

है,... आहाहा! भगवान आत्मा उपचार से भी राग का कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग को और उसे यहाँ परद्रव्य में-पुद्गल में ही डाला है। वह नहीं अन्तर की। यह कहाँ सोनगढ़ का है यह पुस्तक? इस गाथा में है। आहाहा! **उपचारमात्र से भी नहीं है, क्योंकि एक सत्त्व नहीं,...** देखा! वास्तव में तो राग का और चैतन्य का सत्त्व एक ही नहीं है। सत्त्व ही भिन्न है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का जो विकल्प है, उसका सत्त्व और चैतन्य का सत्त्व दोनों अत्यन्त भिन्न है। क्योंकि राग है, वह अजीव है, अचेतन है, जड़ है, कलुषित है, दुःख है। आहाहा! भगवान उससे अत्यन्त भिन्न सत्ता है। आनन्द है, जीव है, शुद्ध है, पवित्र है, वीतराग है। आहाहा!

कल आया नहीं था? रात्रि में कहा था। राग के त्याग स्वभाववाला भगवान है। अर्थात्? वीतरागस्वरूप प्रभु है, ऐसा कहा। आहाहा! जैसे आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभाव से भरपूर है, वैसे आत्मा राग के त्याग स्वभाववाला है अर्थात् वीतरागस्वभाववाला है। वीत-राग। वीत अर्थात् नहीं, राग। आहाहा! राग के त्याग स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा है।

मुमुक्षु : हमारा आत्मा भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आत्मा। तुम्हारा क्या? अभव्य का आत्मा भी।

मुमुक्षु : अभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। यह अभी बहुत कहा था। परमात्मप्रकाश में। पूरे लोकालोक में और सर्व त्रिकाल और सर्व जीव और सम्पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान सर्व जीव हैं। सर्व जीव (ऐसे हैं), ऐसी भावना करता है। आहाहा! बापू! भगवान! चार बोल लिये हैं। समयसार में बन्ध अधिकार में अन्त में है, सर्वविशुद्ध में है और परमात्मप्रकाश में भी है। यह अभी पढ़ा था। सर्व लोकालोक में जितने जीव हैं और तीन काल में पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान हैं। आहाहा! श्रीमद् ने ऐसा कहा, 'सर्व जीव है सिद्ध सम' अभव्य को भी सिद्ध समान है। आहाहा! इसकी पर्याय में अन्तर है। वस्तु तो वस्तु है। भगवानस्वरूप है। आहाहा!

यह कहा था न? (संवत्) १९८५ के वर्ष। १९८५। ४८ वर्ष हुए। एक स्थानकवासी थे। उन्होंने 'मोहनमाला' पुस्तक बनायी थी। मेरे पास आये। १९८० के वर्ष की बात है।

८०-८० के वर्ष। आये। मोहनलालजी थे। नहीं? 'लींबडी'... के। मणिलालजी और मोहनलालजी। परन्तु उस दिन तो मेरी छाप सब ऐसी कठोर थी। साधु डरते। यह बोलेंगे तो सम्प्रदाय के लोग मानेंगे, अपना नहीं चलेगा। पचास वर्ष पहले इतनी छाप थी। उसमें १९८५ में उन्होंने एक चर्चा रखी कि अभव्य को तीन आवरण होते हैं—मति, श्रुत और अवधि तीन आवरण होते हैं। पाँच नहीं होते। बिल्कुल झूठी बात है। पाँचों ही आवरण हैं। उन्हें ऐसा कि केवलज्ञान नहीं होता, इसलिए (आवरण नहीं होता)। परन्तु नहीं होता, इसलिए आवरण नहीं है, ऐसा किसने कहा? बड़ी चर्चा हुई। १९८५ के वर्ष की बात है। मणिलालजी थे, वे शान्त थे। मेरी उम्र छोटी न? उम्र छोटी। ये तो ४८ वर्ष पहले की बात है। ४० वर्ष की उम्र। वे सब बड़ी उम्र के। ५०-५० वर्ष की दीक्षावाले। फिर मणिलालजी कहे—सुनो, महाराज! कानजीमुनि क्या कहते हैं, वह सुनो।

मैंने कहा, बापू! अभव्य को पाँच आवरण हैं। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान पाँचों ही आवरण हैं। क्योंकि शक्तिरूप से केवलज्ञान है। ऐसा नहीं चलता, कहा। यहाँ तो अन्दर से बैठना चाहिए तो बैठे। ऐसा का ऐसा मान लें, ऐसा नहीं है। अभव्य को पाँच आवरण हैं। केवलज्ञान नहीं होता तो क्या? वह तो पर्याय की बात हुई। केवलज्ञान स्वरूप अभव्य जीव विराजता है। आहाहा! निमित्तरूप से केवलज्ञानावरणीय प्रकृति है। सभी जीवों को पाँचों ही प्रकृति है। भव्य-अभव्य सबको। इसका अर्थ यह हुआ कि सब केवलज्ञान के कन्द हैं। धन्नालालजी! ऐसा नहीं चलता, बापू! शास्त्र कहता है परन्तु फिर भी न्याय से वापस बैठना चाहिए न? आहाहा!

मुमुक्षु : प्रवचनसार में आता है, अशुद्ध के समय अशुद्ध हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? पर्याय में अशुद्ध, द्रव्य किसे अशुद्ध हो? यह अभी मक्खनलालजी का प्रश्न आया है। मक्खनलालजी का आया है कि पर्याय में जब पुण्य-पाप की अशुद्धता होती है तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। यह और नया निकाला अभी, कहा! प्रभु! तुम्हें यह क्या करना है? रतनलालजी तो कहते हैं। रतनलाल मुख्त्यार। पर्याय में अशुद्धता होवे तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। क्योंकि प्रवचनसार में यह है। शुभ के समय शुभरूप (होता है)। परन्तु वह तो पर्याय में शुभरूप शुभ। द्रव्य तो शुद्ध, त्रिकाल

शुद्ध है। आनन्द का नाथ भगवानस्वरूप त्रिकाल है। है ? पोपटभाई ! ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

वस्तु है, वह तो वस्तु है न। द्रव्य अर्थात् ? यह तो पाठ में संस्कृत टीका में भी है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव कहो। वस्तु तो द्रव्य शुद्ध त्रिकाली शुद्ध ही है। वह तो पर्याय में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय है। वह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा ! और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय वह कोई आत्मा नहीं है। पंचास्तिकाय में ऐसा लिखा है। ज्ञानस्वरूप, वह आत्मा है। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। अनजाने लोगों को तो ऐसा लगता है कि यह क्या है ? यह कहाँ की बात करते हैं ? अपने जैनधर्म की ? अपने तो अभी छह काय की दया पालना और व्रत करना और अपवास करना, ऐसा सब सुना है। वह सब गप्प है। आहाहा ! कौन पर की दया पाले और कौन दया पालने के भाव अपना माने ? समझ में आया ?

(अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य) **द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं है,...** आहाहा ! निश्चय से तो राग का उपचारमात्र से भी वह कर्ता-कर्म नहीं है। उपचारमात्र से उसके निर्मल परिणाम का कर्म और आत्मा कर्ता, यह उपचारमात्र से भेद है। आहाहा ! गजब बात है। आहाहा ! बापू ! यह वीतराग की सत्य बात कान में पड़ना, वह कोई भाग्य बिना मिले ऐसी नहीं है। आहाहा ! पैसे का भाग्य तो धूल का तो अनन्त बार हुआ। आहाहा ! चेतन भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वह राग का कर्ता उपचारमात्र से भी नहीं है, व्यवहार से भी नहीं है—ऐसा कहते हैं। व्यवहार से कहें तो मात्र वीतरागी परिणाम का कर्ता आत्मा, वीतरागी परिणाम उसका कार्य, यह व्यवहार-उपचार से है। आहाहा ! अरे ! ऐसी बात सुनने को कहाँ मिले ? परमात्मा, परमेश्वर का विरह पड़ा। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! वहाँ तो धमधोकार पेढ़ी चलती है। धर्म की पेढ़ी भगवान के पास तो चलती है। आहाहा ! यहाँ भरतक्षेत्र में विरह पड़ गया है। सत्य बात बाहर आवे तो कहे, ऐई ! खोटा चलता है। प्रभु ! क्या करता है ? बापू ! भाई ! तुझे नुकसान का कारण है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि **क्योंकि एक सत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व हैं।** आहाहा ! पुण्य और

पाप के भाव और आत्मा के भाव, दोनों सत्त्व एक नहीं है। आहाहा! और **'व्याप्य-व्यापकभावसम्भवमृते कर्तृ-कर्मस्थितिः का' परिणाम-परिणामीमात्र भेद की उत्पत्ति के बिना...** क्या कहते हैं? परिणामी द्रव्य और परिणाम निर्मल, इसके अतिरिक्त— परिणामी और परिणाम के अतिरिक्त **उत्पत्ति के बिना ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म का कर्ता जीवद्रव्य ऐसा अनुभव घटता नहीं।...** यहाँ तो कर्म लिया है परन्तु अन्दर भावकर्म भी लेना। जड़ घातिकर्म लिया है, परन्तु भाव घातिकर्म है, वह भी परवस्तु है, आत्मा नहीं। आहाहा! यह प्रवचनसार में १००वीं गाथा में आया है। द्रव्य और भाव दो घातिकर्म है। जड़ है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? स्वयं भाव घात करता है, तब वे द्रव्य घाति निमित्त कहने में आते हैं। वह आत्मा को कहीं घातता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे **परिणाम-परिणामीमात्र भेद की उत्पत्ति के बिना...** आहाहा! परिणामी भगवान और परिणाम उसका निर्मल, ऐसे परिणाम-परिणामीमात्र की भेद के अतिरिक्त... आहाहा! वह राग का और पर का कर्ता तो उपचारमात्र से भी नहीं है। क्योंकि उसमें व्याप्य-व्यापकता नहीं है। व्याप्य अर्थात् कार्य और व्यापक अर्थात् कर्ता, ऐसा सम्बन्ध राग के साथ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पुराने लोगों को घोंटा हो दूसरा, उसमें निकले दूसरा, इसलिए (ऐसा लगता है) यह कहाँ का होगा? जैनधर्म की बात होगी यह?

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्रों में होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं अन्यत्र लिखा नहीं। सर्वत्र यह कहा है। तब कहा न, चारों अनुयोग का सार वीतरागता है।

मुमुक्षु : हम तो समयसार पढ़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमने तो सब शास्त्र पढ़े हैं। व्याख्यान में बहुत शास्त्र पढ़े हैं। प्रवचनसार, समयसार, इष्टोपदेश, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, प्रवचनसार के पीछे के अधिकार, बहुत सब पुस्तकें पढ़ी हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र आदि बहुत पुस्तकें पढ़ी गयी है। अनुभवप्रकाश। चिद्विलास, यह व्याख्यान में नहीं आया। बहुत पुस्तकें।

मुमुक्षु : आप सब पढ़ गये हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पढ़ गये। व्याख्यान में पढ़े हैं।

कहते हैं कि **परिणाम-परिणामीमात्र भेद की उत्पत्ति के बिना...** इन दो का भेद भले हो। परिणामी भगवान और परिणाम वीतरागी पर्याय, वह भेद बिना दूसरे के साथ कर्ता-कर्म बिल्कुल है नहीं। आहाहा! वह कहे, नहीं। कर्ता कर्म, आत्मा कर्म बाँधे, आत्मा कर्म छोड़े, निर्जरा करे, छोड़े, बापू! बापू! ऐसा नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : पर का कर्ता न माने तो वह दिगम्बर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर नहीं, ऐसा कहते हैं। इन्दौर में पण्डित इकट्ठे होकर ऐसा कहते हैं कि जो कोई परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगम्बर नहीं है। यहाँ कहते हैं कि राग का कर्ता माने, वह दिगम्बर नहीं है। दिगम्बर कोई पक्ष नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है, सेठ! सूक्ष्म बात है। है ? आहाहा! इसकी हाँ तो कर। यह वस्तु इस प्रकार से है। हाँ कर तो आगे हालत हो जाएगी। परन्तु यह नहीं, ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... निषेध करने से प्रभु तेरा निषेध किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ... विवरण करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विवरण है। चला है, उसका यह तो विवरण आया।

ऐसा अनुभव घटता नहीं। कारण कि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक सत्ता नहीं,... आहाहा! **भिन्न सत्ता है। ऐसे ज्ञान सूर्य के द्वारा...** आहाहा! राग से भिन्न पड़ा हुआ चैतन्य भगवान का भान होने से, **ज्ञान सूर्य के द्वारा मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटता है...** आहाहा! चैतन्य सूर्य भगवान आत्मा है, ऐसा अन्दर में भान होने पर, उस ज्ञानसूर्य द्वारा मिथ्यात्व का अन्धकार नाश होता है। आहाहा! समझ में आया ? **और जीव सम्यग्दृष्टि होता है।** आहाहा! तब जीव सम्यग्दृष्टि-सत्यदृष्टि होता है। भगवान आत्मा विकार परिणाम का कर्ता-कर्म व्यवहार से भी नहीं है। व्यवहार से भेद पाड़कर कहना (कि) निर्मल परिणाम का कर्ता जीव और निर्मल परिणाम कर्म। ऐसा जो अन्दर ज्ञानसूर्य उगा... आहाहा! मिथ्यात्व का नाश करता है, समकित को उत्पन्न करता है। धर्म की शुरुआत की बातें कीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-५०

(स्रग्धरा)

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृ-कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्च्चिश्चकास्ति क्रकचवदयं भेदमुत्पाद्य सद्यः।।५-५०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'यावत् विज्ञानार्चिः न चकास्ति तावत् अनयोः कर्तृ-कर्मभ्रममतिः अज्ञानात् भाति' [यावत्] जितने काल [विज्ञानार्चिः] भेदज्ञानरूप अनुभव [न चकास्ति] नहीं प्रगट होता है, [तावत्] उतने काल [अनयोः] जीव-पुद्गल में [कर्तृ-कर्मभ्रममतिः] ज्ञानावरणादि का कर्ता जीवद्रव्य ऐसी है जो मिथ्या प्रतीति, वह [अज्ञानात् भाति] अज्ञानपने से है। वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है। कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव सो अज्ञानपना है, सो क्यों है? 'ज्ञानी पुद्गलः च व्याप्तृ-व्याप्यत्वं अन्तः कलयितुं असहौ' [ज्ञानी] जीववस्तु [च] और [पुद्गलः] ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड [व्याप्तृ-व्याप्यत्वं] परिणामी-परिणामभावरूप से [अन्तः कलयितुं] एक संक्रमणरूप होने को [असहौ] असमर्थ हैं, क्योंकि 'नित्यं अत्यन्तभेदात्' [नित्यं] द्रव्यस्वभाव से [अत्यन्तभेदात्] अति ही भेद है। विवरण-जीवद्रव्य के भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव, पुद्गलद्रव्य के भिन्न प्रदेश अचेतनस्वभाव, ऐसे भेद घना। कैसा है ज्ञानी? 'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि' [इमां] प्रसिद्ध है ऐसे [स्व] अपने और [पर] समस्त ज्ञेय-वस्तु के [परिणतिं] द्रव्य-गुण-पर्याय का अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का [जानन्] ज्ञाता है। [अपि] (जीव तो) ऐसा है। तो फिर कैसा है पुद्गल? वही कहते हैं- 'इमां स्व-परपरिणतिं अजानन्' [इमां] प्रगट है ऐसे [स्व] अपने और [पर] अन्य समस्त परद्रव्यों के [परिणतिं] द्रव्य-गुण-पर्याय आदि को [अजानन्] नहीं जानता है, ऐसा है पुद्गलद्रव्य। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञाता है, पुद्गलकर्म ज्ञेय है, ऐसा जीव को, कर्म को ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध है, तथापि व्याप्य-व्यापकसम्बन्ध नहीं है; द्रव्यों का अत्यन्त भिन्नपना है, एकपना नहीं है। कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव? 'अयं क्रकचवत् सद्यः भेदं उत्पाद्य' जिसने करौंत के समान शीघ्र ही जीव और पुद्गल का भेद उत्पन्न किया है।।५-५०।।

श्रावण कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक ०९-०८-१९७७
कलश-५०, प्रवचन-६२

कर्ता-कर्म अधिकार। ५०वीं गाथा—५०वाँ श्लोक है।

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृ-कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्च्चिश्चकास्ति क्रकचवदयं भेदमुत्पाद्य सद्यः।।५-५०।।

आहाहा! ऐसा अधिकार है। **'यावत् विज्ञानार्चिः न चकास्ति तावत् अनयोः कर्तृ-कर्मभ्रममतिः अज्ञानात् भाति'** ऐसा क्या कहते हैं? **जितने काल भेदज्ञानरूप अनुभव...** आहाहा! कर्म से और राग की क्रिया से भी आत्मा भिन्न है। तथा कर्म अजीव है और पुण्य-पाप के भाव हैं, वे आस्रव है, पुण्य-पापतत्त्व है। उनसे **'विज्ञानार्चिः'** विज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा तो उनसे भिन्न है। आहाहा! इस भिन्न का जब तक भान न हो, तब तक राग का कर्ता मैं और राग मेरा कर्तव्य है तथा पुद्गल की बन्ध अवस्था होती है, वह मेरा कार्य है और मैं कर्ता हूँ, ऐसा अज्ञानरूप से मानता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो पुण्य और पाप के जो भाव हैं, वे भी विकारी भाव हैं और निश्चय से तो वे पुद्गल ही हैं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! यह पुण्य-पाप के विकल्प राग और शरीर तथा कर्म जो अजीव, उस अजीव से और आस्रव से **'विज्ञानार्चिः'** विज्ञानघन भगवान, विज्ञान के तेजस्वरूप प्रभु उस राग से भिन्न जब तक न हो, तब तक राग का और परद्रव्य की पर्याय का कर्ता मानता है। ज्ञानचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।'

आहाहा! परमात्मा जिनेश्वरदेव ने केवलज्ञान में एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे। भगवान की वाणी में जैसा देखा, वैसा आया और उस वाणी में से गणधर 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान के मुख से ॐध्वनि निकलती है। होंठ

और कण्ठ हिले बिना पूरे शरीर में से ॐध्वनि उठती है। वह 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' वह चार ज्ञान और चौदह पूर्व, जिनकी रचना अन्तर्मुहूर्त में होती है, ऐसे सन्त और गण के नायक, उस भगवान की दिव्यध्वनि में से शास्त्र की रचना करते हैं। उस शास्त्र की रचना में से यह समयसार, कलश उसकी चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि जब तक भगवान आत्मा... **'विज्ञानार्चिः'** है न? **'विज्ञानार्चिः'** विज्ञान-भेदज्ञानरूपी अनुभव। आहाहा! मैं आत्मा हूँ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह भी राग है। सूक्ष्म बात है, भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। इस राग से अपना आत्मा **'विज्ञानार्चिः'** विज्ञानरूपी सूर्य का जब तक अनुभव न हो, तब तक राग मेरा कार्य और मैं राग का कर्ता हूँ, ऐसा अज्ञानभाव से मानता है। कहो, धन्नालालजी! गजब।

शरीर की अवस्था हो या भाषा की अवस्था हो, वह तो आत्मा से कभी नहीं होती। वह तो जड़ के रजकणों की पर्याय होने के काल में वह परमाणु की पर्याय होती है, उसमें आत्मा का कुछ अधिकार नहीं है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जो अन्दर रागादि पुण्य-पाप का भाव होता है, वह अपनी पर्याय में अपने अपराध से होता है। आहाहा! परन्तु उस अपराध का कर्ता मैं और अपराध मेरा कार्य है, ऐसा माने, तब तक उसे विज्ञान का अनुभव नहीं है। चैतन्य की सत्ता भगवान सत्ता चैतन्य आनन्दकन्द ज्ञानघन आत्मा जब तक राग का कर्ता होता है, तब तक विज्ञानघन का भान नहीं है। पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो ऊपर अपने वहाँ तक आया था कि... आहाहा! प्रभु! तू तो विज्ञानघन चैतन्यस्वरूप प्रभु है न। तो राग का मैं कर्ता और राग मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता, वह तो उसमें है ही नहीं। परन्तु राग से भिन्न पड़कर अपना भिन्न ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की पर्याय और सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह मेरा कार्य और आत्मा कर्ता, यह भी उपचार से कहा जाता है। आहाहा!

क्या कहते हैं? फिर से लेते हैं। रागादिभाव है, पुण्यादि, दया, दान, व्रतादि शुभाशुभ विकल्प, वह मेरा कर्तव्य और वह मेरा कार्य—यह तो अज्ञानभाव में है, मिथ्यात्वभाव में है। आहाहा! परन्तु जब राग से भिन्न होकर विज्ञान का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय-परिणामी, परिणाम त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से हुए, वह परिणाम

मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता हूँ, यह भी उपचार से है। क्यों उपचार से है ? उपचार से क्यों है ? अपने वीतरागी परिणाम, राग से रहित, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, वह मेरा कार्य और मैं कर्ता, यह उपचार से है। पर का कर्ता तो उपचार से भी नहीं। ऊपर है। ऊपर के श्लोक में। ५०वाँ श्लोक है न ? हिन्दी है, हिन्दी ? गुजराती पहले ऊपर गया। देखो!

अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं है, क्योंकि एक सत्त्व नहीं, भिन्न सत्त्व हैं। आहाहा! है न ? ऊपर आ गया। **जैसे उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है, वही परिणाम द्रव्य का किया हुआ है, वैसे अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं है,...** सूक्ष्म है, भगवान! ऊपर के श्लोक में है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म के लिये तो शिविर चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग सुनने के लिये आये हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

चेतनस्वरूप विज्ञानघन प्रभु, वह तो चिद्रूपं, ज्ञानरूप आनन्दरूप आत्मा है। उसका भान हुआ तो आनन्द और ज्ञान समकित की पर्याय जो उत्पन्न हुई, उसका आत्मा कर्ता और वह परिणाम मेरा कर्म, यह भी व्यवहार से-उपचार से है। क्यों ? कि परिणाम और परिणामी दो चीज़ भिन्न है। एक सत्त्व तो कहा था, हों! वह तो पर सत्त्व की अपेक्षा से अपना सत्त्व है। परन्तु परिणाम, परिणाम का कर्ता और परिणाम, परिणाम का कार्य, यह निश्चय है। परिणाम, सम्यक् धर्म का परिणाम कर्ता और आत्मा का कर्म, वह तो उपचारमात्र है। द्रव्यवस्तु परिणाम का कर्ता, वह तो उपचार से है। गजब बात है, भगवान! यह तो वीतराग मार्ग है। ऐसी चीज़ें अन्यत्र कहीं नहीं है और वह भी दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं है।

मुमुक्षु : यह सोनगढ़ की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ ? यह तो आत्मा की बात है, भगवान! आहाहा!

आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है न, भाई! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। अरे! इसे खबर नहीं। चौरासी लाख के अवतार में भटक-भटककर दुःखी हुआ। यह चार गति में भव करके दुःखी है। यहाँ तो परमात्मा

ऐसा फरमाते हैं, सन्त आडतिया होकर, सर्वज्ञ की बात सन्त आडतिया होकर, दिगम्बर मुनि जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि मार्ग यह है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि शरीर की पर्याय ऐसी चलती है, देखो! तो उसका कर्ता आत्मा उपचार से भी नहीं है, व्यवहार से भी नहीं है। आहाहा! यह परमाणु है, मिट्टी है, धूल है, पुद्गल है, जड़ है। जड़ की अवस्था जड़ से होती है। यह हलन-चलन आत्मा से होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसे होंठ हिले, भाषा की पर्याय होती है, वह आत्मा का कर्तव्य नहीं है। व्यवहार से भी नहीं है। क्योंकि जड़ की पर्याय के काल में, जड़ की अवस्था में जड़ उत्पन्न होता है। भगवान आत्मा तो उससे भिन्न है। सूक्ष्म बात है, प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं... **'विज्ञानार्चिः'** हुआ तब से राग का कर्तव्य मेरा और मैं राग का कारण हूँ, यह बात छूट जाती है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन और पर की सेवा मैं कर सकूँ... आहाहा! सूक्ष्म बात। भगवान की पूजा के काल में स्वाहा (करते हैं), कहते हैं कि वह क्रिया तो जड़ की है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। वह तो अजीव की क्रिया है। वह तुझसे नहीं होती। आहाहा! और उस समय में तुझे भक्ति का जो शुभभाव आया, वह राग है। उस राग का कर्ता मैं, राग मेरा कार्य—ऐसा माने, वह सब अज्ञान है। आहाहा! है?

'विज्ञानार्चिः' भेदज्ञानरूप अनुभव नहीं प्रगट होता है... आहाहा! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो गम्भीर शब्द है। वीतराग मुनि, दिगम्बर मुनि अर्थात् वीतरागी सन्त। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले। जिनकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वसंवेदन होता है। उन्हें मुनि कहते हैं। आनन्द का नाथ प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का शुद्ध चैतन्यघन, उसे जब मुनिपना होता है, तब जैसे समुद्र के किनारे जल का ज्वार आता है, वैसे आत्मा में जब मुनिपना होता है... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की पर्यायरूपी किनारे अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है परन्तु थोड़ा है। थोड़ा समझते हो? कम है। और पंचम गुणस्थान में जो सच्चे श्रावक का है, उसे भी अतीन्द्रिय आनन्द की दशा चौथे गुणस्थान की अपेक्षा विशेष अतीन्द्रिय आनन्द आता है; और मुनि को तो प्रचुर आनन्द आता है। समयसार की पाँचवीं गाथा है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं मेरे वैभव से समयसार कहूँगा। मेरा वैभव क्या है? यह धूल वैभव है? सेठ! यह सब करोड़पति बैठे, धूल के धनी। यह धूल, लक्ष्मी वह अपना वैभव है? शरीर अपना वैभव है? पुण्य-पाप के भाव वह अपना वैभव है? आहाहा! अपना वैभव तो पुण्य-पाप से भिन्न होकर, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय में बाढ़ आना... आहाहा! वह अपना वैभव है। आहाहा! तो मुनि कहते हैं कि यह मेरा निज वैभव प्रचुर स्वसंवेदन है। प्रचुर। चौथे गुणस्थान में है, उससे छठे (गुणस्थान) में मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। पाँचवीं गाथा में ऐसा पाठ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...मुनि को समझ में आये, अपने को समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि होने के पहले समझ में आता है। मुनिपना क्या है, केवलज्ञान क्या है और मैं कौन हूँ? इन नव तत्त्व का भिन्न-भिन्न भान तो सम्यग्दर्शन होने से पहले लक्ष्य में आता है। पश्चात अनुभव में होता है। आहाहा! ऐसी बात है। वीतराग प्रभु का मार्ग... आहाहा!

वह इस श्लोक में कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। मूल श्लोक (गाथा) पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का है। अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं। वे कहते हैं कि प्रभु! यह आत्मा विज्ञानघन है। जब तक विज्ञान का अनुभव न हो... आहाहा! विज्ञानस्वरूप पिण्ड प्रभु को अनुसरकर, उसके आश्रय से, अनुसरकर भाव (अर्थात्) वीतरागी पर्याय का अनुभव न हो, तब तक अज्ञानी राग का (मैं) कर्ता और राग मेरा कार्य, ऐसा मानता है। आहाहा! भाषा समझ में आती है? थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है। बहुत नहीं आती। हम तो काठियावाड़ी गुजराती हैं न। इस शरीर को ८८ वर्ष हुए। काठियावाड़ी भाषा है। ८८ समझे? दो आठ। नब्बे में दो कम शरीर को हुए हैं। ८८।....

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हम किसी के नहीं है। हम तो हमारे हैं। क्योंकि काठियावाड़ी भाषा न? यहाँ काठियावाड़ में जन्म (हुआ), यहाँ से ग्यारह मील (दूर)। और हमारी दुकान गुजरात में है। भरुच और बड़ोदरा के बीच। तो वहाँ भी गुजराती भाषा थी। नौ वर्ष वहाँ रहे, १३ वर्ष यहाँ रहे। २२ वर्ष रहे। फिर सब छोड़ दिया। ६४ वर्ष तो दुकान छोड़े

हुए। ६४ वर्ष। शरीर को ८८वाँ वर्ष चलता है। जड़ है उसे, हों! आत्मा तो अनादि-अनन्त है। परन्तु गुजराती भाषा में से हिन्दी थोड़ा सीखते-सीखते आये। पहले यहाँ तीस वर्ष पहले परिषद भरी थी। (संवत्) २००३ के वर्ष में। विद्वत् परिषद भरी थी। प्रवचन मण्डप। तब हिन्दी बराबर नहीं आती थी। मैं तो गुजराती बोलता था और उसका हिन्दी परमेश्वरदास करते थे। ३२ पण्डित आये थे। विद्वत् परिषद (का अधिवेशन हुआ था)। ३० वर्ष पहले। इसलिए थोड़ी-थोड़ी हिन्दी (आती है)।

यहाँ कहते हैं **जितने काल...** इतना शब्द है। पहला शब्द है। यह अध्यात्म भाषा है, भगवान! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं कि थोड़े शब्द में पूरा हो जाए। है? ५०। **जितने काल 'विज्ञानार्चिः'** आहाहा! विज्ञानरूपी सूर्य का अनुभव न हो... आहाहा! **भेदज्ञानरूप अनुभव नहीं प्रगट होता है, उतने काल जीव-पुद्गल में ज्ञानावरणादि का कर्ता जीवद्रव्य ऐसी है जो मिथ्या प्रतीति, वह अज्ञानपने से है।** आहाहा! यहाँ तो कर्म की बात ली है। परन्तु यह भावकर्म जो राग है, वह भी इसमें आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा का जब सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् आनन्द का अनुभव होता है, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ऐसे देव-शास्त्र-गुरु को माने और नव तत्त्व के भेद को माना, वह समकिती नहीं। भगवान! बात तो बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह तो परमात्मा के घर की बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि **जितने काल 'विज्ञानार्चिः'** चैतन्यघन प्रभु का अनुभव—सम्यग्दर्शन न हो, तब तक राग का कर्ता मैं और कर्म की पर्याय का कर्ता मैं और कर्म की अवस्था मेरा कार्य अथवा राग मेरा कार्य, ऐसे आत्मा का अनुभव नहीं होता तब तक है। धन्नालालजी! आहाहा! ऐसी (बात) है, प्रभु! **अज्ञानपने से है।** है? वस्तु का स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप का अज्ञान है। वस्तु का ज्ञान नहीं, वस्तु का अज्ञान है, तब तक राग का कर्ता और राग मेरा कर्म—ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... आहाहा! दया, दान के भाव, व्रत के और तप के भाव, यह विकल्प-राग है। वह राग मेरा कार्य और मैं राग का कर्ता हूँ, वह विज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप का भान नहीं-अनुभव नहीं, तब तक मानता है तो मानो। आहाहा! समझ में आया? **वस्तु**

का स्वरूप ऐसा तो नहीं है। है ? आहाहा ! भगवान आत्मा ज्ञानपुंज प्रभु, वह वस्तु का स्वरूप है। राग कर्ता और राग कर्म, ऐसा तो नहीं; और यह तो बाहर की बात मनाकर ऐसा किया, ऐसा किया। क्यों सामने बन्द रखा है ?

कोई प्रश्न करता है कि... क्या कहा ? आहाहा ! क्या कहते हैं ? कि वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है है। क्या वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं ? कि कर्मबन्धन की पर्याय मैं करता हूँ और कर्मबन्धन की पर्याय मेरा कार्य है तथा राग मेरा कार्य है और मैं राग का कर्ता हूँ, यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा ! व्यवहाररत्नत्रय जो है, वह राग है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भाव, वह राग है, क्योंकि वह परद्रव्य की श्रद्धा है।

मुमुक्षु : श्रद्धागुण की पर्याय नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पर्याय नहीं। व्यवहार श्रद्धा तो राग की पर्याय है। पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग की पर्याय है और शास्त्र पढ़ना-वाँचन करना, वह भी राग व्यभिचारिणी बुद्धि है। पद्मनन्दि पंचविंशति में आता है। पद्मनन्दि पंचविंशति में। शास्त्र में बुद्धि जाती है, वह बुद्धि व्यभिचारिणी है। आहाहा ! अपना-स्व घर छोड़कर परघर में जाता है, वह विकल्प है, राग है, व्यभिचार है। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, भगवान ! परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। प्रभु महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, आठ दिन रहे थे। अभी तो इसमें भी शंका करते हैं कि महाविदेह में गये थे या नहीं ? अरे ! प्रभु !

मुमुक्षु : श्वेताम्बर भी कहते हैं कि महाविदेह में गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर, वह तो फिर इनका अनुमान करके (कहते हैं)। श्वेताम्बर पन्थ ही नया निकला। वह कहाँ जैनधर्म है ? वह तो दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर में से (भिन्न पड़े हैं)। वस्त्र रखकर मुनिपना मनावे, स्त्री को मुक्ति (माने), भगवान को दो माता-पिता, ऐसा कल्पना से बनाया है। वस्तु ऐसी नहीं है। समझ में आया ? वहाँ ऐसा कहा कि हमारी आर्यिका वहाँ गयी थी। कुन्दकुन्दाचार्य गये थे दिगम्बर में, तो हमारी आर्यिका वहाँ गयी थी। आर्यिका समझे न ? साध्वी। अरे ! भाई ! यह तो प्रभु के पास गये

थे और आठ दिन रहे थे, वहाँ से यह सन्देश लाये हैं। आहाहा! प्रभु का यह सन्देश है, प्रभु! आहाहा!

जब तक तेरी चीज़ में तुझे आनन्द का अनुभव न हो, तेरे आनन्द का जब तक स्वाद न आवे, अनुभव न हो। स्वाद आना... आहाहा! यह मौसम्बी या धूल में या स्त्री के शरीर का स्वाद नहीं आता। वह तो जड़ है। अज्ञानी को उस जड़ के लक्ष्य में यह ठीक है, ऐसा विकल्प उठाता है, उस राग का स्वाद अज्ञानी को आता है; शरीर का नहीं आता। यह (शरीर) तो हड्डी, माँस, चमड़ी जड़ है। रूपवान हो तो भी मिट्टी-धूल है। यह क्या है? आहाहा! उसका भोग ले तो उस शरीर का अनुभव होता है? वह तो जड़ है और भगवान आत्मा तो अरूपी है। वह रूपी का स्वाद कैसे ले? परन्तु रूपी की अनुकूलता को लक्ष्य में रखकर राग उत्पन्न करता है, उस राग का स्वाद लेता है। यह तो तुम्हारी हिन्दी में आता है। आहाहा! मार्ग तो प्रभु का ऐसा है, भाई! उसमें से छूटकर आनन्द का स्वाद आना... आहाहा! क्योंकि प्रभु आत्मा अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। समझ में आया?

यह तो हम बारम्बार कहते हैं न? शकरकन्द का नाम लेते हैं। शकरकन्द समझते हो? उसे शक्करिया कहते हैं। हमारे गुजराती में शक्करिया कहते हैं, हिन्दी में शकरकन्द कहते हैं। शकरकन्द में लाल छाल है, उसका लक्ष्य छोड़ दो तो पूरी चीज़ शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् मिश्री की मिठास का पिण्ड है। इसलिए उसे शकरकन्द कहते हैं। शकरकन्द। वह लाल छाल बिना शक्कर की मिठास का पिण्ड है। उसी प्रकार भगवान आत्मा, यह पुण्य-पाप के विकल्प लाला छाल है, उनका लक्ष्य छोड़कर देखो तो प्रभु अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है।

मुमुक्षु : लाल छाल को फेंक देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फेंक देने की चीज़ है। शुभ-अशुभभाव को फेंक देना है। उसे दृष्टि में से छोड़ देना है और भगवान आनन्दकन्द को दृष्टि में लेना है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **वस्तु का स्वरूप ऐसा तो नहीं है।** कैसा? कि राग मेरा कार्य

और राग का मैं कर्ता तथा पुद्गलकर्म की अवस्था मेरा कार्य और मैं कर्ता हूँ, यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

अब, **कोई प्रश्न करता है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव सो अज्ञानपना है, सो क्यों है?** कर्म का कर्ता जीव, वह अज्ञानरूप से है, वह किस प्रकार? प्रश्न किया कि जड़ की पर्याय और राग की पर्याय का कर्ता आत्मा अज्ञानपना है, वह किस प्रकार?

'ज्ञानी पुद्गलः च व्याप्तृ-व्याप्यत्वं अन्तः कलयितुं असहौ' आहाहा! भगवान-मुनि उसे जवाब देते हैं। **ज्ञानी अर्थात् जीववस्तु और ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड (व्याप्तृ-व्याप्यत्वं) परिणामी-परिणामभावरूप से एक संक्रमणरूप होने को असमर्थ हैं,...** क्या कहते हैं? परिणामी आत्मा, वह कर्मरूपी पर्याय और रागरूपी परिणामस्वभाव में एक संक्रमण होने को असमर्थ है। भगवान आनन्दस्वरूप राग में घुस जाए, राग में बदल जाए, ऐसा होने को समर्थ नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! जन्म-मरण कर-करके (कचूमर निकल गया)।

वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' आता है न छहढाला में? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' नग्न मुनि दिगम्बर हजारों रानियों का त्याग, पंच महाव्रत, जो अभी नहीं हैं, ऐसे पंच महाव्रत, शुक्ललेश्या (पालन किये) अनन्त बार ग्रैवेयक में गया। परन्तु 'आत्मज्ञान बिना लेश सुख न पायो' परन्तु भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, महाव्रत आदि विकल्प के राग से भिन्न चीज़ के अनुभव बिना आंशिक भी सुख प्राप्त नहीं किया। इसका अर्थ यह कि पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण आदि विकल्प, वह दुःखरूप है। राग है, वह दुःखरूप है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, व्यवहार, समिति, गुप्ति, वह सब विकल्प—राग और दुःख है। आहाहा! भगवान तो आनन्दस्वरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुनकर बहुत घबराहट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो परमात्मा का मार्ग है, भाई! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो भागवत कथा है! भगवत्स्वरूप की कथा है। आहाहा!

अरे रे! चौरासी के अवतार में नरक के, निगोद के भव कर-करके अनन्त भव किये हैं। इस मिथ्यात्व के कारण (किये हैं)। राग मेरा कर्तव्य है और राग मेरा कार्य है, इस मिथ्यात्वभाव के कारण चौरासी (लाख योनि के) अवतार हुए। चौरासी (लाख) लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त अवतार (किये)। आहाहा! वे सब दुःखी हैं। यह करोड़ोंपति, अरबोंपति हैं, वे सब रंक, भिखारी, दुःखी हैं। ऐई! पोपटभाई! सुनायी देता है? ...भाई! थोड़ा-थोड़ा। आहाहा! कहते हैं कि करोड़ोपति और अरबोंपति जो हैं, वे रंक बेचारे भिखारी हैं। अपनी ऋद्धि की खबर नहीं और यह ऋद्धि मेरी है, ऐसा माननेवाले रंक, भिखारी हैं, दुःखी है। समझ में आया? और एक नरक का नारकी, सातवीं नरक में रहनेवाला, जिसे राग से भिन्न होकर अपने आनन्द का अनुभव हुआ, वह सुखी है। आहाहा! सातवें नरक में रहा हुआ नारकी, जिसे पानी की बूँद नहीं मिलती, आहार का कण नहीं मिलता, रहने का स्थल नहीं मिलता। आहाहा! जन्म से तीव्रतम रोग है। परन्तु जहाँ आत्मा अन्दर से भिन्न है, ऐसा भान हुआ; सम्यग्दर्शन में आनन्द का स्वाद आया, वह सुखी है। समझ में आया? आहाहा! बड़े-बड़े ३१ सागर की स्थिति के देव, मिथ्यादृष्टि देव, व्रतादि से स्वर्ग में जाते हैं न? वे दुःखी हैं। वहाँ दुःखी हैं। राग में पिलते हैं। आहाहा!

यह आत्मा... अज्ञानरूप से किस प्रकार असमर्थ है? कि **परिणामी-परिणामभावरूप से एक संक्रमणरूप होने को...** राग में पलटकर एकरूप हो, ऐसी ताकत (नहीं है), असमर्थ है। भगवान आत्मा पलटकर कर्म की पर्यायरूप हो जाए या शरीर की पर्यायरूप हो जाए, भाषा की पर्यायरूप हो जाए, या राग की पर्याय में संक्रमण करके पलट जाए, यह असमर्थ है। यह तो आज हिन्दी लिया है। थोड़े आये हैं न? बारस के दिन से हिन्दी लेना है न? परसों के दिन से। आहाहा!

क्या कहते हैं? व्याप्य-व्यापक। व्याप्य अर्थात् कार्य और व्यापक अर्थात् कर्ता। व्याप्य अर्थात् पर्याय और व्यापक अर्थात् पर्यायवान। व्याप्य, वह पर्याय है और व्यापक, वह परिणामी है। शब्द आड़े-टेड़े हैं। शब्द व्याप्य-व्यापक ऐसा है न? परन्तु शब्द में

परिणामी परिणामस्वरूप, ऐसा लिया है। तो परिणामी, वह व्यापक है और परिणाम, वह व्याप्य है। समझ में आया? शब्द आगे-पीछे है। व्याप्य अर्थात् अवस्था, पर्याय, परिणाम और व्यापक अर्थात् पसरनेवाला, द्रव्य। वस्तु है, उसे व्यापक कहते हैं और पर्याय को व्याप्य कहते हैं। समझ में आया? तो कहते हैं कि भगवान आत्मा व्यापक होकर रागरूपी परिणाम में बदल जाता है, ऐसा नहीं है। वह वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा... समझ में आया?

'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म। आहाहा! 'जिन सो हि है आत्मा' यह पहले आ गया है। राग के त्यागस्वभाव स्वरूप भगवान आत्मा है। दोपहर को आयेगा। दोपहर में समयसार चलता है। राग के त्याग-स्वभावस्वरूप आत्मा है। उसका अर्थ क्या हुआ? वह तो वीतरागस्वरूप है। आहाहा! उसकी शक्ति और स्वभाव वीतरागस्वरूप है। वह वीतरागस्वरूप आत्मा राग में संक्रमण होकर पलट जाए, ऐसी अशक्ति है। आहाहा! यदि पलटकर उसमें जाए तो राग का कर्ता और राग कर्म, ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुमान ज्ञान में आता है, अनुभव में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुमान में ख्याल में आवे, फिर अनुभव में आवे न? शुकनराजजी! पहले शुकन होता है, फिर उसका फल आवे न? इसका नाम शुकनलाल है। लोग नहीं कहते कि भाई! शुकन अच्छे हुए, अब चलो। इसी प्रकार शुकन में पहले चीज़ लक्ष्य में आना चाहिए। आहाहा! है? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! अरे! भाई! ऐसी तत्त्व की बात परमात्मा के घर की है, उसे सुनने के लिये भी भाग्य चाहिए। आहाहा!

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं, जिन्हें सुनने के लिये शकेन्द्र, सौधर्म देवलोक का इन्द्र (आवे), जिसे असंख्य देव हैं। समझ में आया? असंख्य देव। आहाहा! बत्तीस लाख विमान। एक-एक विमान में असंख्य देव। किसी विमान में थोड़े हैं, संख्यात हैं। उन बत्तीस लाख का साहिबा इन्द्र, उसे आत्मज्ञान है और भगवान ने कहा कि वह एकभवतारी है। आहाहा! परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा है कि वह इन्द्र एकभवतारी है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। आहाहा! और उसकी

पटरानी-इन्द्राणी है, वह उत्पन्न हुई थी, तब तो मिथ्यादृष्टि थी। स्त्री हुई न? स्त्री हो, वह मिथ्यादृष्टिरूप से होती है। परन्तु फिर आत्मज्ञान को प्राप्त हुई। वह भी एकभवतारी है। आहाहा! पति-पत्नी दोनों एक मनुष्यभव धारण करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जाएँगे। वह इन्द्र और इन्द्राणी जिसकी वाणी सुनने भगवान की सभा में आवे, उनकी वाणी कैसी होगी? आहाहा! भगवान! तीन ज्ञान तो उनके पास है। मति, श्रुत और अवधि। और एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं, उसका तो अन्तर अनुभव में निर्णय हुआ है। आहाहा! वे सुनने जाते हैं, वह वाणी कैसी होगी? बापू! आहाहा! वह वीतराग की वाणी अलौकिक, भाई! बनारसीदास में एक आता है, बनारसी विलास है न? उसमें एक स्तुति आती है। 'जिनादेश ज्ञाता...' उसमें यह आया था। अतिता, अजीता, निर्विकारा, सदा निर्विकारा। वीतराग की वाणी सदा निर्विकारी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी...'

पूज्य गुरुदेवश्री : राजधानी... यह नीचे आया है। चिदानन्द भूपाल ऊपर है, उसके नीचे आया। यह नीचे आया। क्या कहा अभी? भूल गये। 'अतिता-अजीता सदा निर्विकारा।' आहाहा! सदा निर्विकार। निर्विकार जिनकी वाणी। यहाँ नहीं न? श्रुतज्ञान, मतिज्ञान ऐसा आता है। आहाहा! अतीता-अजीता सदा निर्विकारा। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। यह नहीं। फिर आयेगा। सब खबर है न।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यतीत अभिलाषा। यह ... वह नहीं। वह पहला पद है। यह तो 'अखे वृक्ष शाखा व्यतीत अभिलाषा, चिदानन्द भूपाल का राजधानी।' वहाँ यह आता है। यह शब्द में अन्तर है। ख्याल है परन्तु कहीं सब याद रहता है? यहाँ है नहीं? नहीं यहाँ? आहाहा! उसमें। लो निकली। मैंने कहा, यहाँ है अवश्य। 'अतीता अजीता सदा निर्विकारा विषय वाटिक खण्डनी खडगधारा।' भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि वाणी 'अतीता अजीता सदा निर्विकारा...' यह तो वीतरागपना बतलानेवाली वाणी है। आहाहा!

'विषय वाटिका..' विषय की वाडी को खण्डन कर डाले। पाँच इन्द्रियों के विषय का प्रेम तोड़ डाले, ऐसी वीतराग की वाणी है। 'विषय वाटिका खण्ड की खडगधारा।' खडग-तलवार। 'पूरा पाप विक्षेप कर्तृत्व वाणी...' पूरे पाप का नाश करनेवाली वाणी है। 'नमो देवी वाकेश्वरी जैन वाणी।' वागेश्वरी अर्थात् वह वागेश्वरी ऐसा नहीं, हों! यह वाकेश्वरी। 'नमो देवी वाकेश्वरी।' वाणी में ईश्वर ऐसी वीतराग की वाणी ऐसी तीन काल में अन्यत्र नहीं हो सकती। 'नमो देवी वाकेश्वरी जैन वाणी।' यह पूरा बड़ा पद है। उस जैन भूपाल के पहले आता है। 'अखे वृक्ष शाखा व्यतीत अभिलाषा कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा, चिदानन्द भूपाल की राजधानी, नमो देवी वाकेश्वरी जैन वाणी' आहाहा! इसमें निकला, हों! उसमें यह था। यह गुजराती कलश-टीका अपने पढ़ते हैं न? उसमें आगे सामने रखा था। गुजराती में। आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? प्रभु आत्मद्रव्य जो वस्तु है, वह आनन्द और ज्ञान का कन्द, वह पलटकर कर्म की अवस्था में संक्रमण हो, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! ऐसे पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह राग है। लोगों को खबर कहाँ है? वह तो धर्म है, (ऐसा मानते हैं) सुन्दरजीभाई! सूक्ष्म बात है। परन्तु आये न अब। आहाहा! उस राग में, परिणाम में परिणामी संक्रमित हो जाए, परिणामी ऐसा भगवान आत्मा और राग परिणाम, वह राग में पलट जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! भाई! वीतराग परमेश्वर, वे क्या चीज़ है? णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... ऐसा कहते हैं परन्तु इसे 'क' बोलने में असंख्य समय जाते हैं, उसके एक समय में अनन्त सिद्ध जिनके ज्ञान में ज्ञात हों, अनन्त तीन काल के निगोद के जीव, तीन काल के द्रव्य, गुण और पर्यायें जिनके ज्ञान में ज्ञात हो, बापू! वह पर्याय कैसी होगी! ऐसे जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही! तेरी प्रभुता छोड़कर पामरता में तेरा संक्रमण हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

तू प्रभु! अनन्त आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर वीतराग है, वह वीतरागभाव का पिण्ड प्रभु रागभाव में संक्रमण होकर पलटकर अन्दर चला जाए, ऐसा नहीं होता। यह अज्ञानी मानता है कि राग मेरा कर्तव्य और राग मेरा काम। ऐसा माने, परन्तु माने इससे राग

कर्तव्य हो जाता है, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आता है न उसमें? प्रवचनसार की २०० गाथा। प्रवचनसार अर्थात् भगवान की वाणी। प्र-वचन। प्र अर्थात् उत्कृष्ट दिव्यध्वनि। दिव्यवाणी —ॐकार ध्वनि। उसमें यह आया है। प्रवचनसार की २००वीं गाथा। भगवान चाहे जिस प्रकार आत्मा माने परन्तु वह तो ज्ञायकरूप, वह ज्ञायकरूप ही अनादि से रहा है। समझ में आया? आहाहा! अरे! मूल चीज़ की खबर नहीं होती और इसे धर्म हो... आहाहा! बापू! वीतराग धर्म, वह मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! आहाहा! अनन्त काल में दुर्लभ हो गया। अभी परम सत्य की वाणी का उपदेश दुर्लभ हो गया। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : आपकी कृपा से सरल हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! लोग अब जिज्ञासा (में आये हैं), सत्य को सुनने के प्रेमी हैं। बापू! मार्ग यह है।

क्या कहा यह? **'नित्यं अत्यन्तभेदात्'** चैतन्य भगवान, राग और पुद्गल में अत्यन्त भेद है। है? राजमल की टीका है। जिसमें से समयसार नाटक बनाया। उसमें से बनारसीदास ने समयसार नाटक बनाया है। आहाहा! **क्योंकि 'नित्यं अत्यन्तभेदात्' द्रव्यस्वभाव से 'अत्यन्तभेदात्' अति ही भेद है।** अर्थात्? रागभाव, पुद्गलभाव और आत्मभाव, इन तीन में अत्यन्त भेद है। जिसमें अत्यन्त भेद है, वह एक वस्तु दूसरी वस्तु में किस प्रकार संक्रमणता आये? आहाहा! ज्ञायकस्वरूप भगवान, वह राग में पलटकर कैसे संक्रमण हो जाए? नहीं होता। वह भिन्न सत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहे, शरीर मैं चलाता हूँ, वाणी मैं बोलता हूँ, उपदेश मैं करता हूँ। भाई! यह वाणी है, बापू! भगवान! उस वाणी का आत्मा कर्ता नहीं है। आहाहा! वाणी के काल में, वाणी के कारण से वाणी आती है, भाई! आत्मा उसका कर्ता नहीं है। यह भाषा आत्मा का कार्य नहीं है। धन्नालालजी! आहाहा!

मुमुक्षु : जीव भाव करे, तब होती है, भाव नहीं करे तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव करे तो भी जब भाषा... भगवान को केवलज्ञान वैशाख शुक्ल दसवीं को हुआ। वाणी छियासठ दिन में निकली। उस वाणी को निकलने का काल था, तब निकली। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, तत्त्व बहुत सूक्ष्म, बापू! वह वाणी, गणधर आये

इसलिए निकली, ऐसा भी नहीं है। वह तो निमित्त का कथन है। भगवान को केवलज्ञान तो वैशाखा शुक्ल दसवीं को हुआ, तब वाणी नहीं निकली। छियासठ दिन में श्रावण कृष्ण एकम् को ध्वनि खिरी। तब प्रश्न हुआ कि इन्द्र गणधर को पहले क्यों नहीं लाये? यहाँ केवलज्ञान हुआ, तब क्यों नहीं लाये? छियासठ दिन के पश्चात् (लाये)। काललब्धि नहीं थी। इन्द्र को समझने की, प्राप्त करने की काललब्धि नहीं थी। आहाहा! धवल में पाठ है। धवल, जयधवल, महाधवल है न। चालीस ग्रन्थ बाहर प्रकाशित हुए हैं। यहाँ सब है। सब देखे हैं। चालीस ग्रन्थ बाहर प्रकाशित हुए हैं। थोड़े सात-आठ बाकी हैं। यहाँ तो सब पहले से... करोड़ों श्लोक और करोड़ों... श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक कितनी बार वाँचन किये और पढ़े थे। करोड़ों श्लोक, हों! करोड़ों। आहाहा! यह समयसार जहाँ देखा, हाथ में आया और अन्दर से... ओहोहो! यह तो अशरीरी वाणी है। शरीररहित होने की वाणी है। (संवत्) १९७८ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ५५। दो पाँच। वह तब हाथ में आया। आहाहा! यह तो जिसे अशरीरी होना हो, सिद्धपद होना हो, ऐसी यह वाणी है। ऐसी वाणी कहीं है नहीं। वह यह वाणी है, देखो! आहाहा!

कहते हैं कि आत्मद्रव्य वस्तु और पुण्य-पाप का भाव आस्रवतत्त्व और कर्म अजीवतत्त्व है, तो एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में संक्रमण हो जाए, ऐसा नहीं है। क्योंकि दोनों में अत्यन्त भेद है। अत्यन्त भेद है। मात्र भेद है, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग और भगवान आत्मा में अत्यन्त भेद है। अरे! प्रभु! ऐसी बात है, भाई! अरे!

विवरण– कहा उसका विवरण। क्या कहा, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। विवरण है न, विवरण? कल विवरण आया था। आहाहा! **जीवद्रव्य के भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव,...** अत्यन्त भेद क्यों है, उसका विवरण। **जीवद्रव्य के भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव,...** आहाहा! **पुद्गलद्रव्य के भिन्न प्रदेश अचेतनस्वभाव ऐसे भेद घना।** आहाहा! वास्तव में तो समयसार में संवर अधिकार में ऐसा लिया है कि जितने दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनके प्रदेश भिन्न हैं। है तो असंख्य प्रदेश, परन्तु जितने में राग उत्पन्न होता है, उसका क्षेत्र और प्रदेश भिन्न गिनने में आये हैं। संवर अधिकार में वस्तु भिन्न

है, क्षेत्र से भिन्न है, ऐसा कहा है। समझ में आया ? थोड़ा-थोड़ा समझे, भगवान ! यह तो अमृतघर की बातें हैं।

कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव जितने अंश में-क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, वह क्षेत्र भिन्न है और पूर्ण आनन्दघन भगवान का क्षेत्र भिन्न है। समझ में आया ? जैसे पर्वत के ऊपर घास उगती है, उतना क्षेत्र भिन्न है और बाकी पर्वत जो है, उसका क्षेत्र भिन्न है। समझ में आया ? ऐसा यहाँ कहते हैं कि विकार जीव में उत्पन्न होता है, पर्याय उत्पन्न होती है, उसके प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। चिद्विलास में तो ऐसा लिया है कि निर्मल पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं और त्रिकाल स्वभाव के प्रदेश भिन्न हैं। हैं असंख्य में के, परन्तु दो भाग हैं। आहाहा ! क्या कहा ?

जीवद्रव्य के भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव,... वह तो है। क्षेत्र भिन्न और भाव भिन्न। दो लिये। पुद्गलद्रव्य के प्रदेश भिन्न, वह क्षेत्र भिन्न और अचेतनस्वभाव भाव भिन्न। आहाहा ! अत्यन्त भेद है। आहाहा ! दो के बीच अन्तर भिन्न है, भगवान ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? दो भिन्न हैं, वे दोनों एक कैसे होंगे ? दो भिन्न हैं, अत्यन्त भेद है। वे दोनों एक कैसे होंगे ? ज्ञायकभाव रागरूप कैसे हो जाएगा ? ज्ञानभाव जड़ की पर्यायरूप कैसे होगा ? कभी नहीं होता। (अज्ञानी भले) मानो। माने वह दूसरी बात है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक १०-०८-१९७७
कलश-५०, प्रवचन-६३

यह कलश टीका चलती है। कर्ताकर्म अधिकार। यहाँ विवरण। है न? विवरण थोड़ा आया है। तत्त्वज्ञान की बात बहुत सूक्ष्म है, प्रभु! सूक्ष्म है, अपूर्व है और उसका लाभ भी अपूर्व है। आहाहा! कहते हैं कि, **जीवद्रव्य के भिन्न प्रदेश चैतन्यस्वभाव,...** भगवान आत्मा जीवद्रव्य जो है, यह उसका चैतन्यस्वभाव है। क्या है?

यह अभी फिर गड़बड़ नहीं होती। पहले करना हो तो कर लो। व्याख्यान चलने के बाद (कुछ नहीं करना)। समझ में आया? कोई-कोई शब्द गुजराती आ जाते हैं। समझाय छे कांई? यह तो गुजराती आ गया।

यह जीवद्रव्य जो जीववस्तु है, उस जीवद्रव्य के प्रदेश, जड़ के प्रदेश से अपने प्रदेश भिन्न है। परक्षेत्र से उसका क्षेत्र भिन्न है और उसका चैतन्यस्वभाव है। भगवान आत्मा का चैतन्यस्वभाव, जाननस्वभाव है। वह पर का कर्ता कैसे होगा? ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा वह शरीर, वाणी, मन, कर्म और राग-द्वेष के परिणाम का कर्ता कैसे होगा? सूक्ष्म बात है, भाई! जगत की चीज़ से चैतन्यस्वभाव के प्रदेश भिन्न हैं। ऐसी चीज़ चैतन्यस्वरूपी भगवान और पुद्गलद्रव्य के भिन्न प्रदेश हैं। यह शरीर, कर्म, इनके परमाणु के प्रदेश भिन्न हैं। अभी इतनी बात लेनी है। और अचेतनस्वभाव है। वास्तव में शरीर, वाणी, मन, कर्म, अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति, पुण्य-पाप के भाव, वे तो अचेतनस्वभाव हैं। आहाहा! भगवान आत्मा के प्रदेश—क्षेत्र, असंख्य प्रदेश, वे जगत के प्रदेश से भिन्न हैं और उसका स्वभाव चैतन्य है। आहाहा! जानन-देखन उसका स्वभाव है। है?

ऐसे भेद घना। ऐसे भेद बहुत हैं। आहाहा! जीव का चैतन्यस्वभाव और शरीर-वाणी-मन, वह तो जड़-मिट्टी-धूल है और अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे भी चेतनस्वभाव से तो खाली हैं, अचेतन हैं। आहाहा! समझ में आया? वे भेद बहुत हैं। भगवान आत्मा का चेतनस्वभाव और शुभ-अशुभराग का अचेतनस्वभाव और शरीर तथा

कर्म का अचेतनस्वभाव दोनों का बहुत भेद है। दो की भिन्नता बहुत है।

अब इसमें आया, भाई! २१६ का। स्वपरपरिणति। इसमें आया। **'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि'** जरा सूक्ष्म है, भगवान! आत्मा जो है; उसकी जो ज्ञानपर्याय है, वह स्व को जानती है, अपने त्रिकाली द्रव्य और गुण को पर्याय जानती है और वह पर्याय रागादि पर को भी जानती है। आहाहा! यहाँ इतना लेना है कि ज्ञानस्वरूपी आत्मा उन रागादि भाव को जानता है, स्व को जानता है और पर को जानता है, परन्तु पर का कर्ता नहीं होता, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? और २१६ गाथा की सूक्ष्म बात लें तो... यह तो शुरुआत की गाथा है, इसलिए इतना लिया है कि अपना चैतन्यस्वभाव, जाननस्वभाव और रागादि-पुण्यादि भाव का अचेतनस्वभाव है। तो चेतनस्वभाव अचेतनस्वभाव का कर्ता कैसे होगा? और चेतनस्वभाव पुण्य-पाप के भाव का कार्य कैसे होगा? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

इस बात को आगे ले जाने पर बात ऐसी है कि अपना आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय को जानता है। पूरे द्रव्य और गुण को जानता है, अपनी पर्याय को जानती है और वह पर्याय रागादि, पुद्गल आदि सर्व द्रव्यों को जानती है। आहाहा! परन्तु वह जानती है ऐसी पर्याय, वह द्रव्य जो त्रिकाल है, उसरूप नहीं होती। समझ में आया? वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

चेतनस्वभाव, वह तो त्रिकाली और उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय में स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है तो स्व-पर को ज्ञान की वर्तमान दशा जानती है, तथापि वह ज्ञान की पर्याय स्वज्ञेय जो द्रव्य है, उसरूप नहीं होती। अपनी ज्ञान की पर्याय स्व-परप्रकाशक सामर्थ्यवाली पर्याय है, वह स्वद्रव्य त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द पूर्णमिदं जो द्रव्यस्वभाव है, उसे ज्ञान की वर्तमान दशा जानती है। जानती होने पर भी वह पर्याय द्रव्य में घुस नहीं जाती, द्रव्यरूप नहीं होती। आहाहा! अब ऐसी बात। लोगों को (कठिन लगती है)। कहो, धन्नालालजी! आहाहा!

जानने की पर्याय स्व-परपरिणति को जानती है। स्व-पर में द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव (आ गये)। अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय

और पर के उत्पाद-व्यय-ध्रुव और द्रव्य-गुण-पर्याय को वर्तमान ज्ञान की पर्याय अपने सामर्थ्य से जानती है। परन्तु वह पर्याय रागरूप तो होती नहीं, कर्मरूप (भी) नहीं होती परन्तु वह पर्याय द्रव्यरूप (भी) नहीं होती।

हाँ, ऐसी बात है भगवान! यह तो वीतराग जैनशासन, जैन परमेश्वर... ऐसी बात कहीं है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। यहाँ तो भगवानरूप से ही बुलाते हैं। कल बताया था। ७२वीं गाथा। आत्मा को तो भगवानरूप से बुलाते हैं। आहाहा! क्यों? कि पर्याय में भगवानपना, परमात्मपना, अरिहन्तपना जो प्राप्त होता है, वह कहाँ से होता है? प्रभु! वह अन्तर परमात्मस्वरूप है, उसमें से परमात्मा आता है। द्रव्यस्वभाव परमात्मस्वरूप है, प्रभु! तुझे तेरी कीमत नहीं। आहाहा! और दूसरे की कीमत करता है। अपनी चीज़ एक समय में ध्रुव अनन्त परमात्मस्वरूप से भरपूर है। परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! उस परमात्मस्वरूप का ज्ञान पर्याय में होता है परन्तु पर्याय में वह द्रव्य नहीं आता। आहाहा! गजब बात, प्रभु! समझ में आया?

यह वर्तमान ज्ञान की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है। सामर्थ्य तो है, परन्तु स्व के ऊपर लक्ष्य होने पर अपनी पर्याय में सामर्थ्यता प्रगट होती है। ऋषभलालजी! बाल की खाल है। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त शक्ति-गुणसम्पन्न आत्मा है, उसे परमात्मस्वरूप ही कहा है। सर्व जीव, सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में, पूर्ण आनन्द, ज्ञानस्वभाव से भरपूर सर्व जीव है। आहाहा! समझ में आया? बात बैठना कठिन, बापू! भाई! और यह बात जिसे प्रतीति में आयी, उसके जन्म-मरण का अन्त आता है। क्योंकि उस चीज़ में जन्म-मरण और जन्म-मरण के कारण का स्वरूप में अभाव है। और उसमें भाव है तो परमानन्द परम ज्ञानादि अतीन्द्रिय स्वभाव से भरपूर भाव है।

परमानन्द का नाथ प्रभु अपना स्वरूप, उसे ज्ञान की वर्तमान पर्याय में, अवस्था में ज्ञात होता है। उस पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा! समयसार की १७-१८ गाथा में तो ऐसा लिया है। १७ कहते हैं न? १७। एक और सात। उसमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्य और उनके टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य वीतरागी सन्त कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ परमात्मस्वरूप तू है, उसका ही

ज्ञान होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय स्व-परप्रकाशक सामर्थ्यवाली है। आहाहा! माणेकचन्दभाई! सूक्ष्म बहुत, बापू! आहाहा! बनियों को जैनधर्म मिला परन्तु जैन... आहाहा! सम्प्रदाय मिला। वस्तुस्थिति बहुत (सूक्ष्म) है। आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञान की एक समय की पर्याय... स्व-परपरिणति कहा न? अन्दर कहाँ है? **'स्व-पर-परिणतिं जानन्'** है? आहाहा! अपनी परिणति में तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आये। पाठ ऐसा है कि स्व-परपरिणति। परन्तु परिणति में अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आये; और परपरिणति में भी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आये। अकेली परिणति, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अर्थ लेंगे। अर्थ है, देखो! **द्रव्य-गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य...** परिणति का अर्थ किया है। है? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी केवलज्ञान को स्पर्श करे, ऐसी वाणी है। परन्तु उसे यहाँ पहुँचने में बहुत पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! वह कहीं बाहर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करने से प्राप्त हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अन्तर्मुख में दृष्टि करने से... आहाहा! वह दृष्टि तो पर्याय है परन्तु पर्याय मानती है त्रिकाली द्रव्य को। आहाहा! वह मानने की श्रद्धा में त्रिकाली द्रव्य की श्रद्धा आयी, परन्तु उस पर्याय में त्रिकाली द्रव्य आया नहीं। आहाहा!

यह तो दो चीज़ भिन्न है। आहाहा! इसकी यह चीज़ पूर्णानन्द परमात्मा है, ऐसी श्रद्धा अपने में अपने से हुई। अपने में अपने से आयी। द्रव्य के कारण से भी नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! जैनदर्शन का तत्त्वज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान बहुत सूक्ष्म है। और उसके प्राप्त होने पर जन्म-मरण का अन्त आता है और भणकार बजी है कि अब अल्प काल में परमात्मा हो जाएगा। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना लाख-करोड़ अपवास करे, क्लेश करे, व्रत पाले, भक्ति करे, सब संसार है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यापक द्रव्य, व्याप्य पर्याय में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में नहीं आता। यह तो ४९ गाथा में (आया है)। आत्मा अपने द्रव्य से पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अपना त्रिकाली भगवान स्वरूप है, वह पर्याय

को स्पर्श नहीं करता और अपनी पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! भगवान आत्मा की ज्ञानपर्याय, सम्यक् चैतन्य पर्याय, वह व्यवहाररत्नत्रय का दया, दान का विकल्प है, उसे तो स्पर्शती नहीं और उसका ज्ञान हुआ, उस राग से यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। अरेरे! ऐसी बात है। वह ज्ञान की पर्याय का स्वयंसिद्ध सामर्थ्य इतना है कि राग को स्पर्श किये बिना राग का ज्ञान करती है। और ज्ञान की पर्याय द्रव्य को स्पर्श किये बिना द्रव्य का ज्ञान करती है। दशरथलालजी! बाल की खाल है। मार्ग ऐसा है। लोगों को सत्य बात क्या है, वह सुनने को मिली नहीं। समझ में आया? सम्प्रदाय में जन्म लिया और फिर कहे हम दिगम्बर हैं, वे कहे हम श्वेताम्बर हैं। आहाहा!

प्रभु! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा गणधरों और इन्द्र के बीच ऐसी बात करते थे, वह यह बात है। प्रभु! तू ऐसी चीज़ है। एक समय की ज्ञान की पर्याय में पूरा द्रव्य और पूर्ण गुण ज्ञात होते हैं। ऐसा होने पर भी पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती और पर्याय में जगत के छह द्रव्य अपने अतिरिक्त अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद के जीव, उनसे अनन्तगुणे परमाणु, उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव और उनके द्रव्य-गुण-पर्याय तथा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय, यह सब ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, ऐसी ताकत है। आहाहा! ऐसी पर्याय को उसरूप न माने और अल्पज्ञ है तथा राग को जाने तो रागरूप हो गयी, ऐसा तीन काल में नहीं है। धर्मी को भी व्यवहार आता है। समझ में आया? राग आता है (परन्तु) हेयबुद्धि से आता है। व्यवहार आता तो है। जब तक वीतराग न हो, तब तक धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ (कि) मैं शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु हूँ, मेरे द्रव्यस्वभाव में पर्याय का भी अभाव है। ऐसे द्रव्यस्वभाव का अनुभव अन्तर्मुख होकर जब ध्यान में प्राप्त हुआ... आहाहा! तब उस ज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत है कि सब द्रव्यों को जाने, पूर्ण परमात्मस्वरूप को स्पर्शे बिना अपने अस्तित्व में उसका ज्ञान करे। उसका अस्तित्व है तो अस्तित्व का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय के अस्तित्व का सामर्थ्य ही इतना है। धन्नालालजी! ऐसी बात है।

यह वस्तुस्थिति जिनेश्वरदेव ने कही है। की नहीं है। भगवान कोई वस्तु करते नहीं हैं। किसी चीज़ के कर्ता नहीं हैं। आहाहा! वे तो जाननेवाले भगवान सर्वज्ञ परमात्मा

वीतराग केवली प्रभु ऐसा फरमाते हैं कि हमारी ज्ञान की पर्याय जो हमें हुई, वह लोकालोक है, इसलिए हुई—ऐसा नहीं है। और हमारी पर्याय में सारा त्रिकाली द्रव्य-गुण भी ज्ञात हुए तो वह त्रिकाली द्रव्य-गुण है तो पर्याय में उसकी जानने की ताकत है, ऐसा भी नहीं है। ज्ञानचन्दजी! मार्ग ऐसा है। लो, यह शिक्षण शिविर का मांगलिक चलता है। है? आहाहा!

मुमुक्षु : आप यह सन्देशा लाये हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सन्देश है। आहाहा!

इस प्रकार जब आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, स्व-अपनी पर्याय में उसका ज्ञान न हो और अपनी पर्याय में त्रिकाली की प्रतीति न हो, तब तक वह अज्ञानी है। अज्ञानी है, उसके व्रत और तप, वे सब बालव्रत और बालतप हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें।

मुमुक्षु : बालव्रत से कुछ न कुछ फायदा होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का फायदा है। गति मिलेगी। संयोगभाव से संयोगी चीज़ मिलेगी।

मुमुक्षु : यह तो कोई फायदा नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का फायदा हुआ न।

पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह संयोगीभाव हैं, वह अपना स्वभावभाव नहीं। आहाहा! संयोग से उत्पन्न हुई संयोगी चीज़ है। उसका फल तो पदार्थ का संयोग मिले, वह उसका फल है। आहाहा! अपनी चीज़ जो आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! एक समय की पर्याय में... बस, वहाँ बैठ जाए, कहते हैं। समझ में आया?

एक समय की ज्ञान की पर्याय, मति-श्रुतज्ञान की पर्याय, वह भी सब द्रव्य-गुण को जानती है। ऐसा जानती होने पर भी वह पर्याय द्रव्य-गुणरूप नहीं होती। आहाहा! ऐसी पर्याय की ताकत है। द्रव्य की कितनी ताकत! जितनी ताकत है, ऐसी ताकत का ज्ञान हुआ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अनन्त-अनन्त शक्ति का प्रभु भगवान, जिसकी शक्तियाँ संख्या से आकाश के प्रदेश, जिस आकाश का अन्त नहीं। आकाश कहाँ नहीं?

अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... यह लोक-जगत तो असंख्य योजन में है। परन्तु फिर खाली भाग में आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... कहीं अन्त नहीं। अनादि, अन्तरहित चारों ओर इतना आकाश है। उसमें एक परमाणु, एक रजकण, पॉइन्ट रखे, उसे प्रदेश कहते हैं तो उसके ऐसे अनन्त प्रदेश हैं। ऐसे अनन्त प्रदेश से भी एक आत्मा में शक्ति-गुण की संख्या अनन्तगुणी है। समझ में आया? ऐसा भगवान अनन्त शक्ति का भण्डार, वह स्वज्ञेय है। यह ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय है। आहाहा!

यहाँ तो इतना लेंगे कि ज्ञान की पर्याय पर को जानने पर भी पररूप नहीं होती। इतना लेना है। समझ में आया? मति-श्रुत आदि की ज्ञान की पर्याय होती है, वह शरीर, वाणी और व्यवहाररत्नत्रय को-राग को जानती है, वह अपनी शक्ति से, पर को स्पर्श किये बिना जानती है, तथापि वह पर्याय पररूप नहीं होती। यहाँ इतना लेना है। वहाँ २१६ श्लोक में तो यह स्व को ज्ञेयरूप से जानती है, तथापि स्व और परज्ञेयरूप पर्याय नहीं होती। अरेरे! यह क्या कहते हैं? अब ऐसा मार्ग। इसकी अपेक्षा तो दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, मन्दिर बनाना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, यह सीधा सट्ट था, लो! सब भटकने का था। कहो, नेमचन्दजी! यह कहाँ ऐसा नया निकाला, ऐसा कहते हैं। नया नहीं है, प्रभु! मार्ग अनादि का है। तुझे सुनने को मिला नहीं, जानने में आया नहीं, इसलिए नहीं है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि'** है? आहाहा! अपनी ज्ञान की वर्तमान पर्याय स्व-पर को जानने पर भी **प्रसिद्ध है ऐसे अपने और समस्त ज्ञेय-वस्तु के...** देखो! है? **अपने और समस्त ज्ञेय-वस्तु के...** परिणति की व्याख्या की। परिणति का अर्थ तो पर्याय होता है, परन्तु उस परिणति की व्याख्या यह है। क्या? **द्रव्य-गुण-पर्याय का...** अब समझ में आया? सामने पुस्तक है या नहीं? यह तो भगवान का शास्त्र है। उसका हल बहुत सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा! यह कहीं कल्पित बनाया हुआ शास्त्र नहीं है। समझ में आया? यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में (आयी हुई बात है)। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान के मुख में से ॐ ध्वनि निकलती है। ऐसी वाणी नहीं होती। सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमात्मा विराजते हैं।

महावीर भगवान आदि तो णमो सिद्धाणं में गये। परमात्मा सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वे तो अभी णमो अरिहंताणं में हैं। उन्हें वाणी निकलती है। सिद्ध को वाणी नहीं है। समझ में आया?

उस अरिहन्त पद में प्रभु महाविदेह में मनुष्यरूप से अभी विराज रहे हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचा है और करोड़ पूर्व का आयुष्य है। करोड़ पूर्व में; एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। सत्तर लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे करोड़ पूर्व का सीमन्धर भगवान का आयुष्य है। आहाहा! उन भगवान की-परमात्मा की वाणी ॐ ध्वनि छूटती है। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' वे गणधर सन्त जो अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान (के धारी) और चौदह पूर्व की रचना करने की ताकतवाले, उन भगवान की वाणी सुनकर शास्त्र रचते हैं। समझ में आया? 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' भव्य जीव जो है, वह वास्तविक रीति से संशय का निवारण कर सकता है। लायक नहीं है, उसे तो संशय निवारण की खबर भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उस आगम की रचना में से यह आगम है। समयसार गणधर की रचना है। आहाहा! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बात गणधर सन्त और चार ज्ञान के धारी और उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं, उनकी रचना में से यह समयसार है। समझ में आया? यह उसके कलश हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसी टीका बनायी है। आहाहा! ऐसी चीज़ अभी कहीं है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो स्व-पर परिणति शब्द है न? भाई! आत्मा की ज्ञान की पर्याय में ऐसी ताकत है कि वह स्वज्ञेय और परज्ञेय को जानती है। वह स्वज्ञेय को और परज्ञेय को स्पर्श किये बिना जानने की ताकतवाली है। आहाहा! किसे? जिसे सम्यग्ज्ञान हुआ है उसे। अल्पज्ञान में आत्मा ज्ञात होता तो है ही। ऐसा कहते हैं। ज्या कहा? १७-१८ गाथा में कि अज्ञानी की ज्ञान की जो वर्तमान व्यक्त-प्रगट पर्याय है, उसमें ज्ञेय ज्ञात होते हैं। पूरा द्रव्य ज्ञान की पर्याय में, अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी पूरा द्रव्य ज्ञात होता है। आहाहा! परन्तु

अज्ञानी की दृष्टि उस पर नहीं है। पर्याय में पूरा ज्ञेय ज्ञायकभाव परमानन्द प्रभु, एक पर्याय में पूरा द्रव्य अज्ञानी को भी ज्ञात होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है तो स्व-परप्रकाशक में ज्ञान की पर्याय अन्दर स्व का प्रकाश करती ही है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उस पर नहीं है। अज्ञानी की दृष्टि राग, दया, दान, विकल्प और पर्याय के ऊपर है। इसलिए ज्ञात होता है, तो भी मानता नहीं है। दशरथलालजी! यह मास्टरपना भिन्न प्रकार का है। आहाहा! समझ में आया? बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ पन्थ, प्रभु का पन्थ वह बलिहारी भिन्न चीज़ है। उसे जिसने जाना... आहाहा! यह श्रीमद् में आता है। जिनवाणी जानी, उसने जानी है। बाकी सब बाल अज्ञानी जाने बिना रहे हैं।

जिनवाणी में ऐसा आया कि ज्ञान की एक समय की पर्याय स्व-परपरिणति सर्व को जानती है। अब परिणति की व्याख्या। श्लोक ऐसा आया है। सवेरे तो अपने चलेगा। कल से दोपहर से शक्ति लेंगे। ४७ शक्तियाँ हैं न? वे कल दोपहर से लेंगे। यह कलश टीका तो हमेशा चलेगी। आहाहा! भगवान! यह तो शान्ति का मार्ग है। यह तो अन्तर की धीरज की बात है। आहाहा!

अभी थोड़े शब्द बनाये थे न? आया न? हिन्दी में नहीं आया। गुजराती में है। तेरह बोल आये हैं। 'ध्रुव धाम के ध्येय के ध्यान की धखती धुनी धीरज से और धगश से धखानेवाले धर्म का धारक धर्मी धन्य है।' आया? गुजराती में आया है। भावनगर में बनाया था। यहाँ नहीं? जैनतत्त्व मीमांसा में। जैनतत्त्व मीमांसा में है। यहाँ नहीं है। अभी भावनगर बनाया था। तेरह बोल हैं, तेरह बोल। 'ध्रुव धाम के ध्येय के ध्यान की धखती धुनी धीरज से और धगश से धखानेवाले धर्म का धारक धर्मी धन्य है।' सब ध-ध आये हैं। तेरह ध-धा है। यह गुजराती में आ गया है। अभी भावनगर में बनाया था। आया है न? अन्दर धखती पेढ़ी चला। आहाहा! ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा की धगती पर्याय में पेढ़ी चलाकर धर्म धुरन्धर धोरी धन्य धाम धर्मी है। समझ में आया? यह है, बनाया है परन्तु कुछ सब याद रहता है? भावनगर में बहुत बुखार आया था न? तत्पश्चात् यह बनाया था। इस फाल्गुन माह में। आहाहा!

एक समय में ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा और उत्पाद-व्यय की पर्याय, इन तीन को

यहाँ परिणति कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि तीनों को जाननेवाली पर्याय तीनों को जानती है। परिणति स्वपरिणति को जानती है। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बात। क्या हो? बापू! परमात्मा केवली तीर्थंकरदेव जिनेश्वर का मार्ग तो यह है, प्रभु! तुझे ठीक न लगे, ख्याल में न आवे, इससे कहीं वस्तु दूसरी नहीं हो जाती। समझ में आया? आहाहा! यहाँ, परमात्मा कहते हैं, वह सन्त आड़तिया होकर सर्वज्ञ का माल जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। जगत को रुचे, न रुचे, वह स्वतन्त्र प्राणी है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा की ज्ञानपर्याय स्व-पर परिणति को जानती है। अब परिणति की व्याख्या है। आहाहा! भाई! यह तो भगवान की वाणी है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। एक चिड़िया लायी चावल का दाना, चिड़ा लाया मूँग का दाना, दोनों ने बनायी खिचड़ी। आता है न? छोटी उम्र में वार्ता आती है। वह खिचड़ी लेकर कुम्हार को दी और कुम्हार ने घड़ा दिया, घड़ा दिया... आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर को इच्छा बिना वाणी—ॐ ध्वनि, स्व-परप्रकाशक वाणी (निकलती है)। स्व-पर जाननेवाला तो भगवान आत्मा है। वाणी स्व-परप्रकाशक है। आहाहा! वह वाणी भगवान ने कही, ऐसा नहीं है। वाणी की क्रिया वाणी से अपने ज्ञान सिवाय होती है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं कि, चेतन और अचेतन में बहुत भेद है। और ज्ञानी कहते हैं? कि दोनों को, अपनी स्व-परपरिणति को जाने। धर्मी जीव का ज्ञान स्व और पर दोनों को जाने। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात। इसमें करना क्या, इसकी सूझ नहीं पड़ती। गिरनार, सम्मेदशिखर की यात्रा करना। सम्मेदशिखर भगवान तेरी चीज अन्दर है। वहाँ आरूढ़ हो, वह यात्रा है। पर की यात्रा का भाव तो पुण्य है, शुभभाव है। आहाहा! बन्ध का कारण है। समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा शुद्ध चेतन द्रव्य... है? **समस्त ज्ञेय-वस्तु के द्रव्य-** देखा! समस्त ज्ञेय अर्थात् स्वद्रव्य और परद्रव्य। समस्त ज्ञेय के **द्रव्य-गुण-पर्याय**... तीनों को परिणति कहा जाता है और ज्ञान की पर्याय स्वपरिणति को जानती है। आहाहा! ऐसी बात याद रहना भी मुश्किल। कोई सुनने न आया हो और घर में पूछे कि तुमने क्या सुना? कौन

जाने ऐसी कुछ बात करते थे। ऐई! पोपटभाई! धूल का होवे तो बहुत याद रहता है। पैसा-धूल मिलती हो न (तो याद रहता है)। आहाहा! मिट्टी-धूल प्रभु वह तो अजीव-धूल है। उसका कर्ता तो है नहीं परन्तु उसे जाननेवाला कहना, यह भी उपचार से है। आहाहा! समझ में आया? उस लक्ष्मी को जानता है—ऐसा कहना, वह भी उपचार से है। अरे! अपनी जाननपर्याय है... समझ में आया? वह परिणति आत्मा का कार्य है और आत्मा कर्ता है, यह भी उपचार से है। यह क्या कहा? अरे! एक के बाद एक बात अभी मुश्किल से पकड़ में आये, वहाँ दूसरी कठिन (आवे)। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। यह कहीं चलता नहीं करते।

यहाँ कहते हैं कि अपनी जो ज्ञानपर्याय सम्यग्दर्शन से, अन्तर के ध्येय से उत्पन्न हुई, वह ज्ञान की पर्याय राग की कर्ता तो नहीं और वह पर्याय द्रव्य को जानती है, ऐसा कहना, वह भी उपचार है। क्योंकि द्रव्य, पर्याय में नहीं आता। दूसरी बात, वह ज्ञान की पर्याय और सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उसका आत्मा कर्ता और पर्याय उसका कार्य, यह भी व्यवहार है, उपचार है। क्यों? कि द्रव्य, पर्याय का कर्ता निश्चय से नहीं है। पर्याय, पर्याय का कर्ता और पर्याय पर्याय का कार्य। द्रव्य को उसका कर्ता कहना, वह व्यवहार और उपचार है। समझ में आया? बात तो दूसरी है, प्रभु! आहाहा! माणेकचन्दभाई! ऐसी बातें हैं।

स्वपरिणति द्रव्य-गुण-पर्याय और परपरिणति द्रव्य-गुण-पर्याय। आहाहा! है न? **अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य**... स्वपरिणति अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव और उत्पाद-व्यय पर्याय निर्मल, हों! आहाहा! समझ में आया? ज्ञाता है। आत्मा की पर्याय उसकी तो ज्ञाता है, जाननेवाली है। आहाहा! अरे! सिर घूम जाए ऐसा है।

मुमुक्षु : ज्ञाता शब्द पर्यायवाचक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय। अभी तो पूरा आत्मा लेना है—जाननहार ज्ञाता। वास्तव में तो ज्ञाता की पर्याय है, वह ज्ञाता है। द्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव है। समझ में आया? जानने की पर्याय है, वह जानती है। ध्रुव क्या जाने? ध्रुव तो ध्रुव है। वह तो कूटस्थ नित्य वस्तु

कूटस्थ है। वह कहीं जानने का कार्य नहीं करती। आहाहा! ऐसी बात है। जानने की पर्याय का कार्य तो पर्याय में होता है। अभी पर्याय क्या और द्रव्य क्या यह भी बराबर सुना न हो। अरे! भगवान! आहाहा!

भगवान परमेश्वर फरमाते हैं, वही वाणी यह सन्तों की है। दिगम्बर सन्त अर्थात् वीतराग के पथानुगामी और अल्प काल में केवलज्ञान लेने की तैयारीवाले। अल्प काल में केवलज्ञान लेंगे। वे जंगल में रहते थे। नग्न मुनिपना और अन्दर में नग्नपना, विकल्प की वृत्तिरहित निर्विकल्प आनन्द का वेदन है। अन्तर के विकल्प के वस्त्र सिवाय और बाहर में यह वस्त्र सिवाय। मात्र वस्त्र का त्याग, वह कहीं दिगम्बर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जिसे अन्दर राग का, महाव्रत का विकल्प है, उससे भी वह रहित है। ऐसे दिगम्बर सन्तों की यह वाणी है। ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वाणी तो वाणी है। क्या हो? व्यवहार से समझाये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है।

कहते हैं कि अपनी परिणति को और पर की परिणति को आत्मा जानता है। बस। अब परिणति का अर्थ क्या? परिणति तो पर्याय को ही कहते हैं। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं लेना। यहाँ तो अपनी ज्ञानपर्याय सम्यग्ज्ञान हुआ, चैतन्य के लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ... शास्त्रज्ञान भी ज्ञान नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : परिणति का अर्थ द्रव्य-गुण-पर्याय किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य-गुण-पर्याय। क्योंकि अकेली परिणति को पर्याय जानती है। आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय जो है... यहाँ तो सम्यग्ज्ञान की पर्याय की बात है न? द्रव्य स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन भगवान है, इसका जहाँ ज्ञान हुआ, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, वह स्व-पर परिणति को जानती है। इसका अर्थ—स्व की परिणति का अर्थ कि स्व के द्रव्य-गुण-पर्याय, स्व के उत्पाद-व्यय और ध्रुव। पर की परिणति का अर्थ—पर के द्रव्य, गुण और पर्याय, और पर के उत्पाद, व्यय और ध्रुव। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। यह साधारण लोगों को बेचारों को... आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है और उसका लाभ ऐसा है। लाभ-अनन्त आनन्द। जहाँ तत्त्वज्ञान सम्यग्दर्शन हुआ। स्वद्रव्य के आश्रय से आनन्द का स्वाद आया, उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसी की ऐसी

श्रद्धा करे, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका स्वाद का नमूना बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा नहीं? कि स्त्री का शरीर है, हड्डियाँ, माँस है और भोग के काल में इसे उसके शरीर का स्वाद नहीं आता। कोमल शरीर है, मक्खन है, इन्द्रिय कठिन होकर विषय लेती है। अरे! प्रभु! सुन तो सही। उस चीज़ को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। मात्र उसके ऊपर लक्ष्य जाता है और ठीक है, ऐसा राग उत्पन्न करता है, उस राग का—आकुलता का स्वाद लेता है। समझ में आया? और बिच्छू का डंक होता है, बहुत कड़क होता है। हमने तो एक बार बिच्छू देखा है। हम तो अकेले जंगल में जाते थे। बहुत बड़ा और लम्बा था। काला। काटे तो मर ही जाए, ऐसा बिच्छू था। वह बिच्छू डंक मारे तो डंक का वेदन नहीं है। वह डंक तो जड़, परमाणु है। उसमें जो अरुचि-द्वेष उत्पन्न होता है, द्वेष का वेदन है। लॉजिक-न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? यह राग और द्वेष का स्वाद, पुण्य और पाप का स्वाद, वह आकुलता और दुःख का स्वाद है। आहाहा! अब उस आकुलता के स्वाद से लक्ष्य छोड़कर चिदानन्द आनन्द का कन्द प्रभु (उसके ऊपर लक्ष्य कर)। आहाहा!

कल कहा था न? हम तो बारम्बार कहते हैं। शकरकन्द। शकरकन्द होता है न? शकरकन्द-शक्करिया। शकरकन्द। ऊपर की लाल छाल के अतिरिक्त पूरा दल शक्कर की मिठास का पिण्ड है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प की छाल से रहित अन्दर आनन्द का कन्द है। आहाहा! समझ में आया? उस आनन्द के कन्द पर दृष्टि पड़ने से सम्यग्दृष्टि में अतीन्द्रिय का स्वाद आता है। आहाहा! जैसे वह राग का, आकुलता का स्वाद आता था। शरीर का नहीं, लड्डू का नहीं, चूरमा का नहीं, रसगुल्ला का नहीं, मौसम्बी का नहीं, वह तो जड़ है। जड़ का स्वाद कहाँ से आया? वह तो मिट्टी है न? आत्मा तो अरूपी है। उसमें ठीक है, ऐसी मिथ्याबुद्धि उत्पन्न करता है तो उसे मिथ्यात्व का और राग का स्वाद आता है। आहाहा!

यहाँ भगवान आत्मा अनीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसका जहाँ अन्तर्मुख स्वीकार हुआ और उसकी पर्याय ज्ञानस्वरूप को जानने में गयी तो अपनी पर्याय में

अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। इसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! ऐसी बातें सुनने को नहीं मिलती। जहाँ हो, वहाँ व्रत करो, अपवास करो, प्रतिमा ले लो। आहाहा! अरेरे! प्रभु! सर्वज्ञ परमेश्वर का यह हुकम है कि तेरी चीज़ आनन्द से भरपूर है, प्रभु! वहाँ निधान में नजर कर। एक समय की पर्याय तुच्छ और राग पामर पर तेरी नजर होने से तेरी प्रभुता का नाश होता है। दृष्टि में, हों! प्रभुता तो प्रभुता अन्दर है। आहाहा! अब ऐसी रीति।

कहते हैं... इन दो लाईनों में ऐसा हुआ। यह स्व-पर परिणति आयी न? और अपने यह कल आया था न भाई? २१६। स्व-परपरिणति। इसलिए इसमें बराबर मेल खा गया। आहाहा! यहाँ इतना कहना है कि स्व-परपरिणति को जाननेवाला है। राग को, शरीर को जाननेवाला है परन्तु रागरूप होकर जानता है, ऐसा नहीं। ज्ञानस्वरूप ज्ञेयरूप हो जाता है, परज्ञेय और परज्ञेय ज्ञान में आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो! भेदज्ञान। तत्त्व की भिन्नता के स्वरूप की भणकार। आहाहा! माणेकचन्दभाई! उन पैसे में कहीं सुना भी नहीं होगा। यह सब धूलधाणी है। यह पैसेवाला है। समझ में आया? आहाहा! और पैसा दान में दे तो भी रागभाव है। पैसा मेरा है, ऐसा मानकर दे तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : एक तो रुपये गये और मिथ्यात्व हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गये, वे किसके थे वे गये? वे तो जड़ के थे। ऐसा कहते हैं, पैसा गया और फिर वापस मिथ्यात्व का पाप बँधा। परन्तु यह तो मेरा मानकर दे तो मिथ्यात्व का पाप है। परन्तु वह तो भिन्न चीज़ है। मुझे राग की मन्दता हुई और वह चीज़ तो उसके कारण से जाती है। मैं देनेवाला नहीं हूँ। समझ में आया? एक घण्टे में कितनी बात याद रखना! सब दूसरा प्रकार। जितना सुना हो... यहाँ हमें तो खबर है न, बापू! आहाहा! मार्ग तो यह है, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता तेरी प्रतीति में न आवे, तब तक तेरे दर्शन और ज्ञान सच्चे नहीं हैं। आहाहा! तेरी पर्याय में तेरी पूर्णता की प्रतीति न आवे और आनन्द का स्वाद न आवे, तब तक तुझे तेरी प्रतीति की खबर नहीं है। आहाहा! स्वरूप पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति प्रसन्नता में होती है, ऐसा कहते हैं। आनन्द अर्थात् प्रसन्नता। स्व को छोड़कर रागादि की

प्रतीति करना, वह तो दु:ख की दशा है। आहाहा! राग को भिन्न करके स्व की प्रतीति करे तब तो आनन्द की प्रसन्नता है। परन्तु अपना स्वभाव छोड़कर अकेला राग है, पुण्य है, पाप है, शरीर है, यह मान्यता परप्रकाशक मिथ्याज्ञान है। आहाहा! वहाँ तो अप्रसन्नता है। दु:ख है, दु:ख। आहाहा!

ज्ञाता है। (जीव तो) ऐसा है। भगवान तो ऐसा है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने। पर के द्रव्य-गुण-पर्याय को (जाने)। अभी द्रव्य-गुण-पर्याय समझे नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली और गुण अर्थात् इसकी शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था, उन तीनों को जाने और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को जाने, वह ज्ञाता। वह जाननहारा-जाननहार; करनहारा नहीं। और राग का करनेवाला, वह जाननहार नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अपने और अन्य समस्त पर द्रव्यों के द्रव्य-गुण-पर्याय आदि को नहीं जानता है, ऐसा है पुद्गलद्रव्य।** रागादि पुद्गल अपने को नहीं जानता और पर को नहीं जानता। दोनों चीज़ अत्यन्त भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक ११-०८-१९७७
कलश-५०, प्रवचन-६४

सिद्धान्त में पहले ऐसी बात चली है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा आया है। यह तुम्हारे शिक्षण शिविर आज शुरु हुआ न ? मांगलिक करते हैं। सिद्धान्त में ऐसा आया है कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहन्ताणं। ऐसा आया है। फिर बात को संक्षिप्त कर दिया। णमो लोए सव्व साहूणं। परन्तु णलो लोए सव्व अरिहन्ताणं, यह सबको लागू पड़ता है और तदुपरान्त धवल में णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहन्ताणं, ऐसा पाठ है। आहाहा! अनन्त काल में भूत में अरिहन्त हो गये और वर्तमान में लाखों अरिहन्त विराजते हैं। तीर्थंकर भले संख्या हो परन्तु केवली लाखों विराजते हैं और भविष्य में अनन्त अरिहन्त होंगे, उन सबको यहाँ आचार्यदेव धवल में ऐसा लेते हैं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहन्ताणं। ज्ञानचन्दजी! आज पहले नयी बात से शुरुआत की है।

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। जो जीव अभी सिद्ध नहीं हुए, वे कोई तो नरक में पड़े हैं, कोई निगोद में पड़े हैं परन्तु भविष्य में सिद्ध होंगे तो कहते हैं कि मैं तो वर्तमान में त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं को नमस्कार करता हूँ। आहाहा! पोपटभाई! और णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। अनन्त आचार्य हुए, वर्तमान में भी अनन्त (अनेक) आचार्य अनुभवी आनन्द के वेदन करनेवाले आचार्य हैं। भविष्य में अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के वैभव को वेदन करनेवाले आचार्य होंगे। इन सबको अभी से णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं।

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं। धवल में ऐसा पाठ है। समझ में आया ? तुम इतने दूर से आये हो तो बात कुछ नयी समझना चाहिए। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। अपना अतीन्द्रिय आनन्द का वैभव जिसने प्रगट किया और भविष्य में प्रगट करेगा... आहाहा! साधे इति साधु। अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का साधक होकर जो साधु बने हैं और बनेंगे... आहाहा! हम तो वर्तमान में भी ऐसे... आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। समझ में आया ? यह भगवान की वाणी है।

बनारसीदास में आता है, 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' बनारसी विलास ग्रन्थ है। बनारसी विलास। समयसार नाटक अलग है। बनारसी विलास में ऐसा श्लोक आया है कि 'मुख ॐकार ध्वनि...' यह अरिहन्त... महावीर आदि सिद्ध हैं, वे तो णमो सिद्धाणं में आ गये। उन्हें वाणी नहीं है। परन्तु अरिहन्त परमात्मा महाविदेह में विराजमान हैं, उन्हें तो वाणी है। तो कैसी वाणी है? 'मुख ॐकार...' होंठ बन्द है, कण्ठ कम्पता नहीं और अक्षर की वाणी ऐसी भेदरूप होती नहीं। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में होती है, ऐसे गणधर भगवान की ॐ ध्वनि में से आगम रचते हैं। वे आगम रचते हैं और 'भवि जीव संशय निवारे।' भगवान की वाणी सुनकर... आहाहा! भव्य जीव संशय निवारे और आत्मा का अनुभव करे। अनुभव करे, यह भाषा समझते हो? हिन्दी चलता है। अनुभव करे। हमें बहुत हिन्दी नहीं आती। थोड़ी-थोड़ी आती है। हम तो गुजराती हैं न। आहाहा!

'भविक जीव संशय निवारे।' यह वाणी भगवान की है। यह वाणी। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो ॐ ध्वनि कही, उसमें से सन्तों ने शास्त्र की रचना की, कुन्दकुन्दाचार्य ने साक्षात् यह वाणी सुनकर (यहाँ आकर शास्त्र बनाये)। आहाहा! दिगम्बर सन्त थे। भगवान के पास गये थे। परमात्मा विराजते हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। उसमें का यह एक समयसार शास्त्र है, उसमें की एक यह 'कलश टीका' है। कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक हैं और अमृतचन्द्राचार्य के कलश। सूक्ष्म बात तो है, प्रभु!

यहाँ तक आया है, **'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि' ऐसे अपने और समस्त ज्ञेय-वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय का अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का ज्ञाता है।** है? क्या कहा? भगवान आत्मा... यहाँ तो आचार्य स्वयं भगवानरूप से बुलाते हैं, हों! ७२ गाथा में कल कहा था न? आहाहा! भगवान आत्मा। आहाहा! पर्याय में चाहे तो अल्पज्ञता हो, विशेषता हो, सर्वज्ञता हो परन्तु वस्तुरूप से तो वह भगवानस्वरूप आत्मा है और भगवानस्वरूप है तो पर्याय में भगवानस्वरूप परिणमन होता है। वह पर्याय भगवत्स्वरूप परमात्मा को कहीं बाहर से नहीं आती। समझ में आया? आहाहा!

वह भगवत्स्वरूप आत्मा कैसा है? यह कहते हैं। जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप

शुद्ध चैतन्य का अन्तर सम्यग्दर्शन में स्वीकार होकर अपने आनन्द का जिसे वेदन होता है... आहाहा। ऐसे धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव वे कैसे हैं ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, प्रभु ! अनजाने लोग भी कितने दूर-दूर से आये हैं। सुविधा-असुविधा यहाँ हो या न हो परन्तु बाहर से दूर से बहुत आये हैं। आहाहा !

कहते हैं कि एक बार प्रभु ! सुन तो सही। तेरा अन्तर निज वैभव, अन्तर में तेरी सम्पदा है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता... आहाहा ! ऐसा शक्तिवन्त परमात्मा अन्दर विराजता है। समझ में आया ? 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' भगवान त्रिलोकनाथ के प्रवचन का मर्म, जिन सो ही आत्मा है। वह जिनस्वरूपी... कल-परसों आ गया है। दोपहर को आया था। राग के त्याग स्वभावरूप स्वभाव है। भगवान का स्वभाव, इस आत्मा का, हों ! भगवान अर्थात् यह आत्मा। राग के त्यागरूप जिसका स्वभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! अर्थात् वह वीतरागस्वरूप ही है, अभी, हों ! आहाहा ! वकीलजी ! ऐसी बात है।

कहते हैं कि अपने निज वैभव में कभी नजर नहीं की। निधान को कभी निरखा नहीं। अनादि काल से दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम वह मेरा काम है और मैं उसका कर्ता हूँ, इसमें रुककर अपनी निज सम्पदा का अनादर किया। समझ में आया ? आहाहा ! यह कर्ताकर्म अधिकार चलता है न ?

चाहे तो अशुभभाव हो या चाहे तो शुभभाव दया, दान, व्रत, तप के भाव हों। परन्तु वह मेरा कार्य है और मैं कर्ता हूँ, उसमें तेरी सम्पदा तू भूल गया है। समझ में आया ? भाई ! आहाहा ! यह कहते हैं। 'करे कर्म सो ही करतारा।' जो रागभाव, पुण्यभाव मेरा कार्य है और मैं करता हूँ, वह राग को करनेवाला अपनी चीज़ को भूल गया। आहाहा ! साधारण लोगों को... परन्तु भाषा तो सादी है, भगवान ! भाव भले ऊँचे हैं। आहाहा ! प्रभु ! तेरे घर की वस्तु की बात चलती है न, नाथ ! आहाहा !

कहते हैं कि तेरी निज सक्ष्मदा अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरपूर है। उसे भूलकर इस शुभभाव का कर्तृत्व मेरा और कार्य मेरा, यह अज्ञानभाव है। यह बात लोगों

को कठिन लगती है परन्तु क्या हो ? बापू ! प्रभु ! तू ऐसा है। तुझे तेरे वैभव की खबर नहीं है। परमात्मा... आहाहा ! भगवानरूप से बुलाकर इसे जगाते हैं।

मुमुक्षु : आप कहते हो, इसमें नहीं लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें क्या लिखा है, देखो !

'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि' क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा आनन्द आदि स्वस्वभाव और उसकी परिणति—उत्पाद, व्यय और ध्रुव तथा द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनों को परिणति कहते हैं, प्रभु ! परिणति शब्द से यहाँ अकेली पर्याय नहीं लेना। समझ में आया ? क्या है ? भाई ! है ? क्या है ? देखो ! दूसरी लाईन है। **'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन्'** है ? यह सेठ कहते हैं न, तुम कहते हो, वह बात कहाँ आयी ?

हाँ, स्व-परपरिणति में कितना डाला है, वह तो सुनो। सेठ पूछते हैं कि तुम कहते हो, (वह) इसमें कहाँ है ? भगवन्त ! तू एक बार सुन तो सही।

तू कहता है ? कि स्व और परपरिणति का ज्ञाता है। है ? आहाहा ! भाई ! जैनधर्म वीतराग का धर्म वस्तु का स्वरूप है। यह कोई कल्पित पक्ष-वाड़ा नहीं है। समझ में आया ? कहते हैं कि **'स्व-पर-परिणतिं जानन्'** आत्मा ज्ञाता होकर अपनी निज सम्पदा का जाननेवाला होकर.. यहाँ कर्ता-कर्म है न ? तो राग मेरा कार्य और मैं कर्ता हूँ—ऐसी बुद्धि छोड़कर... यहाँ लॉजिक से तो कहते हैं। और अपना आत्मा, अपनी स्वपरिणति—द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड; गुण अर्थात् अनन्त शक्तियाँ और पर्याय अर्थात् उसकी हालत-दशा। उसे परिणति कहते हैं। यहाँ अकेली पर्याय को परिणति नहीं कहते। और उत्पाद-व्यय-ध्रुव को भी परिणति कहते हैं। यहाँ तो उत्पाद यह लेना है... सूक्ष्म है, भगवान ! आनन्द की पर्याय का उत्पन्न होना, पूर्व की पर्याय का व्यय होना और ध्रुव आनन्दरूप कायम सदृश रहना, इन तीनों को परिणति कहते हैं।

अरे ! भाई ! ऐसे मनुष्य देह में परमात्मा की वास्तविक बात इसकी दृष्टि में न आवे तो भवभ्रमण नहीं टलेगा, नाथ ! चौरासी के अवतार, अरे ! चौरासी की अवधि, भवाब्धि। भवरूपी अब्धि संसार, समुद्र बड़ा है। इस चौरासी लाख में अवतार कर-करके (मर गया

है)। तेरे अवतार का अन्त तब आयेगा कि जब तेरी परिणति द्रव्य-गुण-पर्याय निर्मल है, उसका जाननेवाला है और परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय को भी जाननेवाला है। स्व-परपरिणति शब्द लिया है न? स्व-परपरिणति शब्द यह तो बहुत गम्भीर है, बापू! यह कोई कथा नहीं है। यह तो तत्त्व, अभ्यास, अध्यात्म के गहरे समुद्र में से मीठा पानी निकालते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी चीज़ ऐसी है कि स्व-पर की परिणति को जाननेवाला ज्ञाता, वह तेरी चीज़ है। है? **'स्व-पर-परिणतिं'** और वह प्रसिद्ध है। भाषा है?! **'इमां'** आहाहा! भगवान आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य और उसके अनन्त गुण-शक्ति और उसकी निर्मल परिणति, उस द्रव्य-गुण-पर्याय को परिणति कहते हैं अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रुव को परिणति कहते हैं। दोनों को (परिणति कहते हैं)। आहाहा! उस स्वपरिणति और परपरिणति को जाननेवाला आत्मा है। समझ में आता है न, भाई? जिनेश्वरदासजी नहीं आते? आहाहा! वे बहुत दिनों से नहीं आये।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया। दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। जिसे प्रवचन कहते हैं। प्र-वचन कहो या दिव्यध्वनि प्र-विशेष दिव्य आवाज कहो। समझ में आया? उस प्रवचन में, भगवान की वाणी में ऐसा आया कि प्रभु! तू तो ज्ञाता है न! तू राग का कर्ता और राग तेरा कार्य, यह तेरी चीज़ में नहीं है, नाथ! तू तुझे भूल गया। समझ में आया? आहाहा!

'स्व-पर-परिणतिं जानन्' आहाहा! एक शब्द तो देखो! कल एक घण्टे चला था। दो लाईन एक घण्टे चली थीं। ये तो नये लोग आये हैं न। कल भी यह चला था। दो लाईन में एक घण्टे, हों! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी, उसका भाव सन्त आड़तिया होकर जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। माल तो सर्वज्ञ का है। वीतरागी दिगम्बर सन्त... आड़तिया समझते हो? व्यापारी के बीच में माल की आप-लेनदारी करे। यह सन्त आड़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि प्रभु तो ऐसा कहते हैं। तेरा माल तो ऐसा है। आहाहा!

भगवन्त! तेरे स्वरूप में अनन्त आनन्द और ज्ञान स्थित हैं, नाथ! तू भूल गया है।

आहाहा! और एक समय की पर्याय को अपनी पूर्ण मानकर मिथ्यादृष्टि में चला गया। मिथ्या अर्थात् झूठी। असत्दृष्टि में चला गया। राग को अपना माना, यह तो और बड़ी भूल परन्तु अपनी एक समय की व्यक्त प्रगट पर्याय है, इतना मैं हूँ... प्रभु! तू तेरी चीज़ को भूल गया। इस पर्याय के अंश में तेरी चीज़ (आयी नहीं है)। समझ में आया? आहाहा!

जो द्रव्य वस्तु है, वस्तु, उसे अपनी परिपूर्ण चीज़ को न स्वीकार करके अनादि से अपनी एक समय की पर्याय की व्यक्तता, प्रगटता, अंश है, उसमें तेरी क्रीड़ा है। समझ में आया? उस पर्याय में तेरी क्रीड़ा है और पर्याय को ही अपना पूर्ण स्वरूप माना है। यह मिथ्याभ्रम है, अज्ञान है। आहाहा! और तू है कैसा? तेरी चीज़ में प्रभु! अनन्त आनन्द पड़ा है, तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

मृग की नाभि में कस्तूरी है, कस्तूरी की कीमत मृग को नहीं है। मृग की नाभि में, हिरण की नाभि में रही हुई कस्तूरी की सुगन्ध कहाँ से आती है? वह बाहर खोजने जाता है। अन्तर में कस्तूरी पड़ी है, उसकी कीमत नहीं है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ईश्वरता परिपूर्ण है, उसे तो तू मानता नहीं और पर्याय और राग को मेरा (निज) मानता है तो तू मृग जैसा है। कहो, धन्नालालजी! यहाँ तो ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

तू है कैसा? एक समय की पर्याय जितना नहीं, तो कैसा है? तू ऐसा है कि स्व-परपरिणति को ज्ञान, पर्याय में जाननेवाला ऐसा मैं हूँ। मेरे द्रव्य, गुण और पर्याय को परिणति कहते हैं और मेरे उत्पाद, व्यय और ध्रुव को परिणति कहते हैं। वह मेरी उत्पाद-व्यय-ध्रुव और द्रव्य-गुण-पर्याय को मेरे ज्ञान में मैं जाननेवाला। अपने द्रव्य को, गुण को और पर्याय को जाननेवाला हूँ। आहाहा! और परद्रव्य के द्रव्य-गुण और परद्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को मैं जाननेवाला हूँ। जैसे छह बोल इसमें हैं, वैसे छह बोल पर में। आहाहा! कहो, दशरथलालजी! मार्ग ऐसा है, भगवान! कठिन पड़े। क्या करे? क्या हो? हमारे पण्डित ज्ञानचन्द कहते थे कि अनजाने लोग बहुत आये हैं। परन्तु मैंने कहा—मार्ग तो जैसा है, वैसा आयेगा। अनजाने तो अनादि काल से हैं, प्रभु! अब इसका ज्ञान करना है या नहीं? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **'इमां स्व-पर-परिणतिं जानन् अपि' 'इमां'** है न ? अरे..! कहते हैं, प्रसिद्ध है न ? प्रसिद्ध है, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रुव प्रसिद्ध है और परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रुव प्रसिद्ध है। आहाहा! ऐसा धर्म। इसकी अपेक्षा तो दया पालो, व्रत करो, अपवास करो यह सीधा था, लो! यह धूल में भी धर्म नहीं। वह तो राग है। और पर की दया पाल सकता हूँ, ऐसी मान्यता, वह मिथ्या भ्रम है। दया का भाव आता है, परन्तु वह तो राग है। आहाहा! निश्चय में तो वह राग अपने स्वरूप की हिंसा है। वह आता है। जब तक वीतरागता न प्रगटे, तब तक ज्ञानी को भी राग आता है। परन्तु मानता है कि यह राग दुःख है। समझ में आया ? उसका भी मैं तो जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं। आहाहा! भाई! यह वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव की वाणी, उनके पाट पर बैठकर दूसरी बात करना... ? आहाहा! है ? आहाहा!

कहते हैं, देखो! टीकाकार राजमल टीका करते हैं। कलश अमृतचन्द्राचार्य के हैं। राजमल टीका करते हैं। इसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदास ने इसमें से समयसार नाटक बनाया है। तो कहते हैं कि **'इमां' प्रसिद्ध है ऐसे अपने और समस्त ज्ञेय-वस्तु के...** देखो! समस्त ज्ञेय... आहाहा! अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद के जीव, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय तथा उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव... आहाहा! उन **समस्त ज्ञेय-वस्तु के... अपने और समस्त ज्ञेय-वस्तु के (परिणतिं) द्रव्य-गुण-पर्याय का अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का ज्ञाता है।**

भगवान आत्मा तो ऐसा है। परमेश्वर फरमाते हैं। त्रिलोकनाथ इन्द्र और गणधरों के बीच महाविदेह में प्रभु की वाणी निकलती है, वह वाणी यह है। आहाहा! भगवन्त! तू कैसा है ? तेरा स्वभाव कैसा है ? कि स्व-परपरिणति। स्व के द्रव्य-गुण-पर्याय, स्व के उत्पाद-व्यय-ध्रुव, पर के द्रव्य-गुण-पर्याय, केवली की पर्याय, अनन्त सिद्धों की पर्याय... आहाहा!

मुमुक्षु : जाननेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेवाला है। आहाहा! प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप है न। चिद्रूपम्।

ज्ञान का रूप, तेरा स्वरूप, ज्ञान का रूप तेरा स्वरूप है। भाषा सरल है परन्तु भाव तो (गम्भीर है)। अनन्त काल हुआ, 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान।' इस स्वरूप के भान बिना चार गति में भटकता है। वह अपने अपराध से भटकता है, हों! कर्म के कारण से नहीं। 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' आता है। चन्द्रप्रभु भगवान की स्तुति में आता है। 'कर्म बेचारे कौन?' कर्म तो जड़, अजीव है। वह है या नहीं, इसकी उसे खबर नहीं है। शररी है या नहीं, वह शरीर को खबर है? वह तो मिट्टी-धूल है। वह है, उसे जाननेवाला तो ज्ञान है। आहाहा! और मैं हूँ, उसका जाननेवाला भी ज्ञान है। आहाहा! भाई! मार्ग तो बहुत सूक्ष्म है। अपूर्व तत्त्वज्ञान, जैनदर्शन के तत्त्वज्ञान की अलौकिक बात है। जैन परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसी चीज़ दुनिया में कहीं है नहीं। समझ में आया? अरे! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में नहीं है तो फिर दूसरे अन्यमत में तो कहाँ से होगी? प्रभु!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर-दिगम्बर में थोड़ा-बहुत अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। उगमणा-आथमणो समझते हो? पूर्व-पश्चिम। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप बदलकर निकले हैं (श्वेताम्बर) दो हजार वर्ष पहले (निकले हैं)। यह लोगों को दुःख लगता है परन्तु सत्य तो यह है। कहो, नन्दकुमारजी! यह तो दिगम्बर सन्त परमात्मा की वाणी और परमात्मा का अनुभव करके कहते हैं। आहाहा! स्व-परपरिणति... आहाहा! कहो, सेठ! कहाँ से कहा? उसमें आया? स्व-परपरिणति प्रसिद्ध है। वह स्व-परपरिणति प्रसिद्ध है, उसका ज्ञाता है। प्रसिद्ध है, उसका ज्ञाता है। है, उसका ज्ञाता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान! जिनवाणी बहुत सूक्ष्म है। जिनवाणी का भाव समझना, तब तो न्याल हो जाए। आहाहा!

अभी तो ऐसा कहते हैं न कि शुभभाव करो। करते-करते धर्म होगा। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (आदि) शुभभाव करो। यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! शुभभाव, वह तो राग है। राग का भी जाननेवाला आत्मा है, राग का कर्ता (आत्मा) नहीं। आहाहा! गजब पहलू बदलना। यह नींद में सोते हैं न? एक बाजू सोता हो तो इस बाजू सोवे। करवट बदलता है। इसी प्रकार पर्यायबुद्धिवाले को अन्दर पहलू बदलना है, अन्दर त्रिकाली की बुद्धि

करनी है। यह तो कहे राग करो, ऐसा करो और वैसा करो। प्ररूपणा भी ऐसी चलती है, प्रभु! क्या करे?

मुमुक्षु : तगड़ा शुभभाव होवे तो विदेहक्षेत्र जा सकें, वहाँ से हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में नहीं। अनन्त बार महाविदेह में गया। सुना नहीं? परमात्मप्रकाश में कहा है। साक्षात् त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव समवसरण में विराजते हैं, वहाँ अनन्त बार जन्मा है और समवसरण में अनन्त बार गया है। भगवान की पूजा, समवसरण में साक्षात् तीर्थंकर की पूजा मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल, कल्पवृक्ष के फूल से जय भगवान... ऐसा तो अनन्त बार किया है। वह तो शुभभाव है। महाविदेहक्षेत्र में तो अनन्त बार जन्मा है। बाकी है? ४५ लाख योजन में एक-एक कण में अनन्त बार जन्मा है। तो वहाँ अनन्त बार जन्मा है। वहाँ तो भगवान शाश्वत् विराजमान हैं। त्रिलोकनाथ परमेश्वर और लाखों केवलियों को कभी विरह नहीं है। अरे! भरतक्षेत्र में प्रभु का विरह पड़ा। परमात्मा का यहाँ विरह है। महाविदेह में तो (परमात्मा) शाश्वत् विराजमान हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वहाँ गये, सब क्रिया की, तो भी क्या कसर रह गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी दृष्टि बदली नहीं। समझ में आया? अनन्त बार सुना, अनन्त बार पूजा की। वह तो परद्रव्य की पूजा जो शुभभाव है।

मोक्षपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य भगवान कहते हैं, **'परदव्वादो दुग्गई'** आहाहा! परद्रव्य भगवान है, उस ओर लक्ष्य करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। दुर्गति का अर्थ राग, वह दुर्गति है। तेरी चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! नन्दकुमारजी! मोक्षपाहुड़ है, अष्टपाहुड़। अष्टपाहुड़ है यहाँ? यह मोक्षपाहुड़। मोक्षपाहुड़ न? कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा **'परदव्वादो दुग्गई'**। गजब बात है न। तीर्थंकर कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखने से तुझे राग होगा। तेरी चैतन्य की परिणति में वह दुर्गति है। गति नहीं। **'परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई'** अष्टपाहुड़ है, उसमें १६वीं गाथा है।

मुमुक्षु : बहुत कठिन बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु : यह पुस्तक तो सोनगढ़ से प्रकाशित हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ का है? प्रकाशित चाहे जहाँ से हो परन्तु वाणी किसकी है?

मुमुक्षु : सोनगढ़ से प्रकाशित हुई है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ प्रकाशित हुई है। कहाँ छपाया है, इसकी मुझे बहुत खबर नहीं। कहाँ छपाया? यहाँ?

मुमुक्षु : किशनगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री : किशनगढ़ छपाया है, लो ठीक! हमें तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में तो स्पष्टीकरण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण होता है, लो सेठ कहता है।

प्रभु! एक बार सुन तो सही। यहाँ तो तीन लोक के नाथ की वाणी में कुन्दकुन्दाचार्य इस वाणी द्वारा कहते हैं कि प्रभु ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू सुन तो सही। हम तो तुझसे परद्रव्य है न, और परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य जाएगा तो तुझे राग होगा और चैतन्य परिणति नहीं होगी। राग आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक ज्ञानी को राग आता है परन्तु वह दुःखरूप और हेय है।

मुमुक्षु : मूल दृष्टि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूल दृष्टि की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऊँची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची अर्थात् यही है। यही सत्य है, भाई!

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य १६वीं गाथा में कहते हैं। समझ में आया? १३वीं गाथा में है, **'परदव्वादो बज्झदि वरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं' 'परदव्वादो'** परद्रव्य में लक्ष्य जाने से राग होता है तो कर्मबन्ध होगा। यह अष्टपाहुड़ है।

यहाँ छपाया है। छपाया चाहे जहाँ हो परन्तु वाणी किसकी है, वह लेना चाहिए।

अरेरे! हरिजन के घर में छपाये। उसमें क्या हुआ? किसके घर की चीज़ है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, स्व-परपरिणति प्रसिद्ध है। आहाहा! क्या कहते हैं? अपना द्रव्य जो वस्तु और गुण जो शक्ति और पर्याय-अवस्था, वह प्रसिद्ध है। है, प्रसिद्ध है। और अपने आत्मा में उत्पाद-व्यय और ध्रुव। नयी अवस्था उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का व्यय होना, सदृशरूप ध्रुव का रहना, वह प्रसिद्ध है। एक बात। और परमात्मा के अतिरिक्त परज्ञेय जो है, उनके भी द्रव्य-गुण-पर्याय प्रसिद्ध है और उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव प्रसिद्ध है। दोनों को जाननेवाला भगवान ज्ञाता है। यह तो कल चल गया है, वापस दूसरे प्रकाश से चला है। यह तो चीज़ ऐसी है। सागर-समुद्र है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्तों की वाणी तो समुद्र है। आहाहा! 'सहेजे समुद्र उलस्यो जेमां रतन तणाणा जाये।' समुद्र उल्लसित हुआ, उसमें रत्न आये रत्न। 'भाग्यवान कर वावरे अेनी मोतिअे मुठीयुं भराय।' भगवान हो, उसकी मुट्ठी मोती से भरती है। भाग्यहीन वावरे तो उसकी मुट्ठी शंख से भरती है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! अरेरे! जन्म-मरण करके... अभी तो ऐसा सुनते हैं कि किसी को कैंसर हुआ, गला ऐसा हुआ और सड़ गया। आहाहा! हार्टफेल। २५-२५ वर्ष के युवक, हार्टफेल। देह की स्थिति पूरी होने में वह तो निमित्त है। देह की स्थिति पूरी होने का वही काल था। समझ में आया? आहाहा!

एक बालक की बात है न? २६ वर्ष का युवक था। २६ वर्ष का युवक। अमेरिका में। अमेरिका में अपने काठियावाड़ी था। क्या कहलाता है? जलगाँव। वजुभाई का भानेज। वजुभाई की बहिन का लड़का। २६ वर्ष की उम्र। अमेरिका में ९० प्रतिशत से पास। इतने लाखों लोग अमेरिका में। ऐसी बुद्धि। ९० प्रतिशत समझे? ९० नम्बर से-प्रतिशत से पास। उन लोगों ने कहा, हम तुम्हें नहीं जाने देंगे। हमें तुमको मान देना है। मान-सम्मान बहुत किया। वह सब सामान बाँधकर तैयार हो गया। भाई के पास यहाँ काठियावाड़ में विवाह करने के लिये आनेवाला था। ग्यारह बजे तक अमेरिका के लोगों ने मान-सम्मान बहुत किया। तत्पश्चात् सो रहा था और देखा तो सवेरे मर गया। लोगों का मान इतना... ओहो! काठियावाड़ी व्यक्ति अमेरिका में ९० प्रतिशत से पास! बहुत बुद्धि।

लोगों ने बहुत सम्मान दिया। और सवेरे तैयारी कर रखी थी। अमेरिका में उसका दूसरा भाई है, उसके पास जाकर यहाँ आनेवाला था। सवेरे देखा वहाँ देह समाप्त हो गयी। हार्टफेल हो गया। आहाहा! देह की स्थिति, प्रभु! यह जिस स्थिति से पूरी होनेवाली होगी, उस समय में होगी। इन्द्र भी कोई एक समय बढ़ा सके (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

करने का काम तो यह है। मैं तो स्व-परपरिणति का जानने-देखनेवाला ज्ञाता हूँ। पर की परिणति को करनेवाला और यह कार्य मेरा, ऐसा तो है नहीं... आहाहा! परन्तु मेरी परिणति का कार्य मेरा और मैं कर्ता, यह भी व्यवहार से है। क्या कहा? समझो, प्रभु! मेरी धर्म की परिणति जो हुई, ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय हुई, वह मेरा कार्य और मैं कर्ता, यह भी उपचार से है। क्योंकि द्रव्य, पर्याय का कर्ता नहीं है। पर्याय का कर्ता पर्याय है तो द्रव्य को कर्ता कहना, वह उपचार-व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? नहीं समझ में आता, ऐसा न मानना, प्रभु! आत्मा तो केवलज्ञान की लेने की तैयारीवाला, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेता है न, नाथ! तो मैं नहीं समझ सकूँगा, ऐसा नहीं मानना। समझ में आया? मैं नहीं समझ सकूँगा, यही इसी समझने नहीं देता। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञाता है। लो! यहाँ तक तो कल आया था। आज पौन घण्टे चला। आहाहा! **तो फिर कैसा है पुद्गल?** है? **(जीव तो) ऐसा है।** है? जीव तो ऐसा है, आत्मा तो ऐसा है कि अपनी परिणति द्रव्य-गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रुव को जानता है, बस। जानता है। और परद्रव्य-गुण-पर्याय तथा परद्रव्य को जानता है, बस। ऐसा आत्मा है। पर का कुछ कर सके, पर का कार्य (करे), ऐसा उस चीज़ में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! भाषा तो सादी है। यह कोई संस्कृत और व्याकरण बड़ी-बड़ी, ऐसी कोई चीज़ नहीं है और न समझ में आये, ऐसा नहीं है। समझ सकता है, प्रभु! तेरी शक्ति बड़ी है। तू परमात्मा की शक्ति से भरपूर है। आहाहा!

तो फिर कैसा है पुद्गल? यहाँ तो दया, दान के परिणाम भी पुद्गल में लेना है। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन, वह तो पुद्गल जड़ है। वह तो मिट्टी-धूल है, अजीव है परन्तु अन्दर कर्म है, वह भी अजीव पुद्गल है। वह तो है परन्तु अन्दर में पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उन्हें भी यहाँ पुद्गल कहा। क्योंकि अचेतन है। शुभ-अशुभभाव में चेतन

का अंश नहीं है। वह जड़ है तो वह अपने को जानते नहीं, पर से ज्ञात होनेवाली चीज़ है तो वह जड़ है। भाई! समझ में आया? फिर से।

मुमुक्षु : रागादि भाव पुद्गल?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुद्गल है, ऐसा यहाँ कहते हैं। पुद्गल की व्याख्या—जो शुभ-अशुभभाव है, वह राग है और राग स्वयं को नहीं जानता और राग चैतन्यस्वरूप भगवान है, उसे भी नहीं जानता, राग चेतन द्वारा जानने में आता है, इसलिए राग अचेतन है। लॉजिक से थोड़ा... आहाहा! उसमें तो अजीव कहा। शास्त्र में राग को अजीव कहा है, पुद्गल कहा है, अचेतन कहा है, मैल कहा है, दुःख कहा है। यह बात कल आयी थी। ७२ गाथा में।

भगवान आत्मा... ऐसा कहकर बुलाया है। राग, वह अशुचि है। चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम हों, परन्तु राग, वह अशुचि है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। और राग, वह जड़ है। उसमें चैतन्य के प्रकाश का अंश नहीं है। वह अन्ध है। ऐसी बात सुनने को मिलना कठिन है, भगवान! क्या हो? यह राग दुःख है। तीन बोल लिये हैं। ७२ गाथा में कहा है। समयसार की ७२वीं गाथा। दया, दान, व्रत, भक्ति का राग है, वह अशुचि है, जड़ है और दुःख है। भगवान आत्मा निर्मलानन्द शुचि है, चैतन्यस्वरूप है और आनन्दस्वरूप है। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! यहाँ तो कायर का काम नहीं है। आहाहा! वीर का मार्ग वीरों के लिये है। कहो, राग की मन्दता करे तो दान के भाव होते हैं, अभिमान के लिये करे तब तो पाप है। पाँच लाख, दस लाख पैसा (रुपया) देना, उसमें राग मन्द करे तो पुण्य है और पुण्य है, वह अचेतन है। आहाहा! गजब बात है।

बाल की खाल। यह बाल होता है न बाल? बाल में ऐसा होता है। यह बाल है न? उसमें छोर में दो भाग होते हैं। हमने तो सब देखा है न! एक-एक चीज़ को नजर से देखकर निर्णय किया है। हम एक बार जंगल में बैठे थे तो बाल तोड़कर देखा तो बाल के सिरे में दो भाग थे। छेड़े समझे? चीरे तो चीर न सके। वह बाल। बाल के सिरे में दो भाग थे। आहाहा! बाल की छाल।

यहाँ तो राग और भगवान दोनों भिन्न हैं। आहाहा! राग को भी परद्रव्य के गुण-

पर्यायरूप से जानता है। आहाहा! यह कर्ता-कर्म अधिकार है। समझ में आया? भाई! परमात्मा जिनेश्वरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, प्रभु! और जिसका फल भी अनन्त आनन्द। जिसमें अनन्त आनन्द सर्वज्ञ परमात्मा हुआ जाए, उसका उपाय कैसा होगा! लोग तो बाहर से मांडकर बैठे हैं, अपने यह व्रत करते हैं, अपवास करते हैं, वह धर्म। प्रभु! तू भ्रमणा में भगवान को भूल गया। समझ में आया? आहाहा!

तो फिर कैसा है पुद्गल? वही कहते हैं-'इमां स्व-परपरिणतिं अजानन्' आहाहा! **प्रगट है...** वह प्रगट है, ऐसा कहते हैं। **ऐसे अपने और अन्य समस्त परद्रव्यों के द्रव्य-गुण-पर्याय आदि को नहीं जानता है,...** राग और शरीर अपने को नहीं जानते और पर को भी नहीं जानते। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प उठता है, राग, वह तो अपने को भी नहीं जानता और ज्ञातास्वरूप अन्दर चैतन्य है, उसे भी नहीं जानता। तो निश्चय में अपने स्वभाव की अपेक्षा से राग को भी अचेतन पुद्गल कहने में आया है। आहाहा! निकल जाता है न, छूट जाता है न? सिद्ध होवे तो फिर पुण्यभाव रहता है? इसका होवे तो रहे, इसका है कहाँ? आहाहा! पोपटभाई! ऐसा सूक्ष्म है। मुम्बई-बुम्बई में मिले, ऐसा नहीं है। यह करोड़पति है। मुम्बई में सब बड़ा धन्धा है। यह भी करोड़पति है। दो करोड़पति सेठिया बैठे हैं। ये सागर के हैं। सागर... सागर। बीड़ीवाले। ये हमारे वढवाण के हैं।

मुमुक्षु : पहले गुणगान करते हो, फिर धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है। महिमा कौन करता है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत है, वह धूल है, मिट्टी है। यह शरीर धूल है, यह मिट्टी है। प्रभु! यह तो अजीव है। आहाहा! एक बार इसकी श्मशान की राख होगी। अग्नि-अग्नि निकलेगी। यह तो मिट्टी-धूल है। राग को जहाँ अचेतन कहा तो शरीर की तो क्या बात करना? प्रभु! आहाहा!

ऐसा है पुद्गलद्रव्य। वह नहीं जानता अपने को, नहीं जानता पर को। **ऐसा है पुद्गलद्रव्य।** है इसमें? **भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य ज्ञाता है, पुद्गलकर्म ज्ञेय**

है... आहाहा! भगवान तो जानने-देखनेवाला प्रभु है और रागादि, पुद्गल शरीरादि तो ज्ञेय है। परज्ञेयरूप से है। आहाहा! स्वज्ञेयरूप से भगवान आनन्द प्रभु आत्मा है और परज्ञेयरूप से तो यह पुद्गल रागादि परज्ञेय है। पररूप से जाननेयोग्य ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, व्यवहार है। आहाहा!

ऐसा जीव को कर्म को ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध है,... आहाहा! ऐसा जीव को और कर्म जो जड़ है, उसे ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। आहाहा! वह जड़कर्म ज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक है। आहाहा! यह भी व्यवहार है। अपना स्वरूप अपना ज्ञेय और अपना स्वरूप अपना ज्ञान और अपना स्वरूप अपना ज्ञायक। यह ज्ञायक, ज्ञेय और ज्ञान अपना है, वह निश्चय है और रागादि परज्ञेय, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी निकली है।

तथापि व्याप्य-व्यापकसम्बन्ध नहीं है;... क्या कहा? कि जितने प्रमाण में राग होता है, उतने प्रमाण में सामने कर्म बँधते हैं। ऐसा होने पर भी कर्म की पर्याय व्याप्य और आत्मा कर्ता-व्यापक—ऐसा है नहीं। व्याप्य अर्थात् पर्याय—कार्य और व्यापक अर्थात् कर्ता-द्रव्य। तो कर्म की पर्याय यहाँ जितने पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उस प्रमाण में परमाणु में कर्म की अवस्था होती है, तो वह कर्म की अवस्था व्याप्य-कार्य और आत्मा कर्ता, ऐसा नहीं है। आहाहा! जितने प्रमाण में राग-द्वेष होते हैं, उतने प्रमाण में कर्म परमाणु होते हैं, तथापि वे व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा है नहीं। वह कार्य और आत्मा कर्ता, ऐसा नहीं है। आहाहा! तो यह दुनिया और शरीर की क्रिया, वाणी, धन्धा उस पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। है? आहाहा!

मुमुक्षु : व्याप्यव्यापकपना नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... से कहा। आहाहा!

कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव? अब कहते हैं कि अन्दर भेदज्ञान किया, वह चीज़ कैसी है? यह विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक १२-०८-१९७७
कलश-५०-५१, प्रवचन-६५

यह कलशटीका का कर्ताकर्म अधिकार का ५०वाँ श्लोक है। उसकी अन्तिम दो लाईनें बाकी हैं। इस अधिकार में क्या चलता है ? कि आत्मा है। जो कर्म की पर्याय होती है, जितना यहाँ आत्मा राग-द्वेष करे, उतना ही कर्म की पर्याय में बन्धनरूप होता है, परन्तु उस पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया ? जितने पुण्य और पाप के भाव अपनी पर्याय में विकार का कार्य स्वतन्त्र जीव करता है, उस समय में कर्म की पर्याय जो कर्मवर्गणा थी, वह कर्मरूप हुई। उस पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। और आत्मा व्यापक होकर वह कर्म की पर्याय व्याप्य अर्थात् कार्य हो—ऐसा नहीं है। आहाहा! निकट में भी जितने प्रमाण में विकृत हो, उतने प्रमाण में परमाणु की कर्मरूप अवस्था होती है, उस अवस्था का भी कर्ता नहीं है, तो इस शरीर, वाणी, मन और लक्ष्मी जड़ आदि धूल बाहर (में है) उसकी अवस्था आत्मा करे और उसका कर्ता, यह तो तीन काल में नहीं है। समझ में आया ?

यह कहते हैं जरा। ऐसी दो चीज भिन्न है। कर्म और आत्मा दोनों चीज़ भिन्न है। कर्म से विकार होता है, ऐसा भी नहीं। कर्म परमाणु है, वह व्यापक होकर, कर्ता होकर जीव के विकार परिणाम कर्म से होते हैं, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि कर्म व्यापक और विकार व्याप्य, ऐसा वह नहीं है। सूक्ष्म है। कल आया है। यह तो सम्प्रदाय में पहले से चलता है कि कर्म से विकार होता है। कल आया है। ज्ञानमति है। दिल्ली में... आत्मा में जो बिगाड़ होता है, वह कर्म से होता है। यह बात एकदम झूठी है। क्योंकि कर्म की पर्याय जड़-परमाणु की अवस्था है और विकारी अवस्था आत्मा की उल्टी अवस्था स्वयं में है। उस अवस्था का व्याप्य और आत्मा व्यापक, विकार पर्याय का व्याप्य अर्थात् कार्य और आत्मा कर्ता, यह बराबर है। और कर्म जो है, वह व्यापक होकर जीव का विकार-व्याप्य करे, ऐसा है नहीं। अरेरे! ऐसी बातें। समझ में आया ? आहाहा!

जैसे यह शरीर चलता है, देखो! तो इसका व्याप्य कार्य जड़ का है। व्यापक वह

परमाणु रजकण है। व्यापक अर्थात् कर्ता और व्याप्य अर्थात् पर्याय-अवस्था-कार्य। वह जड़ की अवस्था ऐसे होती है, उसमें परमाणु का जो व्याप्य (अर्थात्) परमाणु का कार्य (होता) है, वह परमाणु उसका व्यापक-कर्ता है। आत्मा अँगुली को हिला सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा निकल जाने के पश्चात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मुर्दे में परमाणु की पर्याय नहीं होती? अभी भी उसे अवस्था होती है। यह शरीर मुर्दा ही है। कर्ता-कर्म (अधिकार की) ९६ गाथा में ऐसा कहा है कि 'मृतक कलेवर में अमृत सागर भगवान मूर्छित हुआ है।' ऐसा आया है। समयसार की ९६वीं गाथा। यह तो मृतक कलेवर है। यह रजकण है, वह तो मृतक कलेवर है। उसमें चैतन्य तो नहीं। परमाणु में चैतन्य नहीं। चैतन्य तो अन्दर भिन्न चीज़ है। इस मृतक कलेवर में अमृत सागर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर स्वयं को भूलकर शरीर मृतक है, उसमें मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! तथापि मूर्च्छा का व्याप्य आत्मा का कार्य है, वह कर्म का दर्शनमोह उदय हुआ, इसलिए ऐसी मूर्च्छा हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! अन्तर में भेद करने की बात बताते हैं।

कर्म की पर्याय कर्म में होती है तो व्याप्य-व्यापकपना तो पुद्गल में व्याप्य-व्यापक है। आत्मा उसका व्याप्य अर्थात् कर्म की पर्याय का कर्ता (और) आत्मा व्यापक, ऐसा नहीं है। और कर्म व्यापक और आत्मा की विकारी पर्याय उसका व्याप्य, ऐसा भी नहीं है। बहुत गड़बड़ है। यह प्रश्न बीस वर्ष पहले वर्णीजी के साथ चला था। यह बात वापस कल आयी है। एक आर्यिका पुस्तक बाहर प्रकाशित करती है न? ज्ञानमति, दिल्ली। यहाँ का विरोध करती है, एकान्त है। ऐसा कि व्यवहारनय से आत्मा का विकार कर्म से होता है।

मुमुक्षु : व्यवहारनय से होता है, इसका...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ कि नहीं होता। आहाहा! उसने लिखा है, भाई! तू भटकता है, तेरा बिगाड़ कर्म से हुआ है। धूल में भी नहीं। आहाहा! दृष्टि एकदम विपरीत है। अपनी विकारी पर्याय का कर्ता कर्म और कर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा, (ऐसा

माननेवाले) मिथ्यादृष्टि हैं। देवीलालजी! समझ में आया? आहाहा!

यह जड़, मिट्टी परमाणु है। इसकी जो अवस्था है, उस अवस्था का व्याप्य पर्याय वह परमाणु है। यह मिट्टी के परमाणु व्यापक होकर यह अवस्था हुई है। आत्मा से नहीं। आहाहा! और आत्मा में जो विकृतभाव होता है, वह कर्म से होता है, ऐसी बात नहीं है। जैन में तो कर्म बहुत घुस गया है। दुनिया ने ईश्वरकर्ता मान लिया। जैन में कर्म कर्ता मान लिया। ईश्वर तो अभी चेतन है और कर्म तो जड़ है। आहाहा! जड़ आत्मा को भटकाता है और जड़ से आत्मा में नुकसान होता है... आहाहा!

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक का भाव अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। दिगम्बर सन्त अर्थात् ओहोहो! अल्पकाल में केवलज्ञान लेने की उनकी तैयारी है। पंचम काल था तो मुक्ति-केवलज्ञान है नहीं, तो केवलज्ञान लेने की तैयारी होकर स्वर्ग में गये हैं और वहाँ से निकलकर मुनि होकर केवलज्ञान लेकर सन्त मोक्ष में जाएँगे। यह कुन्दकुन्दाचार्य आदि। आहाहा! उनकी यह वाणी है। आहाहा! भगवन्त! कहते हैं... यह अन्तिम दो लाईनें बहुत सूक्ष्म हैं। जब अपना आत्मा कर्म की पर्याय का कर्ता नहीं और कर्म की पर्याय अपनी विकारी पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा भेदज्ञान करो, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह तुम्हारे टाईल्स-फाईल्स का तो कहीं रह गया। वहाँ रह गया। टाईल्स का बड़ा (कारखाना) है। पन्द्रह लाख, बीस लाख का बड़ा है। हम 'थान' में उतरे थे न? 'थान-थान' न? क्या कहलाता है? 'थाणा'। 'थान' तो गुजरात में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एकपना नहीं है। कर्म की जड़ पर्याय और आत्मा की विकृत पर्याय, दोनों एक नहीं है। दोनों अत्यन्त भिन्न है। यहाँ तो कहते हैं कि जब दोनों भिन्न है तो कर्म की पर्याय से अपने को भिन्न करने में क्या है? भेदज्ञान। वह भेदज्ञान यहाँ बताते हैं।

कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव? अन्तिम शब्द है। आहाहा! उस कर्म से अपने द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न है। ऐसा पर से भिन्न भेदज्ञान, जो अनन्त काल में किया नहीं। आहाहा! वह कर्म से भिन्न करने में जब कर्म से भिन्न मैं चीज़ हूँ—ऐसा भेद करने से राग से भी भिन्न हो गया। क्या कहा? कर्म जो जड़ है, उसकी पर्याय वह मेरा कार्य नहीं है और

कर्म का कार्य मेरा विकार नहीं है। ऐसा जब कर्म से भिन्न अन्दर पड़ता है, आत्मा की ओर ढलता है, तो कर्म से भिन्न पड़ता है। कर्म से भिन्न होते समय राग से भी भिन्न हो गया। समझ में आया? दोनों ओर का लक्ष्य छूट गया। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन की—भेदज्ञान की बात है।

'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन' अभी तक जितने परमात्मा सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं। **'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन'** जितने परमात्मा सिद्ध हुए, वे भेदज्ञान से हुए हैं। **'अस्यैवाभावतो बद्धा'** कर्म से बँधे हैं, ऐसा नहीं लिया। भेदज्ञान के अभाव से बन्ध में पड़ा है। समझ में आया? **'अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन'** निगोद से लेकर जितने आत्मा भावबन्धन में हैं, वे अपने भावबन्धन से भिन्न नहीं होकर भावबन्धन है। वे अपने पुरुषार्थ की उल्टी दशा से भावबन्धन में हैं। कर्म से नहीं। आहाहा! अरे! अब ऐसा सूक्ष्म, यह कहते हैं, देखो!

कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव? ज्ञया कहते हैं? कर्म के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर, जो अनादि का कर्म के ऊपर लक्ष्य है, वह लक्ष्य छोड़कर चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्दमूर्ति ज्ञायक प्रभु है, उस ओर लक्ष्य जाता है, तब कर्म से भिन्न पड़ता है और राग से भी भिन्न पड़ता है और अपने आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! इसका नाम भेदज्ञान कहा जाता है। कहो, नन्दकिशोरजी! कल नन्दकुमार कहा था। कुमार युवावस्था है। आत्मानन्द की युवा अवस्था। आहाहा!

शास्त्र यह कहते हैं कि आत्मा राग की एकताबुद्धि करता है, तब तक बालक-अज्ञानी है। शरीर की बाल, युवा, वृद्धावस्था आत्मा में नहीं है। परन्तु यह आत्मा अपना चिदानन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द के नाथ को छोड़कर दया, दान, व्रतादि के विकल्प के साथ एकत्वबुद्धि करता है, वह उसकी बाल अवस्था है। भाई! वह बहिरात्म अवस्था-बाल अवस्था है। आहाहा! और जब कर्म से और राग से भिन्न अपनी चीज़ को जाना, वह आत्मा की अन्तरआत्म अवस्था है, वह युवावस्था है। समझ में आया? यह बाहर की युवावस्था तो जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा! क्षण में पलट जाती है, क्षण में राख हो जाती है। अभी तो बहुतों को हार्टफेल होता है न। आहाहा! जवान मनुष्य। एक व्यक्ति बात करता

था। भाई कहता था। कैसा तुम्हारे? मलकापुर। नेमचन्दभाई कहाँ गये? वह मलकापुर में एक है न। एक भाई कहता था। कपड़े का व्यापारी। अपना जवान व्यक्ति, नहीं? कपड़े का व्यापारी है न। मोक्षमार्गप्रकाशक का बहुत अभ्यास है। उसका नाम क्या? हुकमचन्द!

मुमुक्षु : स्वरूपचन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वरूपचन्द। वह कहता था कि उसका कोई मित्र था। हम दोनों साथ में बैठे थे। यह स्वरूपचन्द कहता था। दोनों साथ में बैठे थे। दोनों जवान आदमी। बातचीत करते-करते फू... बस। इतना हुआ, वहाँ देह छूट गयी। स्वरूपचन्द कहता था। उसका कोई मित्र था। आहाहा! मलकापुर। परन्तु यह तो मिट्टी, धूल है, भगवान! इसकी अवस्था (बदलने में) समय लगता ही नहीं। एक समय में समयान्तर होकर एकदम (पृथक्) हो जाता है। यह क्षेत्र से तो भिन्न है परन्तु क्षेत्र से दूर होने की एक समय की स्थिति है। आहाहा! हार्टफेल। आहाहा! प्रभु! तेरा हार्टफेल हो गया है। राग और कर्म की पर्याय वह मेरा कार्य, इस चैतन्य में हार्टफेल हो गया है। धन्नालालजी! अब हार्टफेल को एक बार छोड़, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या करना?

कैसा है भेदज्ञानरूप अनुभव? आहाहा! कर्म का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि लगाकर भेदज्ञानरूप अनुभव हुआ, आनन्द का अनुभव हुआ। जो राग की एकता में राग का—आकुलता का अनुभव था, अनादि संसार में कर्मचेतना का अनुभव था। समझ में आया? कर्मचेतना अर्थात्? कर्म अर्थात् जड़, वह नहीं। राग। राग, उस विकारी कार्य की चेतना में अनादि से क्रीड़ा करता है, वह कर्मचेतना में रमना और एकत्वबुद्धि में रहना, वही संसार, बाल अवस्था, बहिरात्म अवस्था, मूढ़ अवस्था है। चाहे तो राजा हो, या अरबोंपति हो, सब मूरख और मूढ़ है। आहाहा! समझ में आया? और जब उसका भेदज्ञान करे... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! यह कर्म के ऊपर जो अनादि का लक्ष्य है और अपने लक्ष्य से च्युत है, वह पर के लक्ष्य से च्युत होकर... आहाहा! अपने आनन्द ज्ञायकस्वरूप में एकाग्र होता है तो उसे भेदज्ञान होता है। तब उसे राग से भिन्न आत्मा का अनुभव होता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। समझ में आया? आहाहा! अब भेदज्ञान कैसे करते हैं?

'अयं क्रकचवत्' है न शब्द ? वहाँ जरा **'अदयं'** चाहिए। **'अयं'** में एक **'द'** बीच में डाल देना चाहिए। यह भूल हुई है। छापने में भूल हुई है। पाठ में है, देखो! **'क्रकचवददयं'** चौथा पद है। है न ? ५०। **'क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः'** आहाहा! क्या कहते हैं ? **'अयं'** में **'द'** चाहिए। निर्दय रीति से राग और कर्म से आत्मा अपने को भिन्न करता है। दया नहीं रखता। किसी को निर्दय रीति से काटते हैं न ? बकरे को। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! कर्म की ओर लक्ष्य है, उसे निर्दय से अपने लक्ष्य में जोड़ता है। दया नहीं करता कि अरेरे! अनादि का सम्बन्ध है, उसे कैसे तोड़ूँ ?

परमात्मप्रकाश में ऐसा कहा है। राग अपना है, ऐसा बन्धुरूप से माना है, उस बन्धु को मारना। बाँधव है। अनादि से राग के साथ है न ? विकार का, पुण्य-पाप का, मिथ्यात्व का भाव अनादि का बन्धुरूप से है। बन्धु को छेदनेवाला धर्मात्मा है। समझ में आया ? आहाहा! धीरे से समझना, भगवान! यह तो अनन्त काल में भेदज्ञान हुआ नहीं, वह चीज़ है। चाहे तो शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान किया, नौ पूर्व पढ़ा परन्तु भेदज्ञान नहीं किया। समझ में आया ? और भेदज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना मोक्ष का मार्ग नहीं खिलता। मोक्षमार्ग में आये बिना मोक्ष नहीं होता। आहाहा!

'अदयं क्रकचवत् सद्यः भेदं उत्पाद्य' जिसने... निर्दय रीति से... ऐसा लेना। ऐसा शब्द जरा जोड़ देना। अन्दर नहीं है। छापने में भूल हुई है। **जिसने (निर्दय रीति से) करौंत के समान शीघ्र ही जीव और पुद्गल का भेद उत्पन्न किया है।** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञायकस्वभाव और कर्म जड़-पर्याय और उसके निमित्त के अवलम्बन से अपने में राग होता है, उस राग का और कर्म का लक्ष्य छोड़कर... सम्बन्ध तो बन्ध... उस राग का सम्बन्ध तो बन्धुरूप से, भाईरूप से अनादि का है। धर्मात्मा बन्धु को छेदनेवाले हैं। भाई-भाई भिन्न पड़ते हैं, ऐसा कहते हैं न ? भाई-भाई होते हैं, वे भिन्न पड़ते हैं। समझ में आया ?

पाँच-सात भाई होवे न ? एक ओसरी, ओसरी को क्या कहते हैं ? वरंडा। तो वरण्डे में उसके पिताजी पहले से घर के वरण्डे में पहले से दो स्तम्भ करते हैं। थांभली समझते हो ? लकड़ी की होती है। दो के बीच अन्तर रखते हैं। एक थांभली ऐसे और एक थांभली

ऐसे होती है। देखा है ? पहले से यह करके रखते हैं। है तो साथ में परन्तु बीच में थांभली रखते हैं। एक साथ दो रखते हैं। इस ओर का इसका और इस ओर का इसका। भाग करना हो तो ऐसा करते हैं। थांभली कहे ? खम्भा। उन दो खम्भों के साथ वरण्डे में रखते हैं। जब भाग करे, तब इस ओर का इसका और इस ओर का इसका।

इसी प्रकार आत्मा में राग और आत्मा में एक सन्धि नहीं हुई, ऐसा कहते हैं। भिन्न-भिन्न है। यह पहले आ गया है। पुण्य और पाप का विकल्प राग और भगवान ज्ञायकस्वभाव, दोनों में एकरूप सन्धि नहीं हुई। नि:सन्धि है, भेद है। पोपटभाई! तुम्हारे तो छह लड़के हैं तो कितना करना पड़ता होगा ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा! राग के साथ तेरा सम्बन्ध अनादि से है। भाईबन्धुरूप से उसका बन्ध रखा है। अब तू **'अदयं'** दया न कर। कि अरे! अनादि का सम्बन्ध है, उसे कैसे तोडूँ ? आहाहा! राग, शरीर, कर्म इस ओर का लक्ष्य छोड़कर निर्दय रीति से निष्ठुर परिणाम से, निष्ठुर अर्थात् दरकार किये बिना अपना चैतन्य ज्ञायकभाव है, उस ओर झुक जा। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! यह धर्म है। ऐसा धर्म है। समझ में आया ? बाकी सब बातें हैं। **'अदयं' निर्दय रीति से, करौंत के समान...** करवत है न ? करवत। आरा। राग और कर्म की पर्याय से लक्ष्य छोड़कर करवत की भाँति उनसे भिन्न भेदज्ञान कर।

मुमुक्षु : दया में तो धर्म सुना था, परन्तु यह...

पूज्य गुरुदेवश्री : दया में धर्म नहीं है। दया परिणाम, वह राग है और हिंसा है। पर की दया तो कर सकता नहीं, परन्तु पर की दया का भाव आता है, वह राग है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में उसे हिंसा कहा है। स्वरूप की हिंसा होती है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! चौरासी लाख के अवतार करते-करते दु:ख में डूबना हो गया है। दु:ख के समुद्र में डूबना हो गया है। आहाहा! प्रभु! एक बार तो छोड़। यह राग दु:खरूप है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, प्रभु! वह राग है, दु:ख है। वह तेरी चीज़ से विपरीत चीज़ है। तेरी चीज़ तो अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु है न! समझ में आया ? आहाहा!

राग से और कर्म से निर्दय रीति से करवत की भाँति... आहाहा! अन्दर का अभ्यास

तो कर, कहते हैं। राग का लक्ष्य और शरीर, कर्म के लक्ष्य को छोड़कर अन्तर में लक्ष्य जोड़ने का (अभ्यास तो कर)। कहो, समझ में आया? यह मार्ग ऐसा है, भगवान! सरल लगे, कठिन लगे जो है, वह यह है। परन्तु इस बिना इसके जन्म-मरण का अन्त कभी नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

करौंत के समान शीघ्र... **'सद्यः'** है न **'सद्यः'** **'अदयं'** और **'सद्यः'** दो शब्द है। निर्दय रीति से भेदज्ञानरूपी करवत से **शीघ्र ही जीव...** शीघ्र-एक समय में। आहाहा! फिर करूँगा, धीरे-धीरे करूँगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? वहाँ मुम्बई में एक भाई करोड़पति है न? सर्वोदय, नहीं? सर्वोदय। वहाँ व्याख्यान देते हैं। सर्वोदय हॉस्पीटल। कान्तिलाल है। एक ही पुत्री है। उसके पास एक करोड़ रुपये हैं। उम्र छोटी है। उसके पिताजी आज कह गये हैं कि जितनी जमीन ली थी, उसमें से करोड़ रुपये उपजे हैं। तो व्याख्यान में आवे। वहाँ व्याख्यान चलता है न? देवदर्शन। वहाँ बहुत लोग आते हैं। दस-दस हजार आते हैं। मुम्बई में तो पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग आते थे। ८७वाँ (वर्ष) लगा न। दादर में पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग। लोगों को जिज्ञासा हुई कि यह क्या कहते हैं! तो वे सुनते तो हैं परन्तु वास्तव में तो वह सुनने को सुने बैठती नहीं। सब लोग आवे उनके लिये बिछाना और यह करे, सेवा करना, सेवा करते हैं, ऐसा कहे। व्यवस्था की। फिर मेरे पास एक बार आये। मुम्बई। धर्म तो यह है। .... चार हजार भव के बाद समझेगा... सर्वोदय कान्तिलाल लींबडी वाला है। यहाँ एक बार आया था। वहाँ जाने का था। ८७ वर्ष। जामनगर... वहाँ आया था। प्रार्थना करने आया था कि हमारे मकान में उतरना। वह कहता है कि चार हजार भव के बाद आप कहते हो वैसा धर्म होगा। परन्तु चार हजार भव में क्या होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : ... चार हजार भव कब पूरे होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिसकी रुचि है, उसका वायदा क्या? तुझे जिसकी रुचि है, उसका वायदा नहीं होता, वायदा करता है तो तुझे रुचि नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं शीघ्र। इस शीघ्र शब्द का अर्थ चलता है। है? **'सद्यः'** शीघ्र ही। आहाहा! तत्काल प्रवचनसार में तो कहते हैं कि भगवान! यह बात सुनकर आज ही

भेदज्ञान कर। आहाहा! प्रवचनसार में अन्तिम श्लोक में है। ... आज। कल का वायदा छोड़ दे। फिर करूँगा... फिर करूँगा... फिर करूँगा तो फिर रह जाएगा। समझ में आया?

बारोट की बात आती हे न? बारोट नहीं होते? बारोट को क्या कहते हैं? भाट। वह बारोट एक बार बनिये के घर गया तो वहाँ बनिया के किसी का विवाह था। वह कहे, हमारा भोजन? तो कहे, तुम्हारा भोजन कल। बनिया कहे, आज हमारा बनियों का भोजन, कल तुम्हारा भोजन। दूसरे दिन आया, यह क्या लिखा है? कल। वह कल आता नहीं और बारोट को भोजन मिलता नहीं। ऐसा लिखा था। हमारी दीक्षा के समय ऐसा था। आज बनिया जीमेंगे और कल बारोट जीमेंगे। तो कल तो कभी आता नहीं। कल आवे तो कहे, देखो! क्या लिखा है? कल।

इसी प्रकार अभी नहीं बाद में करूँगा, तो तेरा बाद में कब आयेगा? सुन तो सही। थोड़ा कर ले। पुत्री का विवाह हो जाए, पुत्र का विवाह हो जाए, मकान का काम कर लूँ फिर वृद्धावस्था में करूँगा। युवक अवस्था में नहीं। युवक अवस्था में मर जाएगा तो कब करेगा? पोपटभाई! यह ... शीघ्र कर। एक समय में शरीर और कर्म की पर्याय से भिन्न और राग की पर्याय से भिन्न, पर का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव चिदानन्दस्वरूप का लक्ष्य शीघ्र कर। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! मैं इतना कर लूँ, बाद में बात... इतना करूँ, बाद में बात... इतना करके बाद में-बाद में करके बाद में रह जाएगा। कभी पहले नहीं आयेगा। आहाहा!

जीव और पुद्गल का भेद उत्पन्न किया है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिद्घन आनन्दकन्द, ज्ञानस्वरूप अकेला और कर्म तथा राग से भिन्न दो से भेदज्ञान किया। उसका नाम सम्यग्दर्शन है और उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी और शुरुआत है। ५०वाँ श्लोक पूरा हुआ।

कलश-५१

(आर्या)

य: परिणमति स कर्ता य परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणति: क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया।।६-५१।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'य: परिणमति स कर्ता भवेत्' [य:] जो कोई सत्तामात्र वस्तु [परिणमति] जो कोई अवस्था है उसरूप आप ही है, इस कारण [स कर्ता भवेत्] उस अवस्था का सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है। और ऐसा कहना विरुद्ध भी नहीं है, कारण कि अवस्था भी है। 'य: परिणाम: तत्कर्म' [य: परिणाम:] उस द्रव्य का जो कुछ स्वभावपरिणाम है [तत् कर्म] वह द्रव्य का परिणाम कर्म इस नाम से कहा जाता है। 'या परिणति: सा क्रिया' [या परिणति:] द्रव्य का जो कुछ पूर्व अवस्था से उत्तर अवस्थारूप होना है, [सा क्रिया] उसका नाम क्रिया कहा जाता है। जैसे मृत्तिका घटरूप होती है, इसलिए मृत्तिका कर्ता कहलाती है, उत्पन्न हुआ घड़ा कर्म कहलाता है तथा मृत्तिका पिण्ड से घटरूप होना क्रिया कहलाती है। वैसे ही सत्त्वरूप वस्तु कर्ता कहा जाता है, उस द्रव्य का उत्पन्न हुआ परिणाम कर्म कहा जाता है और उस क्रियारूप होना क्रिया कही जाती है। 'वस्तुतया त्रयं अपि न भिन्नं' [वस्तुतया] सत्तामात्र वस्तु के स्वरूप का अनुभव करने पर [त्रयं] कर्ता-कर्म-क्रिया ऐसे तीन भेद [अपि] निश्चय से [न भिन्नं] तीन सत्त्व तो नहीं, एक ही सत्त्व है। भावार्थ इस प्रकार है कि कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप तो इस प्रकार है, इसलिए ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्म का कर्ता जीवद्रव्य है, ऐसा जानना झूठा है, क्योंकि जीवद्रव्य का और पुद्गलद्रव्य का एक सत्त्व नहीं; कर्ता-कर्म-क्रिया की कौन घटना?।।६-५१।।

कलश - ५१ पर प्रवचन

५१।

य: परिणमति स कर्ता य परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणति: क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया।।६-५१।।

'यः परिणमति स कर्ता भवेत्' क्या कहते हैं ? **जो कोई सत्तामात्र वस्तु...** आत्मा सत्ता / अस्तित्ववाली चीज़ है, मौजूद चीज़ है, सत्तामात्र वस्तु है, उसी तरह परमाणु भी सत्तामात्र जड़ वस्तु है। **सत्तामात्र वस्तु जो कोई अवस्था है, उसरूप आप ही है,...** क्या कहते हैं ? उस वस्तु की जो पर्याय-अवस्था होती है, वह वस्तु की है। यहाँ तो आत्मा में विकार होता है, वह भी आत्मा का है, ऐसा सिद्ध करना है। अभी तो पर से भिन्न सिद्ध करना है। समझ में आया ? आत्मा में जो पुण्य-पाप की अवस्था अवस्था हुई, तो कहते हैं कि वह सत्ता की अवस्था है। जीव जो सत्ता है, उसकी पुण्य-पाप की अवस्था है। वह कर्म की अवस्था नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म से भिन्न करके...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म से भिन्न करके। आहाहा! क्योंकि कर्म की अवस्था... वह कर्म भी परमाणु है या नहीं ? और परमाणु सत्ता है या नहीं ? परमाणु की सत्ता है या नहीं ? सत्ता है तो उसकी अवस्था होती है या नहीं ? उसकी अवस्था होती है, वह सत्ता की अवस्था है। वह सत्ता कर्ता और अवस्था उसका कार्य है। कर्म की अवस्था कर्म की सत्ता का कार्य है और अवस्था उसका कर्म है। तेरी सत्ता उसकी कर्ता है और कर्म की पर्याय तेरा कार्य है-ऐसा नहीं है। आहाहा! पर की दया पालन की, वह पर्याय हुई। उस पर्याय का कार्य तो उसने किया। शरीर जो है उसकी, वह पर्याय है। उस पर्याय का कर्ता वह है। उसे जिलाऊँ, ऐसी तेरी पर्याय का कर्ता है, उसकी पर्याय का कर्ता तो नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा सूक्ष्म है। मार्ग तो सूक्ष्म है।

अन्दर अरूपी प्रभु... आहाहा! जो शरीर से तो ज्ञात नहीं होता, कर्म से ज्ञात नहीं होता, देव-गुरु की वाणी, दिव्यध्वनि से ज्ञात नहीं होता और अन्दर विकल्प उठता है, उससे भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसी चीज़ अपनी सत्ता रखती है तो वह सत्ता, वह चीज़ जिसकी अवस्था क्षण-क्षण में होती है, उस अवस्था की सत्ता कर्ता है और अवस्था उसका कर्म-कार्य है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! देखो! यह पलक है न ? वह ऐसे-ऐसे अवस्था होती है तो वह परमाणु सत्ता है, परमाणु अस्तित्व है। अस्तित्व है, यदि अस्तित्व है तो सत्ता है। सत्ता है तो उसकी ऐसे-ऐसे अवस्था होती है, वह सत्ता की

अवस्था है, आत्मा की अवस्था नहीं। आहाहा! समझ में आया? नन्दकिशोरजी! ऐसी बात है। आहाहा! भगवान का मार्ग अलग है। उसकी वकालत दूसरे प्रकार की है। आहाहा!

परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं कि जिसकी सत्ता है, आत्मा सत्तास्वरूप है या असत्तास्वरूप है? तो सत्तास्वरूप है तो उसकी अवस्था है, वह सत्ता की अवस्था है या दूसरे की सत्ता की अवस्था है? आहाहा! चाहे तो सम्यग्दर्शन की अवस्था हो, या चाहे तो राग की अवस्था हो, परन्तु वह अवस्था सत्ता-वस्तु है, उसकी अवस्था है। परसत्ता जो कर्म आदि है, उसकी वह अवस्था नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **जो कोई अवस्था है, उसरूप आप ही है,...** उस रूप जो सत्ता है, वह अपनी अवस्थारूप स्वयं ही है। वह अवस्था दूसरे से हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में जो विकार होता है, वह सत्ता जो आत्मा है, उसकी वह अवस्था है। यहाँ तो मात्र पर से भिन्न करना है न? आत्म सत्ता है, अस्तित्व है, और विकार होता है, वह सत्ता की अवस्था है। वह विकार कर्म की अवस्था है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! सूक्ष्म, भाई! ये शब्द पकड़ना अलग वस्तु है। आहाहा! अन्दर में भाव भिन्न करना वह बहुत अलौकिक बात है। और कर्तव्य तो यही है, दूसरा तो है नहीं। दूसरों को समझाना आवे, न आवे, इसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि भाषा होती है, वह जड़ की पर्याय है; वह आत्मा का कार्य नहीं है। क्योंकि परमाणु सत्ता है या नहीं? तो सत्ता की भाषा अवस्था उस सत्ता की अवस्था है। परमाणु की सत्ता की अवस्था है, आत्मा की नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यहाँ तो बड़े चतुर लोग भी कुछ-न-कुछ उथलपुथल करे न! झूठा अभिमान है।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ अनुसारिणी क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : (सर्वज्ञ) अनुसार निकलती है परन्तु वाणी वाणी से निकलती है। ज्ञान सर्वज्ञ है, वह उसका निमित्त है इतना। वाणी की पर्याय का कर्ता वह परमाणु की सत्ता है। ॐ ध्वनि निकलती है, उस ध्वनि की जो पर्याय है, उसकी परमाणु की सत्ता की अवस्था है। आत्मा की अवस्था भाषा नहीं है। आहाहा! मैं उपदेश करता हूँ। हमारे एक है न? बुलन्दशहरवाले, नहीं? कैलाशचन्दजी। पहले बहुत आते थे। जोर से बोलो, ऐसा

कहते थे। खबर है ? जीओ, जीने दो। यह वाक्य भगवान का नहीं है। इसकी अभी बहुत आलोचना हुई है, वे लोग तो कहते हैं जिओ और जीने दो। परन्तु यह तो अंग्रेज के वाक्य हैं। जिओ और जीने दो। जैन में कहाँ है ?

मुमुक्षु : यह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात है। यहाँ तो भगवान जिओ-जीने दो। आयुष्य से जीवे और ... ऐसा है ? यह तो दोपहर में बात चली नहीं ? अपनी शक्ति से जीवो और जीने दो, बस। आहाहा! आयुष्य... जिओ और जीने दो। अब धूल में जियो-जीने दो, यह तो अनन्त काल से किया। यह क्या चीज़ है ? उसकी आलोचना की है कि सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं कि जिओ-जीने दो, यह वीतराग की वाणी नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं। १७२ गाथा है न ? अलिंगग्रहण के बीस बोल। उनमें तेरहवें बोल में तो ऐसा आया है कि मन और इन्द्रिय से जिसे जीना नहीं, ऐसे आत्मा को आत्मा कहते हैं। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। १७२ गाथा में 'अलिंगग्रहण' इतने शब्द के बीस बोल उतारे हैं। अलिंगग्रहण अर्थात् मन और इन्द्रिय के लिंग से आत्मा जीता नहीं है, वह उसका जीवन नहीं है। तेरहवाँ बोल है। बीस बोल है न ? अलिंगग्रहण।

क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा जो है, वह मन और इन्द्रिय से जीता ही नहीं। उसका जीवन मन और इन्द्रिय से है ही नहीं। उसका जीवन तो... दोपहर को चला था न ? जीवत्वशक्ति। उस शक्तिवान की शक्ति और शक्ति में भावप्राण, ज्ञान-दर्शन-आनन्द-बल उससे जीव जीता है। दस प्राण जड़ और योग्यता से जीवे, उसे यहाँ जीव कहते ही नहीं। आहाहा! छह काय के जीव को छह काय के जीव कहते ही नहीं। जीव तो ज्ञानमय है, वह जीव है। पंचास्तिकाय में है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय को जीव कहते हैं। वह जीव है ही नहीं। जीव तो उसमें ज्ञानमय वस्तु है, वह वस्तु है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय तो पर्याय की अवस्था, विकृत अवस्था की बात है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि मन और इन्द्रिय से जिसका जीवन नहीं है, उसे अलिंगग्रहण कहते हैं। मन और इन्द्रिय लिंग है, उनसे जिसका जीवन नहीं, उसे अलिंगग्रहण कहते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : बहुत ऊँची बात है। चैतन्य भगवान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई तो ऐसा कहते हैं। बात तो एकड़ा की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऊँची बात तो चारित्र की कहलाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची तो केवलज्ञान हो, वह बात है। यहाँ तो अभी पहले भेदज्ञान की बात है। आहाहा! वहाँ अलिंगग्रहण में तो ऐसा लिया कि इन्द्रियों से आत्मा जानने में नहीं आता। इन्द्रियों से आत्मा जानता नहीं। दूसरा बोल है। वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। दूसरों को अनुमान से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं है। अपने आत्मा अकेले अनुमान से जानता है, ऐसा भी नहीं है।

भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। आहाहा! यह छठवाँ बोल है। समझ में आया? भगवान आत्मा... भगवान! बापू! यह तो दूसरी बात है। सूक्ष्म पड़े परन्तु इसे समझना तो पड़ेगी न! अरे! चार गति में यह दुःखी प्राणी है। आनन्द की उल्टी अवस्था में रमता है। आनन्दस्वरूप तो भगवान आत्मा है, उसकी उल्टी अवस्था पुण्य और पाप। उल्टी समझ में आता है? विपरीत। पुण्य और पाप और मिथ्याश्रद्धा, वह विपरीत अवस्था है, वह तो दुःखदायक दशा है। आहाहा! बाहर में संयोग चाहे तो इन्द्र जैसे हों, नौवें ग्रैवेयक जैसे संयोग हों परन्तु अन्दर में राग और पुण्य के परिणाम की एकताबुद्धि के मिथ्यात्वभाव से वह दुःखी है। समझ में आया?

'सुखिया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया।' अपने आनन्दस्वरूप को राग से भिन्न करके भेदज्ञान का अनुभव करे... आहाहा! वह प्राणी जगत में सुखी है। चाहे तो वह श्रेणिक राजा नरक में हो। श्रेणिक राजा पहले नरक में हैं। वहाँ समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। क्षायिक समकिती हैं। भगवान के पास तीर्थंकरगोत्र बाँधा था परन्तु पूर्व में समकित से पहले नरक का आयुष्य बँध गया था, इसलिए आयुष्य तो पलटता नहीं। स्थिति घटे, रस घटे; अभाव नही होता। क्षायिक समकित प्राप्त किया, तीर्थंकरगोत्र बाँधा, नरक का आयुष्य बँधा तो नरक में गये परन्तु वहाँ आत्मज्ञान से सुखी है। जितना राग होता है, उतने दुःखी हैं। प्रतिकूल संयोग में ठीक नहीं पड़ता, उतना द्वेष (होता है), वह दुःखी है। परन्तु आत्मा के अवलम्बन से समकित हुआ, उतने सुखी हैं। समझ में आया? धर्मी

को दो धाराएँ बहती है—एक आनन्दधारा / ज्ञानधारा और एक रागधारा। रागधारा, वह बन्ध का कारण है; आनन्दधारा, वह अबन्ध का कारण है। आहाहा! यह बात है, भगवान! यह तो सादी भाषा है न।

मुमुक्षु : समकित से भी आयुष्यबन्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आयुष्य बँध गया न? लड्डू हुआ, चूरमा के लड्डू बनाते हैं न? उसमें आटा, घी और शक्कर मिलाते हैं। उस लड्डू में से घी निकालकर पूड़ी बनावे, ऐसा हो सकता है? उसमें से घी किस प्रकार निकाले? और उसमें से आटा निकालकर रोटी होगी? उसमें आटा तो है। उस लड्डू में थोड़ा घी डाले तो चले अथवा थोड़े पाँच दिन, आठ दिन सुखावे तो चले। परन्तु उस लड्डू का अभाव हो जाए, ऐसा नहीं है। वैसे ही नरक का आयुष्य बँधा, उस लड्डू में कभी स्थिति—रस बढ़ जाए अथवा स्थिति—रस घट जाए परन्तु उस नरक के आयुष्य का अभाव हो, ऐसा कभी नहीं बनता। न्याय समझते हो न?

श्रेणिक राजा वहाँ नरक में गये, वे अपनी योग्यता से गये हैं, हों! कर्म से गये वह तो निमित्त का कथन है। अपनी योग्यता से नरक में जाने की गति की। नरक का आयुष्य तो निमित्तमात्र है। आहाहा! नरक के आयुष्य के कारण वहाँ गये, यह तो निमित्त का कथन है। अपनी पर्याय में नरक का आयुष्य बाँधा था तो उस योग्यता से वहाँ गये थे। परन्तु साथ में समकिती थे और उन्हें समय-समय में तीर्थंकरगोत्र भी बँधता है। आहाहा! चौरासी हजार वर्ष की स्थिति रह गयी। तैतीस सागर की स्थिति बँधी थी।

मुनि की असातना की थी। गले में सर्प डाल दिया और करोड़ों चींटियाँ लगी हुई थीं। वे (श्रेणिक) बौद्ध थे, बौद्ध। ऐसा करने के पश्चात् अपनी स्त्री के पास आये। वह स्त्री समकिती थी-चेलना समकिती थी। उससे कहा—तेरे गुरु के गले में सर्प डाल दिया है, उन्होंने निकाल डाला होगा। (चेलना ने कहा) प्रभु! हमारे गुरु ऐसे नहीं होते। एक उपसर्ग आवे और निकाल डाले, ऐसा नहीं है। (श्रेणिक) ने कहा मैंने गले में डाला तो उन्होंने निकाल दिया होगा। बौद्ध थे न बौद्ध? इसलिए उन्हें श्रद्धा नहीं थी। और चेतना समकिती थी, आत्मज्ञानी स्त्री थी। आत्मा कहाँ स्त्री है, कहाँ पुरुष है, कहाँ नपुंसक है या

कहाँ नारकी है। वह तो आत्मा है। चलो!

मुनि में ध्यान में विराजमान थे, आनन्द में रमते थे। देखो! स्वामी! यह सर्प गले में पड़ा है। पश्चात्... चींटियाँ बहुत थीं न? करोड़ों चींटियाँ। देखो! प्रभु! मुनि तो आत्मा में मग्न हैं। उन्हें उपसर्ग दूर करूँ, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में मग्न हैं।

समयसार की पाँचवीं गाथा में आता है न? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि महावीर भगवान कैसे थे? कि निर्मल ज्ञान में अति मग्न थे, निर्मल विज्ञानघन में मग्न थे। ऐसे गणधर भी निर्मल ज्ञान में मग्न थे। तो वहाँ से लेकर हमारे गुरु भी विज्ञानघन में मग्न थे। इसका नाम मुनिपना है। कोई विकल्प और शरीर नग्नपना (हो), वह तो पर की जड़ चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : चींटियाँ शरीर को चटका भरती थी तो कष्ट नहीं होता था?

पूज्य गुरुदेवश्री : जितना अनुकूलता में राग था, उतना प्रतिकूलता में द्वेष होता है। तथापि उस द्वेष और राग के जाननेवाले रहते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! समझ में आया? वीतराग का धर्म बहुत अलौकिक बात है। जिसका फल अनन्त आनन्द। 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में...' सादि अर्थात् जब से मोक्ष हुआ, वह सादि हुई न? 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख...' आहाहा! आनन्द का सुख। उसका उपाय कैसा होगा? अलौकिक बात है, भगवान!

यहाँ कहते हैं कि जिसकी सत्ता है, उसकी यह अवस्था है। दूसरे की सत्ता में दूसरे की अवस्था है। अपनी सत्ता में अपनी अवस्था है। आत्मा सत्ता है तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान की अवस्था अथवा रागादि अवस्था, वह सत्ता की अवस्था है। सम्यग्दर्शन पर्याय हुई, वह सत्ता की अवस्था है। वह कर्म हट गया, इसलिए ऐसी अवस्था हुई—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! और कर्म में जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि पर्याय उत्पन्न होती है, वह परमाणु-सत्ता है, अस्तिवाली चीज़ है। वह सत्ता कर्म की अवस्था है। तो वह सत्ता करनेवाले और अवस्था उसका कार्य है। आत्मा उसका करनेवाला और आत्मा का कार्य कर्म की अवस्था, ऐसा तीन काल में नहीं है।

भगवान आत्मा अपने ज्ञायकस्वभाव की अनुभवदृष्टि से भेदज्ञान करता है तो जो पर्याय सम्यक् हुई, वह आत्मा की सत्ता से हुई है। आहाहा! और जितना विकार है, वह भी अपनी सत्ता से विकार हुआ है। उस सत्ता की अवस्था ही सत्ता का कार्य है। दूसरी सत्ता का वह कार्य है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अभी तो यह कर्म की बहुत गड़बड़ हो गयी न? बहुत हो गयी। बीस वर्ष पहले वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी। बहुत चर्चा हुई। सबकी दृष्टि ऐसी थी।

मुमुक्षु : अभी भी ऐसी ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसी है। मैं (हम) तो (संवत्) १९७१ के वर्ष से कहते हैं, प्रभु। ७०। ६२ वर्ष हुए। ७१ के वर्ष से हम (कहते हैं), विकार स्वयं से होता है, कर्म से किंचित्—जरा भी नहीं होता। अपने उल्टे पुरुषार्थ से अपनी सत्ता में विकार होता है और विकार का नाश अपने पुरुषार्थ से करता है। १९७१-७१। संवत् १९७१ का वर्ष। ६२ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : जो नहीं समझते, वे आज भी नहीं समझते।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज भी नहीं समझते। यह कहते हैं न वर्णीजी जैसे क्षुल्लक और शास्त्र का अभ्यास बहुत परन्तु यह दृष्टि नहीं। उन्होंने कहा, सब पण्डित बैठे थे।

मुमुक्षु : शिखरजी की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिखरजी की बात है। बीस वर्ष हुए। विकार है, वह अपनी षट्कारक परिणति से अपने में हुआ है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, मिथ्यात्वभाव अपनी पर्याय में कर्ता-कर्म, पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय साधन, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण, पर्याय सम्प्रदान; द्रव्य-गुण भी नहीं, ऐसा कहा। फूलचन्दजी थे। यह तो बीस वर्ष पहले की बात है। तेरह के वर्ष। स्वामीजी कहते हैं कि विकार स्वयं से होता है, पर के कारक की अपेक्षा उसे नहीं है।

भाई! यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो चैतन्यसत्ता है, उसकी अवस्था होती है, वह चैतन्यसत्ता की है। वह अवस्था कर्म से हुई है और कर्म की है, ऐसा नहीं है। समझ में

आया ? परन्तु दूसरी जगह ऐसा आता है। कल-परसों के दिन ही आया था कि पुण्य-पाप भाव, वे पुद्गल के हैं। यह स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से बात चली है। जब स्वभाव चैतन्यमूर्ति का भान हुआ तो उसका व्यापक होकर व्याप्य उसकी निर्मल अवस्था होती है। यह तो स्वभाव की दृष्टि का भान कराने के लिये कल लिया था। इसमें विकार होता है तो कर्म व्यापक होकर होता है। क्योंकि इसमें से निकल जाता है, अतः निकल जानेवाली चीज़ का कार्य है, ऐसा कहा है। आहाहा! एक बार ऐसा कहते हैं कि पुद्गल के परिणाम हैं और एक बार कहते हैं कि सत्ता की अवस्था है। धन्नालालजी!

यह यहाँ कहते हैं **उसरूप आप ही है,...** है ? जो कुछ सत्ता है, उसकी मलिन और निर्मल अवस्था होती है, वह उस रूप अवस्था आत्मा है। कर्म में है तो कर्म की अवस्था कर्म है। वह कर्म है, विकारी पर्याय कर्म है। है ? **जो कोई अवस्था है उसरूप आप ही है, इस कारण उस अवस्था का सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है।** जो-जो सत्ता की अवस्था है, उसका कर्ता वह सत्ता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म है। (शास्त्र) घर में रखा हो तो पढ़ने का समय मिले तो समझ में नहीं आता। पोपटभाई! पेटी में-सन्दूक में रखा हो। **और ऐसा कहना विरुद्ध भी नहीं है, कारण कि अवस्था भी है।** क्या कहते हैं ? कि वस्तु है, उसकी अवस्था भी है। अवस्था है, उसका कर्ता, वह सत्ता है और अवस्था उसका कार्य है, यह विरुद्ध नहीं है—ऐसा कहते हैं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १५, रविवार, दिनांक १४-०८-१९७७
कलश-५१, प्रवचन-६६

यह कलश टीका चलती है। ५१वाँ श्लोक है। थोड़ा सूक्ष्म है। अपूर्व बात है, भाई! अनन्त काल से अपनी चीज़ जो आत्मा है, वह अपने परिणाम का कर्ता है। परिणाम शब्द से (आशय) अवस्था। अवस्थायी आत्मा त्रिकाली चीज़-वस्तु है और उसके वर्तमान परिणाम-पर्याय-अवस्था जो होती है, वह अवस्था उसका कार्य है और आत्मा उसका कर्ता है। परन्तु परद्रव्य की पर्याय का आत्मा कर्ता (हो), ऐसा नहीं है। जैसे पूजा में शरीर से ऐसा होता है न? स्वाहा। भाषा और हाथ। वह स्वाहा भाषा की-जड़ की पर्याय है। उसका कर्ता आत्मा नहीं है।

मुमुक्षु : जड़ पूजा करने के लिये जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करने का भाव आया, वह राग है। परन्तु हाथ से अर्घ्य रखा और ऐसा हुआ, वह क्रिया राग से नहीं होती। सूक्ष्म बात है, भगवान!

इसने वास्तविक तत्त्व क्या है, ऐसी तत्त्वदृष्टि कभी की ही नहीं। एक द्रव्य की चीज़ दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता है, ऐसी मान्यता भ्रम और अज्ञान और पाखण्ड है। क्योंकि प्रत्येक तत्त्व उसकी वर्तमान अवस्था बिना नहीं रहता। अत: वह अवस्था, उस प्रत्येक तत्त्व का कार्य-अवस्था है, वह उसका कार्य है और वस्तु उसकी कर्ता है। यह शरीर ऐसे चलता है तो यह अवस्था है। अन्दर यह जड़, मिट्टी, धूल परमाणु है, उसकी ऐसी अवस्था होती है। वह अवस्था परमाणु का कार्य है। परमाणु उसका कर्ता है। वह आत्मा का कार्य है और आत्मा करता है, ऐसा तीन काल में नहीं। लॉजिक सूक्ष्म है, डॉक्टर!

अब थोड़ा डॉक्टर का लेते हैं। यह इंजेक्शन लगाते हैं न? इंजेक्शन। नाड़ी बराबर जाँचते हैं न? तो कहते हैं कि उस अँगुली की पर्याय का कर्ता वे परमाणु हैं। परन्तु ऐसे-ऐसे खड्डे पड़ते हैं, उस अवस्था का कर्ता अँगुली नहीं है। यह डॉक्टर है। यह प्रवीणभाई है। प्रवीणभाई डॉक्टर आये हैं। कल वहाँ गये थे या नहीं? आहाहा!

भगवान! तुझमे रागादि परिणाम होते हैं, उनका तू अज्ञानभाव कर्ता होता है। उस

अज्ञानभाव से। दया, दान, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह राग है और राग मेरा कर्तव्य और मैं कर्ता हूँ, यह अज्ञानभाव से बराबर है। समझ में आया ? राग का विकल्प जो उठता है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति अरे ! काम-क्रोधादि का राग, वह राग एक अवस्था है। यहाँ कहा है न ? **'परिणमति स कर्ता'** तो आत्मा रागरूप होता है, वह कर्ता और राग उसका कर्म—कार्य, यह अज्ञानभाव से है। आहाहा ! ऐसी बात है। है ?

'यः परिणमति स कर्ता भवेत्' जो कोई सत्तामात्र वस्तु, जो कोई अवस्था है... दशा, वर्तमान हालत। **उसरूप आप ही है,...** आहाहा ! यह भाषा बोली जाती है भाषा-आवाज, वह परमाणु की-रजकण की सत्ता है। उस सत्ता की भाषा अवस्था है। आत्मा की नहीं। आहाहा ! अन्दर इंजेक्शन लगाते हैं तो इंजेक्शन में वह अवस्था जो ऐसी होती है, उसका-अवस्था का कर्ता वे इंजेक्शन के रजकण हैं। शरीर के कारण इंजेक्शन की अवस्था अन्दर प्रविष्ट करती है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

यह यहाँ कहते हैं कि जो पलटती है, वह कर्ता है। जो चीज सत्ता-अस्तित्व है। परमाणु का या आत्मा का अस्तित्व है, मौजूदगी चीज़ है, वह सत्तामात्र वस्तु वर्तमान अवस्था में जो परिणमन करती है, वह अवस्था उसका कार्य है और वस्तु उसकी कर्ता है। भाषा तो समझ में आती है न ? कठिन बात है, भाई ! पोपटभाई !

मुमुक्षु : कठिन नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? आहाहा ! यहाँ ऐसा कहते हैं कि... पैसा आता है... अब पैसेवाले की बात लेते हैं। किरणभाई ! यह डॉक्टर कहे, अभी किरणभाई को मिलना है। डॉक्टर आये हैं न ? रस्तोगी, कहा, अभी यहाँ आयेंगे। आहाहा ! क्या कहते हैं ? इंजेक्शन की अवस्था हो या दवा की पर्याय हो, वह दवा की पर्याय जो है, (वह) परमाणु की अवस्था है। उस अवस्था का कर्ता आत्मा है, ऐसा नहीं। किरणभाई ! इसमें भारी कठिन काम, भाई। यह बड़े पैसेवाले... पैसे आते हैं न, पैसे ? वे परमाणु मिट्टी-धूल है। पैसे परमाणु नोट हो या सोने का गहना हो या हीरा-माणिक हो परन्तु वह तो जड़ है। वे जड़ के रजकण जो हैं अस्तित्व-मौजूदगी सत्ता चीज़ है। वह पैसा यहाँ आता है। उसकी अवस्था का कर्ता पैसे के रजकण हैं। आत्मा कहता है कि मैंने कमाया, मैंने धन्धे में ध्यान

रखा। ध्यान रखा, वह तो राग है। तो राग से पैसा आता है ? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बराबर आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं आता। बराबर आता है, यह बराबर है। परन्तु बराबर किससे आता है ? सेठ है। ग्वालियर के सेठ-सर्राफ है। यहाँ तो बहुत लोग आते हैं न। आहाहा! वह परमाणु-लक्ष्मी आती है, वह वस्तु है या अवस्तु है ? सत्तामात्र वस्तु है या नास्ति है ? यह कहते हैं।

सत्तामात्र वस्तु... भाई! यह तो अध्यात्म-शब्द है। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। ये परमाणु लक्ष्मी की सत्तामात्र वस्तु है या असत्ता है ? या नास्ति है ? यदि सत्तामात्र वस्तु है तो उसकी अवस्था पलटकर यहाँ आवे, उस अवस्था का कर्ता वे परमाणु हैं। मैंने राग किया, इसलिए मुझे पैसा मिला, यह भ्रम और अज्ञानी, पाखण्डी है। धीरुभाई! यहाँ तो यह बात है।

मुमुक्षु : यह बात सुनने तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये हैं न इसके लिये।

दूसरी बात। दृष्टान्त देंगे कि मिट्टी में से घड़ा बनता है, तो मिट्टी सत्तामात्र वस्तु है, अस्तित्व है, उसमें से घड़े की जो पर्याय होती है, वह मिट्टी का कार्य है। मिट्टी कर्ता और घट उसका कार्य है। कुम्हार कर्ता और मिट्टी का घड़ा कार्य, ऐसा तीन काल में नहीं है। ऐसी बात है। समझ में आया ? इसी प्रकार समुद्र। समुद्र में तरंग उठती है, तरंग। तो वह तरंग कार्य है और समुद्र उसका कर्ता है। तरंग उठती है और हवा आयी और झपट लगी तो हवा से तरंग उठती है, वह हवा का कार्य तरंग है, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई! तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। लोगों को ख्याल नहीं है। सुना नहीं है, समझे नहीं हैं। ऐसे का ऐसा अनन्त काल से अन्धाधून्धी है।

मुमुक्षु : जब हवा न हो, तब तरंग नहीं उठती।

पूज्य गुरुदेवश्री : हवा निमित्त है। हवा की पर्याय हवा में है। हवा ऐसे आती है, वह भी परमाणु है या नहीं ? सत्तामात्र वस्तु है या नहीं ? तो ऐसी अवस्था उसकी है या समुद्र

की है ? और समुद्र में तरंग उठती है, वह अवस्था समुद्र की है या हवा की है। आहाहा! समझ में आया ? बात सूक्ष्म है, भाई!

यहाँ तो भेदज्ञान की बात है। प्रत्येक पदार्थ भिन्न है और भिन्न की अवस्था भिन्न तत्त्व करता है। आत्मा उसका कर्ता है, ऐसी मिथ्याश्रद्धा, झूठी मान्यता और असत्य का सेवन करता है, ऐसा अनन्त काल से इसने कभी सुना ही नहीं है। आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी गँवायी है। आहाहा! समझ में आया ? घड़ा... गजब बात है। लोग तो ऐसा कहते हैं कि कुम्हार के बिना घड़ा नहीं बनता। भगवान ऐसा कहते हैं कि मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बनता। कुम्हार से घड़ा नहीं बनता।

मुमुक्षु : दोनों की बात मान्य रखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों की मान्य रखना। उसकी अवस्था का वह कर्ता और उसकी अवस्था का वह कर्ता, यह मान्य रखना। कुम्हार घड़े का कर्ता है और मिट्टी घड़े का कर्ता है, ऐसे दोनों की बात-ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर में राग की पर्याय, पुण्य और पाप के भाव-अवस्था करे। परन्तु उस पुण्य-पाप की अवस्था से पूजा-भक्ति की क्रिया हो या उससे भगवान की प्रतिमा स्थापना का भाव हुआ तो वह शुभभाव है। प्रतिमा स्थापना की अवस्था की और आत्मा, उसके राग का कर्ता है, ऐसा नहीं है। वह प्रतिमा परमाणु है। परमाणु-रजकण का दल है। उस अपनी पर्याय का कर्ता परमाणु है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैंने शुभभाव किया तो यहाँ प्रतिमा की स्थापना हुई। बहुत अन्तर। यह कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो यह लिखा नहीं, यह तो आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? **कोई सत्तामात्र वस्तु...** सिद्धान्त क्या कहा ? कोई होने की चीज़, मौजूदगी चीज़, सत्तामात्र वस्तु। यह तो सिद्धान्त है। आहाहा! यह कोई अवस्था है। यह कोई परमाणु की या आत्मा की या सत्तामात्र वस्तु की वर्तमान जो अवस्था होती है, उस रूप वह स्वयं ही है—उस अवस्थारूप वह चीज़ ही है। आहाहा! मिट्टी में घड़ा की अवस्था हुई तो वह मिट्टी ही है, कुम्हार नहीं। आहाहा! तवा में रोटी की अवस्था हुई। तवा, वह तवा से रोटी की अवस्था हुई, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ

कहते हैं। क्योंकि वह रजकण भिन्न है, वे रजकण भिन्न है। आहाहा! क्योंकि तवा के रजकणों की सत्ता भिन्न है और रोटी के रजकणों की सत्ता भिन्न है। रोटी की अवस्था होती है, वह आटा के परमाणु की है। उसका वह कर्ता है और रोटी की अवस्था उसका कार्य है। रोटी का कार्य स्त्री का है, ऐसा तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : यह सोनगढ़ का एकान्त कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यक् एकान्त कथन है। सिद्धान्त अर्थात् नियम तो यह है। नियमानुसार स्वभाव नियम चलता है। आहाहा! उसमें गड़बड़ कर डाले... आहाहा! मैं पर का कर्ता हूँ और पर मुझमें कुछ करता है, (ऐसा नहीं है)।

दूसरी बात। आत्मा में जो रागादि पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह अज्ञानी आत्मा का कार्य और अज्ञानी कर्ता। परन्तु उस विकार का कर्ता कर्म है और कर्म का कार्य विकार है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्या करें? कर्म का ऐसा उदय आया, इसलिए हमें विकार करना पड़ता है, मूढ़ है। भाई! ऐसी सूक्ष्म बात है।

कर्म है, वह उसकी सत्ता में है। उसकी मौजूदगी चीज़ है। कर्मरूपी अवस्था जो हुई, उसका कर्ता तो कर्म है। परन्तु आत्मा में विकार हुआ, उसका कर्ता कर्म है और वह विकार कर्म का कार्य है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आत्मा सदा अपनी परिणति से पर्याय में परिणमता है। कर्म, कर्म की पर्याय से परिणमता है। दोनों को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है परन्तु कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कभी सुनी नहीं। पूरे दिन मैंने किया, मैं करता हूँ।

नरसिंह मेहता कहते हैं न? 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खीचे।' बड़ी दो सौ मण की गाड़ी हो, उसके नीचे कुत्ता हो। उसकी पीठ छूती हो तो वह ऐसा मानता है कि मुझसे गाड़ी चलती है। उसी प्रकार अज्ञानी दुकान पर खड़ा हो या अपनी पदवी में खड़ा हो, वहाँ जो परमाणु की अवस्था होती है, उसे मैंने किया, वह कुत्ते जैसे गधा है। माणेकचन्दभाई! ऐसा है। आहाहा! यह कहते हैं। यह तो अकेले सिद्धान्त हैं।

जो कोई अवस्था है, उसरूप आप ही है,... मिट्टी में घड़े की अवस्था हुई, वह मिट्टी ही है। वह कुम्हार नहीं है। कुम्हार की राग की पर्याय कुम्हार के आत्मा में हुई, उसका आत्मा कर्ता और उसे राग हुआ कि यह घड़ा मैं बनाऊँ, वह राग उसका कार्य है, परन्तु घड़ा उसका कार्य है - ऐसा तीन काल में नहीं है। ऐसी वस्तु की स्थिति है, उसे अज्ञानी अनादि से गड़बड़ कर देता है। यही मिथ्याभ्रम और यह परिभ्रमण का कारण है। झूठी दृष्टि चार गति में भटकने का कारण है। कहो, समझ में आया?

इस कारण उस अवस्था का सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है। देखो! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक भिन्न-भिन्न प्रत्येक रजकण, एक-एक पॉइन्ट। यह जो अँगुली है, वह एक पॉइन्ट नहीं, एक तत्त्व नहीं। अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। उसके टुकड़े करते... करते... करते... करते... करते... अन्तिम टुकड़ा जो रहे, जिसके दो टुकड़े नहीं होते, उसका नाम एक परमाणु। परम-अणु। अन्तिम में अन्तिम, छोटे में छोटा अणु। पॉइन्ट से तो बात चलती है। ऐसे अनन्त परमाणुओं का वह पिण्ड है। वह कहीं आत्मा नहीं है। वह तो मिट्टी-धूल है। उसमें अन्तिम पॉइन्ट... टुकड़े करते-करते अन्तिम के दो भाग न हों, ऐसी चीज़ को परम-अणु कहते हैं। परम-अणु—परमाणु। उस परमाणु में जो पर्याय / अवस्था होती है... अभी अवस्था ऐसी है, वह पहले आटा की थी, पहले गेहूँ की थी, पहले धूल की थी। वह अवस्था परमाणु की है। उसकी अवस्था का करनेवाला परमाणु है। उस अवस्था का करनेवाला आत्मा नहीं है। ऐसी अवस्था रक्त की हुई और आत्मा से हुई, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

उस सत्तामात्र वस्तु कर्ता भी होता है। और ऐसा कहना विरुद्ध भी नहीं है, कारण कि अवस्था भी है। क्या कहते हैं? जैसे परमाणु और आत्मा वस्तु है, वैसे उसकी अवस्था भी है, पर्याय भी है, परिणमन भी है, अवस्था भी है, अंश भी है, बदलती दशा भी है। आहाहा! समझ में आया? **'यः परिणामः तत्कर्म' उस द्रव्य का जो कुछ स्वभावपरिणाम है...** यहाँ थोड़ा ऐसा लिया है। निश्चय से तो भगवान आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर शुभ-अशुभभाव का कर्ता होता है, तो वह शुभ-अशुभभाव अज्ञानी का कर्म है और अज्ञानी आत्मा उसका कर्ता है। परन्तु यहाँ तो स्वभावपरिणाम लिये हैं थोड़ा।

स्वभाव में तो दोनों आते हैं—विकार भी आता है और निर्विकार भी आता है। अब क्या कहते हैं ?

जब भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु है। आत्मा तो सच्चिदानन्द, सत्-शाश्वत्, चिद्-ज्ञान, आनन्द-सुख। वह आनन्द और ज्ञान का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! जैसे अग्नि उष्णता का पिण्ड है, शक्कर मिठास का पिण्ड है, गलपन को क्या कहते हैं ? मिठास। तुम्हारी भाषा में। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! अरेरे! ऐसी दृष्टि जब हुई, तब उसे पर्याय में ज्ञान और आनन्द की पर्याय होती है, उसका कर्ता आत्मा और आनन्द की पर्याय उसका कार्य है। आहाहा! अपने अतिरिक्त दूसरा आत्मा और दूसरे रजकण की अवस्था का कार्य आत्मा का तो है ही नहीं। इस शरीर की अवस्था और वाणी की अवस्था होती है, वह परमाणु की अवस्था है। वह आत्मा से नहीं होती, परन्तु आत्मा में पुण्य और पाप के विकल्प जो परलक्षीभाव में होते हैं, वहाँ तक उस विकार का कर्ता अज्ञानी और विकारी परिणाम कार्य, वह उसका भाव है। परन्तु जब आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति मैं हूँ, जिसकी दृष्टि तत्त्व के ऊपर पड़ी है, वह आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है... आहाहा! दृष्टान्त नहीं दिया था ? हम तो बारम्बार देते हैं।

शकरकन्द होता है न ? शकरकन्द। हमारे गुजराती में शक्करिया कहते हैं। शकरकन्द। एक शकरकन्द हो, उसमें ऊपर की लाल छाल को न देखे तो पूरा शकरकन्द है। शकरकन्द का अर्थ—शक्कर की मिठास का पिण्ड। शकरकन्द का अर्थ यह है। उस लाल छाल को लक्ष्य में न लो तो वह पूरी चीज़ है, वह शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा; कर्म और शरीर तो भिन्न चीज़ है, उसकी तो दृष्टि छोड़ दे परन्तु पुण्य-पाप का, दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प उठता है, वह लाल छाल है। आहाहा! उस लाल छाल की दृष्टि छोड़ दे तो अन्दर शक्कर का पिण्ड है। अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास का पिण्ड है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : छाल विकारी भाव है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकारी भाव है। चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना का भाव हो अथवा चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, अनुकम्पा का भाव हो, वे सब भाव लाल छाल हैं। आहाहा! समझ में आया? हम नारियल का दृष्टान्त तो बहुत बार देते हैं।

श्रीफल-नारियल है न? तो नारियल के ऊपर की छाल है, वह नारियल नहीं है। अन्दर काचली है। तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं? नरेटी। वह नरेटी है, वह कोई नारियल नहीं है। और नरेटी की ओर की जो लाल छाल है... जो खोपरापाक बनावे, तब निकाल डालते हैं। वह लाल छाल है, वह भी खोपरा नहीं है। अन्दर में खोपरा तो सेर-डेढ़ सेर श्वेत-सफेद मिठास का पिण्ड वह श्रीफल। समझ में आया?

उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... यह तो ऊपर का छाल है। जैसे नारियल में ऊपर छाल होती है, ऐसी छाल है। और नरेटी, वह कर्म है। उसने पूर्व में कोई पुण्य-पाप के भाव किये हो तो कर्म, कर्म के कारण से बँधते हैं। उस कर्मबन्ध का कर्ता पुण्य-पाप भाव नहीं है। यहाँ बात तो यह चलती है। आहाहा! वह पुण्य-पाप का भाव है, वह लाल छाल जैसा है। कर्म नरेटी है और छाल ऊपर की है और पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति उठती है, वह लाल छाल है। खोपरापाक बनानेवाली महिला उसे निकाल डालती है। उसी प्रकार जिसे आत्मा का धर्म करना हो, वह पुण्य-पाप के विकल्प को घिसकर पृथक् कर दे। समझ में आया? बात ऐसी है, भाई!

परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल हुआ। अनन्त बार अरबोंपति हुआ, अनन्त बार भिखारी हुआ, अनन्त बार देव हुआ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजादि बहुत किये हों तो कोई स्वर्ग में जाता है। उससे क्या हुआ? वह कहीं जन्म-मरण का अन्त नहीं है। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त करने की चीज़ तो यह है।

सच्चिदानन्द प्रभु, वह शरीर, कर्म से तो भिन्न है। पुण्य-पाप के विकल्प का कार्य मेरा है, इससे भी भिन्न है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आनन्द का अनुभव... आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। वस्तु है या नहीं? वस्तु है तो शाश्वत है या नहीं? या नाशवान है? आत्मा शाश्वत अविनाशी है। द्रव्य अविनाशी और उसके आनन्द और ज्ञान-गुण

अविनाशी है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! उस आनन्द के नाथ की जहाँ अन्दर में दृष्टि करते हैं और वर्तमान पर्याय-अवस्था में जहाँ पूर्णानन्द का स्वीकार होता है, तो अवस्था उसका कार्य है और आत्मा उसका कर्ता है। उस अवस्था में आनन्ददशा होती है। आहाहा! इसका नाम धर्म है। शरीर की क्रिया, वह धर्म नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह भी धर्म नहीं।

धर्म तो आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर। पूर्ण इदम्। वस्तु है वह पूर्ण इदम्। पूर्ण। वह पूर्ण है। इदम् अर्थात् यह। आनन्द और ज्ञान से पूर्ण है, इसकी खबर नहीं है। समझ में आया? ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से आनन्द की, ज्ञान की, शान्ति की जो अवस्था हुई, उस अवस्था का कार्य आत्मा और आत्मा उसका कर्ता। यह भी उपचार से है। सुनो। क्या कहा यह? कि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है, सच्चिदानन्द है—सत्-शाश्वत, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! इस विषय में आनन्द है, ऐसा मानता है, वह तो दुःख है। विषयानन्द में, लक्ष्मी में आनन्द है। कीर्ति-कीर्ति सुने, उसमें आनन्द मानता है, वह तो राग का दुःख है। वहाँ धूल भी सुख नहीं। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, उसकी अस्तित्वता इतनी बड़ी है कि शाश्वत् आनन्द का स्वभाव उसका है। उस शाश्वत् वस्तु पर दृष्टि करने से जो आनन्द और सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि की पर्याय हुई, वह आत्मा का कार्य है, आत्मा उसका कर्ता है। यह भी उपचार से है। क्या कहा? सुनो। यह तो अमृत के प्रवाह हैं, बापू! आहाहा! कभी किया नहीं, कभी सुना नहीं, कभी चीज़ कैसी क्या है, उसका कभी पता लिया नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि शरीर, वाणी, मन की अवस्था का कर्ता आत्मा तो नहीं है और पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उनका कर्ता भी आत्मा नहीं है। परन्तु अपना आत्मा आनन्दस्वरूप (है, उसके) ऊपर दृष्टि पड़ने से, पूर्णानन्द का स्वीकार होने से पर्याय में जो आनन्द आया, वह कर्म-कार्य है और आत्मा कर्ता है, यह भी उपचार से है। अर्थात् आनन्द की अवस्था आनन्द से हुई है। आनन्द की अवस्था कर्ता, आनन्द की अवस्था कार्य, आनन्द की अवस्था आधार। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान! बात तो ऐसी है। पूरी दुनिया से अन्तर है। ऐई! चन्दुभाई! यहाँ तो पूरी दुनिया देखी है न? इस शरीर को ८८ वर्ष हुए। शरीर को, हों!

आत्मा तो अनादि अनन्त है। यह तो शरीर को ८८ वर्ष हुए। दो अट्ठे। बहुत देखा है, बहुत सुना है। अनेक प्रकार के शास्त्र भी बहुत देखे हैं। करोड़ों श्लोक। आहाहा! परन्तु यह चीज़ क्या है, इसकी लोगों को खबर नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि **'परिणतिः सा क्रिया'** आत्मा आनन्दस्वरूप परिणमता है। समझ में आया? उसका नाम धर्म की दशा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, आत्मा का अनुभव होना, अनुभव में आनन्द की छाप-मोहरछाप पड़ी है। आहाहा! उस आनन्द की पर्याय का कर्ता आत्मा और वह पर्याय उसका कार्य, इन दो को भिन्न करके मानना, वह उपचार है, व्यवहार है। बाकी आनन्द की पर्याय का कर्ता आनन्द की पर्याय, आनन्द की पर्याय का कार्य आनन्द की पर्याय, एक-एक समय की पर्याय में षट्कारक का परिणमन स्वतन्त्र होता है। भाई! सहारनपुर में... अरेरे! दुनिया दुःखी। करोड़ोंपति दुःखी। पोपटभाई!

मुमुक्षु : सत्य बात है। सुखी होवे तो यहाँ किसलिए आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसलिए? पैसेवाले हैं। दो करोड़ रुपये हैं। धूल है, दुःखी है। यह हमारे सेठ रहे नहीं? यह तो भाई पहचानते होंगे। शोभालाल। बहुत पैसेवाले हैं। पैसेवाला अर्थात् क्या? आहाहा! पानी में कोई अपथ्य आ जावे तो वाला निकलता है न? क्या कहते हैं? नारु, वाला निकले तो दुःख होता है। तो यह तो कितने वाला? पैसेवाला, स्त्रीवाला, कुटुम्बवाला, इज्जतवाला, पुत्रवाला, समधीवाला। इसे कितने वाला लगे हैं! भगवान! यह दुःखी है। आहाहा! लोग ऐसा कहते हैं कि पैसेवाले सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं। सुख तो आत्मा के आनन्द में है। वहाँ तो नजरें नहीं और नजर यहाँ बाहर में है। आहाहा! हिरण की नाभि में कस्तूरी, हिरण को कस्तूरी की कीमत नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी कस्तूरी पड़ी है। आहाहा! उसकी कीमत नहीं और इस पुण्य के फल पाँच-पचास करोड़ मिले, उसकी कीमत करता है। धूल की (कीमत करता है)। वह हिरण जैसा मृग है। यह आता है न? 'मनुष्य रूपेण मृगा चरन्ती' मनुष्य के रूप में मृग चरता है। वह मृग है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **ऐसा कहना विरुद्ध भी नहीं है,...** कि इसलिए इतना

कहा? भाई! विरुद्ध नहीं है अर्थात् कर्ता और कर्म कहना है न? इसलिए वह तो व्यवहाररूप से विरुद्ध नहीं है। **कारण कि अवस्था भी है।** आत्मा की निर्मल आनन्द अवस्था भी है और आत्मा उसका कर्ता, ऐसा कहना विरुद्ध नहीं है। नहीं तो कर्ता और कार्य कहना, यह दो विरुद्ध है, तथापि वह अन्तर की चीज़ है। भगवान आनन्दस्वरूप, आनन्दरूप से होता है, तो वह आनन्द की अवस्था कार्य, (ऐसा कहा जाता है)। भाषा ऐसी ली है न? पहले से लेते हैं। **द्रव्य का जो कुछ स्वभावपरिणाम है, वह द्रव्य का परिणाम कर्म...** ऐसा स्वभाव का अर्थ लिया है।

यहाँ तो निश्चय से तो विकारी परिणाम, पुण्य-पाप, इसका कार्य है—अज्ञानी कर्ता है, इतना सिद्ध करना है। परन्तु उसका फल लेना हो तो विकारी परिणाम भी उसका कार्य नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसा जहाँ स्वीकार हुआ, पूर्णानन्द शाश्वत् महा आनन्द की सत्ता है, ऐसा जहाँ दृष्टि में स्वीकार हुआ तो जो आनन्द की दशा हुई, वह अपना कार्य और आत्मा कर्ता, यह दोनों को भेद से कहना, वह विरुद्ध नहीं है। समझ में आया? धीरुभाई! तुम्हारी कम्पनी-बम्पनी बड़ी कम्पनी में है यह? सब गप्प ही गप्प वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : मैं करूँ... मैं करूँ...!

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करता हूँ और यह मैं करता हूँ। भगवान! तू कौन? तेरी सत्ता उलांघकर दूसरे द्रव्य की सत्ता तुझमें प्रवेश करती है? तेरा अस्तित्व जो है, उसे छोड़कर परद्रव्य की सत्ता में प्रवेश करती है कि पर का कर्ता हो? भाई!

मुमुक्षु : मैं करता हूँ,... मैं करता हूँ... यह गप्प है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी का माना हुआ गप्प है। हम सर्राफ करते हैं, सेठिया करते हैं, सब गप्प है। ग्वालियर के सर्राफ हैं, सर्राफ। आहाहा! गद्दी पर बैठे। पच्चीस हजार ऐसे दो, पाँच हजार ऐसे लो। कौन करे?

मुमुक्षु : सब गप्प ही गप्प?

पूज्य गुरुदेवश्री : गप्प नहीं। मिथ्या भ्रमणा का सत्य है। वह भ्रमणा की वस्तु है।

वह भ्रमणा नहीं है, ऐसा नहीं है। पोपटभाई! आहाहा!

इसमें दृष्टान्त दिया है। इस कलश टीका में संस्कृत में, भाई! इस कलश की टीका में संस्कृत में। क्योंकि यह टीका तो ८६ गाथा की है। परन्तु ८३ गाथा में आया है न? उसका इसमें संस्कृत में डाला है। कलश टीका संस्कृत है, उसमें यह डाला है। समुद्र है, उसकी पर्याय-जो तरंग उठती है, उस तरंग का कर्ता समुद्र है और समुद्र उसका कर्ता तथा तरंग उसका कार्य। परन्तु हवा आयी और तरंग उठी, वह हवा उसका कर्ता और तरंग उसका कार्य, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अभी तो यह बहुत चला है। कर्म निमित्त है तो, उससे जीव में विकार होता है। कर्म बिना विकार कैसे हो? ऐसी अभी बहुत गप्प चलती है। जैन में कर्म कर्ता हो गया। दूसरे में ईश्वर कर्ता हो गया। ईश्वर कर्ता, यहाँ कहे, कर्म कर्ता। समझ में आया? अभी आर्यिका का आया है। व्यवहारनय से कर्म से भी बिगाड़ होता है। आत्मा चार गति में भटकता है, वह क्या कर्म से भटकता है या अपने से भटकता है? कर्म से भटकता है। तेरी भूल है, प्रभु! 'कर्म बेचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई' कर्म तो जड़ है। उसकी चीज़ की उसे खबर नहीं है। तू ज्ञानस्वरूप है, यह तुझे खबर है और वह जड़ है, यह तुझे खबर है। शरीर को खबर है कि मैं शरीर हूँ? इस जड़-मिट्टी को खबर है? आहाहा! यह अस्ति है, इसकी खबर इसे है? इसकी खबर तो ज्ञान को है कि यह जड़ है और मैं चैतन्य हूँ। यह अजीव है, मैं जीव हूँ। यह मिट्टी है, मैं चैतन्य स्वामी हूँ-चैतन्यस्वरूप हूँ। आहाहा! इसका ज्ञान तो आत्मा को है, जड़ को तो है नहीं। तो कर्म बेचारे कौन? 'भूल मेरी अधिकाई।' मैं मेरी भूल से भटकता हूँ; कर्म से नहीं। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' कर्म से भूला है, ऐसा है नहीं। कर्म तो निमित्तमात्र है।

मुमुक्षु : दूसरे की भूल निकालना यह...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनादि का अभ्यास है न, दरबार! दरबार है। सरवाला के, वढवाण के पास है। आहाहा! उसे अभी खबर नहीं कि क्या भूल है।

यहाँ कहते हैं कि तेरी भूल जो है, पुण्य-पाप के भाव और भ्रमणा—मैं पर का कर्ता हूँ, ऐसी भ्रमणा का कर्ता तू है और वह भ्रमणा तेरा कार्य है। यह अज्ञानभाव से है। आहाहा!

और ज्ञानभाव से चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्दस्वरूप सत्ता है, शाश्वत है, उसका परिणमन पर्याय में आया, धर्मदृष्टि हुई, धर्मी ऐसे भगवान आत्मा पर दृष्टि हुई... दूसरी बात है, अलौकिक है, प्रभु! तो भगवान पूर्णानन्द शाश्वत् अविनाशी जो स्वरूप तत्त्व है, उस पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में आनन्द की दशा हुई, वह आत्मा की अवस्था और आत्मा उसका कर्ता, यह विरुद्ध नहीं है। आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसा है। क्योंकि वे दो कहे न? दो हो गये न? इसलिए उसकी सत्ता का वह परिणमन है, इसलिए विरुद्ध नहीं है।

वह द्रव्य का परिणाम कर्म... द्रव्य का वह कार्य है, उसका वह कर्म कहलाता है। **इस नाम से कहा जाता है। द्रव्य का जो कुछ पूर्व अवस्था से उत्तर अवस्थारूप होना है, उसका नाम क्रिया कहा जाता है।** प्रत्येक पदार्थ का पूर्व अवस्था से उत्तर अवस्थारूप होना, उसे क्रिया कहते हैं। दृष्टान्त देते हैं। **जैसे मृत्तिका घटरूप होती है,...** है? मिट्टी घटरूप होती है, कुम्हार से नहीं। आहाहा! **इसलिए मृत्तिका कर्ता कहलाती है,...** जड़ है न! जड़ को तो खबर नहीं कि मैं कर्ता हूँ। न होवे परन्तु परिणमन करती है या नहीं? आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! **इसलिए मृत्तिका कर्ता कहलाती है, उत्पन्न हुआ घड़ा...** देखो! क्या कहते हैं? घड़ा उत्पन्न हुआ। मिट्टी उत्पन्न नहीं होती। मिट्टी तो है ही। मिट्टी में से **उत्पन्न हुआ घड़ा कर्म कहलाता है...** वह कार्य कहलाता है। मिट्टी का घड़ारूप होना, वह मिट्टी का कार्य है। आहाहा! वह कुम्हार का कार्य नहीं है। कुम्हार से कभी घड़ा होता ही नहीं। वहाँ तो दृष्टान्त दिया है। कुम्हार से घड़ा उत्पन्न हो तो कुम्हार के शरीरप्रमाण उसका आकार होना चाहिए, कुम्हार का स्वभाव उसमें प्रवेश होना चाहिए। इसलिए कुम्हार घड़े का कर्ता नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! इसी तरह पूजा-भक्ति में स्वाहा (बोलते हैं)। कहते हैं कि वह शरीर की क्रिया और भाषा की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है। नन्दकिशोरजी! ऐसी वकालात भगवान की है।

मुमुक्षु : परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ क्या? एक दूसरी चीज़ है। परन्तु उससे हुआ है, ऐसा नहीं है। कुम्हार उपस्थित हो परन्तु कुम्हार से घड़ा (उत्पन्न) हुआ, ऐसा तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : होशियार कुम्हार होवे (तो) अच्छा घड़ा हो, ठोठ कुम्हार होवे तो बिगाड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अच्छा घड़ा होने की अवस्था हुई, तो वह मिट्टी से हुई है, कुम्हार से नहीं। यह प्रश्न उठा है। शास्त्र में पाठ है कि अच्छा घड़ा बनाने को विचिक्षण कुम्हार को क्यों खोजते हैं? अच्छा घड़ा बनाना हो तो विचिक्षण कुम्हार को क्यों खोजते हैं? तो विचिक्षण कुम्हार से घड़ा बनता है। नहीं। कुम्हार की विचिक्षणता की पर्याय कुम्हार के आत्मा में रही। उसमें कहाँ घड़े में प्रवेश किया कि वह घड़ा बना दे। समझ में आया? यह नोरता में नहीं करते? नोरता-नोरता में। क्या कहलाता है वह? घड़ा बनाते हैं न?

मुमुक्षु : गरबो...

पूज्य गुरुदेवश्री : गरबो। बस वह। नोरता में गरबा बनाते हैं न? उसमें छिद्र होते हैं। अन्दर दीपक होता है। घड़ा ऐसा नहीं रखते। वे छिद्रवाले होते हैं। होशियार कुम्हार ह होवे, वह बना सके। ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? क्योंकि छिद्र पाड़े न? काणा समझते हो? छेद। गरबा के अन्दर दीपक होता है और गरबा छिद्रवाला होता है। यह दृष्टान्त दिया है। सिद्धान्त में इसका दृष्टान्त दिया है। कि घड़ा फूट जाए तो भी दीपक बुझता नहीं। इसी प्रकार यह शरीर फूट जाए तो आत्मदीपक बुझता नहीं। आत्मा तो भिन्न है।

मुमुक्षु : फिर से दृष्टान्त समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से? समयसार में आया है कि घड़ा और दीपक दोनों चीज़ें भिन्न हैं। और घड़ा फूट जाए तो दीपक बुझ जाए, ऐसा नहीं है। दीपक तो दीपक ही है और कदाचित् दीपक बुझ जाए और घड़ा फूट जाए, ऐसा भी नहीं है... जीव चला जाए तो यह मिट्टी का घड़ा टूट जाए, फूट जाए, ऐसा नहीं है। समझ में आया? दोनों चीज़ें अत्यन्त भिन्न हैं। भिन्न के भेदज्ञान के अभाव में दोनों को एक मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात तो बराबर है परन्तु आपने (संवत्) १९९१ के वर्ष में मुँहपत्ती छोड़ी थी या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ी नहीं थी, छूट गयी है। नग्न मुनि होते हैं, वे वस्त्र छोड़ते

नहीं, वस्त्र छूट जाते हैं। यह प्रश्न हुआ था। यहाँ तो बहुत प्रश्न हुए थे। चाँदमलजी थे, न चाँदमलजी ? उदयपुर, चाँदमलजी ब्रह्मचारी नहीं थे ?

मुमुक्षु : उदयपुरवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदयपुरवाले। यहाँ तो बहुत आ गये हैं न। बहुत पण्डित लोग आ गय हैं। एक बार स्वाध्यायमन्दिर में प्रश्न उठा था कि मुनि वस्त्र उतारते हैं या नहीं ? देखो! मुनि नग्न होते हैं। भाई! वस्त्र उतारते नहीं। जड़ की पर्याय उतारना, वह आत्मा का कार्य नहीं है। बहुत चर्चा हुई थी। ४३ वर्ष तो यहाँ हुए। ४३ चातुर्मास। चार और तीन। ४५ (वर्ष) दूसरी जगह हुए। ८८ वर्ष हुए। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ दूसरी है, प्रभु! नाथ! आहाहा! वस्त्र उतारना, वह आत्मा का कार्य है और आत्मा उसका कर्ता है - (ऐसा है नहीं।)

प्रवचनसार की १०२ गाथा में है कि वह वस्त्र की अवस्था उस समय निकलने की थी, वह उसका जन्मक्षण था। उससे छूट जाना, वह उसका जन्मक्षण था। वह वस्त्र आत्मा ने उतारे और विकल्प आया और वस्त्र उतारे, (ऐसा नहीं है)। विकल्प कर्ता है और वस्त्र उतरते हैं, वह कार्य है—ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म, बापू! वस्त्र अनन्त परमाणुओं का दल है। वस्त्र है, वह क्या है ? इतने में अनन्त रजकण हैं। इतने में अनन्त रजकण हैं। एक-एक पॉइन्ट-टुकड़ा करो तो छोटा परमाणु है, ऐसे अनन्त परमाणु हैं, तो वह चीज़ देखो। ऐसी थी। उस अवस्था का कर्ता कौन ? कि वह वस्त्र। अँगुली नहीं। भिन्न चीज़ की अवस्था का कर्ता भिन्न—ऐसा तीन काल में नहीं होता। धीरुभाई! मुम्बई में तो सुनने को मिलता नहीं। जहाँ-तहाँ भटकने का सब मिलता है।

मुमुक्षु : सुनने को मिलता है परन्तु दूसरा मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। दूसरा मिलता है। मोहमयी नगरी अकेली... आहाहा! अरे! प्रभु! कहते हैं, सुन तो सही नाथ! आहाहा!

पूर्व अवस्था से उत्तर अवस्थारूप... आया न ? मिट्टी के पिण्ड से घड़ा बनना, वह क्रिया है। क्या कहते हैं ? मिट्टी घटरूप हुई तो घट उसका कार्य है और मिट्टी कर्ता। तथा पिण्ड अवस्था से घटरूप अवस्था हुई, वह क्रिया है। मिट्टी का पिण्ड था न ? पिण्ड

की अवस्था घटरूप हुई, वह क्रिया। परन्तु कर्ता मिट्टी, घड़ा कर्म और पिण्ड से पलटती क्रिया, तीनों एक चीज़ की है। आहाहा! गजब, भाई!

यह होशियार महिला होती है न? अच्छे पापड़ बनावे। क्या कहलाता है? वड़ी बनावे। सेव-सेव बनावे। सेव को क्या कहते हैं? खाट होती है न, उसके ऊपर लकड़ी का पटिया डालकर बने। यह सेव बनाते हैं न, गेहूँ के सेव? तो कहते हैं कि होशियार महिला हो वह बहुत अच्छे सेव बनावे, वड़ी-पापड़ बनावे। मूढ़ है। पर की पर्याय करे कौन? अच्छा भरत भरे। भरत भरे न? चौको में काँच के टुकड़े रखे, अभ्रक के भरे और फिर चारों ओर डोरा डाले, इसलिए अभ्रक न निकल जाए। वह क्रिया कौन करता है? आहाहा! भगवान! तुझे खबर नहीं। वह परमाणु की पर्याय करती है, तुझसे नहीं (होती)। ऐसा है, पोपटभाई! सूक्ष्म बहुत, बापू! मार्ग तो सूक्ष्म है। धर्म का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! अनन्त काल में कभी इसने यह मार्ग पकड़ा ही नहीं। आहाहा! जहाँ-तहाँ मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... अभिमान में जिन्दगी व्यतीत की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **मृत्तिका पिण्ड से घटरूप होना क्रिया कहलाती है। वैसे ही सत्त्वरूप वस्तु कर्ता कहा जाता है,...** कोई भी परमाणु या आत्मा जो सत्त्व वस्तु है, उसे कर्ता कहा जाता है। **उस द्रव्य का उत्पन्न हुआ परिणाम...** उस पदार्थ में नयी उत्पन्न हुई दशा को **कर्म कहा जाता है...** बराबर है? अन्दर में है, उसका अर्थ होता है। यह तो महासिद्धान्त सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की वाणी में आया, वह यह सिद्धान्त है। आहाहा! भाई! तुझे अभिमान छोड़ना पड़ेगा कि मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ। आहाहा! गद्दी पर बैठा हो तो दुकान का धन्धा बराबर चलता है। मैं बैठा हूँ, इसलिए बराबर व्यवस्थित चलता है और नौकर आया, तब से व्यवस्था बिगड़ गयी।

मुमुक्षु : बहुत जगह नौकर से ही (बराबर चलता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी है। किसी जगह नौकर से बराबर व्यवस्था होती है। राणपुर में एक सेठ और नौकर थे। नौकर ऐसा था, ऐसा काम करे, ऐसा माने... सेठ आवे और जरा गड़बड़ करे तो नौकर ऐसा कहे कि सेठ! घर चले जाओ। नौकर ऐसा कहे। वह चला जाए। तुम्हारा काम नहीं है। तुम्हें खबर नहीं पड़ती और तुम आकर गड़बड़ करते

हो, नौकर ऐसा कहे, हों! सेठ भी समझे। घर चला जाए। परन्तु वह मानता है कि मैं बराबर व्यवस्था कर सकता हूँ और सेठ को नहीं आता। वह मूढ़ है। हमने तो बहुत सब देखा है न। राणपुर में थे। बनिया थे। उनका नौकर बहुत होशियार। अभिमान करने में। सेठ आकर बीच में थोड़ा बोले कि भाई! ऐसा करो न। तुम्हें कौन पूछता है, चले जाओ। चलो मैं जाता हूँ, वापस वह सेठ भी ऐसा, हों! नौकर को कहे, मुझे आता नहीं, बात सत्य है। यह आता है, क्या? धूल। बाहर के कार्य। यह नामा बराबर लिखता है। मोती के अक्षर जैसा। वह क्रिया आत्मा की है? वह क्रिया अँगुली की है? गजब बात है, भगवान! वह रजकण का सत्त्व है, उसकी वह पर्याय है। आहाहा! दुनिया से भिन्न चीज़ है, डॉक्टर!

मुमुक्षु : लोकोत्तर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकोत्तर बात है। आहाहा! दुनिया से भिन्न चीज़ है, प्रभु! तेरे सत्त्व में तेरी पर्याय का कार्य, तेरा सत्त्व हो उसमें हो, परन्तु तेरा सत्त्व-अस्तित्व पर की सत्ता में तेरा अस्तित्व प्रवेश नहीं करता। तो पर की सत्ता की पर्याय का अस्तित्व तेरा है, ऐसा कहाँ से आया? लॉजिक से तो बात चलती है, भगवान! समझ में आया?

'वस्तुतया त्रयं अपि न भिन्नं' सत्तामात्र वस्तु के स्वरूप का अनुभव करने पर कर्ता-कर्म-क्रिया ऐसे तीन भेद... है। व्यवहार से तीन भेद है। मिट्टी कर्ता, घट कर्म, पिण्ड अवस्था, वह पलटकर घट की क्रिया हुई, ऐसे तीन बोल व्यवहार से कहने में आते हैं। **निश्चय से तीन सत्त्व तो नहीं, एक ही सत्त्व है।** तीनों का सत्त्व एक ही है। तीनों का एक सत्त्व है। कर्ता का सत्त्व, कार्य का सत्त्व और क्रिया का सत्त्व—तीनों का एक सत्त्व है। दूसरे सत्त्व ने उसमें प्रवेश किया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म पड़े। परन्तु क्या हो? यह तो सवेरे चलता ही है। यह तो ऐसा का ऐसा रखा है। दोपहर में जरा अन्तर किया है। शक्ति की व्याख्या सूक्ष्म है। सुने तो सही, क्या चीज़ है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने ज्ञान में तीन काल, तीन लोक जाने और वाणी में वह ध्वनि आयी। जैसा देखा, वैसा वाणी में आया। आहाहा!

निश्चय से तीन सत्त्व तो नहीं,... क्या कहते हैं? मिट्टी कर्ता, घट कर्म और पिण्ड से घट की क्रिया हुई, वह तीन सत्त्व नहीं। तीन का सत्त्व तो एक ही है। इसी प्रकार

भगवान आत्मा आनन्द की पर्याय का कर्ता, आनन्द की पर्याय कार्य और पूर्व की अवस्था पलटकर आनन्द हुआ, वह क्रिया—इन तीनों में आत्मा तो एक ही है। आहाहा! देह छोड़कर कहाँ चला जाएगा। इस देह का एक रजकण साथ में नहीं आयेगा। यह तो मिट्टी है। आहाहा! अभी तो हार्टफेल का बहुत सुनते हैं न। छोटी-छोटी उम्र में हार्टफेल हो जाता है। आहाहा! बोलते-बोलते। एक तो बोलत-बोलते छूट गया।

अभी कहा नहीं था? एक लड़का, नहीं? जलगाँव के वजुभाई के बहिन का लड़का। अमेरिका में। बहुत होशियार। २६ वर्ष की उम्र। ९० प्रतिशत से अमेरिका में पास हुआ! लाखों लड़कों में ९० प्रतिशत में पास हुआ तो लोगों ने बहुत सम्मान किया, बहुत मान दिया। ओहोहो! काठियावाड़ी गुजराती व्यक्ति! अमेरिका में ९० प्रतिशत से पास! लड़का कहे, मुझे देश में जाना है। ये कहें, नहीं, हमें सम्मान देना है। बहुत मान दिया। मान देते-देते ग्यारह बजे के पश्चात् सब अलग हुए। ग्यारह बजे सोया। सवेरे उठकर देखा तो मुर्दा। आहाहा! अभी बना है। अमेरिका में। अपने जलगाँव से वजुभाई आते हैं न? उनकी बहिन का लड़का। यहाँ आकर विवाह करना था। वहाँ अमेरिका में उसका दूसरा भाई था, वहाँ जानेवाला था। माल-सामान बाँध रखा था। क्या करे तेरी स्थिति? आहाहा! ग्यारह बजे सोया और सवेरे जगाने जाए तो मुर्दा। आहाहा! २६ वर्ष। यह तो स्थिति जिस समय में पूरी होने की होगी, वह होगी। तीन काल में तेरे डॉक्टर-बॉक्टर, इन्द्र ऊपर से आवे तो भी बदले नहीं, ऐसा कहते हैं। डॉक्टर चले जाते हैं या नहीं? हेमन्तकुमार। डॉक्टर! हेमन्तकुमार का सुना है या नहीं? दो-तीन बार आये थे। हेमन्तकुमार ऑपरेशन करते थे। करते करते (कहा), मुझे कुछ होता है। भावनगर अस्पताल के बड़े सर्जन और प्रभाशंकर पट्टणी के रिश्तेदार होते हैं। कुर्सी पर बैठे, वहाँ देह (छूट गयी)।

जिस समय में देह की स्थिति छूटे, वह देह की अवस्था है। उसका कर्ता देह है। आत्मा (देह) छोड़ने का कर्ता है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी दृष्टि—परद्रव्य के कर्तापने की दृष्टि छोड़ दे तो तेरी विकारी पर्याय का कर्ता... ऐसा माने कि उसकी दृष्टि छोड़कर मैं निर्विकारी स्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि होकर निर्विकारी कार्य हो, इसका नाम धर्म है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, सोमवार, दिनांक १५-०८-१९७७
कलश-५१ - ५२, प्रवचन-६७

कलश टीका, कर्ता-कर्म अधिकार (चलता है)। एक द्रव्य जो है, कोई भी आत्मा और परमाणु वह परद्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं है। और अपने परिणाम जो होते हैं, उनका कर्ता परद्रव्य नहीं है। ऐसा निर्णय करे तो उसका परिणाम-तात्पर्य यह है कि मेरी पर्याय का कर्ता मैं हूँ। निमित्त और उपादान दो होकर क्रिया होती है, ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करना है। दोनों एक साथ है न? मिट्टी में से घड़ा बनता है। कुम्हार का विकल्प, हाथ चलता है, एक साथ है तो भी घड़े की पर्याय का कर्ता कुम्हार नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मा... भावार्थ है न?

कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप जो इस प्रकार है,... क्या? यहाँ पहले आत्मा पर लेते हैं। आत्मा है, वह अपनी शुद्ध या अशुद्ध पर्यायरूपी कर्म... आत्मा है, वह शुद्ध या अशुद्धरूपी विकारी परिणमन (हो), वह उसका कार्य है। अभी तो सामान्य बात चलती है। आत्मा में अशुद्ध परिणमन होता है, मलिन, मिथ्यात्व राग-द्वेष के भाव के परिणाम का कर्ता आत्मा है। वह आत्मा का कार्य है। कर्म का नहीं। समझ में आया? और अपनी पर्याय जो पूर्व की अवस्था से पलटती है, उस क्रिया का कर्ता भी आत्मा है। पूर्व की अवस्था रागवाली थी और बाद में भी रागवाली हुई। अथवा पूर्व में राग की अवस्था थी, वह अपनी चैतन्यद्रव्य की दृष्टि होने पर अराग अवस्था सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उस क्रिया का कर्ता आत्मा है। धीरुभाई! यह तो थोड़ा धीर होकर समझनेयोग्य है। कल आया नहीं था? धीरज से... आहाहा! मार्ग ऐसा है, भगवान!

अरे..! अनादि से दो द्रव्यों की पर्याय एक द्रव्य करता है, ऐसी मान्यता—भ्रमणा, उसका पर के ऊपर लक्ष्य है। और एक द्रव्य की पर्याय दो द्रव्य करते हैं, यह भी मिथ्यात्व है और दो द्रव्य की पर्याय एक द्रव्य करता है, यह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! अपनी विकारी या अविकारी परिणति जिस समय में जिस प्रकार से होती है, विकारी या अविकारी परिणाम आत्मा का कार्य है। दो मिलकर हुआ है, (ऐसा है नहीं)। यह कहते

हैं न ? अभी बहुत चलता है। उपादान-निमित्त दो मिलकर उपादान का कार्य होता है। ऐसा नहीं, भाई ! वस्तु की स्थिति ऐसी नहीं है। ये कहा न ?

कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप जो... पूर्व में कहा ऐसा है कि राग की परिणति करो या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की पर्याय करो, उसका कर्ता आत्मा है और परिणाम, परिणति हुई, वह कार्य है और पूर्व की अवस्था पलटकर क्रिया हुई, उस क्रिया का कर्ता भी आत्मा है। आहाहा ! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा ! पर के साथ सम्बन्ध मान रखा है, वह मिथ्याभ्रम है। आहाहा ! समझ में आया ? आचार्य तो यहाँ तक कहते हैं कि आत्मा बन्धन की पर्याय का कर्ता है, वह भी मिथ्याभ्रम है। कर्ता है परन्तु भ्रमणा से विकार की पर्याय करता है। समझ में आया ? यह आया न ? श्रीमद् में आता है। दिगम्बर के आचार्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा का मोक्ष होता नहीं। मोक्ष समझ में आता है, ऐसा कहा है। इसका अर्थ क्या है ? कि आत्मा परिणति करता है, तब तक अज्ञान से बन्धन में है, परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। वस्तु स्वरूप तो मोक्षस्वरूप ही है। मोक्ष होता है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार की-पर्याय की बात है। मोक्ष ही है। माना है कि बन्ध में हूँ। राग के बन्ध में, हों ! पर के बन्ध में तो नहीं। आहाहा ! इस पुण्य और पाप के राग के बन्धन में हूँ, ऐसी इसकी मान्यता है। वस्तु कभी बन्धन में आयी ही नहीं। वस्तु आत्मा है, वह तो मोक्षस्वरूप ही है। यह कहा न ?

समयसार की पन्द्रहवीं गाथा में कहा, **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** अबद्ध लिया है। बद्ध नहीं, ऐसा कहो या मोक्ष कहो। आहाहा ! अपना स्वरूप मुक्तस्वरूप ही है। राग से भिन्न जो द्रव्यस्वभाव है, वह मुक्तस्वरूप ही है। ऐसी दृष्टि होने पर उसे आत्मा मोक्षस्वरूप है, ऐसा भान हुआ तो पर्याय में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। यह उसका तात्पर्य है। बन्ध मेरा है, मैं बन्ध का कर्ता हूँ - यह पर्यायदृष्टि की बात है। पर से तो नहीं। मिथ्यात्व, राग का बन्धन है, वह भी पर्यायदृष्टि से बन्धन है। पर से तो बन्धन नहीं, द्रव्य बन्धन में नहीं। आहाहा ! परन्तु जब द्रव्यदृष्टि से देखो तो... द्रव्यस्वभाव चैतन्य जलहल ज्योति आनन्द का कन्द प्रभु, अतीन्द्रिय सुखसागर का सिन्धु, भगवान आत्मा आनन्द के अमृतसागर का सिन्धु इस भवसिन्धु की पर्याय से भिन्न है। आहाहा !

कर्ता-कर्म-क्रियाएक ही द्रव्य में स्वयं से होती है, ऐसा पहले निर्णय कराया।

विकारी परिणाम हो या धर्म की सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय हो, उसका कर्ता आत्मा है। वह परिणाम धर्म की पर्याय या अधर्म की पर्याय हुई, वह आत्मा का कार्य है। और पलटती क्रिया भी आत्मा का कार्य है। पलटती है तो निमित्त आया, इसलिए पलटती है—ऐसा नहीं है। आहाहा! जब ऐसा निर्णय होता है, तब उस निर्णय में से छूटकर, पर्यायदृष्टि से लक्ष्य छोड़कर, पर्याय मेरा कार्य है और मैं कर्ता हूँ, यह भी दृष्टि छोड़कर... आहाहा! मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द-सुख का सागर... आहाहा!

'अध्यात्म पंचसंग्रह' दीपचन्दजी कृत है। उसमें तो ऐसा लिया है, एक-एक गुण में नव रस उतारे हैं। नव रस। रस समझे? अद्‌भुत रस, वीभत्स रस, शृंगार रस आदि। आत्मा आनन्द रस है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्दरसस्वरूप भगवान तो मुक्तस्वरूप है, उसकी दृष्टि करना। पर्याय में विकारी या अविकारी का कर्ता है, ऐसा सिद्ध किया, परन्तु फिर मोक्षस्वभाव में दृष्टि करना। नन्दकिशोरजी! बात तो ऐसी है, भगवान! बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! अरे! चौरासी के भवसिन्धु के समुद्र में भटकते-भटकते, जैसे घाणी में तिल पिलते हैं, वैसे दुःख में पिलता है। आहाहा! इसे खबर नहीं है। सन्निपात है, सन्निपात।

सन्निपात समझे? वात, पित्त और कफ तीनों का जोर हो, उसे सन्निपात कहते हैं। तीनों का जुड़ान। सनी अर्थात् जुड़ान। वात, पित्त और कफ (वकरे तो) सन्निपात होता है दाँत निकालता है (हँसता है), सुखी है? दाँत निकालता है न? हँसता है न? वह मात्र दुःख में लुढ़क गया है कि हँसता हूँ या नहीं, इसकी उसे खबर नहीं है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा मिथ्याश्रद्धा—राग मेरी चीज़ है और मैं राग का कर्ता हूँ, तब तक तो मिथ्यात्व है। यहाँ तो परद्रव्य से भिन्न करने को, मिथ्यात्व की पर्याय भी जीव की है, इतना कहा है। समझ में आया? वह तो पर्याय की स्वतन्त्रता स्वयं से है, इतना सिद्ध करना है। पश्चात् मिथ्यात्व का परिणाम भी अपना स्वरूप नहीं है। आहाहा! मैं तो आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय सुखसिन्धु हूँ। उसमें आता है न?

कहे विचिक्षण पुरुष, सदा मैं एक हूँ,
अपने रस सु भर्यो अनादि टेक हूँ॥

अपने आनन्द के रस से अनादि से (भरा हुआ), टेक अर्थात् मेरी मर्यादा ऐसी है।

कहे विचिक्षण पुरुष, सदा मैं एक हूँ,
अपने रस सु भर्यो अनादि टेक हूँ॥
मोहकर्म मम नांहि, नांहि भ्रमकूप है॥

यह मिथ्यात्व का परिणाम करता है, वह भ्रमकूप है—ऐसा कहते हैं।

मोहकर्म मम नांहि, नांहि भ्रमकूप है,
(शुद्धचेतना) सुख सिन्धु हमारो रूप है।

आहाहा! हमारा रूप तो प्रभु आनन्द-सुख का सिन्धु / सागर है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? इसमें कभी नजर की नहीं। जिसकी नजर है, ऐसे निधान को निहारा नहीं। और उस नजर में-अपनी नजर में पर को निहारा। आहाहा! जो नजर की चीज़ नहीं है, उसे निहारा और जो नजर की चीज़ है, वहाँ नजर नहीं की। समझ में आया? यह कहते हैं। 'मोहकर्म मम नांहि, नांहि भ्रमकूप है, (शुद्धचेतना) सुख सिन्धु हमारो रूप है।' आहाहा! आनन्दस्वरूप (वह मेरा रूप है)।

विकारी पर्याय या अविकारी पर्याय का कर्ता मैं, मेरा कार्य और मेरी क्रिया वह मेरी है, ऐसा मानकर वहाँ रुकना नहीं। ऐसा बताकर वीतरागता बतलानी है। समझ में आया? इतना बताकर वीतरागता बतलानी है। आहाहा! भगवान! तेरी विकारी पर्याय का कर्ता तू है, यह बात अज्ञानरूप से तो बराबर है। समझ में आया? परन्तु वह विकारी पर्याय भी तेरी चीज़ नहीं है। क्योंकि तेरी कोई शक्ति विकार करे, ऐसी कोई अनन्त शक्ति में कोई शक्ति नहीं है। अनन्त शक्ति-गुण है। दोपहर को चलता है न? जीवत्व, चिति, दृशि आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति कहो, गुण कहो, वस्तु सत्त्व है, सत् है, उसका सत्त्व कहो। उस सत्त्व की शक्ति में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि विकार करे। आहाहा! वह शक्ति और शक्तिवान उसके ऊपर दृष्टि करना, वह इस सर्व का तात्पर्य है।

मुमुक्षु : यह तो आप देखने का काम है, हम तो गृहस्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कोई गृहस्थ-फृहस्थ नहीं है। सब आत्मा भगवान है। गृहस्थ की व्याख्या कल की थी न? भगवान! गृहस्थ। क्या कहा था? अपने गुण गृह में

अपने घर में रहे, वह गृहस्थ है। उसमें है। वह है न? वह अध्यात्म पंचसंग्रह है। दीपचन्दजी का अध्यात्म पंचसंग्रह। परमात्मपुराण, स्वरूपानन्द आदि पाँच (अधिकार) है, उसमें लिया है कि गृहस्थ अर्थात् क्या? समझे? देखना है? किस जगह है, खबर पड़े?

मुमुक्षु : अपने आत्मा में-घर में रहे, वह गृहस्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा गृहस्थ है। आहाहा! समझ में आया? आया, छठवें पृष्ठ पर है। 'ज्ञान निज ज्ञान सत्ता गृह में तिष्ठते हैं।' गृहस्थ। यह गृहस्थ नहीं। संसार के घर में रहे, वह गृहस्थ है ही नहीं। ज्ञान निज ज्ञानसत्ता गृह में तिष्ठते हैं, इसलिए ज्ञान को गृहस्थ कहते हैं। ज्ञान को गृहस्थ कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी ज्ञानघर में रहता है। वह राग में जाता नहीं। आहाहा! पोपटभाई! वह गृहस्थ। यह सब पैसेवाले गृहस्थ हैं, ऐसा लोग कहते हैं। गृहस्थ है, यह गृहस्थ है अर्थात् क्या कि बहुत पैसेवाले हैं। आहाहा! ज्ञानसत्ता गृह में तिष्ठते हैं गृहस्थ। दर्शन-अपने दर्शन सत्तागृह में स्थिति करे। आहाहा! देखने का जो दृष्टि स्वभाव, जो दोपहर को चलता है, उस दृष्टिस्वभाव अपने गृह में-घर में रहता है, इसलिए गृहस्थ है। वह पर में नहीं जाता। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण लिये हैं, हों! दर्शनगृह, वीर्य अपने सत्ता गृह में निवास करता है। आत्मवीर्य जो है, वह अपनी सत्ता में रहता है, वह राग की सत्ता में-रचने में नहीं जाता। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी बात तो सब सत्य है परन्तु हमें अ, आ, इ से पढ़ाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कक्का तो कहते हैं। कक्का की पंक्ति चलती है। कक्का-केवलज्ञान किस प्रकार हो, इसका नाम कक्का। शीतलप्रसादजी! यह कक्का शब्द आता है। क, ख इसमें सब उतारा है। शास्त्र तो बहुत उतारता है न! कक्का केवलज्ञान उत्पन्न हो... आहाहा! नन्दकिशोरजी! यहाँ तो सब बात है, भाई! शास्त्र में तो भण्डार भरे हैं। दिगम्बर शास्त्र में तो इतना भण्डार भरा है कि केवलज्ञान को भी भुला दिया है। केवलज्ञान खड़ा कर दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान का विरह भुला दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विरह भुला दिया। केवलज्ञान नहीं है, ऐसा भुला दिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वरूप जो अन्तर आनन्द है, उस आनन्द, आनन्द में रहे, वह गृहस्थ है। उस आनन्द को उलांघकर पुण्य-पाप के भाव में जाए, वह गृहस्थ नहीं, वह तो व्यभिचारी है। धीरुभाई! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : बँगला में रहे, उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : बँगला में कौन रहता था? धूल? ऐई! किरणभाई! यह तुम्हारी बात करते हैं। दो लाख का बँगला नवनीतभाई ने बनाया। अब वह वहाँ व्यापार में रहेंगे और यहाँ खाली रहेगा। आहाहा!

अरे! भगवान! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! तू राग में रहे, वह तेरी चीज़ नहीं है। वह तो तू व्यभिचारी है। आहाहा! जैसे परस्त्री का सेवन करनेवाला व्यभिचारी (कहलाता है), वैसे ही अपनी चेतनापरिणति का सम्भोग छोड़कर राग का भोग करनेवाला व्यभिचारी है। समझ में आया? अपना चैतन्य भगवान, उसका चेतनास्वभाव... आहाहा! यह तो पहले आया न? जीवत्वशक्ति। उस चेतनाशक्ति के साथ एकाग्र होना, भोग लेना, वह अपना भोग और आनन्द है। चेतना अपनी रानी, पटरानी ऐसी पर्याय... आहाहा! उसे छोड़कर... समझ में आया? आहाहा!

एक गृहस्थ का लड़का हो। यह सब आया है। सुख गृहस्थ है, देखा! अनाकुल लक्षण सुखसत्ता गृह में स्थिति की है। आहाहा! आनन्द आनन्द में रहा है, वह कब ख्याल में आवे? कि जब दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाए तब। जाए तो, ऐसा हिन्दी में ऐसा कहते हैं न? समझ में आया? आहाहा! अनाकुल आनन्द भी अपने गृह में-घर में रहता है। पुण्य और पाप के विकल्प दुःखरूप हैं, उनमें आनन्द नहीं आता, नहीं जाता।

मुमुक्षु : बीस दिन तक आपकी बात सुने तो काम नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक दिन में समझ में आये, ऐसी चीज़ है न, भगवान! आहाहा! पानी है न पानी? वह अग्नि के निमित्त से स्वयं में उष्ण हुआ, परन्तु वह पानी ऐसे गुलांट मारे। आधे मण पानी हो और अग्नि का निमित्त, उष्ण तो स्वयं से हुआ है। स्वयं में हुआ है। अग्नि से नहीं। परन्तु उस उष्णता पर्यायसहित जो पानी है, उस पानी को ऐसे गुलाँट मारे तो उष्णता का नाश करे और अग्नि का भी नाश कर दे।

स्वतन्त्रता का दिन तो यह है कि जब राग की रुचि छोड़कर आनन्द के नाथ की अन्दर रुचि करता है तो स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। उसमें अपना स्वराज मिलता है। अपना स्वराज। भगवान शिवस्वरूप आत्मा, असंख्य प्रदेश वह उसकी प्रजा, वह देश है और उसमें अनन्त गुण, वह उसकी प्रजा है। जब अन्दर से अपना वह देश मिला... आहाहा! तब स्वतन्त्र हुआ... सम्यग्दर्शन में अपने देश का भान हुआ। अपना देश और देश की बस्ती। बस्ती अर्थात् अपने स्वभाव में वस्तु में रहे हुए गुण। वस्तु कहते हैं न? आत्मा को वस्तु क्यों कहते हैं? कि उसमें ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्ति-गुण बसे हुए हैं, अन्दर में रहे हुए हैं, इसलिए उसे वस्तु कहते हैं। आहाहा! उस वस्तु की जहाँ दृष्टि हुई, है ऐसी है, तो कहते हैं कि उसे स्वतन्त्रता का स्वराज मिला। उसे स्वस्वभाववाला राज मिला। राज का अर्थ शोभा होता है। स्वराज-स्वशोभा प्राप्त हुई। और राग तथा पुण्य-पाप में जाता है तो अशोभा (मिलती है)। आहाहा!

व्यभिचार हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि कर्ता-कर्म-क्रिया जो (तीन) कहा कि आत्मा ही अपनी पर्याय का कर्ता, आत्मा ही कर्ता और क्रिया उसका कार्य और पलटती क्रिया का कर्ता भी आत्मा है। यह कहा है, **इसलिए ज्ञानावरणादि द्रव्य पिण्डरूप कर्म का कर्ता जीवद्रव्य है, ऐसा जानना झूठा है,...** यहाँ राग-द्वेष हुआ, राग-द्वेष की परिणति हुई, उसका कर्ता अज्ञानभाव से आत्मा है। परन्तु इस कारण से वहाँ कर्म की-बन्ध की पर्याय हुई, उसका कर्ता आत्मा है—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसी सब बातें हैं। **ऐसा जानना झूठा है,...** मैं रागरूप हुआ तो कर्मबन्धन में ज्ञानावरणी आदि बन्धन हुआ, उस बन्ध की पर्याय का कर्ता मैं और वह बन्धन की पर्याय मेरा कार्य है, वह सब झूठी बात है। आहाहा! जितने प्रमाण में राग-द्वेष होते हैं, उतने प्रमाण में वह कर्म की पर्याय कर्मरूप होती है, उसका भी कर्ता नहीं है, तो यह शरीर, वाणी, मन, जड़, धूल-मिट्टी आदि, इनकी पर्याय की क्रिया का कर्ता आत्मा तीन काल में नहीं है। पोपटभाई! यह तुम्हारे टाईल्स-फाईल्स में करने का नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अब ये कहाँ करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब लड़के करते हैं। लड़के भी नहीं करते। आहाहा! सर्राफा

बाजार का धन्धा कौन करता है, यह कहते हैं। दो-पाँच हजार... ... है न हमारे कहाँ गये जादवजीभाई! नहीं बैठे? जादवजीभाई को हुण्डी का व्यापार है। कलकत्ता में। हुण्डी-हुण्डी। साहूकारी का धन्धा है। पैसा लेने-देने की क्रिया आत्मा कर सकता है?

मुमुक्षु : आप बताओ क्या करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। यह सामने सर्राफ सेठ बैठा है। आहाहा!

भगवान! तू तो अज्ञानभाव से राग-द्वेष करे, परन्तु उससे कर्मबन्धन की पर्याय तेरा कार्य है, ऐसा तीन काल में नहीं है। जब राग प्रमाण बन्धन है तो भी बन्धन की पर्याय का कर्ता नहीं, तो फिर इस राग के कारण यह शरीर चलता है, इच्छा हुई तो शरीर चलता है, इच्छा हुई तो भाषा बोली जाती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

क्योंकि जीवद्रव्य का और पुद्गलद्रव्य का एक सत्त्व नहीं;... जीवद्रव्य का अस्तित्व और पुद्गल का अस्तित्व, इन दोनों का एक सत्त्व नहीं है। दोनों के दो सत्त्व भिन्न हैं। आहाहा! **कर्ता-कर्म-क्रिया की कौन घटना?** आहाहा! फिर वहाँ कर्म की पर्याय मैंने की और कर्म की पर्याय मैंने भोगी, यह घटना कहाँ है? भगवान! समझ में आया? यह ५१ वाँ श्लोक हुआ। लो! हमारे सेठ प्रसन्न होते हैं। हमारे तो सब भगवान आत्मा हैं, बापू! आनन्द से भरपूर सुखसिन्धु है। कहा नहीं? 'मोहकर्म मम नांहि, नांहि भ्रमकूप है।' आहाहा! अभी एक शब्द अन्दर रह गया। 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' आहाहा! मैं तो चैतन्य हूँ। शुद्धचेतना सिन्धु हमारा रूप है। शुद्धचेतना सिन्धु-समुद्र। चेतना का समुद्र भरा है, वह हमारा रूप है। ऐसा विचिक्षण अर्थात् ज्ञानी जानता है और मानता है। 'कहे विचिक्षण पुरुष...' विचिक्षण अर्थात् समकिती, उसे विचिक्षण कहते हैं। संसार के चतुर, वे विचिक्षण नहीं हैं। वह तो सब मूर्खाई है। ऐ.! धीरुभाई! पाँच हजार का वेतन और दस हजार का वेतन, कम्पनी में बड़े लाखों रुपये इकट्ठे करे, वह विचिक्षणता नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

विचिक्षण तो उसे कहते हैं कि चेतना सुख सिन्धु हमारा रूप है, उसे विचिक्षण कहते हैं। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं। ५१ वाँ श्लोक पूरा हुआ।

कलश-५२

(आर्या)

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः।।७-५२।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'सदा एकः परिणमति' [सदा] त्रिकाल में [एकः] सत्तामात्र वस्तु [परिणमति] अपने में अवस्थान्तररूप होती है। 'सदा एकस्य परिणामः जायते' [सदा] त्रिकालगोचर [एकस्य] सत्तामात्र है वस्तु उसकी [परिणामः जायते] अवस्था वस्तुरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि यथा सत्तामात्र वस्तु अवस्थारूप है तथा अवस्था भी वस्तुरूप है। 'परिणतिः एकस्य स्यात्' [परिणतिः] क्रिया [एकस्य स्यात्] सो भी सत्तामात्र वस्तु की है। भावार्थ इस प्रकार है कि क्रिया भी वस्तुमात्र है, वस्तु से भिन्न सत्त्व नहीं। 'यतः अनेकं अपि एकं एव' [यतः] जिस कारण से [अनेकं] एक सत्त्व के कर्ता-कर्म-क्रियारूप तीन भेद [अपि] यद्यपि इस प्रकार भी हैं, तथापि [एकं एव] सत्तामात्र वस्तु है। तीन ही विकल्प झूठे हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गलपिण्ड कर्म का कर्ता जीववस्तु है, ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, क्योंकि एक सत्त्व में कर्ता-कर्म-क्रिया उपचार से कहा जाता है। भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गलद्रवय उनको कर्ता-कर्म-क्रिया कहाँ से घटेगा?।।७-५२।।

कलश - ५२ पर प्रवचन

५२ (श्लोक)।

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः।।७-५२।।

वजन यहाँ 'सदा' के ऊपर आयेगा। **'सदा एकः परिणमति'** आहाहा! **त्रिकाल में सत्तामात्र वस्तु अपने में अवस्थान्तररूप होती है।** आहाहा! क्या कहते हैं? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु भिन्न-भिन्न त्रिकाली वस्तु सत् है, वे **त्रिकाल में सत्तामात्र**

वस्तु अपने में अवस्थान्तररूप होती है। अपने में पूर्व अवस्था से भिन्न अवस्थारूप होती है। पर के कारण से नहीं। यहाँ पानी गर्म हुआ, वह अग्नि हुई तो पानी गर्म हुआ, ऐसा नहीं है। अग्नि को देखने से संयोग को देखता है परन्तु (पानी) अपनी उष्णता पर्यायरूप से परिणमित हुआ है, वह स्वयं से है, अग्नि से नहीं। समझ में आया?

कहते हैं **त्रिकाल में सत्तामात्र वस्तु...** वस्तु है न? सत्ता अस्तित्व है न? परमाणु की, आत्मा की, अनन्त आत्माओं की, अनन्त रजकणों का अस्तित्व है, अस्ति है, सत्ता है, सत्ता है। **सत्तामात्र वस्तु अपने में अवस्थान्तररूप होती है।** अपने में अवस्था अवस्थान्तररूप होता है। पूर्व अवस्था बदलकर नयी अवस्था स्वयं से होती है। किसी संयोग के कारण से अवस्था पलटती है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

'सदा एकस्य परिणामः जायते' त्रिकालगोचर सत्तामात्र है वस्तु उसकी अवस्था वस्तुरूप है। उसकी अवस्था उस वस्तु से हुई, वह वस्तुस्वरूप है। आहाहा! चाहे तो विकाररूप हो, चाहे तो सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप हो परन्तु उस सत्ता की चीज़ अवस्थारूप हुई है। समझ में आया? सम्यग्दर्शनरूप भी वह सत्ता-चीज़ है, वह अवस्थारूप हुई है। विकाररूप भी सत्ता है, वह भी अपने को भूलकर अवस्थारूप हुई है। आहाहा! पर के कारण परिणमन में फेरफार हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। सदा शब्द है न? सदा-त्रिकाल। अनादि-अनन्त त्रिकाल वस्तु सत्ता मात्र भिन्न, वह सत्ता अवस्थान्तररूप होती है, उस सत्ता से होती है। पर की अवस्थान्तर नहीं होती। देखने में ऐसा आता है, लो! बाहर थे, तब तो ऐसा ज्ञान नहीं था, अभी सुनने पर ज्ञानपर्याय हुई। कहते हैं कि वह सुनने से नहीं हुई। वह सत्तामात्र वस्तु की अवस्थान्तर दूसरी अवस्था हुई है, वह अवस्थान्तर हुई, इसलिए ज्ञान बढ़ जाए। यह वाणी सुनी, इसलिए यहाँ इस प्रकार का ज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर दर्शनमोह, चारित्रमोह का क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रान्ति करता है, वह दर्शनमोह। दर्शनमोह जड़ में रहा, वह उसके कारण से। उसमें आत्मा को क्या? दर्शनमोह की, मोह की प्रकृति जड़, उसकी पर्याय का कर्ता तो उसका परमाणु है। आत्मा उसका कर्ता नहीं है। वैसे ही चारित्रमोहनीय

बन्धन पर्याय है उसका कर्ता बन्धन परमाणु है, आत्मा नहीं। आहाहा! यह तो स्तुति में कहा नहीं था? 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' यह चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति में आता है। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई...' जड़ अजीव कर्म, वे कोई मेरी चीज़ को स्पर्श नहीं करते। मैं मेरी भूल से भूल करता हूँ और भूल को टालनेवाला भी मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा!

त्रिकाल में सत्तामात्र वस्तु अपने में अवस्थान्तररूप होती है। आहाहा! लोग तो दृष्टान्त देते हैं, वह पानी का प्याला है, उस पानी के प्याले में जैसा रंग डालो वैसी उसकी पर्याय होती है। निमित्त प्रधान को माननेवाले (ऐसा दृष्टान्त देते हैं)। अखबार में बहुत आता है। मिथ्या है। पर्याय भी जब लाल रंगरूप होनेवाली है, तब स्वयं से होती है। लालरंग पड़ा, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : अपने से ही होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे ही होती है। पर से क्या हो? पर को तो स्पर्शता भी नहीं। समयसार की तीसरी गाथा में आया कि प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण अपने गुण-पर्यायरूप शक्ति को स्पर्शते-चूमते हैं। पर को तीन काल में स्पर्शते नहीं अथवा छूते नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह बालक है न बालक? इसके कोमल अंगों को चूमते हैं। नहीं, नहीं। वह चूमते ही नहीं। इसके गाल को स्पर्शता भी नहीं।

मुमुक्षु : आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान न्याय से तो कहते हैं। अपनी सत्ता में जो गुण है और अपनी सत्ता की पर्यायरूप सत्त्व है, उसे तत्त्व चूमता है। पर का द्रव्य-गुण-पर्याय को तीन काल में नहीं चूमता। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

भावार्थ इस प्रकार है कि यथा सत्तामात्र वस्तु अवस्थारूप है तथा अवस्था भी वस्तुरूप है। 'परिणतिः एकस्य स्यात्' क्रिया सो भी सत्तामात्र वस्तु की है। दूसरे के कारण से अवस्था बदली और दूसरी सत्ता हो गयी, ऐसा नहीं है। आहाहा! मिथ्यादर्शन का नाश होकर चैतन्य ज्ञायकस्वभाव का अवलम्बन लेने से जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, मिथ्यात्व का नाश हुआ, वह अवस्थान्तर हुआ। एक समय में अवस्थान्तर हुआ। वह

अवस्थान्तर हुआ, उसका कर्ता कौन ? आत्मा। कर्म हटे, कर्म दूर हुए; इसलिए मिथ्यात्व का नाश हुआ—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि क्रिया भी वस्तुमात्र है,... जो कुछ सत्ता है, वह भी वस्तु है और उसकी अवस्था भी उसकी वस्तु है। वह अवस्था दूसरे की है और दूसरे से हुई है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! यह अँगुली है, देखो! अँगुली की ऐसी अवस्था होती है। तो वह सत्ता रजकण है, उसकी अवस्था है। उससे अवस्था हुई है। आत्मा की इच्छा से या ज्ञान से अवस्था हुई है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि क्रिया भी वस्तुमात्र है, वस्तु से भिन्न सत्त्व नहीं। 'यतः अनेकं अपि एकं एव' जिस कारण से एक सत्त्व के... तीन बोल आये। तीन आये न ? आत्मा का एक सत्त्व या एक परमाणु की सत्ता, एक आत्मा अपनी पर्याय का कर्ता, पर्यायरूप रूपान्तर हो, उस क्रिया का कर्ता और क्रिया का कर्म जो राग हुआ, वह उसका कर्म अथवा समकित हुआ वह कर्म। तीनों मिलकर वस्तु तो एक ही है। तीन वस्तु नहीं। समझ में आया ? आहाहा! अभी तो यह बहुत गड़बड़ हो गयी। लोगों की तो ऐसी ही पुकार है कि कर्म से विकार होता है... कर्म से विकार होता है। न मानो तो एकान्त है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह पुस्तक उनके पास नहीं होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पास में होवे तो भी क्या करे ? वह वस्तु क्या करे ? वह पुस्तक कहीं बोले कि हमारा अर्थ ऐसा करना ? धीरुभाई! अपनी दृष्टि से लगा देते हैं। आहाहा!

यह चर्चा बीस वर्ष पहले हुई थी न! कहा न ? वर्णीजी के साथ सब पण्डित बैठे थे। बीस वर्ष पहले। सेठिया भी बैठे थे। धन्नालाल, सेठिया नहीं ? वर्णीजी के साथ बैठे थे। सेठिया भी साथ में थे। भाई दीपचन्दजी। यह तो वर्णीजी के साथ (संवत्) २०१३ के वर्ष में सम्मेदशिखर में बड़ी चर्चा हुई। पहले मैंने ऐसा साधारण कहा, पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष विकार होता है, उसके षट्कारक का परिणमन स्वयं से है। अपने द्रव्य-गुण से तो नहीं, क्योंकि द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। अशुद्धता उत्पन्न होती है, वह पर्याय के षट्कारक से उत्पन्न होती है, पर के कारण से नहीं। बड़ी गड़बड़ हो गयी। अखबार में

भी आया है। अखबार है? रतनचन्दजी मुख्तार... यह उतारा है... क्या कहलाता है? टेप रिकार्डिंग।

मुमुक्षु : रतनचन्दजी मुख्तार?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे वर्णीजी को पूछते थे।

मुमुक्षु : उनके गाँव के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले गाँव के हों। उनकी लाईन अलग, इनकी लाईन अलग। रतनचन्दजी मुख्तार, वर्णीजी को पूछते हैं कि ज्ञान में जो हीनता हुई, जीव का स्वभाव तो केवलज्ञान है और वर्तमान में तो हमारी संसारी अवस्था है। उसमें जितने भी जीव हैं, उनमें ज्ञान में जो हीनता हुई, वह क्या कर्म के उदय के कारण से हीनता हुई? या बिना कर्म के उदय के कारण हीनता हुई है? वर्णीजी (कहते हैं), दोनों कारण है, ऐसा कहते हैं। फिर रतनचन्दजी पूछते हैं—कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं, महाराज! ज्ञानावरणादि कर्म कुछ नहीं करते। अपने ज्ञान की हीनता में ज्ञानावरणी कुछ नहीं करता।

मुमुक्षु : बीस वर्ष पहले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बीस वर्ष पहले। रिकॉर्डिंग हो गया है। महाराज! ज्ञान में हीनता होती है, वह अपने कारण से होती है, अपनी योग्यता से होती है—कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञानावरणादि कर्म कुछ नहीं करते। तो महाराज! क्या यह ठीक है? वर्णीजी महाराज—यह ठीक है, तुम ही समझो क्या ठीक है? यह ठीक नहीं है। कोई भी कहे—चाहं अंगधारी कहे तो भी ठीक नहीं है। यह (विषय) चलता ही नहीं था। यह प्रथा ही नहीं थी। यह प्रथा टूट गयी थी। उन्हें यह संस्कार नहीं थे। पूर्व के संस्कार नहीं थे और वर्तमान में कोई गुरुगम नहीं था। इसलिए ऐसा चला है, बात ऐसी है। और यहाँ तो अन्दर पूर्व का गुरुगम भगवान का था। यह तो रोग बहुत हो गया, सहन नहीं हुआ, इसलिए काठियावाड़ में जन्म हुआ। बाकी हमारे तो भगवान के संस्कार थे, तो (संवत्) १९७१ के वर्ष में पहले संस्कार आये। ६२ वर्ष पहले। विकार स्वयं से होता है, कर्म से बिल्कुल नहीं होता। ज्ञानावरणी कर्म से ज्ञान में कमी होती है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। और ज्ञानावरणी का क्षय हो तो केवलज्ञान होता है, ज्ञान होता है-ऐसा बिल्कुल नहीं है। इसमें बहुत आया

है। पहले चर्चा हुई थी न ? बाद में रतनचन्दजी ने रिकॉर्डिंग उतारा। हम जमशेदपुर गये। सम्मेदशिखर से जमशेदपुद गये थे। वहाँ पीछे से यह उतार लिया। जमादार ने यह बनाया। वह जमादार है न ? बाबूलाल जमादार। देखो ! वर्णीजी भी ऐसा कहते हैं। कानजीस्वामी के लिये उनका विचार खोटा है। यह स्पष्टीकरण किया। नाम उनका है। स्पष्टीकरण पूछते हैं। उसका नाम भी है। देखो ! स्पष्टीकरण। यह पुस्तक नई प्रकाशित हुई है। तुमने देखी है या नहीं ? यहाँ तो प्रभु ! सुन तो सही, नाथ ! नहीं मिला तो ञ्चया हुआ ?

मुमुक्षु : आपका स्पष्टीकरण तो सब आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके मुख से आया है। कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि आत्मा में हीनता और वृद्धि होती है, वह अपनी योग्यता से होती है, कर्म से बिल्कुल नहीं। अब चर्चा क्या करना ? भगवान ! यह तो ऐसी बात है, क्या करे ?

वस्तु की स्थिति ऐसी है। भगवान ने तो जैसा देखा, वैसा कहा है। उन्होंने कुछ किया नहीं है। पर के काम किये हैं ? वह तो देखा है, वैसा कहा है कि ऐसा मार्ग है, भगवान ! आहाहा ! तेरे ज्ञान की पर्याय में हीनता होती है, वह तेरे पुरुषार्थ के कारण से होती है। भावघातिकर्म के कारण से; द्रव्यघातिकर्म के कारण नहीं। आहाहा ! तेरी पर्याय तू हीन करता है, वह भावघाति कर्म तूने उत्पन्न किया है। द्रव्यघातिकर्म तो जड़ है, वह तो निमित्त है। आहाहा ! नन्दकिशोरजी ! यह सब वकील भी बहुत बुद्धिवाले परन्तु इसमें बहुत ध्यान नहीं देते। फिर जय-जय नारायण। सम्प्रदाय का हो वह पढ़े।

मुमुक्षु : हमको ऐसा बैठता है, महाराज ! कि अध्यात्म तो आप कहते हो, वह ठीक है और संयोग से वे कहते हैं, वह ठीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से होता है, यह बात झूठी है। यह बात तो यहाँ चलती है।

ज्ञान की हीन पर्याय होती है, वह कर्ता का कर्म है। वह ज्ञानावरणी का कर्म / कार्य नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे एकदम ज्ञानावरणी का नाश हो तो केवलज्ञान होता है—ऐसा भी नहीं है। अपनी पर्याय में अपने पुरुषार्थ से स्वभाव में उग्ररूप से एकाग्र होता है (तब केवलज्ञान होता है)। पर्याय में केवलज्ञान की पर्याय हुई, वह कार्य, उसका कर्ता आत्मा है। ज्ञानावरणी कर्म दूर हुआ तो ज्ञानावरणी दूर हुआ तो अकर्म पर्याय हुई। यह

जैनतत्त्व मीमांसा में लिखा है कि ज्ञानावरणी कर्म गया तो कर्म की पर्याय अकर्म हुई। उससे केवलज्ञान हुआ, यह कहाँ से आया? बाबूभाई! इसमें लिखा है। आहाहा!

यहाँ अपने (संवत्) २००३ के वर्ष में विद्वत परिषद भरी थी न? ३० वर्ष हुए। २००३ के वर्ष में विद्वत परिषद (भरी थी) यहाँ सब विद्वान आये थे। हम बहुत बाहर नहीं निकलते, इसलिए सब विद्वान यहाँ आये थे। कितने आये थे? ३०। नहीं? ३२ पण्डित यहाँ विद्वत् परिषद में आये थे। सबको आने-जाने का खर्चा दिया था। क्योंकि हम तो बहुत बाहर निकलते नहीं। ३० वर्ष हुए। उस मकान में-प्रवचनमण्डप में। वहाँ सामने यह चर्चा हुई थी। उस समय (हुई थी)। उस समय यह फूलचन्दजी को ऐसा हुआ कि एक पण्डित को रोग हुआ तो अठारह दिन अधिक रहना पड़ा, इसलिए उन्हें अठारह दिन अधिक सुनने का मिला। तत्पश्चात् उन्होंने पंचाध्यायी प्रकाशित किया। पंचाध्यायी के पहले पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है कि इस पंचाध्यायी का अर्थ सोनगढ़ के सन्त कानजीस्वामी के अनुभवपूर्ण वाणी से मैंने लिखा है। पंचाध्यायी है? पहले पृष्ठ में है, पहले पेज में लिखा है। यहाँ अठारह दिन रहना पड़ा।

३२ पण्डित आये थे, उसमें एक पण्डित को बुखार आया, इस कारण फूलचन्दजी को यहाँ रहना पड़ा। अठारह दिन सुना तो.... ओहो! यह बात तो अलग है। पंचाध्यायी का अर्थ करने से पहले पृष्ठ पर लिखा है कि इस पंचाध्यायी का अनुवाद सोनगढ़ के सन्त की अनुभवपूर्ण वाणी से लिखा है। ३० वर्ष हुए। तीसरे (२००३) वर्ष में प्रवचनमण्डप में। यह (परमागममन्दिर) तो अभी हुआ है न, यह तो साढ़े तीन वर्ष हुए। आहाहा! अरे! प्रभु! भगवान! मार्ग तो ऐसा है, नाथ! यह तो परमात्मा कहते हैं। न्याय से, लॉजिक से और अपनी स्वतन्त्रता से बैठे, ऐसी बात है।

विकार क्यों हुआ? तो कर्म से हुआ, ऐसा मानना। इसका उस समय हमने निषेध किया। बिल्कुल नहीं, अपना विकार अपने से होता है, कर्म से नहीं। उन्हें ऐसा लगा कि आहाहा! ये लोग मूल में भूल गये, मूल में भूले हैं। विकार पुद्गल से नहीं होता तो विकार स्वभाव हो जाएगा। अरे! सुन तो सही, समझ में आया? हम विहार करके गये। कौन सा गाँव था? कलकत्ता। कलकत्ता। गजराजजी के यहाँ भोजन था। गजराजजी है न? उनके

यहाँ भोजन था। वहाँ शाहूजी सेठ पत्र लेकर आये। यह क्या है ? विकार अपने से होता है या कर्म से होता है ? मैंने कहा, इसका उत्तर दे दिया गया है। चलो उठो। सेठ होवे तो हमारे क्या ? यह पत्र है कि विकार कैसे होता है ? विकार स्वयं से होता है। क्या कहा ? अभी आयेगा। ५३ में आयेगा। ५३ कलश है न ? देखो ! अन्दर है। इस ओर के पृष्ठ पर दूसरी लाईन में है।

जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य-व्यापकरूप से परिणमता है,... है ? ५३वाँ श्लोक है। है ? इसका आधार। विकार अशुद्धरूप परिणमो या शुद्धरूप से परिणमो, वह व्याप्य कार्य व्यापक आत्मा का है। पर का बिल्कुल नहीं। आहाहा ! अन्दर थोड़ा अभ्यास करना पड़ेगा। धीरुभाई ! यहाँ तो यही कहते हैं न। दूसरा उलाहना क्या दें ? आहाहा ! अरे ! ऐसी जिन्दगी। ऐसी स्वतन्त्र चीज़ न समझ में आये उसका क्या होगा ?

मुमुक्षु : सब जवाबदारी ज्ञान पर आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या है ? भगवान ! तेरा ज्ञान झूठा तो सब झूठ। सच्चा तो सच्चा। यही लोगों में—तीनों सम्प्रदाय में चलता है। कि कर्म से विकार होता है... कर्म से विकार होता है। श्वेताम्बर में तो यही बात मुख्य है। क्योंकि वह तो बाद में निकला है न ? दिगम्बर में से दो हजार वर्ष पहले निकला है। उसमें तो यह चर्चा है। हमारी यह बात सुनकर 'खेडा' वाले जेठाभाई है। खेडावाले जेठाभाई श्वेताम्बर हैं। श्वेताम्बर के विशिष्ट। अपवास करे, गरम पानी पीवे। उसमें यह सुना। पहली बार सुना तो उन्हें रुचि नहीं। फिर सुना तो कहे ओहो ! यह तो कोई अलग ही बात करते हैं। उनके साधु के पास ५० प्रश्न निकाले। ५० प्रश्न पूछे। तो किसी ने प्रश्न का साधारण उत्तर दिया। परन्तु रामविजय थे न ? उनके साथ चर्चा की। जेठाभाई मुम्बई रहते हैं। वे कहे, चर्चा करेंगे, तो रामविजय ने ऐसा कहा कि पहली शर्त यह है कि कर्म से विकार होता है, ऐसा मानो तो हम चर्चा करेंगे। क्योंकि श्वेताम्बर में यह चीज़ ही है। समझ में आया ? ऐसी स्पष्टता तो दिगम्बर में है, अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

देखो ! यह क्या कहते हैं ? भावार्थ। ५३-५३। **जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप...**

शुद्धचेतनारूप—सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूपी परिणति **अथवा अशुद्ध चेतनारूप...** पुण्य-पाप मिथ्यात्वरूपी परिणति **व्याप्य-व्यापकरूप से परिणमता है,...** वह परिणति व्याप्य है और आत्मा व्यापक है, ऐसा है। **पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन लक्षणरूप-शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप से अपने में व्याप्य-व्यापकरूप से परिणमता है।** पर के कारण से नहीं। आहाहा! यह पुस्तक कहीं हमने बनायी है? यह पुस्तक तो राजमलजी का लिखा हुआ है। आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है। और हमने तो पहले कहा था। यह पुस्तक तो पहले से है।

भाई ठीक कहते हैं। यहाँ करे .... पुस्तक-पुस्तक में है। आहाहा! और यह हमने कहा था। प्रभु! क्रमबद्धपर्याय है। जिस समय में जो होनेवाली है... कल कहने का रह गया था। प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है न? ज्ञेय अधिकार समकित का अधिकार है। उसकी तीन गाथाओं में ऐसी बात चली है। १०२ (गाथा) ज्ञेय अधिकार में है। अतः ज्ञेय का स्वभाव ऐसा है कि जन्मक्षण (अर्थात्) जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होगी। यह १०२ गाथा में है। यह ज्ञेय का स्वभाव है और ज्ञेयस्वभाव की ऐसी प्रतीति करना, उसका नाम समकित है, तो छहों द्रव्यों का स्वभाव... १०२ गाथा। जन्मक्षण। प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक समय में जन्म अर्थात् उत्पत्ति होने का काल है तो विकार या अविकार होता है। छहों द्रव्यों में।

१०१ गाथा में तो ऐसा लिया है कि उत्पाद, उत्पाद से होता है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव से भी नहीं होता। आहाहा! देखो! ज्ञेय का स्वभाव। वहाँ ज्ञेय की व्याख्या है। प्रवचनसार दूसरा (अधिकार)। ज्ञेय अधिकार है, इसलिए जयसेनाचार्य ने लिखा है कि यह समकित का अधिकार है। तो ज्ञेय का स्वभाव ही ऐसा है। अपने-अपने समय में विकार या अविकार का जो समय है, वह स्वसमय में उत्पन्न होता है। और एक दूसरी बात, १०१ गाथा, उत्पाद, उत्पाद के कारण से है, व्यय-व्यय के कारण से है, ध्रुव-ध्रुव के कारण से है। उत्पाद ध्रुव के कारण से नहीं, व्यय के कारण से नहीं है। आहाहा! ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। यह समकित का अधिकार है। आहाहा! १००, १०१, १०२ और ९९। ९९वीं गाथा में (ऐसा कहा) अपने-अपने अवसर में प्रत्येक द्रव्य की पर्याय होती है, ऐसा पाठ है।

मोती की माला होती है न, माला ? जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ ही मोती है, आगे-पीछे नहीं है। इसी प्रकार भगवानरूपी आत्मा में पर्यायरूपी माला जिस समय में जो है, उस समय में वह पर्यायरूपी मणकों की माला होती है। आगे-पीछे नहीं। यह तो कहा था। परन्तु क्या करे ? भाई ! सब बात उड़ा दिया कि यह लोग मूल में भूले हैं और लोगों को डूबो देंगे। अरे ! प्रभु ! क्या करे ? उन्हें खबर नहीं। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, देखो ! कहा न ? अशुद्ध-शुद्ध परिणति स्वयं से व्याप्य-व्यापक है। पर के साथ व्याप्य और व्यापक नहीं। यह यहाँ कहा। **क्रिया भी वस्तुमात्र है, वस्तु से भिन्न सत्त्व नहीं। 'यतः अनेकं अपि एकं एव' जिस कारण से एक सत्त्व के कर्ता-कर्म-क्रियारूप तीन भेद यद्यपि इस प्रकार भी हैं, तथापि सत्तामात्र वस्तु है।** वस्तु एक है। उसके कर्ता-कर्म-क्रिया तीन, तीन का कर्ता एक ही चीज़ है। आहाहा ! पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। **तथापि सत्तामात्र वस्तु है। तीन ही विकल्प झूठे हैं।** देखो ! आहाहा ! राग का कर्ता जीव कहना, यह तो है परन्तु तीन भेद डालना, वे झूठे हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! है ?

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गलपिण्ड कर्म का कर्ता जीववस्तु है, ऐसा जानपना मिथ्याज्ञान है, क्योंकि एक सत्त्व में कर्ता-कर्म-क्रिया उपचार से कहा जाता है। भाषा देखो ! वह भी उपचार से है। अपने विकारी परिणाम या अविकारी परिणाम, वह अपना कार्य और आत्मा कर्ता, यह भी उपचार-व्यवहार से है। बाकी पर्याय, पर्याय की कर्ता और पर्याय, पर्याय का कर्म, यह यथार्थ में है। आहाहा ! है न ? **भिन्न सत्त्वरूप है जो जीवद्रव्य-पुद्गलद्रवय उनको कर्ता-कर्म-क्रिया कहाँ से घटेगा ?** अपने में भी तीन स्वतन्त्र उपचार से है तो पर में तो कहाँ से घटित होंगे ? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कलश-५३

(आर्या)

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव स्यात्।।८-५३।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'खलु उभौ न परिणमतः' [खलु] ऐसा निश्चय है कि [उभौ] एक चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य [न परिणमतः] मिलकर एक परिणामरूप नहीं परिणमते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन लक्षणरूप शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप अपने में व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। वस्तु का स्वरूप ऐसे तो है। परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है राग-द्वेषरूप परिणाम, उनसे परिणमते हैं- ऐसा तो नहीं है। 'उभयोः परिणामः न प्रजायेत' [उभयोः] जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य उनके [परिणामः] दोनों मिलकर एक पर्यायरूप परिणाम [न प्रजायेत] नहीं होते हैं। 'उभयोः परिणतिः न स्यात्' [उभयोः] जीव और पुद्गल की [परिणतिः] मिलकर एक क्रिया [न स्यात्] नहीं होती है। वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है। 'यतः अनेकं अनेकं एव सदा' [यतः] जिस कारण से [अनेकं] भिन्न सत्तारूप हैं जीव-पुद्गल [अनेकं एव सदा] वे तो जीव-पुद्गल सदा ही भिन्नरूप हैं, एकरूप कैसे हो सकते हैं? भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य भिन्न सत्तारूप हैं, सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर एक सत्तारूप होवें तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो। सो तो एकरूप होते नहीं, इसलिए जीव-पुद्गल का आपस में कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नहीं होता।।८-५३।।

श्रावण शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक १६-०८-१९७७
कलश-५३, प्रवचन-६८

कलश टीका कर्ता-कर्म (अधिकार)। ५३ कलश है।

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव स्यात्।।८-५३।।

क्या कहते हैं ? **'खलु' ऐसा निश्चय है कि एक चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य...** यहाँ कर्म और आत्मा के बीच की बात है। क्योंकि जीव स्वयं से यहाँ जितने राग-द्वेष करता है, उस प्रमाण में वहाँ कर्म बँधते हैं। तथापि उस कर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। आत्मा की पर्याय राग, उसकी कर्ता नहीं है। आहाहा! एक साथ में है। प्रश्न उठे न कि दोनों एक साथ है न ? साथ भले हो। यहाँ राग-द्वेष हुआ... आहाहा! वहाँ चारित्रमोह का कर्मबन्धन हुआ। उस चारित्रमोह की पर्याय का बन्धन आत्मा नहीं करता। आहाहा! अज्ञानी आत्मा तो अपने परिणाम में राग-द्वेष करता है। समझ में आया ?

यहाँ दोनों बात लेंगे। दोनों कौन सी ? चाहे तो जीव अपने आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञाता-दृष्टारूप परिणमे तो भी वह अपनी पर्याय का कर्ता है। और अशुद्ध विकाररूप परिणमे... यहाँ दोनों बात है। तो अपनी विकारी पर्याय का कर्ता अज्ञानी है और शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा आनन्द का परिणमन, वह ज्ञानी का कार्य है। आहाहा! धर्मी का कार्य यह है कि अपने चैतन्य आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वभाव के निर्मल आनन्द और शान्ति के परिणाम हैं, उनका कर्ता धर्मीजीव है। परन्तु वह अपने निर्मल परिणाम का कर्ता हुआ तो कर्म के नाश का भी वह कर्ता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल से इसने स्वतत्त्व क्या चीज़ है उस पर कभी दृष्टि नहीं की। सब क्रीड़ाएँ बाहर में; वह भी अपनी पर्याय को छोड़कर बाहर की पर्याय में तो कभी प्रवेश किया ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **(उभौ) एक चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य (न परिणमत:) मिलकर एक परिणामरूप नहीं परिणमते हैं।** जीव के परिणाम और कर्म के परिणाम दोनों मिलकर जीव के परिणाम नहीं होते। वैसे ही आत्मा के परिणाम और पुद्गल के परिणाम दोनों मिलकर पुद्गल के परिणाम नहीं होते। कुम्हार के परिणाम और मिट्टी का घटरूप परिणाम, इन दो से घट का परिणाम नहीं हुए। समझ में आया ? कुम्हार के परिणाम से और मिट्टी के परिणाम से, इन दो के परिणाम से घड़ा नहीं हुआ। आहाहा! वह घड़ा दो द्रव्यों का कार्य नहीं है। वह अकेला मिट्टी का

ही कार्य है। आहाहा! जड़ है, उसमें और कार्य क्या? जड़ है तो क्या है? अपना परिणमन करता है या नहीं? समझ में आया?

यह कहते हैं, **चेतनलक्षण जीवद्रव्य और एक अचेतन कर्मपिण्डरूप पुद्गलद्रव्य मिलकर एक परिणामरूप नहीं परिणमते हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप...** देखो! दो बात ली है। आहाहा! जब आत्मा राग से भिन्न अपनी चैतन्य चीज़ अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, वह जब राग से भिन्न होकर अपने आत्मा का अनुभव किया, तो उस अनुभव की परिणति का करनेवाला जीव है। कोई वाणी से अनुभव होता है या तीर्थंकर के दर्शन से होता है (-ऐसा नहीं है)। वह निर्मल परिणति दो द्रव्यों की नहीं; एक आत्मा की है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अरिहन्त ने चार घातिकर्म का नाश किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का नाश किया, यह तो निमित्त से कथन है। वह तो अपनी पर्याय से वहाँ कर्मरूप पर्याय पलटकर अकर्म होने का काल था, इसलिए अकर्म हुई है। आत्मा ने विकार का नाश किया और कर्म का भी नाश किया... सेठ कहते हैं, बराबर है। सेठ जानकर कहते हैं। यह बराबर नहीं है। तुम्हारे हृदय में भी ऐसा था। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! अथवा भाषा की पर्याय होती है और सामने श्रोता को ज्ञान की पर्याय होती है तो उन दोनों परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं है। भाषा की पर्याय और ज्ञान की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है। भाषा की पर्याय स्वयं ने की और सामने ज्ञान की पर्याय भाषा की पर्याय ने की, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! वीतराग-विज्ञान ऐसा है। आहाहा!

जीवद्रव्य अपनी शुद्ध चेतनारूप... देखो! आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, उपदेश देना या सुनने का जो विकल्प है... आहाहा! उससे भी भिन्न अपनी चीज़ आनन्दकन्द ज्ञायकभाव से भरपूर है। ऐसी अन्तर में शुद्ध चैतन्यद्रव्य की द्रव्यदृष्टि हुई, तो द्रव्यदृष्टि से जो निर्मल द्रव्य परिणति हुई, उसका कर्ता जीव है। कर्म ने मार्ग कर दिया, इसलिए वे परिणाम हुए, कर्म थोड़े हट गये और मार्ग दिया, इसलिए धर्म के परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टि से परिणति से हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टि, वही परिणति है। दृष्टि, वही परिणति है। त्रिकाली तो ध्रुव है। ध्रुव पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, वह शुद्ध चेतनापरिणाम है। आहाहा! उसका आत्मा कर्ता है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। यह भी उपचार से कहने में आता है। समझ में आया? बाकी तो चेतना परिणाम का परिणाम कर्ता परिणामी है। यहाँ तो पर से भिन्न करने की बात है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! अनन्त काल में तत्त्व की दृष्टि क्या चीज़ है, यह कभी की नहीं। आहाहा! ग्यारह अंग पढ़ डाला,...

मुमुक्षु : धार लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दिया। हो गया। पर के लिये। आहाहा!

मुमुक्षु : अश्रुतपूर्व है, कभी सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अश्रुतपूर्व है। ऐसी बात है। आहाहा!

परमात्मा ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख तेरी दृष्टि होगी तो तुझे राग होगा। आहाहा! क्योंकि हम परद्रव्य हैं। राग होगा, वह हमारे कारण से नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? वह शुद्ध चेतना अपनी पर्याय अथवा अशुद्ध चेतनारूप... राग और द्वेष मिथ्या परिणाम व्याप्य है, कार्य है और आत्मा अज्ञानभाव से उसका कर्ता है। समझ में आया?

व्याप्य-व्यापक। व्याप्य अवस्था है और व्यापक एक द्रव्य कर्ता है। अज्ञानभाव से द्रव्य जो विकार की अवस्था करता है, वह व्यापक है और विकार अवस्था उसका व्याप्य, व्याप्य अर्थात् कार्य है। अत: व्याप्य-व्यापक स्वयं में होता है। कर्म में अपना व्याप्य-व्यापक होता है और कर्म अपने में व्यापक होकर अपना कार्य राग करावे, ऐसा है नहीं। आहाहा! है?

व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। चाहे तो शुद्धपरिणमन (हो)। आहाहा! अपना शुद्ध चैतन्य नित्यानन्द प्रभु का स्वीकार करने से जो शुद्ध चेतना परिणाम हुए, वह व्याप्य है, आत्मा व्यापक है। और आत्मा के ज्ञान तथा भान बिना पर के लक्ष्य से जो विकार परिणाम हुए, वे विकारी परिणाम व्याप्य है, अज्ञानी आत्मा उनका व्यापक है। समझ में

आया? आहाहा! देखो! **व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है। पुद्गलद्रव्य भी अपने अचेतन लक्षणरूप...** परमाणु अपने अचेतन लक्षणरूप **शुद्ध परमाणुरूप...** चाहे तो परमाणु अकेला शुद्धरूप परिणमो तो उसके परिणाम का कर्ता वह परमाणु है। समझ में आया? और चाहे तो **ज्ञानावरणादि कर्मपिण्डरूप अपने में व्याप्य-व्यापकरूप परिणमता है।** आहा! ज्ञानावरणी आदि आठ कर्म की पर्याय होती है तो वह पर्याय व्याप्य है और परमाणु उसका व्यापक है। आत्मा ने राग किया तो व्यापक होकर कर्म की व्याप्य पर्याय करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी काम, भाई! समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप ऐसे तो है। आहाहा! अपने में व्याप्य-व्यापकरूप से हो, यह तो वस्तु का स्वरूप है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! यह शरीर चलता है तो यह अवस्था व्याप्य है और वह परमाणु व्यापक है। परन्तु आत्मा व्यापक होकर इस अवस्था का व्याप्य करे, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! कितना अभिमान! शरीर की क्रिया मैंने की, वाणी मैंने की... आहाहा! यह सब पर के परिणाम, वह मेरा व्याप्य और मैं व्यापक, यह मिथ्या बात है।

मुमुक्षु : ग्रन्थ तो यह ही है तो आप अर्थ कहाँ से निकालते हो?!

पूज्य गुरुदेवश्री : निकालते हैं। तुम्हें तो खबर पड़ गयी। अपनी दृष्टि से निकालते हैं। ग्रन्थ तो यही है। क्या करे? और विशिष्टता तो अभी होगी।

परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है,... ऐसा नहीं है। देखो! दूसरी जगह आता है। जयसेनाचार्य की टीका में। यह दृष्टान्त सबको देते हैं। देखो! एक पुत्र होता है तो अकेला माता का और पिता का नहीं है, दोनों का है। ऐसा कहते हैं। हमें खबर है। एक पुत्र है, वह माता और पिता दोनों का है। इसी प्रकार विकार अकेला जीव का है, ऐसा नहीं है। पुद्गल का और जीव का दोनों मिलकर विकार है, ऐसा कहते हैं। और यह पाठ है। यह तो प्रमाणज्ञान कराने के लिये बात है। जब विकार हुआ तो कर्म निमित्तरूप से था, ऐसा ज्ञान कराया। निमित्त से हुआ नहीं। यह जयसेनाचार्य की टीका में है। दोनों मिलकर विकार होता है। जैसे (माता और पिता) दोनों मिलकर पुत्र होता है, वैसे पुद्गल और जीव दोनों मिलकर विकार होता है। यह तो प्रमाणज्ञान कराते हैं। प्रमाण का

अर्थ क्या ? कि निश्चय से तो विकार स्वयं से हुआ है। इस निश्चय को लक्ष्य में रखकर, निमित्त कौन है, उसकी मिलावट करना, इसका नाम प्रमाणज्ञान है।

मुमुक्षु : तो ज्ञान सच्चा या खोटा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ?—कि निश्चय रखकर निमित्त को मिलाना करना, वह प्रमाणज्ञान है। दोनों का ज्ञान है। निश्चय न हो तो प्रमाणज्ञान सच्चा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : प्रमाणज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय तो है ही। राग राग से हुआ, विकार विकार से हुआ, यह निश्चय तो है ही। तदुपरान्त निमित्त का ज्ञान कराने के लिये दोनों का कार्य है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु दो का कार्य है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया, आपने यह क्या कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे माता और पिता दो होकर पुत्र होता है। यहाँ तो कहते हैं कि दो होकर पुत्र नहीं। पुत्र तो पुत्र के कारण से होता है। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा और कर्म दो मिलकर विकार होता है। यह तो प्रमाणज्ञान अर्थात् निमित्त है या नहीं, इतना ज्ञान कराने के लिये कहा है।

यहाँ तो कहते हैं, देखो! **जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है, राग-द्वेषरूप परिणाम उनसे परिणमते हैं, ऐसा तो नहीं है।** है ? विकार में तो बहुत गड़बड़ है। सर्वत्र ऐसा ही चलता है कि विकारी अपने से और कर्म से दो से होता है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुस्तक-पुस्तक में फर्क है। गोम्मटसार में दूसरा कुछ लिखा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में तो निमित्त से कथन है। ठीक कहा। निमित्त ज्ञानावरणी आया न ? ज्ञानावरणी। उसमें क्या आया ? ज्ञान को आवरण करनेवाला। तो परद्रव्य आवरण करता है ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को आवरण करता है ? परन्तु यह तो अपनी ज्ञान की हीन / अल्प परिणति स्वयं से होती है, वह भाव घातिकर्म हुआ। ज्ञानावरणी को निमित्त कहते हैं, वह द्रव्यघाति का निमित्त कहने में आया, परन्तु उससे हुआ नहीं।

आहाहा! यह प्रवचनसार की १६वीं गाथा में लिया है। स्वयंभू। १६वीं गाथा है न? स्वयंभू। अपने से अपना केवलज्ञान प्रगट किया है। अपने कर्ता-कर्म से प्रगट किया है। १६वीं गाथा।

मुमुक्षु : कौन-सा ग्रन्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार, स्वयंभू।

स्वयमेव छह कारकरूप होने से, अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्यभावभेद से भिन्न घातिकर्मों को... देखो! द्रव्य-भावरूप भिन्न घातिकर्म। भावघाति—अपने ज्ञान की पर्याय को अपने से हीन करता है, वह भावघाति है और द्रव्यघाति, वह ज्ञानावरणी कर्म और निमित्त है, वह द्रव्यघाति। **द्रव्यभावभेद से भिन्न घातिकर्मों को दूर करके...** इसका अर्थ क्या? **स्वयमेव आविर्भूत होने से,...** विकारी पर्याय और अल्पज्ञान को दूर करके, तो निमित्त को दूर करके, ऐसा कहने में आया है। अपना स्वरूप आत्मा अपने आनन्दस्वरूप से, ज्ञानस्वरूप से आविर्भूत होकर प्रगट हुआ। अपनी पर्याय में केवलज्ञान से जलहल ज्योति स्वयंभू भगवान (प्रगट हुआ)। स्वयंभू। स्वयंभू भगवान कोई दूसरे हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ तो भगवान आत्मा ही स्वयंभू है। स्वयं से अपनी केवलज्ञान की पर्याय अपने कर्ता-कर्म-करण से उत्पन्न की है। उसमें कर्म की कोई अपेक्षा नहीं है। निमित्त है परन्तु निमित्त कर्ता नहीं। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध दूसरी चीज़ है और निमित्त कर्ता है, यह दूसरी चीज़ है। समझ में आया?

यह बात तो भाई कैलाशचन्दजी ने स्वीकार की है। पहले तो वहाँ अन्तर था। (संवत्) २०१३ के वर्ष में। उन्होंने दो बातें स्वीकार की है कि क्रमबद्ध है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर होती है। एक के बाद एक जहाँ-जहाँ जिस द्रव्य की पर्याय होनेवाली है, वह होती है। क्रमबद्ध न मानो तो सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होते। दूसरी बात अभी स्वीकार की है। आया है। दूसरी बात—सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है। निमित्त पर में कुछ करता है, ऐसा नहीं मानते। (निमित्त) कुछ करता नहीं। दो बातें आयी हैं। उस समय २०१३ के वर्ष में दो बात विपरीत थी। तुम वहाँ थे? २०१३ के वर्ष। थे? २० वर्ष पहले वर्णीजी के साथ की चर्चा में। समझ में आया? भाई! यह वाद-विवाद का विषय

नहीं है। यह तो अपने हित की बात है। समझ में आया?

अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप द्रव्यशक्ति पिण्ड प्रभु। दोपहर को चलता है न... आहाहा! सुख शक्ति का तो भण्डार है। आहाहा! आनन्द की तो निधान-खान है। आहाहा! बाहर से प्रसन्न होना, खुश होना, वह तो मिथ्याभ्रम है। समझ में आया? बाहर की अनुकूलता देखकर प्रसन्न हो, खुश हो... आहाहा! वह तो दुःख की पर्याय है। उसको सुख माना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूर किया, वह भावघाति... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? दूर करके। भाव को दूर किया, यह भी व्यवहार है; और निमित्त को दूर किया, वह तो अपने में है नहीं परन्तु दूर हो जाता है, उसे दूर किया —ऐसा कहने में आता है।

फिर से। आत्मा है। समयसार की ३४वीं गाथा में आया है कि विकार का त्याग करे, यह भी नाममात्र कथन है। त्याग क्या करे? ज्ञान में कहीं राग घुस गया है तो त्याग करे? ज्ञानानन्दस्वभाव अपनी चैतन्यज्योति है, ऐसा भान हुआ, तो उस समय में राग उत्पन्न नहीं होता। राग उत्पन्न नहीं होता, उसको राग का त्याग किया, ऐसा कथनमात्र है। समझ में आया? समयसार की ३४वीं गाथा। पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा पर का ग्रहण-त्याग से तो अनादि से शून्य है, भिन्न है। समझ में आया? उसमें शक्ति है। आगे आयेगा। त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति है। पर का त्याग और पर के ग्रहण से तो आत्मा शून्य है। अन्दर पर का त्याग-ग्रहण कहाँ है? परमाणु को पकड़ता है तो परमाणु छोड़े? स्त्री, परिवार को पकड़ा है तो स्त्री, परिवार को छोड़े? वे तो छूटे हुए ही पड़े हैं। पर का त्याग-ग्रहण करना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। अब अन्दर विकार और स्वभाव की बात रही। विकार का त्याग भी स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप में स्थिर होने से विकार उत्पन्न नहीं होता, उसे विकार को दूर किया, ऐसा व्यवहार से कथन किया जाता है। ऐसी बात है, भाई! क्या हो? मार्ग बहुत बदल गया, बहुत बदल गया। अपने हित की बात बहुत दूर हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

यह कहा न? शुद्ध अनन्त शक्तिवाले ज्ञानरूप परिणमने के स्वभाव में स्वयं ही

आधार होने से। अपनी केवलज्ञान की पर्याय को उत्पन्न करने का आधार आत्मा है। कर्म-फर्म आधार है अथवा दूसरा कोई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उत्पत्ति अपेक्षा से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सम्यग्दर्शन आदि जो जिस समय उत्पन्न हुआ। वह द्रव्यभाव भेद घातिकर्मों को दूर करके; द्रव्यभाव दोनों। भावघातिकर्म का भी यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है तो भावकर्म को दूर करना, ऐसा व्यवहार से कहा है। और द्रव्यकर्म को दूर करना वह तो असद्भूत व्यवहारनय से कहा है। ऐसी बात है। नन्दकिशोरजी! यह सब ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! क्या करे? वस्तु की स्थिति जो है, वैसी रहेगी। वह कोई दूसरे प्रकार से माने तो दूसरी स्थिति हो जाती है?

यह कहा, देखो! इसलिए ऐसा निश्चय करना कि पर के साथ आत्मा को कारकता का सम्बन्ध है ही नहीं। कर्म का कर्ता और कर्म का कर्म, कर्म का करण और कर्म का कारण-साधन आत्मा और कर्म को छोड़ना, वह कारक है नहीं। ऐसे शुद्ध आत्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये... आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप विराजमान है, उसकी प्राप्ति के लिये सामग्री खोजने की व्यग्रता से व्यर्थ परतन्त्र होता है। ऐसी अनुकूलता मिले तो मुझे ठीक। है? अपने शुद्धस्वभाव की प्राप्ति में विकल्प भी साधन नहीं है। देव-गुरु भी कारण नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। यह वीतराग ऐसा कहते हैं कि तेरे धर्म की परिणति में हमारा कोई कारण नहीं है। आहाहा! हम कारक नहीं हैं। तेरी धर्म परिणति में तू आत्मा कर्ता और करण कहना, यह भी उपचार से है। आहाहा! आहाहा! धर्म परिणति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह परिणति ही षट्कारकरूप से परिणमकर उत्पन्न हुई है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य साधन शोधना, बाह्य साधन ऐसा मिले, संहनन मिले, मनुष्यपना ऐसा हो—ऐसी व्यग्रता से जीव व्यर्थ परतन्त्र होते हैं। १६वीं गाथा है। समझ में आया?

यहाँ कहा, देखो! **परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है, राग-द्वेषरूप परिणाम उनसे परिणमते हैं,** दोनों मिलकर, **ऐसा तो नहीं है।** आहाहा! यहाँ तो सब ऐसा कहते हैं कि कर्म और आत्मा दोनों मिलकर विकार होता है। यहाँ तो निषेध करते हैं। पुस्तक यहाँ की है?

मुमुक्षु : दूसरे आचार्यों ने कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे आचार्य कहते हैं तो आचार्य हैं न ? यह अमृतचन्द्राचार्य का है। अमृतचन्द्राचार्य के श्लोक हैं। समयसार की टीका की, उसके यह कलश हैं। राजमल टीकाकार हैं।

मुमुक्षु : नेमिचन्द्राचार्य को पढ़ो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती भी यह ही कहते हैं, वह तो निमित्त का कथन है। गोम्मटसार में ज्ञानावरणी ज्ञान को रोकता है, यह तो निमित्त से कथन है। ऐसा नहीं है। वह तो अल्प-संक्षिप्त भाषा करने के लिये ऐसा कहा जाता है। ऐसा लम्बा-लम्बा करे कि ज्ञान अपनी पर्याय में हीन (दशा) करे, तब ज्ञानावरणी को निमित्त कहते हैं परन्तु निमित्त करता नहीं। ऐसी लम्बी-लम्बी बात नहीं करके (संक्षेप में कहा है)।

पंचास्तिकाय में अपने पण्डितजी ने डाला है। पंचास्तिकाय न भाई ? पण्डितजी ने डाला है। पण्डित हिम्मतभाई। पण्डितजी ने बहुत काम किया है। शान्त है, शान्त। बाहर में वाँचन-बाँचन में भी इन्हें रस नहीं है। पण्डितजी-हिम्मतभाई। यह हिम्मतभाई है। जानते हो या नहीं ? नेमीचंद ! हिम्मतभाई, यह सब इन्होंने बनाया है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार टीका हिन्दी-गुजराती सब इन्होंने किया है। समझ में आया ? तो भी बोलने का बहुत रस नहीं है। बहुत कहे, तब मुश्किल से थोड़ा बोले। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, **उनसे परिणमते हैं, ऐसा तो नहीं है।** आहाहा ! शुद्ध परिणमन अपने से होता है और कर्म के मार्ग से होता है, ऐसा तो है ही नहीं। इसी प्रकार विकार परिणमन अपने से होता है और कर्म से भी होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! अभी बड़ी गड़बड़ है।

मुमुक्षु : कोई रास्ता निकालो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रास्ता निकाला न ! बनिया जैसा रास्ता है ?

बनिये का दृष्टान्त देते हैं। एक व्यापारी बनिया था। उसके किसान के पास पाँच हजार लेना थे। कणबी समझते हो ? कृषिकार। कृषिकार से पाँच हजार (लेना निकलते थे)। किसान के पास सब मिलकर दो हजार रुपये मुश्किल-मुश्किल से थे। दोनों मिले

तो बनिया कहे पाँच हजार में एक पाई भी कम नहीं लूँगा। वह कहे एक हजार से ऊपर एक पाई मेरे पास नहीं है। उसके पास दो हजार से ऊपर थे, यह इसे (बनिये को) खबर थी। फिर यह कहता है पाँच हजार में एक हजार कम दो, तो वह कहता है एक हजार के ऊपर दो सौ अधिक ले लो, ऐसे करते... करते... करते... करते... यह बनिया दो हजार पर आया और वह दो हजार पर आया। ऐसी बनियागिरी है यहाँ?

यह तो हिम्मतभाई पण्डितजी कहते थे। कहाँ गये? बैठे हैं। हिम्मतभाई-हिम्मतभाई। है? पीछे बैठे हैं। तो हिम्मतभाई लाये थे। वहाँ है न पूनमचन्द घासीलाल, कालबादेवी है न? उसका मन्दिर है, तो वहाँ से हिम्मतभाई लाये थे कि भाई कानजीस्वामी थोड़ा ढ़ीला छोड़े और थोड़ा हम छोड़ें तो हम एक हो जाएँ।

मुमुक्षु : समन्वय करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय करो, (ऐसा उनने कहा)। ढीला क्या छोड़ें? सत्य में थोड़ा हीन बतावें? हम ढीला छोड़ें तो अपने समन्वय हो जाए। परन्तु इसमें ढीला छोड़ने जैसा है क्या? तू कहता है कि शुभभाव से धर्म होता है तथा कर्म और आत्मा दोनों मिलकर विकार होता है, इसमें ढीला क्या छोड़े? यहाँ तो कहते हैं, तीन काल में शुभभाव से धर्म नहीं होता और तीन काल में कर्म और आत्मा दोनों मिलकर विकार नहीं होता। अपने से स्वतन्त्र विकार होता है। वे लाये थे, यह हिम्मतभाई लाये थे। देरी से आये होंगे, इसलिए पीछे बैठे हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, उभय मिलकर एक क्रिया नहीं है। अब दूसरा कहा। **जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दोनों मिलकर अशुद्ध चेतनारूप है, राग-द्वेषरूप परिणाम उनसे परिणमते हैं ऐसा तो नहीं है। 'उभयोः परिणतिः न स्यात्' जीव और पुद्गल की मिलकर एक क्रिया नहीं होती है।** राग की क्रिया स्वतन्त्र है। पूर्व की पलटकर सम्यग्दर्शन हो या राग पलटकर राग हो, उस अपनी क्रिया का कर्ता आत्मा है। कर्म पलटकर अकर्म हो, उसकी क्रिया का कर्ता वह पुद्गल है। आत्मा कर्मरूप घातिकर्म का नाश करे, ऐसा है नहीं। है? **वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है।** देखो!

'यतः अनेकं अनेकं एव सदा' जिस कारण से भिन्न सत्तारूप हैं... देखो! क्या

कहते हैं ? जीव और परद्रव्य आदि की भिन्न सत्ता है। भिन्न सत्ता, वह अनेक सत्ता है, तो अनेक सत्ता अनेकरूप रहकर काम करती है। अनेक सत्ता मिलकर काम करती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? **जिस कारण से भिन्न सत्तारूप...** जीव-पुद्गल की सत्ता ही भिन्न है। **'अनेकं एव सदा' वे तो जीव-पुद्गल सदा ही भिन्नरूप हैं, एकरूप कैसे हो सकते हैं।** 357

भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य-पुद्गलद्रव्य भिन्न सत्तारूप हैं... अब सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। **सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर...** भिन्न सत्तापना छोड़कर **एक सत्तारूप होवें तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो।** दो सत्ता भिन्न है, वह दो सत्ता छोड़कर एक हो तो कर्ता-कर्मपना घटित होता है। आहाहा! समझ में आया ? कुम्हार की सत्ता भिन्न, मिट्टी की सत्ता भिन्न। दो भिन्न है तो दोनों मिलकर घट का परिणाम हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। तो कुम्हार के परिणाम का अभाव हुआ या मिट्टी के परिणाम का अभाव हो। सत्ता भिन्न है और एक परिणाम दो करे तब तो दो सत्ता एक हो गयी। एक सत्ता का नाश होगा। आहाहा! समझ में आया ?

रोटी के टुकड़े होते हैं। रोटी ले न रोटी ? दाल में। तो कहते हैं कि उस रोटी का टुकड़ा हुआ और दाल में आया तो उस क्रिया का कर्ता वे परमाणु हैं। आत्मा की इच्छा से वह क्रिया हुई तो दो द्रव्यों की सत्ता भिन्न नहीं रहती। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : रोटी का टुकड़ा आत्मा ने नहीं क्या। हाथ ने तो किया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। हाथ से भी नहीं हुए। वे रोटी के टुकड़े, टुकड़े से हुए हैं। रोटी ले, सब्जी ले, चटनी ले। कहते हैं कि हाथ ऊँचा हुआ और यहाँ आया और टुकड़े हुए, वह परमाणु की पर्याय से हुए हैं। अपने से हुए नहीं। दाँत से भी टुकड़े हुए नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत गजब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न सत्ता है तो भिन्न सत्ता का कार्य भिन्न सत्ता से है। आहाहा! समझ में आया ? श्वास लेता है, श्वास। वह श्वास की क्रिया जड़ की है। वह आत्मा से भिन्न सत्ता रखती है। आत्मा भिन्न सत्ता का कार्य करे तो अपनी सत्ता खो बैठे और अन्दर

सत्ता में प्रवेश हो जाए। समझ में आया? ऐसी बात! गजब, भाई! वैद्य जाँच करे, तब कहता है कि श्वास लो, श्वास छोड़ो, धीमे से लो। तो क्या श्वास की क्रिया आत्मा कर सकता है? आहाहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह डॉक्टर कहे, उसे व्यवहार है तो निमित्त से कहे न। वह कहे कि मैं करूँ। क्या करे? श्वास की क्रिया तो श्वास से होती है। आत्मा और पुद्गल-श्वास दो भिन्न चीज़ है। दो चीज़ भिन्न है तो सत्ता भिन्न है। दो भिन्न सत्ता है तो एक सत्ता पर में मिल जाए तो अपना अभाव हो जाए तो पर की सत्ता की क्रिया करे। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म।

तत्त्व भिन्न है न? अजीवतत्त्व भिन्न है, जीवतत्त्व भिन्न है। फिर और पुण्य-पाप भिन्न है, आत्मा भिन्न है। भिन्न तत्त्व को भिन्न तत्त्व क्या करे? निश्चय से तो पुण्य-पाप तत्त्व भी भिन्न है। परिणाम, हों! यह अज्ञानभाव से पुण्य-पाप का कर्ता हो परन्तु ज्ञानभाव से पुण्य-पाप का कर्ता आत्मा, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! वह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा... जानने की पर्याय स्व-परप्रकाशक हुई, उसका कर्ता आत्मा को कहना, वह भी उपचार है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : सब लोग भोले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। सामनेवाले ऐसा कहते हैं। दूसरे सामनेवाले ऐसा कहते हैं कि जो ऊपर कहे, जी हाँ। रामजीभाई और वे भोले लोग हैं। अरे! भाई! बापू! तू एक बार सुन तो सही। आहाहा! यह वस्तु की स्थिति क्या है? एक चीज़ दूसरी चीज़ को करे तो अपनी सत्ता खो बैठे। आहाहा! भिन्न सत्तावाली चीज़ को भिन्न सत्तावाली चीज़ कुछ करे (तो अपनी सत्ता खो बैठे)। यह कहते हैं, देखो!

पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर एक सत्तारूप होवें... है? आहाहा! **जीव-पुद्गल सदा ही भिन्नरूप हैं,... सो जो पहले भिन्न सत्तापन छोड़कर एक सत्तारूप होवें तो पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो।** परन्तु वह तो अपनी सत्ता छोड़कर कभी परसत्ता में जाते नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभिमान है अभिमान। मैंने किया... मैंने किया...

उपदेश भी मैंने किया और उससे लोग समझे, वे मुझसे समझे हैं। ऐई! नन्दकिशोर! और लोग बहुत प्रसन्न होंवे तो अपने को भी ठीक हो। सब भ्रम है। समझ में आया? बात बहुत कठिन, बापू! समझ में आया?

अपनी चीज़ पर से तो भिन्न है, परन्तु नव तत्त्व की अपेक्षा से पुण्य-पाप के तत्त्व से ज्ञायकतत्त्व तो भिन्न है। ज्ञायकतत्त्व निश्चय से यदि विकार का कर्ता हो तो ज्ञायकसत्ता विकार में मिल जाए तो कर्ता हो। परन्तु वह तो मिलती नहीं। समझ में आया? अज्ञानरूप से मानता है कि रागादि पुण्य-पाप का कर्ता मैं हूँ। ऐसा तो है। परन्तु यह तो सत्ता और राग-द्वेष की सत्ता भिन्न नहीं, उसे वह मानता है। वह मानता है। आहाहा! परन्तु जिसे पुण्य-पाप के भाव की सत्ता और भगवान ज्ञायक की सत्ता भिन्न है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह तो पुण्य-पाप की सत्ता में अपनी ज्ञान की सत्ता को मिलाता नहीं। यदि मिल जाए तो अपनी ज्ञान सत्ता खो बैठे और रागरूप हो जाए। परन्तु ऐसी चीज़ तो नहीं है। आहाहा! गजब बातें, भाई! ऐसी बात है।

पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना... क्या पश्चात्? पहले भिन्न सत्तारूप छोड़कर। पहले सत्ता को छोड़े, दो मिलकर एक सत्तारूप होवे तो **पीछे कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित हो। सो तो एकरूप होते नहीं,...** आहाहा! स्त्री, दाल-भात की कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। और दाल-भात पानी से पकते हैं, ऐसा भी नहीं है। गरम पानी से चावल पकते हैं, ऐसा भी नहीं है क्योंकि चावल पकने की चीज़ स्वयं से है, स्वयं की सत्ता में है और पानी की सत्ता भिन्न है। यदि पानी की सत्ता से चावल पकें तो दो सत्ता एक हो जाए।

मुमुक्षु : पानी से पकते रोज देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देखता है कोई? संयोग को देखता है, वस्तु को कहाँ देखता है? चावल स्वयं से पकते हैं, पर से बिल्कुल नहीं पकते। ऐई! पोपटभाई! उस अग्नि से भी नहीं पकते। वह पानी गरम होता है, वह स्वयं की सत्ता से पानी अपनी पर्याय में उष्ण होता है। अग्नि की सत्ता भिन्न है और उसकी सत्ता भिन्न है। अग्नि की सत्ता छोड़कर अग्नि गर्म पानी में घुस जाए, तब तो अग्नि उष्णता की कर्ता कहने में आवे। परन्तु वह तो अपनी सत्ता छोड़ती नहीं। समझ में आया? वीतराग का भेदज्ञान बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! वहाँ

किसी की सिफारिश नहीं चलती। सिफारिश को (हिन्दी में) क्या कहते हैं? वहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलती। आहाहा! ओहो!

दो बातें तो की। एक तो आत्मा अपनी शुद्धचेतनारूप परिणमता है तो उस परिणाम का कर्ता वह जीव है। उस परिणाम का कर्ता कर्म है, कर्म ने मार्ग दिया तो परिणाम ऐसे हुए—ऐसा नहीं है। दूसरी बात—अशुद्धचेतना विकार करे, वह भी कर्म है तो विकार हुआ—ऐसा नहीं है। अभी आया है। वह पहले भी यह कहते थे। विकासचन्दजी है न एक विकासचन्दजी? हमारे चेतनजी कहाँ गये? चेतनजी के मित्र थे। विकासचन्दजी है। पहले श्वेताम्बर साधु थे। श्वेताम्बर नहीं, स्थानकवासी। नहीं? पहले स्थानकवासी, पश्चात् श्वेताम्बर के साधु और फिर दिगम्बर ब्रह्मचारी। हमारे पर बहुत पत्र आते हैं। शिक्षा देने के लिये महीने-दो महीने में बहुत पत्र आते हैं। तुम भूल में पड़े हो। तुम सराग समकित नहीं मानते। रागवाला समकित है, (ऐसी बातें लिखते हैं)। समकित वीतरागी है और परद्रव्य का कर्ता बिल्कुल नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा आता है।

उन्होंने एक प्रश्न ईडर में किया था कि सिद्ध को कर्म नहीं तो विकार नहीं होता। यहाँ कर्म है, तो विकार होता है। बस, यही प्रश्न अभी आया है। ज्ञानमति की ओर से (आया है)। ज्ञानमति है न? हस्तिनापुर और यहाँ दिल्ली में (जम्बूद्वीप) बनाती है। कर्म बिना विकार होवे तो सिद्ध को भी हो। अरे! भगवान! तू क्या कहता है? क्या गड़बड़ चलायी है। लोगों को-सुननेवालों को कुछ खबर नहीं पड़ती। उसमें कुछ त्याग देखे, कहीं भाषा-बाषा में चमत्कार लगे तो ओहोहो! उसमें क्या हुआ? भाई! भाषा में क्या है? आहाहा! उसमें यह भी आया है, यहाँ का विरोध है। यह तो एकान्त है, ऐसा कहती है। हम तो दिल्ली में मिले थे। हम दिल्ली गये थे न? वहाँ एक मन्दिर था। दर्शन करने जाते थे। कहा था, हम उस मन्दिर में दर्शन करने आनेवाले हैं। दिगम्बर मन्दिर। हम और दो साधु बैठे थे। कोई व्यक्ति नहीं था। तीनों जनें बात करते थे। यह बात करते थे कि तिलोयपण्णत्ति में ऐसा है, अमुक है, अमुक है। मैं थोड़ी देर उनके पास बैठा, मैंने कहा—माता! समकित दर्शन भिन्न चीज़ है। कोई विरोध तो है नहीं। माता! यह सम्यग्दर्शन कोई दूसरी चीज़ है। किसी ने बाहर से तिलोयपण्णत्ति पढ़ा, ऐसे विषय जाने। ... आहाहा!

यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय से भी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय, वह विकार सत्ता है और सम्यग्दर्शन की निर्विकारी सत्ता है। निर्विकारी सत्ता विकार की सत्ता से कभी नहीं होती। आहाहा! परन्तु लोगों को कहाँ दरकार है? एक तो संसार में २० घण्टे रचे-पचे हों, ६-८ घण्टे नींद में, २-४ घण्टे भोग में, २-४ घण्टे घण्टे खाना-पीना और एकाध-दो घण्टे स्त्री और पुत्रों को प्रसन्न रखने में जाए, इतना समय तो पाप में समय जाए। उसमें से एकाध घण्टे सुनने को मिले, उसका निर्णय करने का समय नहीं है। जो सिर पर बैठा कहे, उसे जय नारायण जय। आहाहा! अरे! भाई! यह तो प्रभु का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! बहुत सरस बात ली है।

आनन्द का चेतन परिणमन हो या विकार का, दो द्रव्य मिलकर वे परिणाम हुए नहीं। आहाहा! और पुद्गल में ज्ञानावरणी की पर्याय हो या अन्तराय की पर्याय हो तो आत्मा और वे दो मिलकर वह अन्तराय की पर्याय हुई नहीं। आहाहा! (संवत्) २००६ के वर्ष में राजकोट में यह प्रश्न हुआ था। आत्मा राग न करे तो चारित्रमोह कैसे बँधे? समझ में आया? २००६ के वर्ष, राजकोट की बात है। चिमनलाल भी आये थे। चिमनलाल भी आये थे। गुजर गये। मूलशंकर के भाई थे। राग न करे तो कर्म कैसे बँधे? राग करे तो कर्मबन्ध होता है। ऐसा नहीं है, भगवान! तुझे खबर नहीं है। वह तो निमित्त का कथन है। कर्म की पर्याय कर्म से होती है, वह कहीं राग से होती है? दो सत्ता भिन्न है तो दो सत्ता मिलकर एक सत्ता होवे तो एक सत्ता का नाश हो जाए। आहाहा! बात तो ऐसी है, भगवान! अरे! क्या करें?

भगवान का विरह पड़ा। वहाँ भगवान थे। परमात्मा तो महाविदेह में विराजते हैं। उनकी तो यह वाणी है। इसमें किसी का पक्ष नहीं चलता कि भाई! हमें माननेवाले लाखों मानते हैं, इसलिए सत्य है, ऐसा नहीं है। सत्य को माननेवाले की संख्या से सत्य की कीमत नहीं है। सत्य को माननेवाला भले एक हो, परन्तु सत्य तो सत्य ही है। आहाहा!

सो तो एकरूप होते नहीं, इसलिए जीव-पुद्गल का आपस में कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नहीं होता। आहाहा! घट की पर्याय मिट्टी से हुई, वह कुम्हार से कभी नहीं होती। आहाहा! कुम्हार अपनी सत्ता खो बैठे और मिट्टी में चला जाए तो घड़े की पर्याय

का कर्ता कुम्हार कहलाये। पोपटभाई! तुम्हारे तो बहुत सब बड़ा-बड़ा काम है। छह लड़के और करोड़ोंपति व्यक्ति। काम कितने उपाधि के। उपाधि के। आहाहा! यहाँ तो एक परमाणु दूसरे परमाणु में ... यह चर्चा भी हुई थी। एक परमाणु की दो गुण चिकनाहट है, 361
दूसरे परमाणु में चार गुण चिकनाहट है। तत्त्वार्थसूत्र में आता है। चार गुण चिकनाहट पर्याय है, वह दो गुण को चार गुण कर डालती है। परिणमा देती है।

मुमुक्षु : यह तो... में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है परन्तु यह तो निमित्त का कथन है, इसलिए कहते हैं। ... जब चार गुण चिकनाहट के परमाणु आये तो स्वयं में चार गुण चिकनाहट होने का स्वकाल है। वह चार गुण पर्याय आयी, इससे परिणमन हुआ, ऐसा है नहीं। बहुत चर्चा चलती है। यहाँ तो ४३-४३ वर्ष हुए। बहुत चर्चा हुई थी। परमाणु की भी चर्चा आयी थी। स्कन्ध में मिलता है, देखो! एक पृथक् परमाणु है तो उसका विभाव परिणाम... उसमें आवे तो विभावरूप परिणाम होता है। स्थूल। एक परमाणु भिन्न है तो सूक्ष्म है और यहाँ आया तो स्थूल हो गया। यहाँ परमाणु सूक्ष्म है, स्कन्ध में मिला तब स्थूल हुआ न? बिल्कुल झूठ बात है। यह प्रश्न आया था।

एक सूक्ष्म परमाणु भिन्न है। यहाँ सूक्ष्म रहा नहीं। यहाँ तो विभावरूप स्कन्ध हो गया। स्थूल हो गया। एक-एक परमाणु स्थूल, हों! उसमें एक-एक परमाणु स्थूल है। पृथक् पड़े तो सूक्ष्म है। इसका अर्थ कि यहाँ आया तो स्थूल हुआ, ऐसा है नहीं। स्वयं की स्थूल पर्यायरूप से परिणमने का काल था तो यहाँ स्थूलरूप हुआ। दो अधिक गुण... बहुत चर्चा हुई। तत्त्वार्थसूत्र में आया है। दो अधिक गुण है, वह यहाँ परिणमा देते हैं - बिल्कुल झूठ बात है। वह तो दूसरी चीज़ क्या है, यह बताते हैं।

मुमुक्षु : अपने गुण से स्थूल हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थूल स्वयं से हुआ है। पृथक् पड़े तो स्वयं से सूक्ष्म हो जाएगा।

एक-एक परमाणु उसमें है, वह स्थूल है, सब मिलकर स्थूल है। एक परमाणु सूक्ष्म है तो सब परमाणु सूक्ष्म हों, ऐसे स्थूल नहीं होते। समझ में आया? यह तो स्थूल है।

आँख का विषय है। परमाणु तो अतीन्द्रिय विषय है। वह परमाणु अतीन्द्रिय विषय है, वह जब यहाँ आता है तो स्वयं की पर्याय में स्वयं से स्थूल हो जाता है। तो सब परमाणु स्थूल हैं, तथापि एक-एक परमाणु का दूसरे परमाणु में अभाव है। बाबूभाई! ... प्रश्न बहुत आये हैं। ... है शान्तिभाई देसाई है। चुनीभाई के भाई। सम्बलपुर है, वहाँ से आये। प्रश्न बहुत होते हैं। वे तो लाते हैं, अमुक ऐसा कहते हैं और अमुक ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो भाई! भगवान ऐसा कहते हैं कि एक सत्ता दूसरी सत्ता में मिल जाए तो दो सत्ता होकर कार्य हो परन्तु भिन्न सत्ता और भिन्न सत्ता का कार्य कभी नहीं होता। अनन्त परमाणु अनन्तरूप रहकर अपना कार्य करते हैं। अनन्त आत्मा अनन्तरूप रहकर एक निगोद के शरीर में... आहाहा! लहसन का राई जितना टुकड़ा लो। उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। एक-एक जीव में तैजस और कार्मण दो शरीर हैं। औदारिक एक है। परन्तु एक-एक भिन्न... कार्मणशरीर है। एक-एक कार्मणशरीर में अनन्त स्कन्ध का पिण्ड है। एक-एक स्कन्ध में अनन्त परमाणु है। एक-एक परमाणु स्वयं से है और दूसरे परमाणु से नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो अब यह मेरे पुत्र, यह मेरी स्त्री कहाँ रहा? भाई! तुझे क्या है? यह मेरी अर्धांगिनी है, यह मेरा पुत्र है, हमारा उत्तराधिकार रखेगा। तेरा उत्तराधिकार क्या? धूल का?

यहाँ कहते हैं, **कर्ता-कर्म-क्रियापना घटित नहीं होता।** एक द्रव्य में परद्रव्य का कर्तापना, परद्रव्य का कार्यपना, परद्रव्य की क्रियापना घटित नहीं होता। कर्ता-कर्म-क्रिया अपने-अपने से घटित होते हैं, पर से नहीं। यह ५३ (श्लोक) हुआ। अब ५४ फिर आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-५४

(आर्या)

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतौ न स्यात्।।९-५४।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-यहाँ पर कोई मतान्तर निरूपण करेगा कि द्रव्य की अनन्त शक्तियाँ हैं, सो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि एक द्रव्य दो द्रव्यों के परिणाम को करे। जैसे जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम को व्याप्य-व्यापकरूप करे, वैसे ही ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड को व्याप्य-व्यापकरूप करे। उत्तर इस प्रकार है कि द्रव्य के अनन्त शक्तियाँ हैं, पर ऐसी शक्ति तो कोई नहीं कि जिससे जैसे अपने गुण के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है, वैसे ही परद्रव्य के गुण के साथ भी व्याप्य-व्यापकरूप होवे। 'हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न' [हि] निश्चय से [एकस्य] एक परिणाम के [द्वौ कर्तारौ न] दो कर्ता नहीं हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम का जिस प्रकार व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य कर्ता है, उसी प्रकार पुद्गलद्रव्य भी अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम का कर्ता है, ऐसा तो नहीं। जीवद्रव्य अपने राग-द्वेष-मोह परिणाम का कर्ता है, पुद्गलद्रव्य कर्ता नहीं है। 'एकसय द्वे कर्मणी न स्तः' [एकस्य] एक द्रव्य के [द्वे कर्मणी न स्तः] दो परिणाम नहीं होते। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतना परिणाम का व्याप्य-व्यापकरूप कर्ता है, उस प्रकार ज्ञानावरणादि अचेतन कर्म का कर्ता जीव है, ऐसा तो नहीं है। अपने परिणाम का कर्ता है, अचेतन परिणामरूप कर्म का कर्ता नहीं है। 'च एकस्य द्वे क्रिये न' [च] तथा [एकस्य] एक द्रव्य की [द्वे क्रिये न] दो क्रिया नहीं होतीं। भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य जिस प्रकार चेतन परिणतिरूप परिणमता है, वैसे ही अचेतन परिणतिरूप परिणमता हो, ऐसा तो नहीं है। 'यतः एकं अनेकं न स्यात्' [यतः] जिस कारण से [एकं] एक द्रव्य [अनेकं न स्यात्] दो द्रव्यरूप कैसे होवे? भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप है, सो जो पहले वह अनेक द्रव्यरूप होवे तो ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता भी होवे, अपने राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतनपरिणाम का भी कर्ता होवे; सो ऐसा तो है नहीं। अनादि-निधन जीवद्रव्य एकरूप ही है, इसलिए अपने अशुद्ध चेतन परिणाम का कर्ता है, अचेतनकर्म का कर्ता नहीं है। ऐसा वस्तु-स्वरूप है।।९-५४।।

श्रावण शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक १७-०८-१९७७
कलश-५४-५५, प्रवचन-६९

कर्ता-कर्म अधिकार। ५४ है न? ५४वाँ कलश है। कर्ता-कर्म अधिकार चलता है।

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतौ न स्यात्।।९-५४।।

ञ्चया कहते हैं? अर्थ :- **यहाँ पर कोई मतान्तर निरूपण करेगा...** मतान्तर-वास्तविक है, उससे विरुद्ध कोई कहेगा। ञ्चया? **कि द्रव्य की अनन्त शक्तियाँ हैं...** आत्मा में अनन्त शक्ति है, परमाणु में भी अनन्त शक्ति है। समझ में आया? आत्मा में जितनी शक्तियाँ हैं, उतनी ही एक परमाणु में शक्तियाँ हैं। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुनी संञ्चया से एक-एक आत्मा में शक्ति है। इतनी अनन्त शक्तियाँ परमाणु में भी है। आकाश के प्रदेश अनन्त हैं, जिसका अन्त नहीं, उसके प्रदेश की संञ्चया-अपेक्षा एक परमाणु में भी अनन्तगुणी शक्तियाँ हैं। आहाहा! जितनी एक आत्मा में है, उतनी (परमाणु में है)। यहाँ चैतन्य आनन्द आदि है। वहाँ जड़ आदि है परन्तु शक्ति संञ्चया से अनन्त हैं और वे समान अनन्त हैं।

तो शिष्य मतान्तर से प्रश्न करते हैं कि **सो एक शक्ति ऐसी भी होगी...** अनन्त शक्तियाँ हैं, **सो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि एक द्रव्य दो द्रव्यों के परिणाम को करे।** आत्मा अनन्त शक्तिवन्त है तो अपने परिणाम को भी करे और कर्म की पर्याय, शरीर की पर्याय, वाणी की पर्याय, दो (द्रव्यों) के परिणाम को करे, ऐसी शक्ति है। उसमें ञ्चया है? देवीलालजी! है न? **एक द्रव्य दो द्रव्यों के परिणाम को करे।** एक द्रव्य दो द्रव्य का परिणाम को करे। अपने राग को करे और भाषा की पर्याय को भी करे। आत्मा की बहुत शक्ति है, तो अनन्त शक्तियों में ऐसी कोई शक्ति होगी कि जो अपने परिणाम को भी करे और शरीर को चलाने की क्रिया भी करे। समझ में आया? ऐसे मतान्तर से शिष्य का प्रश्न है।

ऐसा नहीं है, भगवान! सुन! दुनिया में ऐसा कहते हैं। हमारे गुजरात में कहते हैं।

जैसे एक ग्वाला होता है न, ग्वाला? तो एक गाय का ग्वाला, तो दो गाय का ग्वाला साथ में, उसमें ञ्चया हुआ? समझ में आया? तुञ्हारी भाषा होगी कुछ। ग्वाला एक गाय को चलावे तो दो गायों को भी चलावे। उसमें ञ्चया दिञ्चकत है? हमारे गुजरात में तो ऐसा कहते हैं, तुञ्हारे कुछ तो होगा। यह बात यहाँ चलती है। एक ग्वाला होता है न? गाय को चरानेवाला। एक गाय को चरावे तो दो गायों को चरावे, उसमें ञ्चया दिञ्चकत है?

उसी प्रकार आत्मा और परमाणु में संञ्चया से अनन्त शक्ति है। संञ्चया से, हों! और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति है तो एक शक्ति ऐसी भी होगी कि अपने परिणाम जीव करे और पर के भी (परिणाम) करे, उसमें ञ्चया बाधा है? जैसे आत्मा में वीर्य नाम की शक्ति है। तो राग तो करे नहीं, यह तो और सूक्ष्म बात है। वीर्यशक्ति तो निर्मल परिणाम को ही करे। दोपहर में चलता है। परन्तु वीर्य परिणाम अपनी निर्मल पर्याय को भी करे और शरीर को भी बल करके दूसरे जीव को भी जिलावे, पानी में पड़ा हो तो हाथ देकर बाहर निकाले। तो वह शरीर की क्रिया भी आत्मा करे। ऐसी एक शक्ति (होगी)। आत्मा तो अनन्त शक्तिवन्त है।

मुमुक्षु : एक ऐसी भी होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भी शक्ति ऐसी ली नहीं। डालचन्दजी! आहाहा! भगवान! ऐसा है नहीं। समझ में आया? इस हाथ की मुट्ठी बाँधे और किसी को मारे। तो वह राग को भी करे और शरीर की ऐसी क्रिया करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! एक द्रव्य दो परिणाम को करे, ऐसी शक्ति होवे तो ञ्चया बाधा है? शिष्य ऐसा कहता है। ऐसा है नहीं, भगवान! सुन। आहाहा! है?

एक द्रव्य दो द्रव्यों के परिणाम को करे। जैसे जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम को व्याप्य-व्यापकरूप करे... अभी तो यह सिद्ध करना है न? द्रव्य की दृष्टि सिद्ध करनी हो, द्रव्यस्वभाव सिद्ध करना हो और सञ्चयग्दर्शन का विषय जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसे सिद्ध करना हो तो राग-द्वेष के परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया? अपना चैतन्यघन भगवान शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, ऐसी द्रव्य की सिद्धि श्रद्धा में करनी हो और उपदेश में करनी हो, तब तो द्रव्यस्वभाव अपने

निर्मल सक्ष्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम का कर्ता है। उस परिणाम का भी कर्ता और राग का भी कर्ता, ऐसे दो नहीं। समझ में आया?

परन्तु यहाँ तो प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान परिणतिरूप पर्याय होती है, तो आत्मा में वर्तमान में अज्ञानभाव से... आहाहा! स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दघन है, ऐसी दृष्टि का जिसे अभाव है, वह जीव अपनी पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम करे। परन्तु वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम करे और साथ में कर्मबन्धन की पर्याय भी करे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पर की दया पालने का राग हो, तो राग को भी करे और पर की दया भी पाल सके, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! राग भी करे और पैसा दे, वह भी क्रिया करे। नहीं? लालचन्दजी! ये सेठिया हैं। दो क्रिया नहीं कर सकता?

मुमुक्षु : कर सके न।

पूज्य गुरुदेवश्री: कर सके न। ये सेठिया ने की होगी। यह भी स्वीकार करते हैं। विकल्प हो, परन्तु विकल्प आया तो दान के पैसे दिये, वह पर्याय जीव ने की—ऐसा है नहीं। आहाहा! पोपटभाई!

वैसे ही ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड को व्याप्य-व्यापकरूप करे। ऐसा नहीं है। जैसे आत्मा व्यापक अर्थात् विस्तार पाकर पसरे तो रागरूपी व्याप्य का कर्ता होता है, परन्तु ऐसे परिणाम राग का कर्ता हो और कर्म की पर्याय का भी कर्ता हो, ऐसा होता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

मुमुक्षु : राग हो, तब कर्म बँधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। इसलिए तो दृष्टान्त कहा। राग हो तब ही कर्म बँधते हैं। कर्म की पर्याय होने का स्वकाल कर्म में है। राग से वह पर्याय बँधती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! अनन्त काल से अपनी चीज़ में अपने परिणाम का कर्ता है, पर का नहीं ऐसा भेदज्ञान कभी नहीं किया। जहाँ-तहाँ अभिमान (किया)। समझ में आया?

उपदेश का जो विकल्प उत्पन्न होता है, तो यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानी विकल्प का कर्ता हो, परन्तु भाषा की पर्याय का कर्ता हो—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा!

अज्ञानी। ज्ञानी को विकल्प आता है, उस विकल्प के ज्ञान के परिणाम का कर्ता है। समझ में आया? आहाहा! विकल्प आया, उसी समय में धर्मी को ज्ञानस्वरूप जिसकी दृष्टि में आया है, उसकी पर्याय में स्व और राग सम्बन्धी ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, स्व-परप्रकाशक पर्याय प्रगट होती है परन्तु ज्ञानी उस राग का कर्ता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञाता है। ज्ञाता के परिणाम का कर्ता है। आहाहा! अरे! इतना भेद। समझ में आया?

जिसकी दृष्टि पर्याय में, राग में, पुण्य-पाप के भाव में है, उस परिणाम का कर्ता अज्ञानी है। परन्तु उस परिणाम का कर्ता हुआ और उसी समय में उसके प्रमाण में कर्मबन्धन हुआ; तो उस कर्मबन्धन की पर्याय का कर्ता भी आत्मा और विकार का कर्ता भी आत्मा, ऐसे दो परिणाम का एक कर्ता नहीं है। दो भिन्न-भिन्न परिणाम के दो भिन्न-भिन्न कर्ता हैं।

मुमुक्षु : वैभाविकशक्ति अधिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वैभाविकशक्ति अधिक नहीं। वैभाविकशक्ति तो अपने में निर्मिाधीन होकर विकार होता है, वह वैभाविकशक्ति। वैभाविकशक्ति विकार करे, ऐसा नहीं।

छह द्रव्य है। छह द्रव्य है न? भगवान ने देखे। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। उन जीव और पुद्गल दो ऐसी एक शक्ति है, उस कारण से विभाव कहा। परन्तु विभाव का अर्थ विकार करे, इसलिए वैभाविक शक्ति है—ऐसा नहीं है।

फिर से। आत्मा में एक वैभाविकशक्ति है। देवीलालजी ने प्रश्न किया। तो वैभाविकशक्ति है, इसलिए विकार करने का स्वभाव है, ऐसा नहीं है। वैभाविकशक्ति का अर्थ असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश में वह शक्ति नहीं है। इस कारण जीव और पुद्गल में विशेषरूप विभावशक्ति होने से विभाव शक्ति कहने में आयी है। परन्तु विकार करे वह विभावशक्ति, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु का मार्ग तो (ऐसा है), भाई!

श्रीमद ने स्पष्टीकरण किया है। और अपने इसमें तो आता ही है कि वैभाविकशक्ति क्यों कही ? कि दूसरे चार द्रव्यों में नहीं और जीव, पुद्गल में है, इस कारण से विशेष शक्ति, वह विभाव। विभाव (अर्थात्) विकार करे, ऐसा है नहीं। चार द्रव्यों में नहीं और जीव, पुद्गल में है, उस विशेष शक्ति का नाम वैभाविकशक्ति कहा। परन्तु वैभाविकशक्ति विकार, ऐसा है नहीं। वैभाविकशक्ति तो सिद्ध में भी है। क्या कहा यह ? सिद्ध में है। शुद्ध परिणमन है, निर्मल परिणमन है। यहाँ वैभाविकशक्ति है तो, जिसकी पर्यायबुद्धि है और निर्मिाधीन बुद्धि है, वह वैभाविकशक्ति निर्मिाधीन होकर विकार करती है। और वैभाविकशक्ति है... सक्यग्दृष्टि जीव, कि जिसमें राग से भिन्न अपनी चीज़ को अनुभव, प्रतीति की है, वैभाविकशक्ति विशेष है तो उसका थोड़ा शुद्ध परिणमन भी है और थोड़ा अशुद्ध भी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा अस्थिरता में अशुद्ध है। परन्तु उस अशुद्धता में अस्थिर है। एक शक्ति के एक पर्याय में दो भाग। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

अपने में वैभाविकशक्ति अनादि-अनन्त है। आत्मा में, हों! अनादि-अनन्त है। सिद्ध में भी वैभाविकशक्ति है। परन्तु वैभाविकशक्ति का ऐसा अर्थ नहीं है कि विकार करे, वह वैभाविकशक्ति। चार द्रव्यों में नहीं है, इसलिए उसे वैभाविकशक्ति कहा है। वह वैभाविकशक्ति सिद्ध में पूर्ण निर्मल हुई; अज्ञान में वैभाविकशक्ति पूर्ण विपरीतरूप विकार करती है। और सक्यग्दर्शन में अपनी चीज़ शुद्ध चैतन्य है, ऐसा भान धर्मी को हुआ, उसकी वैभाविकशक्ति में जितना श्रद्धा-ज्ञान हुआ, उतनी निर्मल है और जितनी अस्थिरता है उतनी मलिन है। परन्तु उस मलिनता का कर्ता ज्ञानी नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि जो निर्मल पर्याय हुई, उसका भी कर्ता और मलिन का भी कर्ता है, ऐसा नहीं है। तथा मलिन परिणाम का भी कर्ता और उस समय में उतने प्रमाण में कर्म का बन्धन होता है, उस पर्याय का भी कर्ता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! भिन्न तत्व है तो भिन्न तत्व की पर्याय भिन्न में भिन्न से होती है। समझ में आया ? यह तो कहा था न ?

पंचास्तिकाय की ६२ गाथा। उस समय वहाँ कहा था। (संवत्) २०१३ के वर्ष में। वर्णीजी के पास सङ्गमेदशिखर में सब बैठे थे। फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे। रामजीभाई ने, हमारे पण्डित हिम्मतभाई हैं। सब पण्डितों में ये उत्कृष्ट हैं, हों! बोलते नहीं, इसलिए ऐसा नहीं समझना कि हम ... बहुत शक्ति है, बहुत शक्ति है। पूरा समयसार, प्रवचनसार (टीका) बनायी है। यहाँ तो कहते हैं कि राग का भी कर्ता हो और शास्त्र के अनुवाद की क्रिया का भी कर्ता हो, ऐसे दो नहीं होता।

मुमुक्षु : अभी तो आपने कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ञ्चया कहा? वह तो निर्मा का कथन है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : हिम्मतभाई को कहते थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरों से विशेष है, ऐसा कहा। समझ में आया? भाषण नहीं करते। किसी समय थोड़ा बोलते हैं। बाकी इनकी शक्ति बहुत है। आहाहा!

मुमुक्षु : बोलने की क्रिया तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलने की क्रिया नहीं करते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! भिन्न र्तव है न? तो भिन्न र्तव के परिणाम भिन्न र्तव से हों, ऐसा नहीं होता। स्वयं से होते हैं तो कर्ता कहने में आता है। यह लकड़ी लो। यह लकड़ी ऐसे चलती है। अँगुली के परिणाम से यह परिणाम ऐसे-ऐसे होते हैं, ऐसा भी नहीं है। वह निर्मा हो, परन्तु उससे हुआ, ऐसा नहीं है। तो उसे निर्मा नहीं कहा जाता। ऐसा हुआ, वह अँगुली से हुआ, ऐसा नहीं है। और इच्छा हुई कि मैं लकड़ी को चलाऊँ तो उस इच्छा का भी कर्ता हो और उसकी पर्याय का भी कर्ता हो, ऐसे दो हैं नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : निर्मा-नैमित्तिक सङ्गबन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ ञ्चया हुआ? निर्मा है परन्तु निर्मा कर्ता नहीं है, ऐसा है।

मुमुक्षु : निर्मा था तो कार्य हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मा है तो निर्मा में कार्य हुआ। 'उपादान बल जहाँ-तहाँ नहीं

निर्मा को दाव।' है ? बनारसीदास के सात श्लोक हैं न ? 'उपादान बल जहाँ-तहाँ...' जहाँ-तहाँ अपनी पर्याय का कर्ता आत्मा है, जड़ की पर्याय का कर्ता जड़ है। 'नहीं निर्मा का दाव' निर्मा के दाव का पेच कभी नहीं आता कि यह निर्मा आया, इसलिए ऐसा हुआ, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया ? बनारसीदास में सात श्लोक पीछे हैं। भाई भैया भगवतीदास के उपादान-निर्मा के ४७ श्लोक हैं और बनारसीदास के सात श्लोक हैं। अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में छपाये हैं।

यहाँ कहते हैं, जैसे आत्मा **अपने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम को व्याप्य-व्यापकरूप करे...** निश्चय से तो पर्याय व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। परन्तु यहाँ जरा आत्मा व्यापक है और विकारी पर्याय व्याप्य है, ऐसा कहा। समझ में आया ? द्रव्य और गुण शुद्ध है, वह व्यापक होकर पसरे और विकार हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? परन्तु यहाँ व्याप्य-व्यापक कहना है, तो यह द्रव्य जो है वह व्यापक, पर्याय में पर्याय उस ओर के लक्ष्यवाली है तो पसरती है और विकार वह व्याप्य है। तो व्याप्य-व्यापक उसकी द्रव्य-पर्याय में है। पर की पर्याय के साथ व्यापय-व्यापक है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! दूसरे को कौन समझा सके ?

मुमुक्षु : ज्ञानी पुरुष।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो समाधिशतक में कहा न ? प्रभु! आहाहा! मुनिराज पूज्यपादस्वामी समाधिशतक में कहते हैं कि समझाने का जो विकल्प उठता है, वह हमारा पागलपन है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो चारित्र का पागलपन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारित्र का पागलपन कहा न, दर्शन का पागलपन नहीं। दर्शन का पागलपन तो विकल्प को अपना माने तो दर्शन का पागलपन, मिथ्यात्व का पागलपना है। यह तत्वार्थसूत्र के पहले अध्याय में आता है। तत्वार्थसूत्र के पहले अध्याय में अन्त में आता है। उन्मतवत्, उन्मतवत्। वह उन्मतवत् मिथ्यादर्शन का है। आहाहा! पर का मैं करूँ, पर से मुझे लाभ हो, राग से मुझे लाभ हो, यह मिथ्यात्व का उन्मापना है। और मिथ्यात्व का उन्मापना जाने के बाद भी.. आहाहा! समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी

दिगम्बर सन्त, भावलिंगी, आनन्द में झूलनेवाले ऐसा कहते हैं कि यह विकल्प आता है, उतना हमारी अस्थिरता का उन्मतपना है। क्यों?—कि, क्या विकल्प से लोग समझ सकते हैं? वह तो उनकी पर्याय से समझते हैं। मैं किसे समझाऊँ? जो दिखता है, वह तो जड़ है, वह तो समझता नहीं और अन्दर चैतन्य है, वह तो हमें दिखता नहीं। आहाहा! नन्दकिशोरजी! बात बहुत सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं कि, विकल्प उठता है... आहाहा! इतनी चारित्र का दोष और पागलपना है और उसमें ऐसा हो जाए कि लाखों लोग प्रसन्न होते हैं, उसमें स्वयं भी प्रसन्न हो जाना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। आहाहा! राग का कण भी दूषित है। आहाहा! यह चैतन्यप्रभु राग के काल में राग का ज्ञान करने की स्वतन्त्र स्व-परप्रकाशक स्वभाव की पर्याय उत्पन्न होती है तो ज्ञानी को उस पर्याय का कर्ता उपचार से कहा जाता है। परन्तु राग का कर्ता उपचार से भी नहीं है, वह तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहा? राग को यहाँ तो व्याप्य-व्यापक कहा है। वह तो अज्ञानी की बात हुई। अज्ञानी अपनी पर्याय में राग-द्वेष करता है, इतना यहाँ सिद्ध करना है। वह राग-द्वेष करता है तो कर्मबन्धन की पर्याय होती है, उसके परिणाम का भी कर्ता आत्मा है, ऐसा है नहीं। इतना सिद्ध करना है। निश्चय से जब भगवान आत्मा... ऐसा ख्याल आया कि, अरेरे! अज्ञानभाव से विकार का कर्ता है, तो ऐसा अज्ञान क्यों रखें? आगे कर्ता-कर्म अधिकार में आयेगा, ९२-९३ गाथा में। आहाहा! ध्यान से समझना, प्रभु! राग मेरा कर्तव्य है और मैं कर्ता हूँ, उसे तो अज्ञान कहते हैं। ऐसा अज्ञान जाने, वह कर्ता कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो विकारी परिणाम का कर्ता जीव और शरीर को चलानेवाला कर्ता जीव, विकारी राग का कर्ता जीव, भाषा की पर्याय का कर्ता जीव, राग का कर्ता जीव और कर्मबन्धन की पर्याय का कर्ता जीव—ऐसे दो परिणाम का एक कर्ता नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

उत्तर इस प्रकार है कि द्रव्य के अनन्त शक्तियाँ हैं, पर ऐसी शक्ति तो कोई

नहीं कि जिससे जैसे अपने गुण के साथ व्याप्य-व्यापकरूप है,... अपनी पर्याय के साथ लेना। गुण के साथ तो व्याप्य-व्यापक है ही। अपनी पर्याय के साथ व्याप्य-व्यापक है। **वैसे ही परद्रव्य के गुण के साथ भी व्याप्य-व्यापकरूप होवे।** ऐसी तो कोई शक्ति नहीं है। आहाहा!

कल नेमिनाथ भगवान का दृष्टान्त नहीं दिया था? पूरी सभा एकत्रित हुई थी। कोई कहे पाण्डवों का बल है, कोई कहे भीम का बल है, कोई कहे अर्जुन का बल। कोई कहे - यह तो ठीक परन्तु भगवान नेमिनाथ प्रभु बैठे हैं। तीन ज्ञान के (स्वामी हैं), इनका बहुत बल है। नेमिनाथ भगवान को भी ऐसा विकल्प आया कि मैं नीचे पैर रखता हूँ। श्रीकृष्ण आओ, मेरे पैर को हिलाओ। वह शक्ति कहीं आत्मा की नहीं है। परमाणु की शक्ति है। समझ में आया? आत्मा की शक्ति शरीर में प्रवेश करती है, ऐसा नहीं है। आत्मा की परिणति की शक्ति अपनी पर्याय में रहती है। आत्मा में बहुत शक्ति है तो जड़ में वह शक्ति आ जाती है? आहाहा! समझ में आया? ओहोहो!

मोक्षमार्गप्रकाशक में एक दृष्टान्त दिया है न? थोड़ा सूक्ष्म है। इन्द्रिय कठिन हो जाती है, विषय के काल में इन्द्रिय कठिन होती है, तो वह पर्याय आत्मा ने की और राग भी आत्मा ने किया, ऐसी बात नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। शुरुआत के अधिकार में। आहाहा! वह जड़ की पर्याय है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। समझ में आया? जड़ की पर्याय भी आत्मा करे और आत्मा राग भी करे, ऐसी दो बातें तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! ज्ञानचन्दजी! उसमें लिखा है, मोक्षमार्गप्रकाशक में। दर्शनमोहनीय का अधिकार है न?

मुमुक्षु : क्रोध करे तो लाल हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय कठिन हो जाता है, ऐसा लिया है। क्रोध करे तो लाल हो, शरीर की पर्याय लाल होती है तो क्रोध किया, इसलिए लाल हुई—ऐसा नहीं है। क्रोध के परिणाम जीव की पर्याय में है, लाल होना, वह जड़ की पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, बापू!

मुमुक्षु : यह सब समझने से क्या फायदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : फायदा यह है कि मैं पर से भिन्न हूँ तो दृष्टि द्रव्य के ऊपर करना—यह फायदा है। मैं पर्याय का कर्ता हूँ, पर का कर्ता नहीं तो पर से लक्ष्य हटाकर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य करना। भाई! सेठ! डालचन्दजी! यह सर्राफ सेठ है और यह भी हमारा सेठ है। समझ में आया? आहाहा!

क्या कहा? जड़ के परिणाम भी आत्मा करे और आत्मा राग के भी (परिणाम) करे, (ऐसा तीन काल में नहीं है)। आहाहा! गजब बात है। एक समय में साथ में है, दोनों साथ में है। आहाहा! क्रोध हुआ, उसी समय शरीर लाल हो जाता है। साथ में है तो उस क्रोध ने शरीर को लाल किया या नहीं? बिल्कुल नहीं। आहाहा! एक द्रव्य दो परिणाम का कर्ता हो, ऐसा नहीं होता। जैसे कि खाने का विकल्प उठा, उसका भी कर्ता है और रोटी, दाल-भात, सब्जी खाने की क्रिया का भी कर्ता है, ऐसा है नहीं। यह खाने के परिणाम जड़ की पर्याय है। लड्डू आवे, रोटी आवे, चूरा हो, वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय आत्मा कर सके, ऐसा तीन काल में नहीं है। रोटी का टुकड़ा करे और पतला करके गले में उतारे, वह आत्मा की क्रिया है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ... बिना रोटी...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे रोटी के टुकड़े उसके कारण से होते हैं। आत्मा के कारण से नहीं। नन्दकिशोरजी! यह वकालात अलग प्रकार की है। मार्ग, बापू! यह तो तत्त्व की भिन्नता, प्रत्येक द्रव्य की भिन्नता अपने परिणाम में है। वह परिणाम अपने में होता है तो दूसरे में भी परिणाम होता है, ऐसा नहीं। अपने गुण के आधार से है।

'हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न' निश्चय से एक परिणाम के दो कर्ता नहीं हैं। है? आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम का जिस प्रकार व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य कर्ता है,...** अभी तो इसकी पर्याय सिद्ध करनी है न? समझ में आया? जब द्रव्यस्वभाव की सिद्धि करनी हो तो द्रव्य शुद्ध चैतन्यघन में है और पुण्य-पाप के परिणाम पुद्गल हैं, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! क्योंकि उस निर्मा के आधीन होते हैं तो पुद्गल कहकर छोड़ दिया। यहाँ तो परिणाम अपने में अपने से होते हैं, इतना सिद्ध करना है। पर्यायदृष्टि से। समझ में आया? आहाहा!

वह व्यवहार है। अशुद्ध परिणाम का जीव कर्ता है, वह भी व्यवहार है। उसे अशुद्ध निश्चयनय कहो, तो अशुद्ध निश्चय, वह वास्तव में व्यवहार में जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं कि **राग-द्वेष-मोह परिणाम का जिस प्रकार व्याप्य-व्यापकरूप जीवद्रव्य कर्ता है,...** जीव व्यापक है और विकारी पर्याय व्याप्य। **उसी प्रकार पुद्गलद्रव्य भी अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम का कर्ता है, ऐसा तो नहीं।** क्या कहते हैं? कि अपने में जो राग-द्वेष हुए, उनका भी कर्ता होता है और पुद्गलद्रव्य भी कर्ता होता है, जड़कर्म का उदय आया, उसने अशुद्ध राग-द्वेष कराये, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह तो बड़ी गड़बड़ है। है? **उसी प्रकार पुद्गलद्रव्य भी अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणाम का कर्ता है, ऐसा तो नहीं।** आहाहा! अभी तो यह बड़ी चर्चा चलती है। नहीं, कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है, परद्रव्य से पर्याय में विकार होता है। परद्रव्य को तो स्पर्श भी नहीं करता। यह स्तुति में आता है 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' स्तुति में आता है। कर्म तो जड़ है, वे तो अजीव हैं। उनकी पर्याय उनमें होती है। वह पर्याय आत्मा में विकार करावे, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! दूसरे में ईश्वरकर्ता मानते हैं। उसके बिना एक पत्ता नहीं हिलता, ऐसा वे लोग कहते हैं। ईश्वर के बिना एक पत्ता नहीं हिलता। यह प्रत्यक्ष सुना है।

मुमुक्षु : वह तो सर्व शक्तिमान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वशक्ति परशक्ति में क्या करे? सर्वशक्ति उसमें रही। ईश्वर पर का कर्ता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र विपरीतता की है। हमने तो प्रत्यक्ष सुना है। हम छोटी उम्र में हम एक मन्दिर में गये थे। २२-२३ वर्ष की उम्र थी। अभी दीक्षा नहीं ली थी। शरीर तो बहुत सुन्दर था। अभी तो ८८ हुए। उस समय... हमें देखकर एक साधु बोले कि ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। साधु कपड़े धोते थे। 'गढडा' गाँव में प्रसिद्ध थे न? हमारे

पिताजी के पिताजी प्रसिद्ध थे। गाँव में पहला (पञ्चका) मकान पिताजी का था। गृहस्थ थे। उस समय गृहस्थ अभी तो दस-दस हजार की आमदनी एक दिन में करे। उस समय दस हजार की पूँजी थी, परन्तु गृहस्थ थे। राजकुमार जैसा शरीर था। कुछ धन्धा नहीं करते थे। दो महीने रुई की पेटी लेने लोगों को 'धोलेरा' व्यक्ति भेजते। दो महीने में दो हजार पैदा करे। बस। फिर दस महीने तुह्मारी तरह यह मजदूरी करे नहीं। सेठ! डालचन्दजी! यह तो बारह महीने...

हमारे पिताजी की माता कहती थी। पिताजी की माता छोटी उम्र में होवे न, अपने घर में दो महीने धन्धा चलता। दो महीने में दो हजार की आमदनी थी। बस। और बड़ा ऊँचा घर। इसलिए पैसे अपने बारह महीने में तीन सौ रुपये का खर्च। यहाँ तो तुह्मारे महीने में तीन सौ सद्भजी के होते हैं। उस समय खर्च बहुत थोड़ा था। पैसे थोड़े परन्तु बहुत सन्तोष। बहुत उपाधि नहीं। दो महीना धन्धा करे, फिर दस महीने नहीं। सगे-सह्मबन्धियों में जाए, सगे-सह्मबन्धी यहाँ आवे। दस महीने धन्धा नहीं करे। ऐसा कहते थे। यहाँ तो तुह्मारे सवेरे से शाम बारह महीने चलता है। करोड़ोंपति हो, यह हमारे देखो न सेठिया। यह करोड़पति है, यह करोड़पति सेठ है। पूरे दिन बीड़ियों में रहा करते हैं। यह तो और निवृत्ति लेकर यहाँ आते हैं, हों! भगवानदास .... आहाहा!

अरे! करनेयोग्य तो यह है, भगवान! ऐसा मनुष्यपना मिला। उसमें मैं देह से भिन्न, राग के, पुण्य के परिणाम से मैं भिन्न, मैं राग को जाननेवाला—यह भी उपचार से है... आहाहा! तो राग का कर्ता कहाँ से हुआ? भाई? इस प्रकार आत्मा अपनी पर्याय में अपने को भूलकर राग-द्वेष-मिथ्यात्व के परिणाम करो, परन्तु उस समय में कर्मबन्धन होता है, वह पर्याय भी आत्मा करे, ऐसे एक द्रव्य दो द्रव्य के परिणाम करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! है? **राग-द्वेष-मोह परिणाम का कर्ता है, पुद्गलद्रव्य कर्ता नहीं है।** फिर से।

पहले तो ऐसा कहा कि पुद्गलद्रव्य जीव के राग-द्वेष करे और जीव राग-द्वेष करे, ऐसा है नहीं। जीवद्रव्य अपने राग-द्वेष-मोहपरिणाम का कर्ता और पुद्गलद्रव्य का कर्ता, ऐसा नहीं है। पुद्गलद्रव्य का कर्ता नहीं है। अपने राग-द्वेष करे परन्तु पुद्गलद्रव्य का बन्धन होता है, उसका कर्ता नहीं है। पहले ऐसा लिया कि अपने में राग-द्वेष-मोह है, वह

पुद्गलद्रव्य कराता है और स्वयं भी करता है, ऐसा नहीं है। अब उस पुद्गल की पर्याय है, वह राग-द्वेष करनेवाला राग-द्वेष करे और पुद्गल की पर्याय भी करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! यह साधारण बात नहीं है। जैनदर्शन के बिना ऐसी चीज़, अन्यत्र कहीं नहीं है, कहीं नहीं है।

आत्मा की बातें तो बहुत करते हैं उपनिषद् और वेदान्त... वह सब बात काल्पनिक है। यह तो वस्तु की स्थिति सर्वज्ञ ने देखी। जैसी सर्वज्ञ ने देखी, वैसी कही, वैसी वस्तु की स्थिति है। आहाहा! परन्तु यह तो भाग्य हो, उसे तो कान में पड़े, ऐसी चीज़ है। आहाहा! और पुरुषार्थ करे, उसे यह बात ज्ञान में आती है, ऐसी बात है। दो बातें हुई। जीव के परिणाम जीव भी करे और पुद्गल भी करे, ऐसा भी नहीं है। और जीव के परिणाम जीव करे और पुद्गल के परिणाम भी करे, (ऐसा भी नहीं है)। पहले में झ्या आया? जीव के राग-द्वेष परिणाम जीव भी करे और पुद्गल भी राग-द्वेष को करे, ऐसा नहीं है। अब यहाँ जीव राग-द्वेष भी को करे और पुद्गल की पर्याय भी करे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! समझने की तो यह चीज है। बाकी तो चाहे जिस प्रकार से ज्ञान करे... आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार जीवद्रव्य राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतना परिणाम का व्याप्य-व्यापकरूप कर्ता है, उस प्रकार ज्ञानावरणादि अचेतन कर्म का कर्ता जीव है, ऐसा तो नहीं है। आया? **अपने परिणाम का कर्ता है, अचेतन परिणामरूप कर्म का कर्ता नहीं है।** जीव अपने विकारी परिणाम का कर्ता है। परन्तु अचेतन परिणामरूप कर्म का कर्ता नहीं है। वह अचेतन कर्मपर्याय होती है, वह परमाणु की पर्याय परमाणु में होती है। उस समय परमाणु विसस्रावर्गणा कर्म बहुत पड़े हैं तो उस समय में वह कर्मरूपी पर्याय होने की योग्यता है तो वह कर्मरूप परिणमते हैं, राग के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह एक बात हुई।

दूसरी। **'च एकस्य द्वे क्रिये न'** कर्ता का निषेध किया, अब दो की एक क्रिया नहीं, (ऐसा कहते हैं)। पलटना-बदलना। आत्मा अपने को बदलावे और कर्म की पर्याय को बदला सके (अर्थात्) कर्मरूप नहीं, उसे कर्मरूप बनावे—ऐसा है नहीं। आहाहा! **'च एकस्य द्वे क्रिये न' एक द्रव्य की दो क्रिया नहीं होतीं। भावार्थ इस प्रकार है कि**

जीवद्रव्य जिस प्रकार चेतन परिणतिरूप परिणमता है... क्रिया की बात है, हों! **चेतन परिणतिरूप परिणमता है, वैसे ही अचेतन परिणतिरूप परिणमता हो, ऐसा तो नहीं है।** आहाहा! रागरूप परिणमे, ऐसी भाषा की पर्यायरूप भी परिणमे, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है, भाई!

एक बार इन्दौर में यह चर्चा चली थी। पचास पण्डित इकट्ठे हुए थे, तब ऐसी बात चली थी कि परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर नहीं है। इन्दौर में चली थी। बात बाहर आयी थी। भाई को खबर नहीं, पण्डितजी! खबर नहीं होगी। बहुत वर्ष पहले चली थी। पचास पण्डित इकट्ठे हुए थे, तब उसमें ऐसी बात निकली थी। यहाँ का विरोध करने के लिये। यहाँ कहते हैं परद्रव्य का कर्ता आत्मा नहीं है। तब वे कहते हैं कि परद्रव्य को न करे, वह दिगम्बर नहीं है। अरर! तुझे श्वया करना है? प्रभु! यहाँ तो वहाँ तक है कि पर के परिणाम तो करे नहीं परन्तु अपने राग के परिणाम करे, वह अज्ञानभाव से करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत बड़ा अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा अन्तर, परन्तु श्वया हो? लोगों को ऐसा कि हम दूसरों का कर देते हैं, दूसरे को समझा देते हैं। देखो! यह पहले नहीं समझते थे परन्तु हमारी भाषा से समझ में आया। यह मिथ्या अभिप्राय है। आहाहा!

जिस कारण से एक द्रव्य दो द्रव्यरूप कैसे होवे? एक द्रव्य हुए बिना दो द्रव्य की क्रिया कैसे करे? **भावार्थ इस प्रकार है कि जीवद्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप है सो जो पहले वह अनेक द्रव्यरूप होवे...** आत्मा चेतन है, वह यदि पुद्गलद्रव्यरूप हो **तो ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता भी होवे,...** आहाहा! भगवान चेतनस्वरूप है और उसकी विकारी पर्याय भी चेतन की है। वह चेतनस्वरूप पलटकर कर्म की पर्याय में जाए, यदि जड़ होवे तो पर का कर्ता हो। चेतन परिणति कभी जड़ तो होती नहीं। आहाहा! आचार्यों ने जंगल में रहकर दिगम्बर मुनियों ने वीतरागी भाव प्रसिद्ध किये हैं। ऐसी बात कहीं नहीं है। समझ में आया? वस्तुस्थिति ऐसी है।

जीवद्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप है, सो जो पहले वह अनेक द्रव्यरूप होवे तो

ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता भी होवे, अपने राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतन परिणाम का भी कर्ता होवे; सो ऐसा तो है नहीं। अनादिनिधन जीवद्रव्य एकरूप ही है,... आहाहा! अनादि-अनन्त जीव भगवान आत्मा तो अपने में एकरूप है। जड़रूप कभी नहीं होता। जड़रूप हुए बिना जड़ की पर्याय कैसे करे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इसलिए अपने अशुद्ध चेतन परिणाम का कर्ता है, अचेतनकर्म का कर्ता नहीं है। ऐसा वस्तु-स्वरूप है।**

कलश-५५

(शार्दूलविक्रीडित)

आ संसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः।।१०-५५।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'ननु मोहिनां अहं कुर्वे इति तमः आसंसारत एव धावति' [ननु] अहो जीव! [मोहिनां] मिथ्यादृष्टि जीवों के [अहं कुर्वे इति तमः] ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप अन्धकार [आसंसारतः एव धावति] अनादि काल से एक सन्तानरूप चला आ रहा है। कैसा है मिथ्यात्वरूपी तम? 'परं' पर द्रव्यस्वरूप है। और कैसा है? 'उच्चकैः दुर्वारं' अति ढीठ है। और कैसा है? 'महाहंकाररूप' [महाहंकार] मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच, मैं नारक - ऐसी जो कर्म की पर्याय, उसमें आत्मबुद्धि [रूपं] वही है स्वरूप जिसका, ऐसा है। 'यदि तद् भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं व्रजेत्' [यदि] जो कभी [तत्] ऐसा है जो मिथ्यात्व अन्धकार [भूतार्थपरिग्रहेण] शुद्धस्वरूप अनुभव के द्वारा [एकवारं] अन्तर्मुहूर्त मात्र [विलयं व्रजेत्] विनाश को प्राप्त हो जाये। भावार्थ इस प्रकार है कि जीव के यद्यपि मिथ्यात्व अन्धकार अनन्त काल से चला आ रहा है। तथा जो सम्यक्त्व हो तो मिथ्यात्व छूटे, जो एकबार छूटे तो 'अहो तत् आत्मनः भूयः बन्धनं किं भवेत्' [अहो] भो जीव! [तत्] उस कारण से [आत्मनः] जीव

के [भूयः] पुनः [बन्धनं किं भवेत्] एकत्वबुद्धि क्या होगी? अपितु नहीं होगी। कैसा है आत्मा? 'ज्ञानघनस्य' ज्ञान का समूह है। भावार्थ – शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर संसार में रुलना नहीं होता।।१०–५५।।

कलश - ५५ पर प्रवचन

अब ५५वाँ (कलश)।

आ संसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै–
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः।।१०–५५।।

आहाहा! **'ननु मोहिनां अहं कुर्वे इति तमः आसंसारत एव धावति' अहो जीव! मिथ्यादृष्टि जीवों के 'अहं कुर्वे इति तमः' ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता जीव ऐसा है जो मिथ्यात्वरूप अन्धकार अनादि काल से एक सन्तानरूप चला आ रहा है।** आहाहा! मैं कर्म को बाँधता है, मैं कर्म को छोड़ता हूँ, मैं कर्म का नाश करता हूँ, ऐसी बुद्धि मिथ्यादृष्टि को अनादि से चली आ रही है। आहाहा! **'आसंसार'** है न? **'आ'** अर्थात् अनादि का संसार। आहाहा! निगोद के जीव में भी वह परिणाम है। समझ में आया? लहसन, प्याज के एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर हैं, और एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव में अनन्त शक्तियाँ हैं। वह राग को करे, पुण्य-पाप को करे और पर का करे, ऐसी बुद्धि अनादि से चली आ रही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कैसा है मिथ्यात्वरूपी तम? परद्रव्यस्वरूप है। आहाहा! यह परद्रव्य के परिणाम मैं करूँ, वह परिणाम ही परद्रव्यस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। ञ्चया कहा? देखो! पहले कहा कि अशुद्ध परिणति इसकी है। अब यहाँ कहते हैं कि आत्मा परद्रव्य के कर्म की बन्धपर्याय को करे, ऐसा मिथ्यात्वभाव है, वह परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? है न? **और कैसा है? 'उच्चकैः दुर्वारं' अति ढीठ है।** आहाहा! अनादि से परद्रव्य के परिणाम मैं करूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव महा ढीठ है। आहाहा! सत्य को

स्वीकारता नहीं और विपरीत दृष्टि में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ढीठ है ढीठ, नहीं कहते ? ढीठ है ढीठ। आहाहा!

'महाहंकाररूप' आहाहा! महाअहंकार अनादि से। मैं देव हूँ। अरे! प्रभु! यह तो मिथ्या अहंकार है। आहाहा! मैं देव हूँ। तू तो भगवान ज्ञानस्वरूप आनन्द है न! देव हूँ, ऐसा अहंकार कहाँ से आया ? प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता में तूने लांछन कैसे लगाया ? आहाहा! समझ में आया ? **मैं देव, मैं मनुष्य,...** हूँ, मैं सेठ हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं निर्धन हूँ। अरे! ऐसा मिथ्यात्व का अहंकार तुझे कहाँ से आया ? है ? **मैं तिर्यंच,...** हूँ। पशु हूँ। अरे! प्रभु! पशु तो जड़ है शरीर है। आत्मा पशु है ? यह अहंकार। पशु होवे तो शरीर पर दृष्टि है। यह खाना, यह पीना, यह शरीर है। अन्दर भगवान चैतन्य विराजता है, उसकी तो खबर नहीं। मैं मनुष्य हूँ। मनुष्य स्वरूपेण मृगा चरन्ती। मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ... आहाहा! वह मनुष्यरूप में मृग जैसा मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। चैतन्य भगवान अन्दर आनन्दस्वरूप है, उस ओर का भरोसा नहीं और इस भरोसे पर चला गया। मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ। आहाहा! मैं नारकी हूँ।

ऐसी जो कर्म की पर्याय उसमें आत्मबुद्धि, वही है स्वरूप जिसका... आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा जो शुद्ध चैतन्य अरूपी सूक्ष्म है, उसकी तो दृष्टि की खबर नहीं, तो ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञात होता है, वह चीज़ मैं हूँ। यह शरीर मैं हूँ। जवान हूँ, वृद्ध हूँ, बालक हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, नपुंसक हूँ, यह सब मिथ्या अहंकार है। आहाहा! समझ में आया ? वह तो भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द है। कभी पररूप हुआ नहीं। समझ में आया ?

आत्मबुद्धि वही है स्वरूप जिसका ऐसा है। 'यदि तद् भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं व्रजेत्'... आहाहा! अनादि से मैं एकेन्द्रिय हूँ, द्वीन्द्रिय हूँ, त्रीन्द्रिय हूँ, चौइन्द्रिय हूँ, पंचेन्द्रिय हूँ, पण्डित हूँ, मूर्ख हूँ। यह सब पर्याय का अभिमान है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : मूर्ख मानने में तो अभिमान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा मूर्ख है ही नहीं। पर्याय में मूर्ख माने, वह मूढ़ है—ऐसा

कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह तो चैतन्यस्वरूप, परमेश्वरस्वरूप, भगवानस्वरूप है। आहाहा! अरे..! उसे मूर्ख कहना, वह महामिथ्यात्व का कलंक है, कहते हैं। आहाहा! मैं तो मूढ़ हूँ, मैं अज्ञानी हूँ। अरे! प्रभु! तू ञ्चया करता है? आहाहा! तुझे तेरी चीज़ की खबर नहीं है, प्रभु! आहाहा! तू तो सच्चिदानन्द प्रभु है न! सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पूर अन्दर पड़ा है न! आहाहा! ज्ञान के नूर के तेज का पूर, अमृत सागर स्वभाव से भरपूर प्रभु है। आहाहा! ऐसी चीज़ को लक्ष्य में से छोड़कर मैं देव, मैं मनुष्य, वह तो कर्म की पर्याय है; वह जीव की (पर्याय) नहीं है। उस कर्म की पर्याय में (अहंकार करता है)। हम बनिया हैं, हम दरबार हैं, हम हरिजन हैं, हम वैश्य हैं, हम शूद्र हैं... आहाहा! ऐसी मान्यता मिथ्यात्व अन्धकार है। समझ में आया?

निश्चय में क्षत्रिय उसे कहते हैं कि अपने स्वभाव में क्षत्रियपना है। आहाहा! पर को जीतकर अपनी दृष्टि अपने स्वरूप में रहे, वह क्षत्रिय है। वैश्य उसे कहते हैं कि जो अपने ज्ञायकस्वभाव की रीति का व्यापार करे, वह वैश्य है। समझ में आया? यह पंच संग्रह में है। पंचसंग्रह है न? दीपचन्दजी कृत पंचसंग्रह है। नहीं देखा? पण्डितजी! पंचसंग्रह। बहुत सरस है। वह पंचसंग्रह है, पाँच। यहाँ तो बहुत वर्ष से है, इसमें पाँच है। अध्यात्म पंच संग्रह नाम है। परमात्मपुराण की व्याख्या है, ज्ञानदर्पण है, स्वरूपानन्द है, उपदेश सिद्धान्त रत्न है, सवैया टीका है—पाँच है। पूरी पुस्तक बहुत अध्यात्म से भरपूर है, शख्ब्द, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तू अनादि से अपना ज्ञायकस्वभाव चैतन्य आनन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के भण्डार स्वरूप, ओहोहो! और वह भी पूर्णानन्द इदम्, पूर्ण ज्ञानम्, पूर्ण आनन्द, पूर्ण श्रद्धा। त्रिकाली की बात है, हों! पूर्ण ईश्वरता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण वीर्यता... आहाहा! ऐसी शक्ति को अपनी न मानकर, उस पर्याय में कर्म की पर्याय जो मिली, उसे अपनी मानता है, यह बड़ा मिथ्यात्व अन्धकार है। आहाहा! ज्ञान का किंचित् क्षयोपशम हो, उसका भी अहंकार है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! अभी परलक्ष्यी क्षयोपशम है, आत्मा का क्षयोपशम होवे तो अभिमान गल जाता है। समझ में आया?

यह आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक के पहले अध्याय में आता है। पाण्डे.. पाण्डे..

पाण्डे... छिलके कूटे हैं। हे पण्डित! हे पण्डित! हे पण्डित! तू तुष.. तुष। मूल चीज़ की दृष्टि की नहीं, तूने छिलके कूटे हैं। छिलके कूटने से उसमें फिर चावल निकलेंगे...! यह दृष्टान्त मोक्षमार्गप्रकाशक में है। उसमें लिया है। एक गृहस्थ-करोड़पति महिला थी। खांडिया-खांडिया होता है न? ञ्चया कहते हैं? ओखल में चावल खांडती थी। चावल नीचे रह जाए और उसके छिलके ऊपर रहें। एक गरीब महिला आयी। उसने देखा, ओहो! यह छिलके कूटती है। वे छिलके नहीं, अन्दर चावल है। छिलका ऊपर रहता है और चावल नीचे चले जाते हैं। यह देखकर अपने पति को कहती है कि तुम भी छिलके लाओ। वे लाखोंपति है, छिलके कूटते हैं तो हम भी छिलके कूटें।

इसी प्रकार अज्ञानी; ज्ञानी अपने स्वरूप में, अनुभव में है, तथापि कोई महाव्रतादि का विकल्प आता है, वह छिलका है, तो वह छिलका कूटते देखकर हम भी ऐसा करें। परन्तु छिलके के पीछे अन्दर आनन्द का नाथ उसके अनुभव में है, उसकी तो उसे खबर नहीं। ज्ञानी भी व्रत पालते हैं, ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं तो हम भी ऐसा करें। आहाहा! अन्दर वह चावल... चोखा कहते हैं न? चावल नीचे रह जाते हैं। पृथक् पड़ जाते हैं फिर नीचे रह जाते हैं। ओखल में ऊपर छिलके रहते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा **'भूतार्थपरिग्रहेण'** ऐसा कहते हैं। आहाहा! ञ्चया कहा?

जो मिथ्यात्व अन्धकार शुद्धस्वरूप अनुभव के द्वारा... 'भूतार्थपरिग्रहेण' भाषा देखो! ११वीं गाथा की। ११ गाथा में है न? **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** एक समय में भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु त्रिकाल ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? **'भूतार्थपरिग्रहेण'** आहाहा! **शुद्धस्वरूप अनुभव के द्वारा...** शब्द संक्षिप्त ले लिये। **'भूतार्थपरिग्रहेण'** सत्य त्रिकाल उसका परिग्रहेण अर्थात् अनुभव किया। त्रिकाल चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन है, वह भूतार्थ है। उसका **'परिग्रहेण'** अनुभव किया। आहाहा! परि-समस्त प्रकार से पकड़ लिया तो अनुभव किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्तर्मुहूर्त मात्र... आहाहा! एक बार **अन्तर्मुहूर्त मात्र विनाश को प्राप्त हो जाये।** समाप्त हो जाए। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, उसे भूतार्थ **'भूतार्थपरिग्रहेण'** सत्यार्थ को पकड़कर अनुभव करे तो मिथ्यात्व का एक क्षण में नाश होता है। विशेष बात करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक १८-०८-१९७७
कलश-५५, प्रवचन-७०

कलश टीका, (समयसार) कर्ताकर्म अधिकार। ५५ है न? यहाँ आया। **'यदि तद् भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं ब्रजेत्'** क्या कहते हैं? कि अनादि संसार पंच परिवर्तन में अनन्त काल निकाला। पंच परिवर्तन संसार—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। अनन्त द्रव्य में अनन्त बार परिवर्तन किया। अनन्त क्षेत्र में अनन्त बार परिवर्तन किया, काल के समय-समय में असंख्य चौबीसी में प्रत्येक में अनन्त बार परिवर्तन किया और भव में भी अनन्त परिवर्तन किया तथा भाव—शुभाशुभभाव में भी अनन्त बार परिवर्तन किया। भाव भी पुद्गल परावर्तन अनन्त बार हुए। शुभ और अशुभ दोनों। वह सन्तानरूप अनादि से चले आते हैं। यह शुभभाव अनन्त बार किये, यह कोई धर्म नहीं है और यह धर्म का कारण भी नहीं है।

धर्म का कारण कहाँ से शुरु होता है? ऐसा कहते हैं। **'भूतार्थपरिग्रहेण'** है? यह महासिद्धान्त है। यह ११वीं गाथा में कहा न? **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** एक समय में सत्यार्थ-भूतार्थ... यह सेठ का याद आया। कारणपरमात्मा। एक समय में जो ध्रुव है, जिसे कारणपरमात्मा कहते हैं, ध्रुव को कारणजीव कहते हैं, ध्रुव को भूतार्थ कहते हैं, ध्रुव को सत्यार्थ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उत्पाद-व्यय की एक समय की जो पर्याय है,... उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्, ऐसा आया न? उत्पाद-व्यय तो पर्याय है, वह कार्य है। वह वस्तु का कारण नहीं है। आहाहा!

जो ध्रुव चीज़ है, ध्रुव भूतार्थ-सत्यार्थ-सदृश, एकरूप सामान्य अभेद... आहाहा! सर्वस्व चैतन्य का सार जो चीज़ है। एक समय की पर्याय ध्रुव को विषय करती है। पर्याय, पर्याय को विषय करती है, यह बात तो अनादि काल से चलती आयी है। समझ में आया? पर्याय, पर्याय का विषय करे, यह तो अनादि का संसार है। पर्यायमूढा परसमया। पर्याय एक समय में भी अपनी मानकर मूढ़ है। वह तो इसकी अनादि काल की पर्यायदृष्टि है।

यहाँ कहते हैं कि एक बार भी भूतार्थ भगवान सत्यार्थ परमात्मा... आहाहा! जो एक

समय की पर्याय के पीछे ध्रुवस्वरूप जो अनन्त शक्ति का पिण्ड है। दोपहर शक्ति चलती है न? उस अनन्त शक्ति का एकरूप ध्रुव, वह कारणपरमात्मा है। समझ में आया? आहाहा!

यह प्रश्न चला था न? कहा था न? उस वारिया ने प्रश्न किया था। वीरजीभाई है, उनका लड़का त्रिभुवनभाई राजकोट है। उसने प्रश्न किया कि महाराज! तुम कहते हो कि कारणपरमात्मा त्रिकाल है। कारणपरमात्मा ध्रुव कहो, कारणपरमात्मा कहो, भूतार्थ कहो या सत्यार्थ कहो। एक समय में त्रिकाली चीज़ को भूतार्थ, सत्यार्थ, कारणपरमात्मा, कारणजीव, ध्रुव सामान्य अभेद (कहो, सब एकार्थ है)। तो उसने प्रश्न किया कि कारणपरमात्मा होवे तो कार्य आना ही चाहिए। डालचन्दजी! प्रश्न यह था। तुम द्रव्य को कारणपरमात्मा कहते हो तो कार्य आना चाहिए, तो अभी तक कार्य क्यों नहीं आया? तो कारणपरमात्मा है या नहीं?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... भले सम्यग्दर्शन कार्य हो, परन्तु वह कारणपरमात्मा, भाई! भूतार्थ है। यह भूतार्थ शब्द का चलता है। परन्तु उसके स्वीकार बिना उसकी पर्याय में भूतार्थ है यह कहाँ आया? कारणपरमात्मा तो त्रिकाल भूतार्थ है, सत्यार्थ है, अभेद है, सामान्य है, सदृश है। परन्तु पर्याय में स्वीकार बिना उसे कहाँ आया? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू!

जैसे बाहर की चीज़ों के आकर्षण में आकर्षित हो जाता है, (वह) अशुभ की चेष्टा है। वैसे शुभ की चेष्टा में आकर्षण हो जाता है, तो कारणपरमात्मा को भूल जाता है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि वह पर में आकर्षण होना... जैसे लोहचुम्बक में लोहा खिंचता है, वैसे पर में तेरी वृत्ति खिंचती है। अनुकूल शरीर आदि देखकर वृत्ति खिंचती है। प्रतिकूलता देखकर भी दुःखरूप से खींचती है और दया, दान, व्रत, के शुभभाव के परिणाम में भी तेरी वृत्ति खिंचती है, वह संसार में अनन्त बार परिवर्तन किये, प्रभु! यह शुभभाव भी अनन्त बार हुआ है। भाव है न? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। पाँच परिवर्तन अनन्त बार किये। आहाहा!

मुमुक्षु : कौन सी बात बाकी रही गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भूतार्थ परिग्रहण बाकी रह गया। समझ में आया? आहाहा! खोटा रुपया चलाया। सच्चे रुपये पर लक्ष्य नहीं दिया। आहाहा!

जो एक समय में, 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। ऐसे एक समय में ध्रुव भगवान, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरपूर, प्रभु! उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहो, भूतार्थ कहो, सत्यार्थ कहो, उसे **'परिग्रहेण'** आहाहा! शुभाशुभभाव तो **'परिग्रहेण'** (अर्थात्) समस्त प्रकार से ग्रहण कर परिभ्रमण करता है। आहाहा! परन्तु एक बार, ऐसा शब्द आयेगा, हों! है? **'भूतार्थपरिग्रहेण'** शब्द में ऐसा है **'भूतार्थ'** उसका **'परिग्रहेण'**। **'परि'** अर्थात् समस्त प्रकार से **'ग्रहेण'** अर्थात् अनुभव हो। आहाहा! **'परिग्रहेण'** है न? **'भूतार्थपरिग्रहेण'** सत्यार्थ प्रभु एक समय में आनन्दकन्द नाथ! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का दल-पिण्ड। दल के लड्डू होते हैं। तुम्हारे यहाँ ञ्चया कहते हैं, खबर नहीं। हमारे तो काठियावाड में दल के लड्डू बनाते हैं। दल-दल के लड्डू। हमार काठियावाड़ में दल के लड्डू बनाते हैं। ऐसा यह दल-लड्डू है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल-पिण्ड है। आहाहा!

अरे! उस ओर की महिमा कभी आयी नहीं और जो चीज़ पूर्ण और अखण्ड है, उसके विरुद्ध जो बात है, उसमें उसकी महिमा, माहात्म्य आया, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! खिंचाव वहाँ है। लोहचुम्बक खींचती है न? इसी प्रकार बाहर की अनुकूलता शरीर और पैसा, इज्जत, धूल और धाणी खींचते हैं। आहाहा! ... श्मशान की हड्डियों में चमक है, वैसी यह चमक है। आहाहा! इस शुभ-अशुभभाव में खिंच जाता है और भूतार्थ को भूल जाता है। आहाहा! और यह पर्याय में भूलता है। द्रव्य-गुण में कोई भूल जाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? उसी पर्याय में जैसे भूलता है... वह तो कहा न? पहले आ गया।

'दुर्वारं' मिथ्यात्व छोड़ना **'दुर्वारं'** महामुश्किल है। इसका अर्थ अति धीठ कहा। **'दुर्वारं'** ऊपर आया न? पहली लाईन में **'उच्चकैः दुर्वारं'** कल आया था। कहाँ है? हिन्दी में अन्तर है। हमारी हिन्दी में है। दूसरी लाईन। **'दुर्वारं'** अति धीठ अर्थ है। ओहोहो! कहते हैं कि पुण्य और पाप तथा उसके फल का आकर्षण, वह मिथ्यात्व अति धीठ है। महा **'दुर्वारं'** यह श्लोक में चला है न? यह श्लोक कल चला था न? 'मणि' आया? अर्थ

बोलो, अर्थ ञ्चया है ? हाँ यह। अति धीठ लिया न ? **'दुर्वारं'** शब्द्रद है। उसे टालना महा महा अशञ्चय। इसका अर्थ महापुरुषार्थ है। अशञ्चय नहीं परन्तु **'दुर्वारं'** तो है। आहाहा! पुण्य-पाप और उनके फल में अनादि का प्रेम पड़ा है, उसके रस के कारण मिथ्यात्व को छोड़ना **'दुर्वारं'** है। आहाहा! समझ में आया ? तथापि अपनी चीज़ अन्दर है, उसको... आहाहा! है ? आहाहा!

'भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं ब्रजेत्' आहाहा! अन्तर परमात्मस्वरूप को एक बार ग्रहण करने से। भाषा यहाँ ऐसी है। सत्यार्थ भगवान पूर्णानन्दस्वरूप को एक बार ग्रहण करने से। एक बार का अर्थ यहाँ अन्तर्मुहूर्त किया है। त्रिकाल आत्मा भूतार्थ है उसका जो एक क्षण भी अनुभव करे... **'परिग्रहेण'** पूर्णानन्द के नाथ को **'परि'** अर्थात् समस्त प्रकार से ग्रहण करे, पर्याय में उसका आदर करे। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

त्रिकाली स्वरूप को कारणपरमात्मा कहते हैं। त्रिकाली स्वरूप को कारणजीव कहते हैं। द्रव्य को-जीवद्रव्य को। उसे यहाँ भूतार्थ कहा है। और ११वीं गाथा में भी उसे भूतार्थ कहा है। **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** ११वीं गाथा जैनशासन का प्राण है। ११वीं गाथा जैनशासन का प्राण है, धर्म का प्राण है। आहाहा! जैनदर्शन कोई पक्ष नहीं है। वस्तु के स्वभाव का वह प्राण है। आहाहा!

एक बार भी भूतार्थ भगवान आत्मा (लक्ष्य में आवे)... आहाहा! पर के ऊपर की दृष्टि छोड़कर सक्ष्यग्दर्शन की पर्याय और ज्ञान की पर्याय में उसे पकड़ना। ज्ञानस्वभाव को ज्ञान की पर्याय से पकड़ना, अनुभव करना। आहाहा! पुण्य-पाप का अनुभव तो अनन्त बार हुआ और वह दु:ख का अनुभव है। दु:ख के अनुभव के फल में चार गति, वह भी दु:ख है। स्वर्ग गति भी पराधीन दु:ख है। आहाहा! समझ में आया ? पंचास्तिकाय में कहा है कि चारों गतियाँ पराधीन हैं, भाई! आहाहा! वहाँ स्वर्ग में भी राग का वेदन पराधीन दु:ख का वेदन है। एक बार वह वेदन छोड़कर... आहाहा! भगवान जहाँ परिपूर्ण जिसकी सत्ता अन्दर है। उत्पाद-व्यय की सत्ता तो एक समय की है। ध्रुव की सत्ता त्रिकाल है। वह न पड़े और पूर्ण केवलज्ञान को प्राप्त करे, ऐसी चीज़ है। सक्ष्यग्दर्शन प्राप्त करे और गिर जाए, ऐसी निर्बल बात यहाँ नहीं लेते हैं। यह ज्ञान कराने को कहते हैं। समझ में आया ?

प्रवचनसार की ९२वीं गाथा में है। एक बार हमारा आत्मा सक्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, वस्तु की स्थिति (जानी), अब हमें फिर से मिथ्यात्व नहीं होगा। अरे! परन्तु तुम छद्मस्थ साधु हो, पंचम काल के साधु और इतना जोर! सर्वज्ञ के विरह में! हम कहते हैं, सुन न। आहाहा! डालचन्दजी! दिगक्बर सन्तों का पुकार है। यहाँ यह पुकार अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का भी यह (पुकार) है। प्रभु परमात्मस्वरूप का एक बार स्पर्श किया... देखो! यहाँ पुण्य-पाप का स्पर्श तो अनन्त बार किया परन्तु भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, जिसकी पर्याय के आनन्द के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन और करोड़ों अप्सराओं के जो भोग, वह जहर जैसा लगे, वैसा अनुभव है। आहाहा!

अपना आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु भूतार्थ है, सत्यार्थ है, कारणप्रभु है। तो उसे कहा कि कारण है तो कार्य क्यों नहीं आता? कारण है, ऐसा स्वीकार कहाँ किया है? स्वीकार बिना कारण है, ऐसा कहाँ से आया? कारणपरमात्मा भूतार्थ है, तो कारण है तो कार्य क्यों नहीं आया? परन्तु कारण है, ऐसा स्वीकार कहाँ है इसे? आहाहा! परिग्रहण नहीं किया। उसे पकड़ा नहीं। है, ऐसा पर्याय में भान होवे तो, पर्याय में भान होवे तो है। भान न होवे तो है, ऐसा कहाँ आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! यहाँ प्रश्न तो बहुत चले हैं।

एक वारियाजी है। उसने तो समझने के लिये प्रश्न किया था। त्रिभुवनभाई ने। उसके पिताजी वीरजीभाई थे। काठियावाड में दिगक्बर का अक्यास पहला उनको ही था। जामनगर में वीरजी वकील थे। काठियावाड में दिगक्बर शास्त्र का सबसे पहला अक्यास उनको था। वे ९२-९३ वर्ष में गुजर गये। उनके लड़के हैं। सबको यहाँ का प्रेम है। उसने यह प्रश्न किया था कि आप कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा कहते हो। कारण होवे तो कार्य तो होना ही चाहिए। किसे? कारणपरमात्मा है, ऐसा स्वीकार हुआ उसे कार्य होना ही चाहिए।

मुमुक्षु : यह बात जानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानते नहीं।

भगवान अन्दर सत्यार्थ अर्थात् सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! अपने स्वभाव की ध्रुवता से विराजमान परमात्मा अन्दर है। उसका पर्याय में स्वीकार किये बिना वह है—

ऐसा कहाँ से आया ? भाई ! आहाहा ! भाई ! है तो है । परन्तु किसे है ? माने उसे । समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं... आता है । सन्तों के अध्यात्म के महा समुद्र उछले हैं । आहाहा ! इस एक शब्द में तो बहुत गम्भीरता है । यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि अनादि के पुण्य और पाप तथा उनके फल में अहंकार, वह मिथ्यात्वभाव, प्रभु ! तूने अनन्त बार किया । वह झूठा भाव है, असत्य भाव है और तेरी चीज़ से पुण्य-पाप तथा फल को अधिकरूप से स्वीकार करने से तेरी चीज़ की नीचता तुझे ख्याल में आयी । उसकी अधिकता हुई, इसकी नीचता हुई । आहाहा ! एक बार प्रभु तेरी अधिकता का स्वीकार कर और इस नीचता का अनादर कर । समझ में आया ? पोपटभाई ! यह तुम्हारे पैसे भी उसमें आते हैं, हों ! पैसा अन्दर खेंचे । छह लड़के हसमुख और अमुक । ऐसे तो हसमुख आया है । वह अक्षर उत्कीर्ण किये हैं न, वह उसका बड़ा लड़का वहाँ से (मशीन) लेकर आया है । क्या कहलाता है वह ? इटली । वहाँ गया था । वहाँ से यह ले आया । स्वयं, हों ! हमें चाहिए है । हमारे यहाँ धन्धा नहीं करना है । धर्म के अक्षर लिखना है । इस प्रकार मेहनत करके ले आया । २९ हजार की । है न ? यह मशीन है । मशीन से उत्कीर्ण किया है न यह ? साढ़े तीन लाख (अक्षर) मशीन से उत्कीर्ण किये हैं । लिखने में पाँच वर्ष हों । यह तो पाँच महीने में पूरा हो गया । २९ हजार की मशीन आयी, २० हजार का खर्च हुआ और डाई के ४९ हजार हुए । ६० हजार । ६९ हजार, हों ! ७० में एक कम । पैसे पड़े हैं, मशीन है मगनभाई के पास । आहाहा ! वह भी जब होना हो, तब होता है । समझ में आया ? उस ओर का आकर्षण छोड़ दे, आहाहा !

अरे ! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि की ओर का आकर्षण है, वह भी छोड़ दे । प्रभु कहते हैं कि हमारी वाणी सुनने से तुझे विकल्प होगा । क्योंकि हम परद्रव्य हैं । आहाहा ! मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में तो ऐसा कहा । **'परदव्वादो दुग्गई'** प्रभु ! तेरी अपेक्षा से हम परद्रव्य हैं । हमारी ओर के लक्ष्य से तुझे राग होगा । वह चैतन्य की गति नहीं, वह दुर्गति है । अर..र.. ! धर्मी को भी व्यवहार भाव आता है, परन्तु हेयबुद्धि से आता है । भक्ति का, पूजा का भाव तो आता है परन्तु वह हेयबुद्धि से है । उपादेयबुद्धि तो अकेली भूतार्थ की है । आहाहा !

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णमिदं। अन्यमति में पूर्णमिदं ऐसा कहते हैं। परन्तु पूर्णमिदं का अर्थ पूर्ण ध्रुवस्वरूप है, उसे पूर्णमिदं कहते हैं। अन्यमति में पूर्णमिदं करके गीता में कहते हैं। पूर्णइदं अर्थात् यह पूर्ण है। इदं यह पूर्ण है। ऐसा यह ध्रुव पूर्ण है। समझ में आया? आहाहा!

(यहाँ) ऐसी बात तो की है कि पर का अहंकार छोड़ना दुर्वार है, बापू! महापुरुषार्थ है। ऐसे वह हटता नहीं है। परन्तु यदि एक बार भी तेरे भूतार्थ का परिग्रहण किया... आहाहा! फिर मिथ्यात्व नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रभु! तुम छद्मस्थ हो न? पंचम काल के सन्त हो न? तुम भगवान के पास गये थे, भगवान ने कहा कि तुम्हें समकित हुआ है, वह नहीं गिरेगा? हमारे आत्मा ने कहा है। ज्ञानचन्दजी! समझ में आया?

यह प्रवचनसार की ९२ वीं गाथा में ऐसा कहा है। हमें जो आगमकुशलता से हमारा अनुभव हुआ, वह अब नहीं गिरेगा। उस अनुभव की दृष्टि से हम केवलज्ञान लेंगे। आहाहा! बीच में गिर जाएँ और मिथ्यात्व आवे, यह बात हमें लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? आहाहा! अन्दर कितना जोर है! धन्नालालजी! आहाहा! यह सर्राफा बाजार चलता है। ये दोनों सेठिया सर्राफावाले हैं। समझ में आया?

कल रुपये का कहा था न? कि खोटे रुपये को सर्राफ आगे नहीं चलाता। जड़ दो यहाँ। इसी प्रकार मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान सर्राफा बाजार ज्ञानी नहीं चलाता। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है कि कोई परक्रमरा झूठी चलायी हो तो उस झूठी का निषेध करनेवाले आत्मा निकलेंगे ही। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया? आहाहा! मिथ्या बात नहीं चलती। जैनदर्शन, वीतरागमार्ग परमात्मा का... आहाहा! उसमें किसी ने मिथ्या परक्रमरा चलायी हो। ऐसा पुरुष निकले कि वह परक्रमरा नहीं चलावे। ऐसा लिखा है। आहाहा! ऐसा आत्मा निकलता ही है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक बार **'भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं'** भूतार्थ का अर्थ क्या किया? शुद्ध स्वरूप। **'भूतार्थ'** का अर्थ शुद्ध स्वरूप अर्थात् त्रिकाल सत्य ध्रुव, कारणप्रभु, **'परिग्रहेण'** का अर्थ क्या किया? अनुभव द्वारा पूरी ध्रुव चीज़ को पकड़ लिया। आहाहा! ज्ञान की पर्याय ने पूरे ध्रुव को पकड़ में ले लिया, अनुभव में ले लिया। अनुभव तो पर्याय

का होता है परन्तु ध्रुव का अनुभव, ऐसा कहने में आता है। राग का अनुभव था, इस अपेक्षा से यहाँ ध्रुव का अनुभव किया कहने में आया है। परन्तु अनुभव तो पर्याय में होता ही है। अनुभव कहीं ध्रुव में नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

११वीं गाथा में भी ऐसा कहा है। ११वीं है न? **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** ज्ञायकभाव जो तिरोभाव में था, दृष्टि की विपरीतता में था... आहाहा! जहाँ सक्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ, ऐसा पाठ है। ज्ञायकभाव का आविर्भाव होता है और तिरोभाव होता है, ऐसा वास्तव में होता ही नहीं। ज्ञायकभाव तो त्रिकाल ज्ञायकभाव ही है। परन्तु पाठ ऐसा लिया है कि सक्यग्दर्शन बिना ज्ञायकभाव तिरोभाव में था। दृष्टि में नहीं था तो तिरोभूत था। और दृष्टि में आया तो ज्ञायकभाव का आविर्भाव हुआ—ऐसा कहा। ज्ञायकभाव का आविर्भाव नहीं होता। ज्ञायकभाव तो त्रिकाल ज्ञायकभाव ही है। परन्तु अनुभव हुआ तो ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : दृष्टि में आया तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : तब आविर्भाव हुआ, ऐसा कहने में आया है। बाकी ज्ञायकभाव तो त्रिकाल ज्ञायकभाव ही है।

प्रवचनसार की २०० गाथा में आता है न? प्रवचनसार की २०० गाथा। कि ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव त्रिकाल रहा है। भले उल्टा माने। प्रवचनसार २०० गाथा है। ज्ञायकभाव भगवान चैतन्यरसकन्द ध्रुव, वह ज्ञायकभाव तो अनादि से ऐसा ही है। उसमें कोई गड़बड़ नहीं हुई। गड़बड़ तो पर्याय में होती है। समझ में आया? तथापि वहाँ ऐसा कहा। यहाँ भी ऐसा कहा **'भूतार्थपरिग्रहेण'** भूतार्थ का अनुभव। है? शुद्धस्वरूप का अनुभव। शुद्धस्वरूप ध्रुव का अनुभव है? परन्तु इसका अर्थ ऐसा कि ध्रुव का स्वीकार हुआ, पर्याय में अनुभव आया, उसे ध्रुव का अनुभव हुआ, ऐसा कहने में आता है। अनुभव तो पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव जो सदृश वस्तु है, उसका अनुभव पर्याय में कहाँ से आवे? समझ में आया? आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। यह श्लोक ही ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो सूक्ष्म को भी मोटी कर देते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भगवान का मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षु : अनुभव तो पर्याय है, उसका अनुभव करे वह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ध्रुव है, द्रव्य है। द्रव्य का अनुभव होता है? द्रव्य का अनुभव हुआ। राग का अनुभव होता है, वह अज्ञान का अनुभव है, तो यह ध्रुव का अनुभव हुआ, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? ऐसी बात है। यह तो वीतरागी सन्त केवलज्ञान के पथानुगामियों की बात है। बापू! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। दिगम्बर सन्त अर्थात् कौन! आहाहा! परमात्मा के उराधिकारी। ज्ञया कहलाता है तुम्हारे? वारसदार। दिगम्बर सन्त अर्थात् परमात्मा के उराधिकारी। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनि की बात करते हैं। मुनि चारित्रवन्त, आनन्दकन्द में (मग्न रहनेवाले)! आहाहा! समयसार की पाँचवीं गाथा में लिया है न? कि हमारे वैभव से हम कहेंगे। हमारा वैभव ज्ञया है? कि अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, उसमें आनन्द की मोहरछाप पड़ी है, वह हमारा वैभव है। मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा! हमारे निज वैभव से कहूँगा। यह तुम्हारे धूल के वैभव की बात नहीं है, हों! ऐई...! पोपटभाई! वह तो सब कचरा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक बार भी भूतार्थ का परिग्रहण हो... ओहोहो! एक बार तेरी करवट बदल जाए... आहाहा! पर्याय और राग पर तेरी रुचि और तेरा सर्वस्व वहाँ लगा हुआ है, तो उसमें सर्वस्व नहीं है। सर्वस्व तो ध्रुव में है, भूतार्थ में है। आहाहा! सर्वस्व पूरा सार पड़ा है। जिसमें से अनन्त केवलज्ञान प्रगट हो, ऐसी अनन्त पर्यायें प्रगट हों, ऐसा निधान ध्रुव है। केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसी एक पर्याय, ऐसी दूसरे समय में दूसरी, ऐसे सादि—अनन्त अनन्त पर्यायें हैं। आहाहा! जब से उत्पन्न हुई, वह अनन्त काल रहेगी परन्तु भिन्न-भिन्न होकर रहेगी। ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड ज्ञानगुण अन्दर है। आहाहा!

ऐसी अनन्त पर्यायों का, श्रद्धा की अनन्त पर्यायों का पिण्ड श्रद्धाशक्ति है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय भगवान को प्रगट हुई, वह अतीन्द्रिय आनन्द तो एक समय

रहता है। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा... ऐसे सादि-अनन्त, अनन्त आनन्द, ऐसा अनन्त आनन्द का पिण्ड, वह आनन्दगुण ध्रुव में है। ऐसी बात है, भाई! नन्दकिशोरजी! वीतरागमार्ग लोगों ने सुना ही नहीं कि वीतराग ज्ञया कहते हैं। आहाहा!

जिसमें भूतार्थपरिग्रहण जहाँ हुआ तो पर्याय में वीतरागता आ गयी। पर्याय में राग और पर का वेदन था, वह विकार का वेदन था, विकार था। उस अज्ञान में तो विकार व्यक्त अर्थात् प्रगट हुआ। आहाहा! चाहे तो शुभराग हो परन्तु वह अज्ञान और विकार व्यक्त प्रगट है। आहाहा! भगवान आत्मा... एक लाईन में बहुत भरा है। इसकी चर्चा 'नन्दलाल' ... लोग भी कहते हैं कि समकिती गिर जाता है। गिर जाता है, वह तो किसी व्यक्ति का ज्ञान कराया है। यहाँ तो कहते हैं गिरना वह हमारी पुस्तक में नहीं है। ज्ञानचन्दजी! वह कहता था न? वह नहीं? कौन वह? नेपोलियन बोनापार्ट, नेपोलियन। हमारी पुस्तक में हम हार जाएँगे, यह बात ही नहीं है। हम जहाँ जाएँगे, वहाँ हम जीतेंगे। नेपोलियन कहता था। देखा है न, हमने तो सब देखा है। छोटी उम्र में नाटक भी देखे हैं। धर्म के नाटक, हों! धर्म के नाटक।

एक बार नहीं कहा था? लड़के को झुलाते थे। वड़ोदरा में नाटक (देखा था)। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। संवत् १९६४। कितने वर्ष हुए? ७० वर्ष हुए। १८ वर्ष की उम्र थी और ७० हुए, अभी तो ८८ है। नाटक देखने गये थे, वहाँ महिला झुलाती थी। बेटा! 'निर्विकल्पोऽअहम्' अपने समयसार में आता है। समझ में आया? बन्ध अधिकार है न? उसमें आता है। **'तस्य बंधस्य विनाशार्थं'** बन्ध के नाश के लिये **'विशेषभावनामाह'** विशेषरूपी भावना **'आह'** अर्थात् कहते हैं। जयसेनाचार्य **'सहजशुद्ध-ज्ञानानंददैकस्वभावोऽहं,...'** मैं तो स्वाभाविक सहजानन्दस्वरूप हूँ। आहाहा! आगे तो लेंगे कि सभी जीव ऐसे हैं। सभी जीव भगवान पूर्णानन्द से भरपूर हैं। आहाहा! तूने पर्यायदृष्टि छोड़ी तो उस पर्यायदृष्टि से पर को न देख। है?

'सहजशुद्धज्ञानानंददैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोहं,' यह शब्द वहाँ महिला बोली थी। १९६४ के वर्ष में नाटक में, हों! **'निर्विकल्पोहं'** बेटा! उदासीन। देखो! **'उदासीनोहं'** अपने यहाँ से निकला। **'निरंजननिजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय-**

रत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधि–संजातवीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन...' आहाहा! **'स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः'** मैं तो मेरे ज्ञान का वेदन करनेवाला ऐसा मैं हूँ। ऐसा मैं गक्य हूँ। स्वसंवेदन—अपने ज्ञान से गक्य हूँ। राग से गक्य नहीं। आहाहा! दो-तीन शब्द याद रह गये। ७० वर्ष पहले की बात है न! **'निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं'** शुद्धोहं ऐसे वह महिला नाटक में लोरियाँ गाती थी।

यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज कहते हैं कि प्रभु! तू ऐसी भावना कर न। आहाहा! है? **'प्राप्यः, भरितावस्थोऽहं'** मैं स्वभाव की पूर्णता से भरपूर भगवान हूँ। आहाहा! **'भरितावस्थोऽहं'** अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना। अ निश्चय स-मुझमें निश्चय से भरित अवस्था से भरपूर हूँ। भाषा अवस्था है। परन्तु अवस्था का अर्थ यहाँ पर्याय नहीं लेना। अव-स्थ। अव-निश्चय। मेरी चीज़ में निश्चय से परिपूर्ण स्वभाव भरा पड़ा है। आहाहा! यह भूतार्थ की बात चलती है। आहाहा!

'राग–द्वेष–मोह–क्रोध–मान–माया–लोभ–पंचेन्द्रियविषयव्यापार' इनसे रहित हूँ। **'मनोवचनकायव्यापारद्रव्यकर्म...'** यह द्रव्यकर्म छापने का भूल गया है। छापने में भूल है। परमात्मप्रकाश में है। यहाँ भूल है। **'द्रव्यकर्म–भावकर्म–नोकर्म–ख्याति–पूजा–लाभ–दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभाव–परिणामरहितः शून्योऽहं...'** मैं तो विकल्प से शून्य परमात्मा हूँ। आहाहा! तीन जगह है। बन्ध अधिकार में है, अन्त में सर्वविशुद्ध अधिकार में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में है। यह जयसेनाचार्य का अधिकार तीन जगह है।

अब कहते हैं **'जगत्त्रये'** तीन जगत में और तीन काल में **'मनवचनकायैः कृतकारिता–नुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन, तथा सर्वे जीवाः...'** ऐसे हैं। आहाहा! सर्व लोक में, सर्व काल में, सर्व जीव परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर सब भगवान हैं। पोपटभाई! है? आहाहा! **'सर्वे जीवाः इति निरंतर भावना कर्तव्या'** निरन्तर यह भावना करना। आहाहा! तीन लोक, तीन काल सर्व जीव परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर है, ऐसी भावना करना। आहाहा! समझ में आया? **'सर्वे जीवाः इति निरंतर'** सर्व जीव ऐसे हैं, अभव्य भी ऐसे हैं। आहाहा! उसकी तो पर्याय में भूल है। द्रव्य से तो सब अभव्य भी पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वभाव से भरपूर हैं। समझ में आया?

एक बार कहा था न ? (संवत्) १९८५ में प्रश्न उठा था। हम तो स्थानकवासी सम्प्रदाय में थे न ? तो १९८५ में प्रश्न उठा। ८५ के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ४८। ५० में दो कम। एक साधु थे, उन्होंने मोहनमाला बनायी, तो उसमें ऐसा लिखा था कि अभव्य को तीन आवरण हैं। मति, श्रुत और अवधि तीन आवरण होते हैं। मन:पर्यय और केवलज्ञान आवरण नहीं होता। ऐसा लिखा था। क्योंकि उन्हें मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान नहीं होता है, इसलिए आवरण नहीं है। ऐसी पुस्तक बनायी थी। चर्चा हुई। यह क्या कहते हो ? क्या लिखा है ? अभव्य को पाँच आवरण हैं। शक्तिरूप से केवलज्ञान है, उसका आवरण है। तीन आवरण नहीं। मति, श्रुत और अवधि तीन ही आवरण हैं—ऐसा नहीं। पाँच आवरण है। भाई ! १९८५ के वर्ष में। ४८ वर्ष पहले। हम किसी पक्ष में नहीं थे। सत्य क्या है ? हम सम्प्रदाय में आ गये, इसलिए यहाँ रहेंगे, ऐसा मत मानो, कहा। हम तो जहाँ सत्य होगा, वहाँ जाएँगे। अभव्य को भी तीन आवरण हैं, ऐसा (उन्होंने) कहा। १९८५ के वर्ष में वढवाण में। उनकी दीक्षा ५० वर्ष की। मेरी दीक्षा थोड़ी, १५ वर्ष की और उनकी ५०-५० वर्ष की दीक्षा। परन्तु हमारी छाप ऐसी थी न, लोग डरते थे। डरते थे। लोग कानजीस्वामी का मानेंगे और अपना नहीं। उनके साधु थे। वे कहते थे। वे गुरु को कहे, कानजीस्वामी कहते हैं उसे सुनो। ५० वर्ष की दीक्षा थी। बापू ! यह कोई पक्ष का मार्ग नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। अभव्य को भी पाँच आवरण हैं। खुलता नहीं, इसलिए पाँच आवरण नहीं है और तीन आवरण है, ऐसी बात नहीं है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, सर्व जीव पूर्ण केवलज्ञान-आनन्द से भरपूर परिपूर्ण है। अभव्य भी ऐसे हैं। है ? यहाँ भूतार्थ जो कहा, वह भूतार्थ-सत्यार्थ से तो सब जीव परिपूर्ण भरपूर हैं। आहाहा ! अरे.. ! इसे विश्वास कैसे आवे ? वेदान्त तो कहता है एक आत्मा सर्व व्यापक है। वेदान्त सर्व व्यापक एक आत्मा ही है, (ऐसा कहता है)। यहाँ तो अनन्त जीव—निगोद के जीव, प्याज और लहसन के एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव सर्व परिपूर्ण गुण से भरपूर है। पर्याय में अन्तर है, वस्तु में कहाँ अन्तर है ? समझ में आया ? आहाहा ! पंचास्तिकाय में आया है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में सलंग ध्रुव परमात्मा, ध्रुवरूप से तो शाश्वत् विराजता ही है। एकेन्द्रियरूप, दोइन्द्रियरूप हुआ ही नहीं। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, **'भूतार्थपरिग्रहेण'**। आहाहा! गजब बात है! आचार्य की लाईन..! भूतार्थ शुद्धस्वरूप, त्रिकाली शुद्धस्वरूप। एकेन्द्रिय, निगोद के जीव भी शुद्ध स्वरूप से हैं। आहाहा! समझ में आया? अभव्य और निगोद के जीव भी शुद्धस्वरूप से है। एक राई के (जितने) टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। एक-एक जीव शुद्ध स्वरूप भूतार्थ सत्यार्थ पड़े हैं। इसकी दृष्टि में नहीं है परन्तु वस्तु में नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग कभी सुनने को मिलता नहीं। यह तो अपूर्व बातें हैं, भगवान! अतीन्द्रिय आनन्द के कन्द से परिपूर्ण परमात्मा सब विराजमान है। आहाहा! तेरा जैसा द्रव्यस्वभाव है, वैसा ही सर्व जीवों का द्रव्यस्वभाव एक सरीखा है। भूल आदि है, संसार आदि है, वह तो पर्याय में है। संसार भी पर्याय में, मोक्षमार्ग भी पर्याय में और सिद्ध भी पर्याय में। द्रव्य तो त्रिकाली है, वह है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! समझ में आया? आहाहा!

इसमें तो अभी विशेष लेना है। **'भूतार्थपरिग्रहेण'** अर्थात् **'एकवारं'** शब्द है न? तो **'एकवारं'** का अर्थ अन्तर्मुहूर्त किया। अन्तर्मुहूर्तमात्र जहाँ स्वभाव में अन्दर गया और प्रतीति-अनुभव हुआ... आहाहा! तो [**विलयं ब्रजेत्**] **विनाश को प्राप्त हो जाये।** मिथ्यात्व का नाश होता है और एक बार स्वरूप की प्राप्ति हो जाए। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव के यद्यपि मिथ्यात्व अन्धकार अनन्त काल से चला आ रहा है। उसमें आया था न? **अनादि काल से एक सन्तानरूप चला आ रहा है।** चौथी लाईन है। चौथी लाईन। है न? **'आसंसारतः एव धावति'** है? **'आसंसारतः एव धावति'** आहाहा! अनादि काल से। यह तो मुनि सन्तों की अध्यात्म की वाणी है। यह कहीं कथा-वार्ता है? उनके शब्दों में तो महा गम्भीरता भरी है। आहाहा! अरे! दुनिया का भाग्य कि यह वस्तु रह गयी। विरह पड़ा, सन्तों का विरह पड़ा, केवलियों का विरह पड़ा परन्तु उनकी वाणी रह गयी। आहाहा! वह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है, बापू! हों! दूसरों को दुःख लगे, ज्वर हो? समझ में आया? यह श्वेताम्बर, स्थानकवासी में भी यह चीज़ नहीं है। आहाहा!

एक श्लोक तो देखो! **'भूतार्थपरिग्रहेण एकवारं विलयं ब्रजेत्'** अन्तर्मुहूर्त में

यदि नाश हो... आहाहा! **जो सम्यक्त्व हो तो मिथ्यात्व छूटे, जो एकबार छूटे तो... 'अहो तत् आत्मनः भूयः बन्धनं किं भवेत्'** आहाहा! **हे जीव!** है? **हे जीव!** भगवान! तू कैसा है पूर्णानन्द का नाथ? तेरी भूतार्थशक्ति की प्राप्ति हो और मिथ्यात्व का नाश हो.... आहाहा! **उस कारण से [आत्मनः] जीव के पुनः एकत्वबुद्धि क्या होगी? अपितु नहीं होगी।** आहाहा! अरे! समकित गिर जाएगा? अरे! तू गिरने की क्या बात करता है? भगवान द्रव्य गिरे तो समकित गिरे। भूतार्थ भगवान चिदानन्द प्रभु की दृष्टि हुई और मिथ्यात्व का नाश हुआ तो फिर मिथ्यात्व उत्पन्न हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। आहाहा! देखो! वह वाणी।

प्रभु! छद्मस्थ हो न, पंचम काल में केवली के पास गये नहीं और इतना जोर! कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे। यह अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं। कुन्दकुन्दाचार्य (सीमन्धर) भगवान के पास गये थे। भगवान के पास। मैं भी भगवान के पास गया हूँ। इस (अपने) भगवान (के पास)। यहाँ कहते हैं, आहाहा! अरे! ऐसी बातें भाग्यशाली को सुनने मिले, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं, एक बार भी **'ब्रजेत्' हे जीव! 'अहो'** की व्याख्या की है। **'तत् आत्मनः भूयः बन्धनं किं भवेत्' उस कारण से [आत्मनः] जीव के पुनः एकत्वबुद्धि क्या होगी?** राग की एकत्वबुद्धि तोड़कर स्वभाव की एकत्वबुद्धि हुई तो फिर से राग की एकत्वबुद्धि कैसे होगी? बिल्कुल नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य का नाश हो तो द्रव्य की एकताबुद्धि का नाश हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है तो क्षयोपशम समकिती। आचार्य क्षयोपशम समकिती हैं, क्षायिकसमकिती नहीं। क्योंकि भगवान के पास जाये, उसे क्षायिक समकित होता है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे परन्तु क्षायिक समकित नहीं परन्तु अप्रतिहत दर्शन हुआ कि जो समकित होकर केवलज्ञान लेंगे। है क्षयोपशम परन्तु केवलज्ञान लेंगे, क्षायिक लेंगे, ऐसा वह क्षयोपशम (समकित) है। यह पुकार अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

बहिन को भी जातिस्मरण में ऐसा आया है, बहिन—चक्रमाबहिन को जातिस्मरण में ऐसा आया है कि समकित दो प्रकार के हैं। एक जोड़नी क्षायिक और एक प्रगट

क्षायिक। ऐसा जातिस्मरण में आया है। हमने देखा है। पुस्तक में लिखा है। जोड़नी क्षायिक, ऐसा आया है। भगवान के पास सुना है। इसलिए क्षयोपशम समकित है, वह क्षायिक होगा, उसे जोड़नी क्षायिक कहते हैं।

मुमुक्षु : होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा ही, गिरेगा नहीं। है तो यह क्षयोपशम समकित, परन्तु होगा ही। और वह क्षायिक प्रगट वर्तमान है। वह तो (क्षाकिय) वर्तमान है ही, परन्तु क्षयोपशम (समकित) क्षायिक होगा, ऐसा जोड़नी क्षायिक है, वह बात यहाँ भगवान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! यह तो जगत को विश्वास करना कठिन है।

अरे! यह बहिन के लिये लोग झूठा लिखते हैं। कौन है बहिन की खबर नहीं। वह कोई चक्रमाबहिन होगी कोई बिगड़ी हुई। अब उसका यहाँ लगा दिया। अर..र..र..! और इन्हें तो कुछ खबर भी नहीं। यह कौन है.. कौन है... कोई चक्रमा... है अवश्य। एक महिला थी। बिगड़ी, वह यहाँ लगा दिया शिथिल हुए, विपरीत हुए तो यहाँ आ गये। अर..र..! प्रभु! ऐसा झूठ नहीं होता, बापू! भाई! तुझे मुश्किल पड़ेगा। इस विपरीत परिणाम का फल कठोर आयेगा, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **'भूयः बन्धनं किं'** वह नन्दलाल ऐसा कहते थे कि वह भले गिर जाए परन्तु सक्ष्यग्दर्शन तो रहे। उसकी श्रद्धा का अस्तित्व रहे नहीं। गिर जाए, फिर न रहे। निगोद में चला जाता है। भवकटी की है तो फिर अब अनन्त भव नहीं होंगे। परन्तु यहाँ तो पड़ जाए, यह बात ही नहीं है। हमारी पुस्तक में यह नहीं है। आहाहा! **कैसा है आत्मा?** वह तो ज्ञान का घन है **ज्ञान का समूह है।** ज्ञान का चैतन्यप्रकाश का पिण्ड है। पुण्य-पाप और उसके फल के अन्धकार से चैतन्यप्रकाश भिन्न है। चैतन्यप्रकाश का सूर्य भिन्न है। ज्ञान का घन है। आहाहा!

भावार्थ – शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर संसार में रुलना नहीं होता। ऐसी थोड़ी बात कही। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश-५६

(अनुष्टुप्)

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदा परः।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते।।११-५६।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'आत्मा आत्मभावान् करोति' [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मभावात्] अपने शुद्धचेतनरूप अथवा अशुद्धचेतनारूप राग-द्वेष-मोहभाव, [करोति] उनरूप परिणमता है। 'परः परभावान् सदा करोति' [परः] पुद्गलद्रव्य [परभावान्] पुद्गलद्रव्य के ज्ञानावरणादिरूप पर्याय को [सदा] त्रिकालगोचर [करोति] करता है। 'हि आत्मनो भावाः आत्मा एव' [हि] निश्चय से [आत्मनो भावाः] जीव के परिणाम [आत्मा एव] जीव ही हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि चेतन परिणाम को जीव करता है, वे चेतन परिणाम भी जीव ही हैं, द्रव्यान्तर नहीं हुआ। 'परस्य पर एव' [परस्य] पुद्गलद्रव्य के [भावाः] परिणाम [पर एव] पुद्गलद्रव्य हैं, जीवद्रव्य नहीं हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता पुद्गल है और वस्तु भी पुद्गल है, द्रव्यान्तर नहीं।।११-५६।।

श्रावण शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक १९-०८-१९७७
कलश-५६-५७, प्रवचन-७१

कलश-टीका ५५ (कलश) हो गया न? **भावार्थ - शुद्धस्वरूप का अनुभव होने पर संसार में रुलना नहीं होता।** ओहो! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र है। वह पुण्य और पाप के विकल्प से रहित ऐसी जो शुद्धस्वरूप चीज का अनुभव होने पर परिभ्रमण करना नहीं पड़ता। जब तक शुद्धस्वरूप का अनुभव नहीं है, तब तक पुण्य-पाप करता है और परिभ्रमण करता है। आहाहा! समझ में आया? भावार्थ की एक लाईन बाकी थी। आहाहा! ५६।

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदा परः।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते।।११-५६।।

'आत्मा आत्मभावान् करोति' जीवद्रव्य... देखा! शब्द आत्मा है तो जीवद्रव्य

कहा। कोई वापस ऐसा कहते हैं कि आत्मा भिन्न और जीवद्रव्य भिन्न है। इसलिए इतना शब्द लिया। वेदान्त में आत्मा को भिन्न कहते हैं, जीव को भिन्न कहते हैं। आत्मा शुद्ध है, उसे आत्मा कहते हैं और पुण्य-पापवाले भाव को जीव कहते हैं। ऐसा है नहीं। इसलिए यह ग्रन्थकार ने **'आत्मा'** मूल में शब्द है। उसे जीवद्रव्य कहा। जीवद्रव्य कहो या भगवान आत्मा कहो, दोनों एक ही चीज़ है।

'आत्मभावान्' भाषा देखो! **अपने शुद्धचेतनरूप...** आत्मभाव। ज्ञान और आनन्दरूपी परिणमन होना, उसे शुद्ध चैतन्य का भाव कहा जाता है, उसे धर्मपरिणति कहते हैं। **'आत्मभावान्' अपने शुद्धचेतनरूप...** वह **'आत्मभावान्'** शुद्ध की अपेक्षा से अपना शुद्ध चैतन्य वह **'आत्मभावान्'** आहाहा! पुण्य-पाप के राग से भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न—ऐसा आत्मा, उसका शुद्ध चैतन्य परिणमन, सक्यग्दर्शन-ज्ञान आदि, मति-श्रुत ज्ञानादि का शुद्ध परिणमन या केवलज्ञानादि का शुद्ध परिणमन, वह **'आत्मभावान्'** आहाहा! **'आत्मभावान्' 'करोति'** शब्द पड़ा है न? **'करोति'** की व्याक्ख्या उसका परिणमन होना, ऐसा उसका अर्थ लिया है। **'करोति'** का अर्थ परिणमना, बस इतना अर्थ लिया है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यरूपी भाव, शुद्ध उपयोगरूपी भाव, उसे **'करोति'** अर्थात् परिणमता है, **'करोति'** अर्थात् परिणमता है। आहाहा!

अथवा अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोहभाव, [करोति] उनरूप परिणमता है। चाहे तो शुद्ध परिणतिरूप कहो या अज्ञानभाव में अशुद्ध परिणति कहो, परन्तु उसे आत्मभाव कहते हैं। अशुद्धचेतना राग-द्वेष, मिथ्यात्वरूप से (परिणमे), उसे भी यहाँ आत्मा जीवद्रव्य का अशुद्ध परिणमन जीव का भाव है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? वह पुद्गल का नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : ... इसलिए यहाँ सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे लोग राग-द्वेष-मोह को पुद्गल कहते हैं। वह किस अपेक्षा से? वह तो चैतन्यस्वभाव शुद्ध चैतन्यघन, उसकी जहाँ अनुभवदृष्टि हुई, सक्यग्दर्शन हुआ इस अपेक्षा से विकार के परिणाम को पुद्गल के परिणाम कहकर भिन्न कराया है। यहाँ तो उसकी पर्याय में पर्याय को करनेवाला स्वयं ही है। आहाहा!

अपने शुद्धचेतनरूप... भाषा ऐसी है न? **अथवा अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोहभाव, [करोति] उनरूप परिणमता है।** आहाहा! यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि चाहे तो अपने शुद्धस्वरूप से परिणमे, पर्याय में होओ या चाहे तो अशुद्धरूप परिणमो, परन्तु उस पुद्गलद्रव्य की कर्म की पर्याय का वह कर्ता नहीं है और पुद्गल की उदयिक क्रिया है वह अशुद्ध परिणति को करती नहीं। समझ में आया? ऐसी बात बहुत सूक्ष्म।

अपने शुद्धचेतनरूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोहभाव, उनरूप परिणमता है। 'सदा' शब्द इसमें नहीं लिया। परन्तु वह **'सदा'** ले लेना। बाद में **'सदा'** शब्द आता है न? **'परभावान् सदा'** तो इसमें भी **'सदा'** (शब्द) लेना। अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञान और आनन्दरूप परिणमन हो, मति-श्रुत-ज्ञानादि का परिणमन हो या केवलज्ञानरूप परिणमे, परन्तु सदा अपनी परिणतिरूप ही परिणमन करनेवाला है। आहाहा! ऐसा कहकर **'सदा'** जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं है, इसलिए **'सदा'** शब्द प्रयोग किया है। किसी काल में भी कर्म की पर्याय करे, शरीर की करे, वाणी की करे— ऐसा होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर की सम्हाल तो रखनी पड़ती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सम्हाल करे? भगवान! यह तो मिट्टी-धूल है। इसके क्रमबद्ध में जो पर्याय होनेवाली होगी, वह होगी। क्रमबद्ध तो दोपहर में आता है न? उन परमाणु में भी जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसमें-पर में आत्मा फेरफार करे, ऐसा तो है ही नहीं परन्तु अपनी पर्याय क्रमसर होती है, उसमें भी आत्मा फेरफार नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसी वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया?

'परः परभावान् सदा करोति' पुद्गलद्रव्य पुद्गलद्रव्य के ज्ञानावरणादिरूप पर्याय को... 'सदा' शब्द है न? **त्रिकालगोचर करता है।** आहाहा! वह ज्ञानावरणी पर्यायरूप परिणमे, वह पुद्गल परिणमता है। आत्मा उसरूप नहीं परिणमता। आत्मा कर्म को परिणमाता नहीं है। आहाहा! यहाँ तो दो-चार श्लोक से कर्म और आत्मा की बात चलती है। जितने प्रमाण में राग-द्वेष है... ख्या है? जितने प्रमाण में राग-द्वेष का परिणमन है, उतने प्रमाण में दर्शनमोह, चारित्रमोह का कर्म बँधता है, तथापि उस पर्याय का कर्ता

आत्मा नहीं है। आहाहा! जीव इच्छारूप परिणमो। परन्तु उस शरीर को परिणमा सके, हिला सके, भाषा कर सके—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! **ज्ञानावरणादिरूप पर्याय को त्रिकालगोचर पुद्गल ही करता है।**

'हि आत्मनो भावाः आत्मा एव' अब श्वया कहते हैं? **निश्चय से जीव के परिणाम जीव ही हैं।** आहाहा! यह सक्वयग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमे तो भी वह जीव है और राग-द्वेष-मोहरूप परिणमे तो भी वह जीव है। समझ में आया? है? पहले दो स्पष्टीकरण किये कि आत्मा शुद्ध-अशुद्ध चेतनारूप परिणमता है। पुद्गल अपनी पर्याय को कर्ता है, बस इतनी बात ली है। अब यहाँ आत्मा जो शुद्ध-अशुद्धरूप परिणमता है, वह जीव ही है, आत्मा ही है। आहाहा! मिथ्यात्वरूप परिणमे तो भी वह आत्मा है, वह कहीं पुद्गल नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पहली बात यह कही कि आत्मा सदा अपनी शुद्ध-अशुद्ध परिणतिरूप परिणमता है। पर को नहीं; और पुद्गल अपनी पर्यायरूप परिणमता है। वह जीव की परिणति को नहीं करता। इतनी बात।

मुमुक्षु : पहले परिणति के साथ सक्वबन्ध बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणति इसकी है, यह बताया। अब वह परिणति जीव ही है, ऐसा बताते हैं। चाहे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञानरूप होओ, तो भी वह आत्मा ही है। चाहे तो मिथ्यात्वरूप और राग-द्वेषरूप होओ, तो भी वह आत्मा ही है। यहाँ तो पुद्गल नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है न! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय को तो वेष कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेष कहा न यहाँ। उसकी पर्याय है तो जीव ही है। पर से भिन्न करना है। पीछे अभी कलश आयेगा। ५७वाँ कलश आयेगा। ५७-५८-५९। आहाहा!

जीव के परिणाम जीव ही हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि चेतन परिणाम को जीव करता है, वे चेतन परिणाम भी जीव ही हैं,... जीव अपनी शुद्धपरिणति करो या अशुद्धपरिणति करो, परन्तु वह जीव ही है। उसे पुद्गल के साथ कोई सक्वबन्ध नहीं है। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि चेतन परिणाम को जीव करता है, वे चेतन**

परिणाम भी जीव ही हैं, द्रव्यान्तर नहीं हुआ। अ्या कहते हैं ? जीव चाहे तो शुद्ध-अशुद्धरूप परिणमो, अशुद्धरूप परिणमो परन्तु द्रव्यान्तर-पररूप नहीं होता। अपनी पर्यायरूप रहा है। द्रव्यान्तर-अन्य द्रव्यरूप (नहीं हुआ)। विकाररूप परिणमा है तो अन्य द्रव्यरूप हो गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

'परस्य ते पर एव' पुद्गलद्रव्य के परिणाम पुद्गलद्रव्य हैं, जीवद्रव्य नहीं हुआ। ज्ञानावरणी आदि आठ कर्म की पर्याय, जो कर्मवर्गणा थी, वह कर्म की पर्यायरूप परिणमित हुई, वह अजीव है, पुद्गल है; वह जीव नहीं है। आहाहा! **परिणाम पुद्गलद्रव्य हैं, जीवद्रव्य नहीं हुआ। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानावरणादि कर्म का कर्ता पुद्गल है...** आहाहा! छह प्रकार ज्ञानावरणी बन्धन में कारण है न ? तंवार्थसूत्र। कहाँ गये ? पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। ज्ञानावरणी छह प्रकार से बँधता है। परन्तु वह छह प्रकार का परिणमन, वह जीव का है, वह जीव है। और ज्ञानावरणी जो बँधता है, वह पुद्गल है। छह प्रकार से बँधता है, ऐसा कहा, वह तो निर्मि से कथन है। आहाहा! आता है न ? छह प्रकार से ज्ञानावरणी, छह प्रकार से दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय। आहाहा! यह भाव जो है, उसका कर्ता जीव है, जीव ही है। परन्तु पुद्गल जो परिणमित होता है, उसे ऐसा कहा कि छह कारणों से ज्ञानावरणी बँधा, तो ज्ञानावरणी की पर्याय छह कारण से नहीं हुई। उसकी पर्याय से ज्ञानावरणी की पर्याय हुई है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा जड़ और चेतन के बीच भेद है।

और वस्तु भी पुद्गल है,... अ्या कहते हैं ? यह आठ कर्म की पर्यायरूप परिणमता है, वह जड़ है; आत्मा नहीं। आहाहा! **द्रव्यान्तर नहीं।** वह पुद्गल की पर्याय ज्ञानावरणीयरूप हुई तो जीवरूप हुई, ऐसा द्रव्यान्तर नहीं है। अन्य द्रव्यरूप नहीं हुआ, अपने द्रव्य की पर्यायरूप हुआ है। आहाहा!

कलश-५७

(वसन्ततिलका)

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम्।।१२-५७।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'यः अज्ञानतः तु रज्यते' [यः] जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव [अज्ञानतः तु] मिथ्या दृष्टि से ही [रज्यते] कर्म की विचित्रता में अपनापन जानकर रंजायमान होता है। वह जीव कैसा है? 'सतृणाभ्यवहारकारी' [सतृण] घास के साथ [अभ्यवहारकारी] आहार करता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे हाथी अन्न-घास मिला ही बराबर जान खाता है, घास का और अन्न का विवेक नहीं करता है, वैसे मिथ्यादृष्टि जीव कर्म की सामग्री को अपनी जानता है। जीव का और कर्म का विवेक नहीं करता है। कैसा है? 'किल स्वयं ज्ञानं भवन् अपि' [किल स्वयं] निश्चय से स्वरूपमात्र की अपेक्षा [ज्ञानं भवन् अपि] यद्यपि ज्ञानस्वरूप है। और जीव कैसा है? 'असौ नूनं रसालं पीत्वा गां दुग्धं दोग्धि इव' [असौ] यह है जो विद्यमान जीव [नूनं] निश्चय से [रसालं] शिखरणी को [पीत्वा] पीकर ऐसा मानता है कि [गां दुग्धं दोग्धि इव] मानो गाय के दूध को पीता है। क्या करके? 'दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या' [दधीक्षु] शिखरणी में [मधुराम्लरस] मीठे और खट्टे स्वाद की [अतिगृद्ध्या] अति ही आसक्ति से। भावार्थ इस प्रकार है कि स्वादलम्पट हुआ शिखरणी पीता है, स्वादभेद नहीं करता है। ऐसा निर्भेदपना मानता है, जैसा गाय के दूध को पीते हुए निर्भेदपना माना जाता है।।१२-५७।।

कलश - ५७ पर प्रवचन

अब ५७वाँ श्लोक।

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।

पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम्।।१२-५७।।

अहो! **'यः अज्ञानतः तु रज्यते' जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव...** आहाहा! अनादि से अपने आनन्द और शुद्ध स्वरूप के भानरहित अज्ञानी **मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि से ही... 'अज्ञानतः'** कर्म के कारण से नहीं। **मिथ्यादृष्टि से ही कर्म की विचित्रता में अपनापन जानकर रंजायमान होता है।** आहाहा! कर्म की राग-द्वेषरूप पर्याय और कर्म की पैसा-लक्ष्मी-इज्जत की पर्याय वह सब कर्म की सामग्री है। पहले कहा था कि राग-द्वेष जीव भाव के हैं। यहाँ अब थोड़ा लेते हैं। अन्दर में पुण्य-पाप का भाव होता है और उसका बन्ध होता है और उससे यह पैसा, लक्ष्मी आदि धूल मिले, वह सब कर्म की सामग्री है। समझ में आया? अपना आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी वह सामग्री नहीं है। आहाहा!

श्चया कहते हैं? **कर्म की विचित्रता में...** यह विचित्रता है। पुण्य-पाप के अनेक प्रकार के भाव और उनके कर्मबन्धन से अनेक प्रकार की अनुकूलता की, प्रतिकूलता की सामग्री के ढ़ेर हैं, वह सब कर्म की सामग्री है। आहा! **वह जीव कैसा है?** अज्ञान से रंजायमान होता है। आहाहा! अपनापना जानकर रंजायमान होता है। आहाहा! शरीर, पुण्य-पाप के भाव, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुक्म्ब, परिवार, मकान, बँगला, इज्जत, यह सब कर्म की सामग्री है। इसमें अपनापन मानकर मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि को सेवन करता है। आहाहा!

रंजायमान होता है। आहाहा! **अपनापन जानकर रंजायमान होता है।** यह सिद्धान्त कहा। अब दृष्टान्त देते हैं। **'सतृणाभ्यवहारकारी' घास के साथ आहार करता है।** हाथी। हाथी को आधे मण घास डाले और साथ में आधे मण चूरमा डाले। चूरमा कहते हैं? लड्डू। हाथी को भान नहीं होने से वह उस घास के पुले लक्म्बे-चौड़े होते हैं, छोटी घास नहीं होती परन्तु लक्म्बी-चौड़ी घास होती है न? वह घास डाले, तो पुले में चूरमा को इकट्ठा करके खाता है। वह घास और चूरमा भिन्न है, उसकी खबर नहीं है। पडछा समझते हो?

मुमुक्षु : पुला।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुला नहीं। वह घास चौड़ा इतना, चौड़ा होता है। अकेला लम्बा घास नहीं। हमारी भाषा में...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह घास इतना चौड़ा। चार-चार अँगुल, पाँच-पाँच अंगुल चौड़ा। समझे? ऐसे चौड़ा और लम्बा घास होता है। वह डाले तो उसमें चूरमा को मिश्रित करके खाता है। जैसे यह रोटी में दाल डालकर खाते हैं न?

मुमुक्षु : उस पुले में चूरमा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुले में चूरमा है। उस घास के पुले में पुला है। पुला तो पूरी वस्तु को कहते हैं परन्तु वह घास पडछा होते हैं। हाथी उसमें इकट्ठा करके खाता है। हाथी, भानरहित, विवेक नहीं है। अरे..रे..! इस घास के साथ चूरमा मिश्रित करके खाता है। इसी प्रकार अज्ञानी... आहाहा! है? **जैसे हाथी अन्न-घास मिला ही बराबर जान खाता है,...** बराबर जान खाता है। घास और चूरमा-अनाज दोनों एक ही चीज़ है, ऐसा मानकर खाता है। आहाहा! **घास का और अन्न का विवेक नहीं करता है,...** यह तो अभी दृष्टान्त है, हों!

वैसे मिथ्यादृष्टि जीव... जिसे चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, ऐसी दृष्टि नहीं है और राग को अपना मानकर **कर्म की सामग्री को अपनी जानता है।** उस राग को अपना मानकर अनुभव करता है। राग घास समान है और भगवान आनन्दस्वरूप है। इतना अन्तर है कि उसमें चूरमा और घास दो भिन्न चीज़ है। यहाँ आनन्द है और उसके साथ राग-घास है, तो घास राग और आनन्द को साथ में अनुभव करता है, ऐसा नहीं। ख्या कहा?

जैसे हाथी है, वह घास और चूरमा दोनों इकट्ठा करके खाता है, तो अज्ञानी है। इसी प्रकार यहाँ आत्मा का आनन्द और राग का दुःख दोनों को एकरूप अनुभव करता है। परन्तु जैसे उस घास में चूरमा है, वैसे राग में जरा आनन्द है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? दृष्टान्त में जो है कि वह तो चूरमा और घास इकट्ठा करके खाता है। ऐसा भाषा से समझाया जाता है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है,

उस स्वाद को छोड़कर राग और पुण्य-पाप के भाव के स्वाद का लक्ष्मटी होकर उस विकार का स्वाद लेता है।

मुमुक्षु : उसे ही आनन्द मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। उसमें आनन्द है नहीं। आनन्द तो भगवान आत्मा में है, परन्तु उसकी तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। हाथी घास और अनाज दोनों इकट्ठे करके खाता है। घास और अनाज का विवेक नहीं है। उसी प्रकार यहाँ पुण्य-पाप और आत्मा को एकत्रित करके खाता है, इसका अर्थ आनन्द के साथ राग को खाता है, ऐसा नहीं है। आनन्द तो आनन्द है अन्दर, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर अकेले राग और द्वेष का अनुभव करता है, वह घास खाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव का सागर, नाथ! उसकी सा का स्वीकार नहीं। उस आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की सा का स्वीकार नहीं और ये पुण्य-पाप के भाव असंख्य प्रकार के हैं। असंख्य प्रकार के हैं। शुभभाव भी असंख्य प्रकार, अशुभभाव के भी असंख्य प्रकार हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसे असंख्य प्रकार के भाव हैं। वह अज्ञानी अपने आनन्द के भाव को छोड़कर घासतुल्य जो विकार है, उसका अनुभव करता है। पोपटभाई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : बहुत सरस बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अनादि से करता है, बापू! भाई! तू यह ञ्चया करता है? कहते हैं।

उस हाथी को जैसे घास और अनाज की भिन्नता का विवेक नहीं है, उसी प्रकार तुझे पुण्य-पाप के भाव और भगवान भिन्न है, उसका विवेक नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पशु जैसा जीवन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पशु से भी गया-बीता है। पशु में तो कोई सक्ष्यग्दृष्टि होता है।

वह आत्मा का अनुभव करता है। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य सिंह, बाघ, मच्छ, हजार योजन के मच्छ ऐसे असंख्य बाहर स्वयंभूरमण समुद्र में पड़े हैं। पंचम गुणस्थानवाले समकिती, आत्मा के आनन्द के रसिक, तिर्यंच। यहाँ भी थे न? भरत थे न भरत? राम के भाई भरत। भरत शृंगार करके हाथी पर बैठकर भगवान के दर्शन करने जाते थे। वहाँ भरत को वैराग्य हुआ। यह भरत अर्थात् भरतचक्रवर्ती नहीं। रामचन्द्रजी के भाई। वे दीक्षित हुए। उस हाथी पर बैठते थे, वह हाथी और वे (भरत) पूर्वभव के मित्र थे। उस हाथी को जातिस्मरण हुआ। अपने यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में है। वह तो आत्मा है न? आहाहा! अन्दर में पूर्वभव की स्मृति आयी। धारणा में तो पड़ी थी। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा में तो सब शक्ति-स्मृति पड़ी थी, धारणा में।

मुमुक्षु : व्यक्त हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यक्त हो गयी। आहाहा!

अरे! मैं कौन था? कौन हूँ? अरे! मेरा मित्र तो दीक्षित हो गया। आहाहा! समझ में आया? उस हाथी के हौदे बैठकर भरत आये थे। वे तब शृंगार-वृंगार छोड़ दिया। और पन्द्रह-पन्द्रह दिन में आहार लेना, ऐसी प्रतिज्ञा की। सक्ष्यग्दृष्टि, जातिस्मरणवाला। पशु तो देह-जड़ है। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु (विराजमान है)।

यह तो कल नहीं कहा था? **'सर्वे जीवाः'** सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में लोकालोक में परिपूर्ण शक्ति से भरपूर भगवान है। सर्व जीव ऐसे हैं। समझ में आया? कल बन्ध अधिकार में कहा था न? **'सर्वे जीवाः'** आहाहा! ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और प्रभुता आदि शक्ति से परिपूर्ण भरपूर सभी भगवान आत्मा हैं। पर्याय में भूल है, वह दृष्टि छोड़ दे। **'सर्वे जीवाः'** सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में अपनी पूर्ण शक्ति के भण्डार से भरपूर परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया? यह बात है न? श्लोक में आता है। 'सर्व जीव है ज्ञानसम'

मुमुक्षु : ... ऐसा जो समभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : सामायिक में आता है। सामायिक में आता है न? 'सर्व जीव वह ज्ञानमयी' ज्ञान का पुंज, आनन्द का पुंज। आहाहा! ऐसा आत्मा अपने आनन्द को छोड़कर अज्ञानी घास समान.. हाथी विवेकरहित घास और चूरमा को खाता है, यह तो दृष्टान्त का

एक अंश लेना। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप को छोड़कर... उसमें आनन्द और राग मिश्रित है, ऐसा यहाँ नहीं। उसमें तो चूरमा और घास मिश्रित है। यहाँ आनन्द और राग मिश्रित है ऐसा नहीं है। इकट्ठे का अर्थ इतना कि आनन्द का नाथ भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में आनन्द तो नहीं है, तो अकेले राग और द्वेष का स्वाद विवेकरहित अज्ञानी लेता है। आहाहा! समझ में आया? है न?

जीव का और कर्म का विवेक नहीं करता है। आहाहा! है? **कर्म की सामग्री को अपनी जानता है...** आहाहा! यह पैसा और पुत्र और हसमुख तो अपना पुत्र है ऐसा जानता है। ऐई। पोपटभाई! पोपटभाई का दृष्टान्त देते हैं। सामने (बैठे हैं)। यह सेठ लो न, 'माणेकचन्द' हमारा पुत्र है। कहा पुत्र किसका कहना? आहाहा! यह तो सब कर्म की सामग्री है। पैसा, इज्जत, मकान, नौकर-चाकर के ठाठ जमते हैं, वह तो सब जड़कर्म की सामग्री है। आहाहा! उस सामग्री को अपनी मानकर राग और द्वेष का अनुभव करता है, वह हाथी के समान अविवेकी है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक ले गये। कर्ताकर्म (अधिकार) है न।

विकारी परिणाम का कर्ता विकारी परिणाम है। जीव की पर्याय परन्तु यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि विकारी परिणाम का कर्ता होकर... 'करे कर्म सो ही रे करतारा।' बनारसीदास का वाञ्चय है। यहाँ अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा। कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई।' यह श्लोक अमृतचन्द्राचार्य का है, इसका हिन्दी बनारसीदास ने बनाया है। राग का कर्ता 'करे कर्म सो ही करतारा।' जो पुण्य-पाप का कर्ता मानता है, वह मिथ्यादृष्टि कर्ता होता है। आहाहा! 'जो जाने सो जाननहारा।' उस विकार के परिणाम का अपने स्वलक्ष्य से अनुभव करता है, तो राग का जाननेवाला अज्ञानी रहता है। आहाहा! राग मेरा कार्य और मैं कर्ता - ऐसा धर्मी नहीं मानते। अज्ञानी, राग मेरा कार्य और मैं कर्ता—ऐसा 'करे कर्म सो ही करतारा।'

'कर्ता सो जाने नहीं कोई' यह राग और पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रतादि के विकल्प का कर्ता जानता है, वह जाननहार नहीं रहता। 'और जाने सो कर्ता नहीं होई' मैं तो आनन्द-ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरी सामग्री में तो आनन्दादि, शान्ति की सामग्री से भरपूर हूँ।

वह पुण्य और पाप और उनकी सामग्री मेरी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इन्द्र जैसे, जिन्हें ३२ लाख तो विमान। अभी शकेन्द्र है। सौधर्म देवलोक, ३२ लाख विमान है। एक-एक विमान में असंख्य देव। उन असंख्यदेवों का स्वामी ऐसा मानता है कि वह मेरी चीज़ नहीं है, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! शास्त्र में उसे एकावतारी कहा है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष में जाएगा, तो कहते हैं कि इतनी सामग्री है, वह मैं नहीं हूँ।

मुमुक्षु : कर्म की सामग्री है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म की सामग्री है। मेरी सामग्री तो अनन्त आनन्द, ज्ञान और शान्ति से भरपूर सामग्री है। कहो, डालचन्दजी! आहाहा! दृष्टि से दौलत देखी... आहाहा! अपना आनन्द और शान्ति का निधान जिसने-दृष्टि से देखा, वह राग का कर्ता कैसे होगा? कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! जिसने अपने आनन्द और ज्ञान की... यहाँ ज्ञान कहेंगे, जिसने अपनी दौलत को देखा नहीं, वह पुण्य और पाप तथा उसके फलरूप सामग्री को अपनी सामग्री (मानता है)। आहाहा! ऐसा मानकर अविवेकी हाथी की तरह घास और चूरमा एक करके खाता है; उसी प्रकार भगवान आनन्द को छोड़कर... आहाहा! अकेले राग और पुण्य-पाप के भाव का स्वाद लेता है। आहाहा!

बालक होता है न, बालक? ज्येष्ठ महीने में तड़का (धूप) होता है। तड़का समझते हो? धूप। उसकी माँ ने दूध पिलाया तो थोड़ा अधिक दूध पिलाया हो। दूसरे ने-उसकी बहिन ने वापस दूध पिलाया। बहुत दूध पिलाया हो तो पतली दस्त हो जाती है। पतली दस्त हो जाती है। परन्तु गर्मी अधिक हो, इसलिए पतली दस्त में हाथ डाले तो ठण्डा लगता है। उस दस्त को हाथ में लेकर चाटता है। ऐसे बालक को देखा है? उस दस्त का स्वाद लेता है। हाथ में ठण्डा लगे, ठण्डा। इसी प्रकार अज्ञानी... आहाहा! पुण्य-पाप के दस्त को निकालकर (उसका स्वाद लेता है)। वह दस्त-विष्टा है, जहर है। आहाहा! विष्टा कहते हैं लोग। शास्त्र में तो उसे जहर कहा, विषकुम्भ कहा है। मोक्ष अधिकार में दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभाशुभभाव को विष का घड़ा कहा है। भगवान अमृत का घड़ा है। आहाहा! आनन्द से लबालब भरपूर प्रभु, वह राग और पुण्य-पाप के भाव को परमात्मा जहर कहते हैं। जहर का घड़ा है। प्रभु! तू जहर का घड़ा चाटता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों कहा है, अमृतकुम्भ और विषकुम्भ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमृतकुम्भ है, वह विषकुम्भ है।

मुमुक्षु : व्यवहार को अमृतकुम्भ कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? वह तो जिसे अमृतकुम्भ का अनुभव हुआ, उसके शुभभाव को उपचार से, व्यवहार से अमृतकुम्भ कहा। उपचार से, यथार्थ में नहीं। आरोप से कहा। कहा न? जिसे अन्तर आनन्द अमृत का अनुभव हुआ... आहाहा! उसके आनन्द के स्वाद के समक्ष शुभराग होता है। पूर्ण (वीतरागता) न होवे तो। चरणानुयोग के अधिकार में उस सम्यग्दृष्टि का जो शुभभाव है, उसे व्यवहारनय से अमृतकुम्भ कहा है। निश्चय से तो जहर है। आहाहा! समझ में आया? अरे! चैतन्यराजा विराजमान, अनन्त गुण से शोभायमान प्रभु, उसकी रुचि छोड़कर उससे विरुद्ध जो पुण्य-पाप के भाव हैं, उनकी रुचि में... आहा! जड़ का, विकार का स्वाद लेता है। वह हाथी जैसा अविवेकी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सौ प्रतिशत में एक प्रतिशत अमृत...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक प्रतिशत भी अमृत नहीं। आरोप से कहा। वह कहा नहीं? मोक्षमार्ग जो अपने स्वभाव की दृष्टि से-निश्चय से हुआ, तब उसके साथ राग की मन्दता है। तो सहचर देखकर, निर्मा देखकर उपचार से व्यवहार कहा है। है तो बन्ध का कारण। समझ में आया? वह तो दोपहर को चलता है। नहीं? मोक्ष अधिकार बहुत अच्छा है। निश्चय-व्यवहार का।

अपने स्वरूप की राग से भिन्न होकर अनुभूति हुई, अनुभव हुआ, उसे यहाँ जब तक स्थिर न हो, तब तक अशुभ से बचने को धर्मात्मा को भी शुभराग आता है। परन्तु उस शुभराग को जहर कहकर हेय जानता है। व्यवहार से उसे अमृत का आरोप कहकर... अमृत तो आत्मा की पर्याय है परन्तु राग को सहचर देखकर व्यवहार से अमृत कहा। निश्चय से तो जहर है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपूर्वकरण में निर्जरा होती है राग में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। वह तो शुद्ध उपयोग का लक्ष्य है, इसलिए निर्जरा होती है। आत्मा शुद्धाभिमुख हुआ, शुद्ध के सन्मुख हुआ, उससे निर्जरा होती है। जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह तीन करण है न? उन करण को भी छोड़कर शुद्ध उपयोग में सन्मुख होता है, तब उसे निर्जरा होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : कहते हैं, मिथ्यात्व के घर में बैठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठा है।

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! सुन तो सही। आहाहा! 'अब हम कबहु न निज घर आये...' आता है? 'अब हम कबहु न निज घर आये, अब हम कबहु न निज घर आये। परघर भ्रमत अनेक नाम धराये।' मैं दयावाला हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं पापवाला हूँ। 'परघर भ्रमत अनेक नाम धराये, अब हम कबहु न निज घर आये।' निज घर, कल कहा था न? गृहस्थ। अपने घर में स्थिर हो, वह गृहस्थ है। शरीर में, पैसे में, मकान में रहे, वह गृहस्थ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **कर्म की सामग्री को अपनी जानता है। जीव का और कर्म का विवेक नहीं करता है।** आहाहा! भगवान तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञातास्वरूप है और राग अन्धकारस्वरूप, जहरस्वरूप... आहाहा! दुःखस्वरूप है। दोनों का विवेक नहीं करता। अरे..रे..! परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल बीता। निगोद में एक श्वास में अठारह भव किये। आहाहा! वह इस मिथ्यात्वभाव के कारण (किये हैं)। राग मेरी चीज़ है, ऐसा स्वाद लेने से जो जहर का स्वाद आया, उसका फल चार गति में भटकना है।

शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्व, वह संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, वह संसार नहीं है। क्योंकि वह तो परचीज़ है। संसार अपनी पर्याय में रहता है। संसार अपनी पर्याय से भिन्न नहीं है। भिन्न चीज़ है, वह तो दूसरी चीज़ है। समझ में आया? मिथ्यात्व, वह संसार है—ऐसा आचार्य पुकार करते हैं। मिथ्यात्व का अर्थ यह कि राग और पुण्य के तथा पाप के भाव को अपना मानकर सेवन करना, वह मिथ्यात्व है, वही संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह संसार नहीं है। वह तो परचीज़ है। परचीज़ में आत्मा

का संसार कहाँ से आया ? आत्मा का संसार तो मिथ्यात्वभाव में आया। आहाहा ! यह मिथ्यात्व, वही संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, दुकान छोड़कर उसने संसार छोड़ा, ऐसा बिल्कुल सही नहीं है। आहाहा ! यह स्त्री-पुत्र छोड़े,, दुकान छोड़े, वस्त्र बदले, हो गया नग्न, इसलिए हो गया त्यागी—ऐसा नहीं है भगवान ! सूक्ष्म बात, बापू !

मुमुक्षु : कथंचित् है...

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं।

मुमुक्षु : परद्रव्य निर्मा... सापेक्षता से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से कहा ? निर्मा मिटने का, राग घटा इस अपेक्षा से। राग घटा, इस अपेक्षा से कहा है। इसमें लिया है कि पर की क्रिया तो आत्मा कर नहीं सकता। उसमें नहीं लिया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिया है कि व्रतादि की क्रिया शरीर की है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। उसके परिणाम हैं, उनका कर्ता है। वह भी कर्ता वहाँ क्यों लिया ? दृष्टि की अपेक्षा से तो करनेयोग्य नहीं है। परन्तु यहाँ कहा न ? कि **'करोति'** परिणमता है, इसलिए **'करोति'** कहा है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को राग परिणमता है न ? इस अपेक्षा से **'करोति'** कहा। परिणमे, वह कर्ता। इतनी अपेक्षा है। करनेयोग्य है; इसलिए कर्ता है—ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? बात तो स्पष्ट-चुस्त बात है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि **जीव कर्म की सामग्री को अपनी जानता है। जीव का और कर्म का विवेक नहीं करता है।** आहाहा ! हमारी शाला में... पहले की बात है। ७५ वर्ष पहले की बात है। पौने सौ वर्ष पहले की। १२-१३ वर्ष की उम्र थी। हमारे साथ एक विद्यार्थी था। भावसार का लड़का था। 'सुन्दर रूपा' उसका नाम 'सुन्दरजी' था और उसके पिताजी का नाम 'रूपा' 'रूपचन्द' (था)। भावसार नहीं ? वह भावसार होते हैं न ? कपड़े रंगते हैं।

मुमुक्षु : छीपा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छीपा—वह भावसार। हमारे गाँव 'उमराला' में उस भावसार की जाति है। साथ में पढ़ते थे। उसे ऐसी आदत हो गयी थी... हम सब साथ में होंवे, वह नाक में से गुंगा निकाले। निकालकर दाँत के बीच में दबावे, दाँत के बीच दबावे। तक भी नहीं, परन्तु जीभ से उसका स्वाद लेता था। दाँत से दावे, फिर ऐसे (जीभ से स्वाद ले)। अरे! सुन्दरजी! यह तू ञ्चया करता है? नाम सुन्दरजी। सुन्दर रूपा। पिताजी का नाम रूपा। यह ञ्चया करता है, भाई? (तो कहे), भाई! मुझे आदत पड़ गयी है। इतना निकाल डाले और जहाँ हमारी इधर-उधर नजर हो तो दूसरा निकाले। अरे! भाई! तू यह ञ्चया करता है? हम सब यहाँ बैठे हैं। भाई! मुझे आदत पड़ गयी है।

इसी प्रकार परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तू है तो 'सुन्दर रूपा'। यह तो हमारी शाला में बना था। परन्तु तू क्षण में पुण्य का स्वाद लेता है, क्षण में पाप का राग करके उसका स्वाद लेता है, यह गुंगा का स्वाद है। यह 'सुन्दर' का स्वाद नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो छोटी उम्र से ही सब विचारणा चलती होती है न? कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे, ऐसे विचार तो बहुत पहले से चलते थे। अरे! भाई! यह तू ञ्चया करता है? भाई! मुझे टेव पड़ गयी है, (ऐसा) कहे।

यहाँ भगवान कहते हैं, प्रभु! यहाँ तो विशेष कहेंगे, देखो! **कैसा है?** आत्मा **'किल स्वयं ज्ञानं भवन् अपि'** ऐसा कहेंगे। यह ज्ञान के साथ आनन्द है, ऐसा नहीं। ज्ञान भवन इतना। कैसा है आत्मा? **'स्वयं ज्ञानं भवन् अपि'** आहाहा! **निश्चय से स्वरूपमात्र की अपेक्षा यद्यपि ज्ञानस्वरूप है।** वह तो जाननस्वरूप है। वह रागस्वरूप वस्तु है ही नहीं। आहाहा! उसका स्वरूप ज्ञान है। स्व-रूप—अपना रूप वह ज्ञान है। आहाहा! प्रज्ञाब्रह्म भगवान आत्मा। आहाहा! **'स्वयं ज्ञानं भवन् अपि'** आहाहा! वह तो ज्ञातादृष्टा होने पर भी... आहाहा! जगत दृश्य है, भगवान आत्मा दृष्टा है। जगत ज्ञेय है, आत्मा ज्ञान है—ऐसा सञ्चम्बन्ध कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! आत्मा तो अपने में ज्ञानस्वरूप ही है। चैतन्य के प्रकाश का, चैतन्य के प्रकाश का चैतन्यपुंज है। उस प्रकाश में राग और पुण्य-पाप है ही नहीं। वह पुण्य और पाप तो अन्धकार समान अचेतन है। चेतनस्वरूप भगवान आत्मा में वे अचेतन नहीं हैं। ऐसा होने पर भी... ऐसा कहते है न? देखो!

यद्यपि ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! **निश्चय से स्वरूपमात्र की अपेक्षा यद्यपि**

ज्ञानस्वरूप है। ओहोहो! **और जीव कैसा है? 'असौ नूनं रसालं पीत्वा गां दुग्धं दोग्धि इव' यह है जो विद्यमान जीव निश्चय से शिखरणी को पीकर...** श्रीखण्ड... श्रीखण्ड। खट्टा और मीठा श्रीखण्ड। आहाहा! श्रीखण्ड को खाकर। शराब पीये हुए प्राणी को श्रीखण्ड दो तो उसे गाय के दूध जैसा लगता है। खट्टा-मीठा स्वाद उसे नहीं आता। शराब का जोर है। शराब पी है न। यह दृष्टान्त समयसार नाटक में दिया है। शराब पीये हुए को श्रीखण्ड दो तो उसे गाय के दूध जैसा लगता है। खट्टे-मीठे का स्वाद ही छूट जाता है। आहाहा! इसी प्रकार अपने स्वरूप को भूलकर मिथ्यात्वरूपी मैल में चढ़ गया है... आहाहा! उसे पुण्य-पाप के भाव (का स्वाद आता है)। जिसे श्रीखण्ड का स्वाद नहीं आता, खट्टे-मीठे का स्वाद नहीं आता, आत्मा का स्वाद नहीं आता। अकेला पर का-जहर का स्वाद आता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं, भाई!

सक्ष्यग्दृष्टि को भोग का राग होता है परन्तु राग में रस नहीं, रुचि नहीं। समझ में आया? ऐसा कहा कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। ऐसा निर्जरा अधिकार में कहा न? वह भोग तो बन्ध का ही कारण है, परन्तु उसका ज्ञाता-दृष्टा रहा, भोग का राग आया, उसका स्वामी नहीं हुआ। स्वामी नहीं और उसके स्वाद की रुचि नहीं। धर्मी को भोग के राग में सुखबुद्धि नहीं। समझ में आया? अज्ञानी को राग में भोग में मिठासबुद्धि है। आहाहा! इतना अन्तर है। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! बात तो ऐसी है, भगवान!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं न, वह जहर का स्वाद छोड़ और आत्मा का स्वाद ले। तुझे खबर नहीं कि आत्मा का और राग का स्वाद ञ्चया है। उस राग का स्वाद लेकर अपना स्वाद मानता है, वह घास में चूरमा मिश्रित करके अकेला घास खाता है, ऐसा मानता है। आहाहा! इसी प्रकार अज्ञानी शरीर की सुन्दरता, मञ्चखन जैसा पोचा शरीर हो और लड्डू खाकर भोग करे। समझ में आया? यह तो सब हमने सुना है। ऐसी बहुत जवानी हो और भोग लेने जाए तो थोड़े पेड़ा, मिठाई ले जाए। पेड़ा मिठाई खाने के बाद भोग करे। ऐसा सुना है। हमने कहाँ कुछ किया है। पोपटभाई!

एक बार नजर से देखा था। एक व्यक्ति ने नौ बजे (एक) सेर पेड़ा लिये। नौ बजे। नींद के समय। सेर भर पेड़ा लिये। मैंने कहा, अभी यह पेड़ा ञ्चयों लेता होगा? पाँच-छह

बजे तो भोजन किया। भोजन किया। ब्यालु समझे। भोजन किया है और फिर यह पेड़ा क्यों खरीदता है। फिर ख्याल आया कि ठीक! अरे! जगत का प्राणी क्या करता है? भोग के स्वाद के पहले पेड़ा-बेड़ा खाकर फिर भोग करे। अरेरे! क्या करता है तू? प्रभु! यह राग का स्वाद, जहर का स्वाद है। ज्ञानी को भी राग तो आता है। भरतचक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियाँ थीं। ९६ हजार। अरे! दु:ख की चोट लगे। जैसे सर्प देखे, काला नाग देखते हैं। वैसे शुभराग आवे, उसे काला नाग देखते हैं। दृष्टि में अन्तर है।

मुमुक्षु : दृष्टि आत्मा की हुई है तो वह (राग-भोग) नाग दिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाग दिखता है। पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! अरे! प्रभु! तेरे अनुभव के भोग छोड़कर इस राग का स्वाद, जहर का स्वाद है। तुझे मिठास आती है तो तू मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **विद्यमान जीव निश्चय से शिखरणी को पीकर ऐसा मानता है कि मानो गाय के दूध को पीता है।** भान नहीं न? शराब पी है, उसी प्रकार यहाँ मोह की मदिरा पी है और राग का स्वाद लेकर अपना स्वाद लेता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! दृष्टि फेर से स्वाद फेर (अन्तर)। राग की दृष्टि है, वहाँ जहर का स्वाद है और अपने आनन्द की दृष्टि हुई, वहाँ आनन्द का स्वाद है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। समझ में आया? कहो, दरबार! गराह-बराह पैसे के आवे, लड़के चार-पाँच हों, स्त्री हो और पुत्र सरकार के वहाँ नौकर हो। हजार का वेतन हो। बस, हो गया.. ओहोहो! यह तो दृष्टान्त देते हैं, दरबार! यहाँ तो बहुत पैसेवाले करोड़पति बैठे हैं न! अन्दर से मजा मानते हैं। आहाहा! धूल में भी मजा नहीं है। सुन तो सही।

यह यहाँ कहते हैं, हों! **मानो गाय के दूध को पीता है। क्या करके? अति ही आसक्ति से।** उसे अति आसक्ति है। उसे श्रीखण्ड का खट्टा-मीठा स्वाद नहीं आता। गाय के दूध जैसा आता है। आहाहा! है? **भावार्थ इस प्रकार है कि स्वादलम्पट हुआ शिखरणी पीता है, स्वादभेद नहीं करता है। ऐसा निर्भेदपना मानता है, जैसा गाय के दूध को पीते हुए निर्भेदपना माना जाता है।** इस प्रकार अज्ञानी राग का स्वाद लेकर वह अपना स्वाद है, निर्भेद-अभेद है, ऐसा मानता है। वह मिथ्यादृष्टि है। उसे स्वरूप की खबर नहीं है। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक २०-०८-१९७७
कलश-५७-५८, प्रवचन-७२

कर्ताकर्म अधिकार। ५७ गाथा (श्लोक) चली न? ५७ वाँ श्लोक। ५७वें (श्लोक) में क्या कहा? ५७ में भोक्ता की व्याख्या है। ५८वें श्लोक में कर्ता की व्याख्या है। अर्थात् जब तक यह राग और पुण्य और पाप के भाव को भोगता है, तब तक उसे आत्मा के आनन्द के स्वाद का अभाव है। हाथी घास और चूरमा एक साथ खाता है। उसे विवेक नहीं है कि घास और चूरमा भिन्न चीज़ है। भोक्ता की व्याख्या है। ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के रस से भरपूर है, उसका अनादि काल से भान नहीं तो वह शुभ-अशुभ रागादि को हर्ष और शोक को करके वेदता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! मिथ्यादृष्टि जीव....

'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता...' आता है न? 'शुद्धता में केलि करे, शुद्धता में मगन रहे।' यहाँ यह लेना है। आहाहा! अपनी चीज़ शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसका विचार करके अपने में मग्न रहे, आनन्द का स्वाद आता, उसे धर्मी कहते हैं। धर्मी का वह धर्म है। समझ में आया?

यहाँ हाथी का और श्रीखण्ड का ऐसे दो दृष्टान्त दिये। उसमें भोक्ता को सिद्ध करते हैं। हाथी घास और चूरमा एकमेक (करके) खाता है। उसके स्वाद का भेद नहीं जानता। उसी प्रकार अज्ञानी... आहाहा! आनन्दघन प्रभु चिदानन्दस्वरूप चिद् ज्ञान और आनन्दघनस्वरूप का स्वाद नहीं जानता, वह हर्ष-शोक के दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव में हर्ष का वेदन करता है। आहाहा! समझ में आया? हाथी की भाँति अविवेकी है, ऐसा कहते हैं... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

उसी तरह श्रीखण्ड। श्रीखण्ड का स्वाद... श्रीखण्ड कहते हैं न श्रीखण्ड? श्रीखण्ड का स्वाद तो खट्टा-मीठा है। परन्तु जो शराब पीकर बैठा हो, उसे श्रीखण्ड का स्वाद गाय के दूध जैसा लगता है। उसे खट्टे-मीठे स्वाद का विवेक नहीं है। आहाहा!

यहाँ चैतन्य भगवान आनन्द के रस से भरपूर है, उसका स्वाद न लेकर हर्ष-शोक

का, पुण्य-पाप के भाव में हर्ष-शोक होकर, अति गृद्धि होकर... आहाहा! जैसे वह श्रीखण्ड का स्वादी अति गृद्धि होकर (स्वाद ले), उसे खट्टे-मीठे स्वाद की खबर नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर परिपूर्ण हैं।

यह शरीर है न? यह कलश के घाट जैसा शरीर है न? देखो! कलश-लोटा होता है न? यह लोटा है। इसमें भगवान... लोटे में जैसे पानी भिन्न है, उस पानी का आकार और लोटे का आकार दोनों भिन्न हैं। लोटे के आकार पानी का आकार हुआ, ऐसा नहीं है। पानी तो अपने आकार से रहा है, लोटा अपने आकार से हुआ है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा शरीर-आकार जड़ है। उसी प्रमाण अपना आकार है परन्तु इस शरीर के कारण नहीं। आहाहा! यह काशी घाट का कलश है। भगवान अन्दर जल भरा है। उसका आकार शरीर के आकार नहीं है। शरीर के आकार प्रमाण है, परन्तु शरीर के आकार से आकार नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आकार प्रमाण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकार भले उसके प्रमाण हो परन्तु है स्वयं से।

इसी प्रकार अन्तर में आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से भरपूर भगवान है। अज्ञानी उस आनन्द का स्वाद न लेकर (राग का स्वाद लेता है)। 'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केलि करे।' धर्मी जीव की यह स्थिति है। यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव को लोग धर्म मानते हैं। वह तो दुःख का भोक्ता है। वह दुःख का भोग है। श्रीखण्ड के स्वाद के लक्ष्मटी को श्रीखण्ड के खट्टे-मीठे स्वाद की खबर नहीं है। उसी प्रकार पुण्यादि के परिणाम के स्वाद में गृद्धि है, उसे भगवान का स्वाद आनन्द है, भिन्न है उसका भान नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का झुकाव, वह सब राग है। राग के स्वाद में दुःख और आकुलता है। उस दुःख के स्वाद में आनन्द के स्वाद का अनादर हो गया। अर्थात् भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सच्चिदानन्दस्वरूप, भगवानस्वरूप, आत्मा भगवानस्वरूप है। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवान यह आत्मा है। उस ओर की सन्मुखता छोड़कर पुण्य और पाप के भाव के हर्ष-शोक की सन्मुखता होकर, स्वभाव की विमुखता

होकर और विकार के सन्मुखता होकर विकार का स्वाद लेता है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा!

भाई! तेरा भगवान आनन्द से भरा है न, प्रभु! आहाहा! उस आनन्द की सन्मुख के वेदन बिना, उससे विमुख होकर पुण्य और पाप के हर्ष-शोक का वेदन, भगवान! वह दु:ख का भोक्ता है। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि का थोड़ा जहाँ शुभभाव हुआ, वहाँ हर्ष मानता है कि हमें कुछ हुआ। यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि यह हर्ष, वह दु:ख है। आहाहा! उस दु:ख के स्वाद में लवलीन-गृद्धि हो गया है। भगवान आनन्दस्वरूप है, उसका अनादर हो गया। पुण्य और पाप में धर्मी की सुखबुद्धि उड़ जाती है। हर्ष-शोक में से भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! अज्ञानी की हर्ष-शोक की रुचि में सुखबुद्धि है। ऐसी बात है। नन्दकिशोरजी! ऐसा भारी सूक्ष्म मार्ग, भाई! आहाहा!

यहाँ हाथी का दृष्टान्त देकर भोक्ता की बात की है और श्रीखण्ड का दृष्टान्त देकर भी भोक्ता की बात की है कि हर्ष-शोक को भोगता है, प्रभु! वह जहर का स्वाद लेता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द... 'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केलि करे; शुद्धता में मगन रहे, अमृतधारा बरसे।' यह समयसार नाटक का श्लोक है। है अमृतचन्द्राचार्य के कलश, उसका यह श्लोक है। आहाहा! आत्मा शुद्धस्वरूप, आनन्दस्वरूप, भगवानस्वरूप है उसके सन्मुख होकर शुद्धता का ज्ञान करे, शुद्धता में केलि करे, शुद्धता में क्रीड़ा करे। आहाहा! और शुद्धता में मगन रहे, उसे आत्मा के आनन्द की अमृतधारा बहे, वह आत्मा का स्वाद है और उसका नाम धर्म है। आहाहा! ऐसी गजब बात।

इससे विरुद्ध चिद्रूप भगवानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परमात्मा नित्यानन्द प्रभु ध्रुव जो अनादि-अनन्त चैतन्यकन्द आत्मा... आहाहा! उसका अनादर करके, उसके ऊपर का लक्ष्य छोड़कर मात्र हर्ष-शोक, पुण्य-पाप के भाव का भोक्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानचन्दजी! बात ऐसी है भगवान! भोक्ता की बात की। अब कर्ता की बात कहते हैं। भोक्ता और कर्ता दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा!

कलश-५८

(शार्दूलविक्रीडित)

अज्ञानात् मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिव-
च्छुद्धानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः।।१३-५८।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'अमी स्वयं शुद्धज्ञानमयाः अपि अज्ञानात् आकुलाः कर्त्रीभवन्ति' [अमी] सब संसारी मिथ्यादृष्टि जीव [स्वयं] सहज से [शुद्धज्ञानमयाः] शुद्धस्वरूप है [अपि] तथापि [अज्ञानात्] मिथ्यादृष्टि से [आकुलाः] आकुलित होते हुए [कर्त्रीभवन्ति] बलात्कार ही कर्ता होते हैं। किस कारण से? 'विकल्पचक्रकरणात्' [विकल्प] अनेक रागादि के [चक्र] समूह के [करणात्] करने से। किसके समान? 'वातोत्तरंगाब्धिवत्' [वात] वायु से [उत्तरंग] डोलते-उछलते हुए [अब्धिवत्] समुद्र के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे समुद्र का स्वरूप निश्चल है, वायु से प्रेरित होकर उछलता है और उछलने का कर्ता भी होता है, वैसे ही जीवद्रव्य स्वरूप से अकर्ता है। कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है, इसलिए विभावपने का कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञान से, स्वभाव तो नहीं। दृष्टान्त कहते हैं-'मृगाः मृगतृष्णिकां अज्ञानात् जलधिया पातुं धावन्ति' [मृगाः] जिस प्रकार हरिण [मृगतृष्णिकां] मरीचिका को [अज्ञानात्] मिथ्या भ्रान्ति के कारण [जलधिया] पानी की बुद्धि से [पातुं धावन्ति] पीने के लिये दौड़ते हैं। 'जनाः रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजगाध्यासेन द्रवन्ति' [जनाः] जिस प्रकार मनुष्य जीव [रज्जौ] रस्सी में [तमसि] अन्धकार के होने पर [अज्ञानात्] भ्रान्ति के कारण [भुजगाध्यासेन] सर्प की बुद्धि से [द्रवन्ति] डरते हैं।।१३-५८।।

कलश - ५८ पर प्रवचन

५८।

अज्ञानात् मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।

अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिव–
च्छुद्धानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः।।१३–५८।।

उसमें **'रसालं'** था न? स्वाद का। भोक्ता का था। यह कर्ता की व्याक्ख्या है। आहाहा! **'अमी स्वयं शुद्धज्ञानमयाः अपि अज्ञानात् आकुलाः कर्त्रीभवन्ति'** आहाहा! भगवान अन्दर आत्मा... **'अमी'** शद्बद है न? **सब संसारी मिथ्यादृष्टि जीव...** आहाहा! **सहज से शुद्धस्वरूप है...** उसका स्वभाव ही पवित्र आनन्द शुद्ध स्वरूप है। अनादि का सहज स्वभाविक शुद्ध स्वरूप है। **तथापि** [**अज्ञानात्**] **मिथ्यादृष्टि से** [**आकुलाः**] **आकुलित होते हुए...** इस शुभ–अशुभभाव में अपनी रुचि करके आकुलित होता है। आहाहा! आकुलता के पंजे में पकड़ा गया है। पोपटभाई! आहाहा! स्त्री, पैसा और परिवार अनुकूल है, ऐसा रागभाव, वह आकुलता में पड़ा; और प्रतिकूलता बिच्छू का, सर्प का डंक इत्यादि है, यह उसे स्पर्श नहीं करता परन्तु वह अन्दर आवे तो ठीक नहीं, अरुचि उत्पन्न हो, उस द्वेष में इसकी अर्पणता हुई। आहाहा! सूक्ष्म अपूर्व बात है, भगवान! आहाहा! वह कर्ता होकर आकुलता करता है, वह भोक्ता होकर आकुलता भोगता है, कर्ता होकर आकुलता भोगता है, ऐसा कहते हैं। श्वया कहा? देखो!

मिथ्यादृष्टि से आकुलित होते हुए... 'कर्त्रीभवन्ति' जोर यहाँ है। **बलात्कार ही कर्ता होते हैं।** यह श्वया कहते हैं? आहाहा! भगवान तो शुद्ध ज्ञानमय ज्ञाता–दृष्टा है। राग का बलजोरी से कर्ता होता है। उल्टा जोर देकर राग का कर्ता होता है। आहाहा! ऐसी निश्चय सत्य बात लोगों को ऐसी लगती है कि एकान्त है। कुछ करना (ऐसा तो आता नहीं)। आगरा में एक व्यक्ति कहता था। व्याक्ख्यान था, तब आगरा में बहुत लोग थे। एक पण्डित था पण्डित। श्वया नाम था?

मुमुक्षु : बाबूलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'बाबूलाल' लक्बा–मोटा था। आगरा में। वह खड़ा हो गया और फिर बहुत मजा आया। करना–फरना कुछ नहीं, मजा बहुत। अरे! भगवान! श्वया करना है? प्रभु! तुझे श्वया करना है? आहाहा! ऐसा कि कुछ करना—भक्ति, पूजा, दया, दान आदि कुछ करना नहीं और मजा बहुत। 'बाबूलाल' नाम था? 'बाबूराम'। अरे..! भगवान!

बापू! ञ्चया कहता है? भाई! यह करने में राग को करूँ, वहाँ मरना है। उसमें आत्मा की शान्ति का नाश होता है। भाई ने लिखा है। नहीं? सोगानी, निहालभाई सोगानी। तुम्हें द्रव्यदृष्टि प्रकाश मिला है या नहीं? नन्दकिशोर! नहीं मिला? दोपहर में ले जाना। पढ़ो तो सही। तुम सब वकील हुए, लोक में बुद्धिवाले (कहलाते हो)।

मुमुक्षु : करना, वह मरना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, वह मरना, उसमें है। भाई! उसमें ऐसा लिखा है। करना—राग करना, ऐसा करना... ऐसा करना... वह मरना है। यहाँ यह कहते हैं।

शुद्ध ज्ञानमय होने पर भी, ऐसा आया न? ञ्चया कहा? देखो! **सब संसारी मिथ्यादृष्टि जीव सहज से शुद्धस्वरूप है...** शुद्ध चिदानन्दस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा आनन्दकन्द प्रभु है। **तथापि मिथ्यादृष्टि से आकुलित होते हुए बलात्कार ही कर्ता होते हैं।** सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? वीतरागमार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। राग से उत्पन्न नहीं होता। राग तो आकुलता है, दुःख है। तो व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चय होता है, भगवान! ऐसा नहीं है, प्रभु! ठगा जाता है। मनुष्यभव चला जाएगा और भवाद्धि चौरासी के अवतार खड़ा रह जाएगा। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप, पवित्रस्वरूप, आनन्दस्वरूप, भगवत्स्वरूप आत्मा होने पर भी बलजोरी से अपने स्वरूप का आश्रय न करके, अनादर करके यह पुण्य-पाप के भाव विकल्प जो राग, उसका कर्ता होता है। समझ में आया? विषय सूक्ष्म है। धर्म कोई ऐसी चीज़ है कि जिसमें सक्ष्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम धर्म है। ऐसे का ऐसा धर्म किया, भक्ति की, पूजा की, यह किया और व्रत किये, (वह धर्म, ऐसा नहीं है)। और सेठियों को फुरसत नहीं मिलती और वे करें वह ठीक, धर्म मनावे। वह पण्डित कहे हाँ, वे कहें हाँ। मफतभाई! यह हमारे भावनगर के सेठ रहे न। ऊपर कहे वह जी हाँ करे। यह करना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना। ञ्चया यह नहीं? धर्म नहीं है?

अभी मञ्चखनलालजी ने लिया है। बहुत प्रश्न उठाये हैं। शुभभाव धर्म है, मोक्ष का मार्ग है। अखबार में आया है। कैलाशचन्दजी कहते हैं शुभभाव बन्ध का कारण है। अब

अभी पण्डितों के बीच चर्चा हुई। इतने वर्ष पश्चात्! गाँधी! एक ओर कैलाशचन्दजी तथा एक ओर मञ्जखनलालजी। मञ्जखनलालजी ने कहा कि शुभभाव मोक्ष का मार्ग है, तब कैलाशचन्दजी कहते हैं, नहीं। शुभभाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा मञ्जखनलालजी ने कहा। कैलाशचन्दजी कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं शुभभाव हेय है तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हुए। प्रवचनसार में। प्रवचनसार में पहले भाग में है। कैलाशचन्दजी कहते हैं। हम तो पहले से कहते हैं। समझ में आया?

राग हेय है। वीतरागचारित्र, वह उपादेय है। आहाहा! प्रवचनसार की पहली शुरुआत की गाथा। राग का कण बीच में आता है। जब तक सातवें गुणस्थान में वीतरागता न हो, तब तक छठवें गुणस्थान में आनन्द के स्वाद के साथ राग आता है, परन्तु उस राग का कण है, वह हेय है। छठवें गुणस्थान में आत्मअनुभवी जीव को, जिसे तीन कषाय का अभाव होकर आनन्द की लहर उठती है उसको। मुनिराज तो आनन्द के प्रचुर वेदन में स्थित हैं। उसमें पुरुषार्थ की कमजोरी से पंच महाव्रत का राग आता है, वह हेय है। अत: कैलाशचन्दजी ने लिखा है कि कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि शुभभाव हेय है। और तुम कहते हो कि शुभभाव हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है, तो कुन्दकुन्दाचार्य मिथ्यादृष्टि हैं? बड़ा चैलेंज दिया। उसमें है। किसमें?

मुमुक्षु : करुणादीप।

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणादीप में। यह कहीं याद नहीं रहता। करुणादीप में बहुत बड़ा लेख है। कैलाशचन्दजी को चैलेंज देते हैं। चैलेंज देते हैं कि शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। लाओ चैलेंज। अरे! भगवान! यह कहाँ से (लाये)? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि शुभभाव का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। इतना अन्तर है, प्रभु! ञ्चया हो?

मुमुक्षु : यह उपकार आपका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति ऐसी है। हम तो पहले से कहते आये हैं। कैलाशचन्दजी एक बार ऐसा कहते थे कि शुभभाव भी धर्म है। पहले ऐसा कहते थे। खबर है। अब जरा अन्तर पड़ गया।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! एक बार तो सुन, नाथ! तू भगवत्स्वरूप है न, नाथ!

शुद्ध आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दकन्द है न। वह राग का बलजोरी से कर्ता होता है। वह तेरी चीज़ नहीं है। ऐसे पुण्य के परिणाम का बलजोरी से कर्ता होता है। जोर से, उल्टे जोर से कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! अभी उसका ज्ञान भी नहीं कि सत्य ज्ञया है और ज्ञया असत्य है? उसका प्रयोग अन्दर में कैसे करे? और धर्म कैसे हो? आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर का हुकम है, वह आचार्य कहते हैं। समझ में आया? नहीं तो आचार्य स्वयं कहे, वह सत्य है। वे महा सन्त हैं, वीतरागी मुनि हैं। तथापि वे कहते हैं—जिनवरदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहे, हों! नहीं तो वे तो मुनि हैं। वे स्वयं वीतरागी मुनि कहें, वह सत्य है परन्तु दुनिया को कहे तब जिनवर '**एवं भणंति**', ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, हों! आहाहा! समयसार की गाथा में आता है। जिनवर '**एवं भणंति**'। आहाहा! पर को जिलाना, मारना, सुखी-दुःखी करना, वह तेरा अध्यवसाय मिथ्यात्व है, ऐसा जिनवरदेव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? नाम लेते हैं। भगवान का नाम लेकर कहते हैं। आहाहा! धन्य अवतार! वे तो मुनि-सन्त हैं, वीतरागी मुनि हैं। एक कषाय का अंश जरा छठवें गुणस्थान में आता है। वह भी हेयबुद्धि से है। आहाहा! कर्ताबुद्धि से नहीं। आहाहा! कर्ताबुद्धि से होवे तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

५७वें (श्लोक) में भोक्ता की बात करके मिथ्यादृष्टि कहा। हर्ष-शोक का भोक्ता, वह मिथ्यादृष्टि है। अपने स्वाद का भोक्ता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! यहाँ '**कर्त्रीभवन्त्याकुलाः**' ५८ (कलश) में अन्तिम शब्द है न? अन्तिम पद है। आहाहा! भाई! यह तो शान्ति का मार्ग है। यह कोई जोर से बोले और ऐसे, वैसे धमाल करे, बड़ी रथयात्रा निकाले, मन्दिर बनावे, बड़ा भाषण करे, इसलिए धर्म होता है (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! भाषा का कर्ता आत्मा नहीं है। यह तो स्वतन्त्र परमाणु की पर्याय है। परन्तु तुझमें जो दया, दान, व्रत, भक्ति का जो शुभराग आता है.... आहाहा! वह शुद्धस्वरूप भगवान आनन्दकन्द पवित्र है, (उससे विपरीत) बलजोरी से अपवित्र अशुद्ध

का कर्ता होता है। ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! भाषा तो देखो! अमृतचन्द्राचार्य... आहाहा! दिगम्बर सन्त। आहाहा! धन्य अवतार! जिन्होंने मनुष्यपना सफल किया और केवलज्ञान का काल न होने से केवलज्ञान नहीं हुआ। स्वर्ग में गये, वहाँ से निकलकर केवलज्ञान लेकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। आहाहा! धन्य अवतार! चारित्रसहित जहाँ वीतरागता आयी... आहाहा! समझ में आया?

यह अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं, भगवन्त! तेरा स्वरूप तो निर्मल और शुद्ध है न, नाथ! तू राग जो अशुद्ध है, उसका बलजोरी से कर्ता कैसे होता है? उल्टी दृष्टि-बलजोरी का अर्थ यह। राग का कर्तापना स्वभाव में तो है ही नहीं। आहाहा! एक बार कहा था न! इन्दौर में पचास पण्डित इकट्ठे हुए। प्रश्न आया था। परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर नहीं। अरे! भगवान! बात यह कि यहाँ का विरोध करना है। अरे! प्रभु! भाई! समझ में आया? पण्डितजी को खबर नहीं होगी। एक बार इन्दौर में हुआ था। लगभग पचास पण्डित (इकट्ठे हुए) । बहुत वर्ष हुए। वे ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य का कर्ता नहीं? परद्रव्य का कुछ कर नहीं सकता? मन्दिर बनाना, भगवान की मूर्ति आदि। अरे! भगवान! उस परद्रव्य की तो यहाँ बात ही नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु! तू शुद्ध है न। उस शुद्ध में अशुद्धता का कर्ता तो बलजोरी से होता है। तेरी मिथ्यादृष्टि से तू हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तेरी शक्ति और तेरे स्वरूप तो पवित्रता का पिण्ड पड़ा है न, प्रभु! उस पवित्रता को छोड़कर जोर से उसमें नहीं, वह शुद्ध, राग का कर्ता नहीं, परन्तु मिथ्यादृष्टि के जोर से तू राग का कर्ता होता है, तू दुःखी होगा। आकुलता (होगी) । है? **'कर्त्रीभवन्त्याकुलाः'** आहाहा! गजब बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर का तो यह मार्ग है। आहाहा! अब इसे एकान्त कहकर एकान्त है... एकान्त है। भगवान! यह अमृतचन्द्राचार्य क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : व्यवहार से धर्म होता है, ऐसा आप नहीं कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तीन काल में नहीं कहते। यहाँ तो व्यवहार, वह दुःखरूप है। व्यवहार वह जहर है। कर्ता होकर जहर का स्वाद ले, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : नय बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नय है तो श्रुत हुआ ? किसी नय को लागू पड़ता है। निश्चय से कर्ता नहीं, यह नय लागू पड़ता है। अज्ञानभाव से कर्ता है, यह लागू पड़ता है। आहाहा! अशुद्ध निश्चय से कर्ता कहो या व्यवहार से कर्ता कहो, या परमार्थ से कर्ता न कहो, एक ही बात है। आहाहा! अरे! प्रभु का मार्ग, भाई! आहाहा!

मनुष्यदेह चला जाता है। क्षण और पल, दिन और रात यह देह छूटने की जो अवधि है, उसके सन्मुख जाता है। आहाहा! भाई! जो देह छूटने की अवधि है, वह तो पक्की है। उसमें कोई समय फेर होगा नहीं। जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस संयोग में देह छूटने का काल भगवान ने देखा है, उस समय में छूटेगा। उस छूटने के काल में जितने दिन और वर्ष जाते हैं, वह मृत्यु के सन्मुख जाता है। मृत्यु के काल के सन्मुख जाता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, अरे! प्रभु! तू शुद्ध है न ? आया न ? है ? **'शुद्धज्ञानमयाः'** आहाहा! प्रभु! तू तो शुद्ध ज्ञानमय है न। उस ज्ञानमय में आनन्दमय आया। मूल ज्ञानप्रधान से कथन है। प्रभु! तू तो आनन्दमय है न, तू तो राग के अकर्तास्वरूप है न ? आहाहा! तू तो व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का अकर्तास्वरूप है। शुद्धज्ञानमय का अर्थ यह है। प्रभु! तू तो राग के अकर्तास्वरूप है न। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! गजब श्लोक है। दिगम्बर सन्तों की वाणी रामबाण है। जैसे राम का बाण छूटे और सामने मृत्यु न हो, ऐसा नहीं होता। रामबाण मारा, वह मारा। आहाहा!

प्रभु! तू शुद्ध ज्ञान है न! आहाहा! तू तो ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भरपूर है न! आहाहा! प्रभु! तू तो वीतरागस्वरूपी परिपूर्ण है न! ऐसी चीज़ होने पर भी बलात्कार-मिथ्यात्व के जोर से... आहाहा! भाषा तो देखो! वापस राजमलजी ने टीका भी कैसी की! राजमलजी गृहस्थ थे। जैनधर्म के मर्मी। इसमें से समयसार नाटक बनाया। आहाहा! अरे! एक घण्टे भी ऐसी बात कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, ओहोहो! गजब बात है। **सहज से शुद्धस्वरूप**... भाषा देखो! श्रुत है ? तू तो स्वाभाविक शुद्ध और आनन्दस्वरूप प्रभु है न। दूसरी भाषा से कहें, प्रभु! तू तो राग के अकर्तापने के स्वभावस्वरूप है न! आहाहा! ज्ञानमय का अर्थ यह। आहाहा! तेरा स्वभाव ही स्वाभाविक ज्ञातादृष्टा, आनन्द, वीतरागकन्द प्रभु तू है न! तो यह हठ कहाँ से

पकड़ी ? बलात्कार का अर्थ हठ। हठ करके राग का जोर से कर्ता होता है, यह वस्तु में नहीं है। ज्ञानचन्दजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पण्डित रहे, देखो न ! अब यह सब पण्डित हुए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरों को सुनावे ऐसा उल्टा। यह तो अब यह लोग पण्डित जागृत हुए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य को स्वीकार करे, वह सोनगढ़िया ऐसा न ? उसे जो सत्य लगा, वह रुचा है। आहाहा !

मुमुक्षु : भोले भोग...

पूज्य गुरुदेवश्री : भोले लोग ऐसा कहते हैं। रामजीभाई जैसे भोले लोग। महाराज ऊपर जो कहे वह जी हाँ, जी हाँ किया करे। अरे ! भगवान ! यहाँ तो एक-एक शब्द और एक-एक भाव की कसौटी करके परीक्षा करनी है। ऐसे का ऐसा मानना नहीं है। आहाहा !

भगवान का विरह सन्तों ने भुला दिया है। ऐसी स्पष्ट अनुभव की वाणी उन्होंने कही है। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत जानपना हो, न हो, दूसरों को समझाना आता हो, न आता हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा ! भगवान ! तू तो शुद्ध ज्ञानमय है न ? ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? सहज शुद्ध ज्ञानमय है न ! स्वाभाविक तेरा आनन्द और ज्ञान तथा राग के अकर्तापने का तेरा स्वभाव है न ! आहाहा ! क्योंकि उसमें—आत्मा में अकर्ता नाम का गुण है। समझ में आया ? यह ४७ शक्ति है न ? उसमें अकर्ताशक्ति है। राग को करना नहीं, ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा ! वह यहाँ कहते हैं कि तू तो ज्ञानमय अर्थात् राग, व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता नहीं, ऐसा अकर्ता तेरा स्वभाव है न ? आहाहा ! समझ में आया ?

सहज से... 'स्वयं' है न ? **'स्वयं'** स्वयं ज्ञानमय है। स्वयं अकर्तामय है। राग और

पुण्य और व्यवहार का अकर्ता स्वयं है। आहाहा! यह विवाह होवे, तब तुक्हारे पत्र में नहीं लिखते? लड़की का दामाद न आता हो तो लिखते हैं, थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा लिखते हैं। थोड़ा लिखा, बहुत जानना, ऐसा आता है। पाँच-सात लड़कियाँ हों। उनमें कोई कड़क दामाद हो, वह न आवे तो ऐसा लिखना पड़े।

मुमुक्षु : थोड़ा लिखा बहुत...

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा लिखा बहुत जानना। आपके आने से मण्डप की शोभा बढ़ेगी, ऐसा लिखते हैं। दुनिया की तो सब खबर है न। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि थोड़ा लिखा बहुत जानना कि तेरी चीज़ तो आनन्दकन्द है, प्रभु! आहाहा! तेरी चीज़ तो पुण्य और दया, दान के राग का अकर्ता तेरा स्वभाव है न! आहाहा! वेणीप्रसादजी! इसमें प्रसाद हो जाओ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान! भाषा कैसी है? स्वाभाविक तू तो ज्ञानमय है न, नाथ! आहाहा!

मुमुक्षु : भाषा तो जैसी है वैसी है, स्पष्टता कैसी है!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह लोगों का भाग्य है न। वाणी आना, वह वाणी के कारण से है। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे कारण से है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है न? दिव्यध्वनि में नहीं आता? 'भवि भागनजोग' आता है। भव्यों के भाग्ययोग से वाणी निकलती है, ऐसा निर्मा से कथन है। भविभागनयोग आता है न? भव्य के भाग्य के योग से हे नाथ! तुम तो वीतराग हो। तुक्हारे में वाणी निकलना, करना वह तो है नहीं। भव्य भाग्य के योग से दिव्यध्वनि का प्रसाद आता है। आहाहा! आहाहा! गजब अर्थ किया है न! अर्थ करनेवाले भी गजब किया है न! प्रभु!

मिथ्यादृष्टि जीव सहज से शुद्धस्वरूप है... ऐसा कहकर ञ्चया कहते हैं? कि राग और पर का अकर्ता स्वभाव तेरा है। तेरा स्वभाव ही अकर्ता शुद्ध ज्ञानमय है। आहाहा! तू यह ञ्चया करता है? भगवान! यह ञ्चया करता है? ऐसी हठ? **बलात्कार ही कर्ता होते हैं।** ही शब्द है? **बलात्कार ही कर्ता होते हैं।** आहाहा! 'ही' शब्द पड़ा है न? बलात्कार।

वस्तु में नहीं, ऐसा जोर मिथ्यादृष्टिरूप से करता है। बलात्कार उल्टे वीर्य से तू राग का कर्ता होता है। आहाहा! लोगों को यह मार्ग कठिन पड़ता है। परमसत्य तो यह है परन्तु प्रथा (विपरीत हो गयी है)।

मुमुक्षु : दोनों श्लोकों में बहुत अन्तर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भोक्ता का था, यह कर्ता का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी आया। ५६ में यह आया। ... वहाँ शुद्ध-अशुद्ध की परिणति कहते हैं, इतना। उसे पर से भिन्न करते हैं, इतनी बात है। शुद्ध-अशुद्ध परिणमन तेरा है, इतनी पर्याय की सिद्धि करते हैं। अब यहाँ द्रव्यस्वभाव की सिद्धि करनी है। समझ में आया? वह अशुद्ध परिणति भी तुझमें होती है, तेरी है। वह तो इसकी पर्याय की स्वतन्त्रता की सिद्धि करते हैं। अब यहाँ द्रव्यस्वभाव की सिद्धि करते हैं।

भगवान! तेरा स्वभाव तो ज्ञानमय और आनन्दमय है न, प्रभु! तू यह ञ्चया करता है? ऐसा बलजोरी से, हठ से, जबरदस्ती करके राग का कर्ता होता है, ञ्चया करता है तू? हठ से ञ्चया काम करता है? ऐसा हठवादी किसलिए हुआ? आहाहा! समझ में आया? कहाँ गये माणेकचन्दभाई? कहाँ बैठे हैं? यहाँ बैठे हैं। ठीक! बापू-सेठ यहाँ बैठे हैं और माणेकचन्दभाई ऐसे बैठे हैं। यह तो बात ऐसी है, भाई! आहाहा! ५६वें श्लोक में तो शुद्ध-अशुद्ध परिणति की पर्याय तेरी है और तू करता है, इतना परद्रव्य से भिन्न करना है।

मुमुक्षु : परिणति अपनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी है इतना। अब वह राग की परिणति स्वभाव में नहीं है, (ऐसा सिद्ध करना है)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से लेते हैं। ५६वें कलश में ऐसा कहा कि **'आत्मा आत्मभावान् करोति'** इस भाव का अर्थ दो है। शुद्ध परिणति और अशुद्ध परिणति। पर से भिन्न पाड़कर तेरी परिणति, तेरी पर्याय में तुझसे हुई है, बस इतना। ऐसा कहकर पर से

नहीं हुई, ऐसा निषेध करना है। अब यहाँ तो यह निषेध करते हैं कि अशुद्ध परिणति का कर्ता होकर करता है, कर्ता होकर करता है, यह तेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु : पर्याय की अपेक्षा..

पूज्य गुरुदेवश्री : (वहाँ) पर्याय की अपेक्षा है, यहाँ द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा है। शुद्ध ज्ञानमय लिया न? समझ में आया? आहाहा! ऐसा है।

तथापि मिथ्यादृष्टि से [**अज्ञानात्**] **आकुलित होते हुए...** भाषा देखो! आहाहा! इस राग का कर्ता आकुलित होकर होता है। आहाहा! भगवान! तेरे आनन्दस्वभाव को तू भूल जाता है। जो सहज स्वभाव, आनन्द और अकर्ता स्वभाव तेरा है, उसमें बलजोरी से आकुलित होता हुआ... आहाहा! दुःखी होता हुआ, ऐसा कहते हैं। तू दुःखी होकर राग का कर्ता होता है। आहाहा! ऐसी बात है। बलात्कार-भाषा तो देखो! राजमल की टीका। गृहस्थ थे तो भी कितनी सत्य बात करते हैं। अर्थ राजमलजी के हैं। आहाहा!

बलात्कार ही... शब्द है, देखा! तेरी झूठी बलात्कार है। आहाहा! **किस कारण से? बलात्कार ही कर्ता होते हैं। किस कारण से?** शुद्ध ज्ञानमय, आनन्दमय होने पर भी बलजोरी से आकुलित होता हुआ राग का कर्ता होता है। क्यों? **'विकल्पचक्रकरणात्' अनेक रागादि के** [**चक्र**] **समूह के करने से।** आहाहा! अनेक प्रकार के शुभराग, असंख्य प्रकार के अशुभराग इन अनेक प्रकार के राग। राग आदि है न? राग, द्वेष, शोक, हर्ष आदि इत्यादि। **अनेक रागादि के समूह के करने से।** किस कारण से किया? कि इस कारण से। अनेक प्रकार के राग करने में तेरी बुद्धि वहाँ जुड़ गयी है। चैतन्य की ओर रही नहीं। आहाहा!

अब यहाँ तो पुकार यह करते हैं, शुभभाव से धर्म होता है, शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। अरे रे! यहाँ कहते हैं कि शुभभाव का कर्ता बलजोरी से होता है तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। अब इसमें कहाँ मेल करना? वाद करो, कहते हैं। चर्चा तो फूलचन्दजी के साथ हो गयी। खानिया चर्चा हो गयी। ज्ञानचन्दजी कहते हैं हमने पढ़ी है। दोनों पुस्तकें पढ़ी हैं? आठ-आठ रुपये की हैं न? आहाहा! खानिया चर्चा है न भाई? सेठ! पढ़ी है न? दो भाग हैं। आठ-आठ रुपये के। आहाहा! चर्चा तो बहुत हो गयी। फिर से चर्चा (करो)। परन्तु किसके (साथ में)? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य नियमसार में कहते हैं, प्रभु! तुझे ज्ञानधन प्राप्त करना हो, जैसे किसी को लक्ष्मी मिली हो और देश में आकर अकेला खाता है। ढ़िंढ़ोरा नहीं पीटता कि मैं पाँच करोड़ लाया, पाँच करोड़ लाया। नहीं तो लूट लेंगे। कुटुम्ब-बुटुम्ब और महाजन और ये लोग कि लाओ... लाओ... लाओ। इसी प्रकार यदि तुझे आत्मज्ञान हुआ हो तो स्वसमय और परसमय के साथ वाद करना नहीं। किसी के साथ चर्चा नहीं करना। ऐसा पाठ है। क्यों? - कि 'णाणा जीवा णाणा कम्मा णाणा लद्धिध।' नियमसार में ऐसा शब्द है। अनेक प्रकार के जीव भव्य-अभव्य, दुर्भव्य। णाणा कम्मा, कर्म अनेक प्रकार के हैं। णाणा लद्धिध, उनके क्षयोपशम में भी अनेक प्रकार की प्राप्ति है। तू किसके साथ चर्चा करेगा? आहाहा! समझ में आया? स्वसमय के साथ और परसमय के साथ, दोनों के साथ वाद नहीं करना, प्रभु! तू तेरे अनुभव में जा। तू आनन्द का अनुभव कर। बस। उसे लूट। दूसरी बात रहने दे, छोड़ दे। आहाहा!

'विकल्पचक्रकरणात्' आहाहा! **किसके समान?** अब दृष्टान्त देते हैं। **'वातोत्तरंगाब्धिवत्' वायु से डोलते-उछलते हुए समुद्र के समान।** आहाहा! समुद्र तो निश्चल है परन्तु यहाँ दृष्टान्त देना है कि पवन के कारण से डोलता समुद्र है। है तो अपनी पर्याय के कारण से। समझ में आया? पवन से वह तरंग नहीं उठती हैं। परन्तु यहाँ बताना है कि कर्म के निर्मा के सम्बन्ध में जाने से तुझे **'विकल्पचक्र'** उत्पन्न होता है। यह बात है। आहाहा! समझ में आया? यह तो ८३ गाथा में आ गया है। ८३ गाथा। कर्ताकर्म। समुद्र में जो तरंग उठती है, उसमें पवन निर्मा है। वायु से तरंग नहीं उठती। यह ८३ गाथा में कहा। जैसे इस ५६वें कलश में कहा न? कि तेरी अशुद्ध परिणति तुझमें हैं। यह वहाँ— ८३ में सिद्ध किया है। समुद्र उछलता है, वह वायु के कारण से नहीं। अपनी तरंग उठती है, वह अपने कारण से है। पवन तो निर्मा है। पवन से तरंग नहीं उठती। आहाहा! समझ में आया? ध्वजा ऐसे हिलती है न? कपड़े की ध्वजा ऐसे हिलती है तो वह पवन के कारण से नहीं। अपनी पर्याय से ऐसे-ऐसे हिलती है। पवन तो निर्मा है। पवन तो उसे स्पर्शती भी नहीं। आहाहा! हवा से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

यहाँ दूसरी बात करनी है। यहाँ निश्चल समुद्र की स्थिति बतानी है, ऐसे शुद्ध

ज्ञानमय घन आत्मा बताना है। उस पवन से तरंग उठती है, वैसे कर्म के निर्मा से विकल्प का चक्र तू उठाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसमें तो कहीं सन्देह को स्थान नहीं है। आहाहा!

डोलते-उछलते हुए समुद्र के समान। यहाँ समुद्र को निश्चल लेना और तरंग उठती है, वह वायु से उठती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप स्थिर है। उसमें कर्म के निर्मा के समुद्र में तू विकल्प का चक्र उठाता है। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जैसे समुद्र का स्वरूप निश्चल है,... यहाँ ऐसा लेना है। स्वरूप निश्चल एकरूप है। आहाहा! **वायु से प्रेरित होकर उछलता है...** इस वायु के निर्मा से उछलता है, इतना सिद्ध करना है। तरंगें उठती हैं, वे स्वयं से, यह ५६वें कलश में कहा ऐसा। परन्तु यहाँ तो अब शुद्ध ज्ञानघन है, ऐसा कहकर विकार के परिणाम निर्मा के कारण से, निर्मा के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? अरे! एक बार ऐसा कहते हैं कि विकल्प की तरंगें तेरी पर्याय तुझसे होती है; कर्म से नहीं। यहाँ तो शुद्ध ज्ञानघन सिद्ध करना है। वहाँ तो परिणति सिद्ध की। अब आत्मा शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसा सहज स्वभाव होने पर भी, वायु के निर्मा से, जैसे समुद्र निश्चल है तो भी तरंगें उठती हैं, वैसे विकल्प के चक्र से तुझमें तरंग उठती हैं। आहाहा! है?

प्रेरित होकर उछलता है और उछलने का कर्ता भी होता है,... कौन? समुद्र। **वैसे ही जीवद्रव्य स्वरूप से अकर्ता है।** भाषा देखो! शुद्ध ज्ञानमय आया था न? शुद्ध ज्ञानमय कहने से स्वरूप तो राग का अकर्ता ही है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग का अकर्ता आत्मा है, अकर्ता ही है। आहाहा! वह शुद्ध ज्ञानमय कहने में यह कहना था। राग का अकर्ता उसका स्वभाव है, राग का कर्ता उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! अनजाने व्यक्ति को ऐसा लगे, ज्ञया कहते हैं यह? कैसी भाषा? ज्ञया है? बापू! भगवान का मार्ग तो ऐसा है। तू तो आनन्दकन्द है न नाथ! राग और विकल्प का अकर्ता तेरा स्वभाव है। तू बलजोरी से मिथ्याश्रद्धा से कर्ता होता है, वह तुझमें संसार है। आहाहा! समझ में आया? बात तो थोड़ी कठिन है।

जीवद्रव्य स्वरूप से अकर्ता है। देखो न! यहाँ कहा था न? **'शुद्धज्ञानमयाः'** यह **'शुद्धज्ञानमयाः'** में यह सिद्ध करना था कि यह तो राग का अकर्ता स्वभावस्वरूप शुद्ध ज्ञानमय है। समझ में आया? आत्मा तो राग का अकर्ता स्वभावस्वरूप शुद्ध ज्ञानमय है, ऐसा कहना था। आहाहा! **कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है,...** देखो! कर्म से नहीं परन्तु कर्म के संयोग से। संयोग पर दृष्टि करता है तो एकदम विकल्प चक्र उठता है। **कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है,...** जैसे समुद्र निश्चल होने पर भी वायु के निर्मि से तरंगें उठती हैं, उसी प्रकार भगवान! तेरा राग का अकर्ता स्वभाव होने पर भी कर्म के संयोग सम्बन्ध से तू राग का कर्ता होता है। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें।

इसलिए विभावपने का कर्ता भी होता है। देखा? **कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है, इसलिए विभावपने का कर्ता भी होता है।** अज्ञानरूप से। **परन्तु अज्ञान से,...** देखा? विभाव का कर्ता होता है, वह अज्ञान से। स्वरूप में नहीं है। स्वरूप तो ज्ञानघन आत्म चैतन्यप्रभु, उसके कारण से नहीं, परन्तु अज्ञान से। आहाहा! उस शुद्ध चैतन्य के अज्ञान के कारण से। आहाहा! **स्वभाव तो नहीं।** विकल्प जो राग है, उसके कर्ता का स्वभाव तो जीव में है ही नहीं। आहाहा! स्वभाव होवे तो कभी कर्ता छूटे नहीं और सिद्धपद प्राप्त हो नहीं।

मुमुक्षु : .... उछलना वह विभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विभाव है। अपना नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! परन्तु थोड़ा लिखा बहुत समझना। ऐसी बात है।

दृष्टान्त कहते हैं– 'मृगाः मृगतृष्णिकां अज्ञानात् जलधिया पातुं धावन्ति' आहाहा! समय हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ७, रविवार, दिनांक २१-०८-१९७७
कलश-५८-५९, प्रवचन-७३

कलश टीका, ५८वाँ कलश चलता है। ५७ में ऐसा आया कि आत्मा पुण्य और पाप का भोक्ता नहीं है। क्योंकि वह विकार है। पर का भोक्ता तो नहीं। शरीर, वाणी, मन (आदि) परपदार्थ का भोक्ता तो है नहीं। अन्दर में पुण्य और पाप का शुभ-अशुभ विकार होता है। उसका भोक्ता आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! उसका स्वभाव तो आनन्द और शुद्धता के अनुभव का भोक्ता हो, यह उसका स्वभाव है। ५८ वें कलश में ऐसा कहा, पण्डितजी! यहाँ **'कर्त्रीभवन्ति'** शब्द पड़ा है न? **'कर्त्री'** शब्द क्यों लिया? चेतनजी कहते हैं, कर्ता में ऐसा आता है। **'कर्त्रीभवन्ति'** है न? **'कर्ताभवन्ति'** शब्द नहीं लिया। संस्कृत यह किया। भाई चेतनजी कहाँ गये? चेतनजी नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह।

मुमुक्षु : कर्ता-अकर्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ हाँ, कहा था। **'कर्त्रीभवन्ति'** संस्कृत में ऐसा है। यह ५८वीं गाथा में (कलश में) **'कर्त्रीभवन्ति'** की व्याख्या है। अर्थात् समुद्र में, समुद्र जैसे निश्चल है, परन्तु पवन के निर्मि से तरंग उठती है और उस तरंग का कर्ता समुद्र होता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... कल आ गया है। शुद्ध ज्ञानमय होने पर भी, जैसे समुद्र निश्चल है; वैसे भगवान आत्मा सागर-समुद्र, ज्ञानस्वरूप का समुद्र निश्चल है। आहाहा! परन्तु कर्म के संयोग का सम्बन्ध करके विकार उत्पन्न करता है। आहाहा! उस विकार का कर्ता आकुलता से होता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। अभी तो ऐसा चलता है कि शुभराग, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसा कहते हैं। कहो, शुभ उपयोग, शुभराग, वह मोक्ष का मार्ग है। यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न, ...पने। वह शुभराग, उसका कर्ता होना, वह पर्यायबुद्धि, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। समझ में आया?

यहाँ तो शुभराग को अजीव में डाला है। वह जीव का स्वरूप ही नहीं है। ऐसा कहा

न ? ऊपर कहा न ? **'शुद्धज्ञानमयाः'** शुद्धस्वरूप आत्मा है। आहाहा ! वह तो ज्ञानमय, चैतन्यमय प्रभु आत्मा है। आहाहा ! उस चैतन्य के प्रकाश का पुंज आत्मा है। ऐसा होने पर भी कर्म के संयोग का सक्बन्ध करता है तो उसमें पुण्य-पाप का भाव उत्पन्न होता है, अज्ञानभाव से उसका कर्ता होता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! आया ?

यहाँ तक आया, देखो ! **वैसे ही जीवद्रव्य स्वरूप से अकर्ता है।** है ? डालचन्दजी ! है ? स्वरूप से तो भगवान आत्मा अकर्ता है। आहाहा ! ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा अपने स्वरूप से तो राग—शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का राग भी स्वरूप से तो अकर्ता है। आहाहा ! समझ में आया ? **कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है,...** आहाहा ! कर्मरूपी पदार्थ वह जड़, निर्मी (है), उसका संग करने से; उससे नहीं परन्तु उसका संग करने से विकार के परिणाम करता है। आहाहा ! **इसलिए विभावपने का कर्ता भी होता है।** कर्ता भी होता है, ऐसा क्यों कहा ? कि ज्ञानमय होने पर भी... आहाहा ! वह कर्म के संयोग के संग में लक्ष्य करके पर्यायबुद्धिवन्त अज्ञानी, उस कर्म के संयोग के सक्बन्ध से शुभभाव करता है। उसका कर्ता भी होता है। ऐसा कहा न ? ज्ञाता भी है परन्तु वह तो स्वरूप से है। आहाहा !

मुमुक्षु : राग का कर्ता भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का कर्ता भी होता है। आहाहा ! परन्तु वह कर्ता अज्ञान से होता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात, भाई ! भगवान चैतन्य ज्योति प्रकाश का पुंज और रागादि तो अन्धकार है। समझ में आया ? चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग (हो)। भगवान ७२ गाथा में तो ऐसा कहते हैं कि वह अशुचि है, मैल है। भगवान निर्मलानन्द उससे भिन्न है। ऐसी दृष्टि न करके राग जो अशुचि—मैल है, उसकी दृष्टि करता है, उसे मैल का अनुभव होता है। आहाहा ! समझ में आया ? और (राग) अशुचि है तो भगवान आत्मा शुचि है। ऐसा ७२ गाथा में कहा न ? ७० और २। समयसार।

भगवान आत्मा... आहाहा ! आचार्य भी बोलते हैं। पुण्य और पाप के भाव, प्रभु ! वे अशुचि हैं, मैल हैं, मलिनरूप से पानी में जैसे कीचड़ का मैल है... कादव कहते हैं न ? कीचड़... कीचड़। वह जैसे मैलरूप से अनुभव में आता है, वैसे भगवान आत्मा में शुभ-

अशुभभाव मैलरूप अनुभव में आते हैं। भगवान आत्मा... अमृतचन्द्राचार्य ने ७२ गाथा की संस्कृत टीका में ऐसा लिया। भगवान आत्मा—ऐसा कहा। आहाहा! वह तो अति निर्मलानन्द प्रभु है। आहाहा! उस निर्मल आनन्द में मलिनता कहाँ से आयी? कहते हैं। समझ में आया? और पुण्य और पाप के भाव को वहाँ ७२ गाथा में जड़ कहा है। जड़ है, क्योंकि चैतन्य के प्रकाश के नूर के तेज का राग में अभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यपुंज प्रभु है और राग चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, उसमें चैतन्य के प्रकाश का तो अभाव है। क्या है?

मुमुक्षु : .... छूना नहीं। आवाज आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, समझ गया।

इसी प्रकार कर्म को छूना नहीं। भगवान! आहाहा! कर्म को स्पर्श करने से अपने में विकार होता है। आहाहा! और भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प शुभराग-विकार को जड़ कहते हैं। क्योंकि चैतन्य के प्रकाश के तेज का पूर प्रभु उस चैतन्य के स्वभाव का अंश-अंकुर भी राग में नहीं है। वह तो अन्धकार का अंकुर है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़ती है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! अरेरे! अनन्त काल से जन्म-मरण करके चौरासी के अवतार करके दुःखी है। व्यथा... व्यथा पीड़ित है। आहाहा! भगवान आत्मा पवित्र है, चैतन्यस्वभाव है, तब पुण्य-पाप का भाव अचेतन जड़ है।

तीसरा बोल ऐसा लिया कि पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप हैं। इस विभाव का कर्ता होता है, ऐसा कहा न? वह दुःखरूप भाव है। आहाहा! बहुत कठिन बात। इसने अनन्त काल से अपनी चीज़ क्या है, (यह जानी नहीं)। चिदानन्दस्वरूप भगवान भगवत्स्वरूप विराजमान है। आहाहा! 'जिन सो ही जिनराज और जिनराज सो ही जिन।' समयसार नाटक में आता है। समझ में आया? इस परमात्मा निजानन्द प्रभु को भूल कर शुभ-अशुभभाव करता है तो कहते हैं कि वह तो दुःखरूप है। आहाहा!

भगवान आत्मा उस दुःखरूप का कार्य नहीं और उस दुःख का कारण नहीं। क्या कहा? दुःखरूप जो शुभभाव है, उसके कारण से यहाँ वीतरागता प्रगटी है, ऐसा नहीं है। वह राग का कार्य नहीं है और राग का कारण नहीं है। आहाहा! निर्मलानन्द प्रभु राग का

कारण कैसे हो ? समझ में आया ? अकार्यकारणशक्ति यहाँ से निकाली है। ४७ शक्तियाँ हैं। अकार्यकारणशक्ति इसमें से निकाली है। अमृतचन्द्राचार्य ने।

वहाँ ऐसा है कि भगवान चिदानन्दस्वरूप नित्यानन्द प्रभु ज्ञान और आनन्द का दल, वह तो पुण्य-पाप के परिणाम का कार्य भी नहीं तथा पुण्य-पाप के भाव का वह कारण भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि उसमें अकार्यकारण नाम की शक्ति-गुण पड़ा है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें! इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि सोनगढ़ निश्चयाभास है। व्यवहार को निकाल डालते हैं। भगवान! बापू! तेरे हित की बात है, नाथ! यह पुण्य और पाप के भाव को तो भगवान ने दुःखरूप कहा है। वह दुःखरूप (भाव) आत्मा के सुख का साधन होगा ? समझ में आया ? आहाहा! भगवान आत्मा तो दुःख का कारण भी नहीं और दुःख का कार्य भी नहीं। अर्थात् वह शुभभाव है तो सक्यग्दर्शन कार्य होता है, ऐसा नहीं और शुभभाव है तो सक्यग्दर्शन कारण, उसे शुभराग कार्य—ऐसा है नहीं। कहाँ गये सुकौशलजी ?

मुमुक्षु : पालीताणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालीताणा। समझ में आया ? पालीताणा तो यह अन्दर की यात्रा है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु में दृष्टि से आरूढ़ होना, वह यात्रा है। समझ में आया ? यह तो शुभभाव है। ठीक है।

मुमुक्षु : .... कठिन पड़ता है और जाने में मजा आता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर से आये हों, इसलिए ऐसा होता है कि नजदीक है न। बहुत दूर से आये हों। आहाहा!

भगवान आत्मा... यहाँ कहते हैं न ? क्या कहा ? **कर्म संयोग से विभावरूप परिणमता है,...** वह अपना स्वरूप नहीं है। इस गाथा में कर्ता का अधिकार है। ५७ में भोक्ता का था। **इसलिए विभावपने का कर्ता भी होता है। परन्तु अज्ञान से,...** आहाहा! इस शुभभाव का कर्ता भी अज्ञान से होता है। आहाहा! अब यहाँ कहते हैं कि शुभभाव करते-करते कल्याण होगा। अरे! प्रभु! बहुत अन्तर है, भाई! समझ में आया ? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। फूलचन्दजी ने खानियाचर्चा में लिखा है कि तुक्हारी श्रद्धा और

हमारी श्रद्धा में पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। सामनेवाले ऐसा कहते हैं कि ऐसा होता है, ऐसा होता है। राग से होता है। भाई! आहाहा! ञ्चया हो? एक व्यक्ति को अन्दर सत्य बात प्रतीति में नहीं आते। जैसे परमानन्द की मूर्ति प्रभु प्रतीति में-ज्ञान में-पर्याय में ज्ञेयरूप से न आवे, तब तो राग और पुण्य-पाप ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप से आते हैं, वह तो विकार है। समझ में आया? वह अज्ञानभाव से कर्ता होता है।

स्वभाव तो नहीं। है? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी रामबाण है। राम का बाण नहीं फिरता, इसी प्रकार इनकी वाणी नहीं फिरती। अफर और असर करे, ऐसी वाणी है।

दृष्टान्त कहते हैं- कल यहाँ तक आया था। **'मृगाः मृगतृष्णिकां अज्ञानात् जलधिया पातुं धावन्ति'** अरे रे! **जिस प्रकार हिरण मरीचिका को...** मृगजल। मृगजल कहते हैं न? मृग मृगजल को पानी जानकार पीने जाते हैं। आहाहा! **मिथ्या भ्रान्ति के कारण पानी की बुद्धि से पीने के लिये दौड़ते हैं।** आहाहा! उसी प्रकार अज्ञानी आत्मा भ्रान्ति से पुण्य और पाप के भाव में सुखबुद्धि के लिये दौड़ता है। आहाहा! समझ में आया? जैसे हिरण मृगजल में पानी पीने (दौड़ता है), पानी नहीं होने पर भी पानी पीने दौड़ता है; उसी प्रकार अज्ञानी अपने आनन्दस्वरूप में न आकर... आहाहा! तथा पुण्य और पाप में सुखबुद्धि, हितबुद्धि से दौड़ता है और पीता है, वह जहर पीता है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! भगवान! ञ्चया हो? कल भाई ने कहा था। यह ललितपुर, तुम रात्रि में थे न, भाई! तुमने एक बार यहाँ कहा था कि यह भवछेद की बात है। कल रात्रि में याद किया था। यहाँ तो भवछेद की बात है, भगवान! भव मिले तो एक भव के पश्चात् नरक और निगोद होगा। यहाँ तो सक्ष्यग्दर्शन भवछेद की बात है। जब तक सक्ष्यग्दर्शन न हो, तब तक उसका भवभ्रमण नहीं मिटता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि मृग, मृगमरीचिका—मृगतृष्णा में पानी पीने के लिये दौड़ते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी आनन्द से भरपूर भगवान है, उसे छोड़कर पुण्य और पाप के भाव में सुखबुद्धि से पीने के लिये दौड़ते हैं। नन्दकिशोरजी! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ञ्चया करें, यह तो कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न कि स्वभाव के ऊपर दृष्टि करो। पर में तृष्णा की बुद्धि है, वह मिथ्याबुद्धि छोड़ दे, इसलिए कहते हैं। ऐसा कहते हैं, उसका तात्पर्य ज्ञया? वीतरागता। वीतरागता का तात्पर्य ज्ञया? कि भगवान इस पुण्य-पाप की रुचि का कर्तापना तू छोड़ दे। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है, वहाँ रुचि लगा। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! यह तात्पर्य है। वह कर्ता होता है, कर्ता होता है यह तो बतलाते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य ज्ञया? कहने का फल ज्ञया? यह बाद में कहेंगे। ५९ गाथा में। ५७ में भोक्ता की बात की, ५८ में कर्ता की बात की। ५९ में अपने ज्ञातादृष्टा के आनन्द की बात की। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों की शृंखला क्रमबद्ध जो श्रेणी है, (वह चली आती है)।

यहाँ कहते हैं कि हम कर्ता की बात यहाँ कहते हैं और उसका फल ज्ञया? यह बाद में कहेंगे। उसकी बुद्धि छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता अनन्त शक्ति से भरी है, वहाँ नजर दे न! आहाहा! समझ में आया? करवट बदल दे। यह पुण्य और पाप की ओर तेरी दिशा-करवट है, प्रभु! एक बार छोड़ दे न! आहाहा!

एक बार नहीं कहा था? कि माता बालक को झूले में झुलाती है, तो उसकी महिमा करती है, प्रशंसा करती है। बेटा! होशियार है। तुक्हारी भाषा में कुछ कहते हैं।

मुमुक्षु : मारो दीकरो डाह्यो, पाटले बेसी नाह्यो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा लड़का चतुर, ऐसा कुछ कहते हैं। पाटले बैठकर नहाया, ऐसा सब हमारे यहाँ कहते हैं। तुक्हारे भी कुछ होगा। उसकी प्रशंसा करे तो वह सो जाए। ज्ञयोंकि अव्यक्तरूप से भी प्रशंसा प्रिय है। उसकी प्रशंसा करेगा तो सो जाएगा। उसे गाली देगा कि मारा रोया सो जा नहीं तो... कभी नहीं सोयेगा। देख लेना किसी समय। बालक होवे तो भी नहीं सोता। यहाँ कहते हैं कि उसकी माता प्रशंसा करते-करते झूले में सुलाती है। यहाँ भगवान आत्मा की प्रशंसा करके अज्ञानी को जगाते हैं। अरे! जाग के जाग, नाथ! समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहा, देखो!

मिथ्या भ्रान्ति के कारण पानी की बुद्धि से पीने के लिये दौड़ते हैं। हिरण। आहाहा! उसी प्रकार पुण्य और पाप तथा पुण्य-पाप के फल, सब कर्म की सामग्री, यह

धूल, शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत—यह कर्म की सामग्री है। मृगतृष्णा से उसे अपना मानकर दौड़ता है। उसमें मुझे कुछ शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा... आहाहा! इस प्रकार मृगतृष्णा की भाँति, हिरण मृगजल पीने जाता है, इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने को भूलकर जो विकृतभाव और विकृतभाव के बन्ध और बन्ध का फल संयोग को मेरा मानकर तृष्णा में पीने जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह कहा था न? इन्दौर में काँच का मन्दिर है न? काँच का मन्दिर है, उसमें लाईन है।

'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे बोल...' आहाहा!

'काग वीट सम मानत है... काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।'

वहाँ बताया था। इन्दौर में बताया था, देखो! यह क्या लिखा है? आहाहा! मनुष्य की विष्टा तो खाद में भी काम आती है। खातर समझते हो? खाद-खाद। कौवे की विष्टा खाद में भी काम नहीं आती। ... बिगाड़े, ऐसा कहते हैं कि चक्रवर्ती की सम्पदा—९६ हजार स्त्रियाँ, ७२ हजार नगर, ४८ हजार पाटण, ९६ करोड़ गाँव.... आहाहा! और इन्द्र सरीखे भोग, करोड़ अप्सरा और असंख्य देवों का स्वामी, वह काग वीट सम मानता है। कौवे की विष्टा है। वेणीप्रसादजी! यह तुम्हारी धूल की बात।

मुमुक्षु : .... तो विष्टा हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : विष्टा कहे वहाँ भी मान ले, भाई यह भगवान ने तो शुभभाव को जहर कहा है। परन्तु यहाँ तो ऐसा लेना है कि 'काग वीट सब मानत है सम्यग्दृष्टि लोग' आहाहा! जिसे पुण्य-पाप का माहात्म्य छूट गया है... यह ५९ में आयेगा। यह ५९ में है। और अपने आत्मा आनन्दस्वरूप का महिमा का माहात्म्य अन्दर में आया... आहाहा! उसे पुण्य-पाप की महिमा दृष्टि में से छूट जाती है। समझ में आया? आहाहा! बहुत ठाठ जमा हो, पैसा और लक्ष्मी।

कल नहीं कहा था? मुम्बई में भोजन करने गये थे। उनके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। मणिभाई है। शांताबेन के बहिन के ननदोई। उनके घर में भोजन करने गये थे, फिर चरण कराये। कितने ही कहते हैं, महाराज के चरण हो तो बहुत रुपये होते हैं। ऐसा मानते

हैं। यहाँ कुछ नहीं है, भाई! यहाँ तो आत्मा की बात है। अकेले मखमल बिछाये हुए। मखमल मखमल कहते हैं न? गलीचा। पाँच लाख तो... श्वया कहलाता है? फर्नीचर। पोपटभाई तो मणिभाई को पहचानते हैं। मुझे तो ऐसा विचार आया कि अरेरे! यहाँ से निकलना भारी कठिन पड़ेगा। यह सब ठाठ श्मशान की हड्डियाँ हैं। श्मशान की हड्डियों की चमक है। आहाहा!

मृगतृष्णा में मृग पानी पीने के लिये दौड़ता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा को भूलकर, आनन्द के नाथ को भूलकर अज्ञान से पर में सुखबुद्धि है, पर में मजा है, ऐसा (मानकर) अज्ञानी दौड़ता है।

मुमुक्षु : दौड़ता अवश्य है परन्तु ऐसे तो चलने में बहुत आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है। यह कहा नहीं बालक का? बालक का दृष्टान्त नहीं दिया था? भगवान! ज्येष्ठ महीने में बहुत धूप हो और बालक को बहुत दूध पिलाया हो तो फिर दस्त हो जाए और नग्न शरीर हो। वर्ष-डेढ़ वर्ष का बालक हो। नग्न शरीर हो और पतली दस्त हो जाए। उसे ठण्डी लगती है। उसके शरीर को ठण्डा लगे फिर हाथ भी वहाँ लगावे। यह तो हमने सब देखा है, उसके उदाहरण देते हैं। बालक ऐसे नीचे हाथ करे। आहाहा! इसी प्रकार अज्ञानी अपने स्वरूप को भूलकर पुण्य-पाप के भाव करता है, वह तो विष्टा है। आहाहा! अपच की प्रकृति है। उसके फल में आनन्द मानता है। वह बालक माने, वैसा मानता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : .... यह बात कहाँ चलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ निकली। मृगतृष्णा में से निकली। मृग, मृगजल को पानी मानकर पीने के लिये दौड़ते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी पर में सुखबुद्धि करके पीने जाता है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अपने हित की बात है। दुनिया माने, न माने;समझे, न समझे, उससे आत्मा को कोई लाभ-अलाभ है नहीं। आहाहा!

पानी की बुद्धि से पीने के लिये दौड़ते हैं। एक बात। दूसरी **'जनाः रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजगाध्यासेन द्रवन्ति' जिस प्रकार मनुष्य जीव रस्सी में अन्धकार के होने पर** अन्धेरे में डोरी पड़ी हो तो ऐसा लगता है कि सर्प है। ऐसे डरता है। उसी तरह भगवान

आत्मा अपने को भूलकर पुण्य-पाप में सुखबुद्धि से चला जाता है। आहाहा! डोरी में सर्प है, वैसे पुण्य-पाप में जहर है—ऐसा नहीं मानकर उसे पीता है। 'निर्विकल्प रस पीजिए' ऐसा आता है। यह पुण्य और पाप के विकल्प का जहर पीना छोड़ दे, नाथ! 'निर्विकल्प रस पीजिए' यह आता है।

'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो मैं, लागी लगन हमारी जिनराज...' मैंने वीतरागस्वभाव सुना।

जिनराज सुजस सुण्यो मैं, काहु के कहे अब कबहु न छूटे प्यारे,
लोकलाज सब डारी, काहु के कहे अब कबहु न छूटे लोकलाज सब डारी।
जैसे अमली अमल करत समये लाग रहे जो खुमारी।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप से भिन्न है, ऐसी लगनी जिसे लगी... आहाहा!

'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो मैं, काहु के कहे अब कबहु न छूटे।' दुनिया कहे कि तुझ्हारी बात खोटी है, झूठी बात है। वह कहीं अब छूटे नहीं, कहते हैं। जिसे भगवान आत्मा की लगन लगी... 'काहु के कहे अब कबहु न छूटे प्यारे...' आहाहा! 'लोकलाज सब डारी' दुनिया क्या कहेगी? चाहे जो कहो, भ्रष्ट कहो, निश्चयाभासी कहो। तुझ्हारी इच्छा, वैसा कहो। 'लोकलाज सब डारी' आहाहा!

'जैसे अमली अमल करत समये...' अफीम पीता है न? अमली। 'जैसे अमली करत समये लाग रही जो खुमारी, जिनराज सुजस सुण्यो मैं।' आहाहा! समझ में आया? यह क्या करना? यह करना। आहाहा! 'लोकलाज सब डारी' दुनिया क्या कहेगी, निश्चयाभास कहेंगे। व्यवहार से कुछ होता नहीं, एकान्त मानते हैं। मानो, तुझ्हारे मानना हो, वैसा मानो। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, अज्ञानी डोरी को सर्प मानकर डरता है। आहाहा! वह भय पाता है। और अज्ञानी अपने को छोड़कर पर में सुखबुद्धि से जाता है। और अपने स्वरूप में जाने में डरता है कि अन्दर कैसे जाना? आहाहा! यह भोक्ता की बात (हुई)। **भ्रान्ति के कारण सर्प की बुद्धि से डरते हैं।** यह कर्ता की व्याख्या की। पहले भोक्ता की की, अब ज्ञाता की बात करते हैं। आहाहा!

कलश-५९

(वसन्ततिलका)

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः-पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि।।१४-५९।।

खण्डान्वय सहित अर्थ-'यः तु परात्मनोः विशेषं जानाति' [यः तु] जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव [पर] द्रव्यकर्मपिण्ड [आत्मनोः] शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका [विशेषं] भिन्नपना [जानाति] अनुभवता है। कैसा करके अनुभवता है? 'ज्ञानात् विवेचकत्या' [ज्ञानात्] सम्यग्ज्ञान द्वारा [विवेचकतया] लक्षणभेद कर। उसका विवरण - शुद्ध चैतन्यमात्र जीव का लक्षण, अचेतनपना पुद्गल का लक्षण; इससे जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न है - ऐसा भेद भेदज्ञान कहना। दृष्टान्त कहते हैं-'वाः-पयसोः हंस इव' [वाः] पानी [पयसोः] दूध [हंस इव] हंस के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार हंस दूध-पानी भिन्न-भिन्न करता है, उस प्रकार जो कोई जीव-पुद्गल को भिन्न -भिन्न अनुभवता है। 'स हि जानीत एव किञ्चनापि न करोति' [सः हि] वह जीव [जानीत एव] ज्ञायक तो है, [किञ्चनापि] परमाणुमात्र भी [न करोति] करता तो नहीं है। कैसा है ज्ञानी जीव? 'स सदा अचलं चैतन्यधातुं अधिरूढ़ः' वह सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्मा के स्वरूप में दृढ़ता से रहा है।।१४-५९।।

कलश - ५९ पर प्रवचन

५९ (कलश)।

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः-पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किञ्चनापि।।१४-५९।।

अब सक्यग्ज्ञानी धर्मी कैसे होते हैं, इसकी बात चलती है। अज्ञानी की भोक्ता और कर्ता की बात की। समझ में आया? आहाहा!

'यः तु परात्मनोः विशेषं जानाति' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! मैं तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन हूँ। मेरी चीज़ में उदयभाव नहीं, मेरी चीज़ में उपशम-क्षयोपशम-क्षायिकभाव भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! सहज स्वभाव ज्ञायकस्वरूप। यह छठवीं गाथा में लिया है न, छठी का लेख। **'णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'** प्रभु! आत्मा अप्रर्मा और प्रर्मा नहीं। आहाहा! **'णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** वह तो ज्ञायकभाव है, ज्ञातादृष्टा के स्वभाव से भरपूर भगवान है न। आहाहा! **'एवं भणंति सुद्धं णादो'** उसे शुद्धरूप से जो जाने... आहाहा! और टीका में तो ऐसा लिया है कि शुभ और अशुभभाव तो अचेतन-जड़ है। भगवान ज्ञायकभाव जड़रूप कैसे हो? आहाहा! छठवीं (गाथा)। **'णवि होदि अप्पमत्तो'** यह तो एक-एक गाथा में अमृत भरे हैं। समयसार अर्थात्... आहाहा! शद्धदब्रह्म! भगवान की सीधी शद्धदब्रह्म वाणी है। आहाहा!

वहाँ तो टीका में लिया है कि शुभाशुभभाव प्रर्मा-अप्रर्मा क्यों नहीं? भगवान तो ज्ञायकस्वरूप है। वह प्रर्मा-अप्रर्मा क्यों नहीं? वह शुभाशुभभावरूप हो तो प्रर्मा-अप्रर्मा दशा लागू पड़ती है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह शुभ और अशुभभाव जड़ है, अचेतन है। चैतन्यप्रकाश का नूर उस अचेतनरूप कैसे हो? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! प्रभु का मार्ग तो बहुत सूक्ष्म है और जिसका फल अनन्त आनन्द है। भवभ्रमण तो न रहे, सक्यग्दर्शन की चीज में और उसके ध्येय में भव नहीं, भव का भ्रमण नहीं। परन्तु सक्यग्दर्शन, जो ज्ञायकस्वरूप की अनुभव, प्रतीति हो तो वर्तमान में आनन्द है और जिसके फल में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी मोक्ष प्राप्त होगा। आहाहा! भाई! वह चीज़ कैसी होगी? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि सक्यग्दृष्टि जीव... भोक्ता और कर्ता दोनों में मिथ्यादृष्टि लिये थे। अब कर्ता-भोक्ता छूट गये। आहाहा! धर्मी जीव को, सक्यग्दृष्टि को सक्यक् सत्यदृष्टि, तो सत्यदृष्टि ज्ञायकभाव पूर्ण आनन्दस्वरूप सत्य भूतार्थ है। त्रिकाली आनन्दकन्द ज्ञायक

भूतार्थ-सत्यार्थ है। ११वीं गाथा। **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** वह सत्यार्थ भगवान सत् स्वरूप, सत् साहेब। आहाहा! पूर्णानन्द और पूर्णज्ञान, पूर्णदर्शन, पूर्णवीर्य आदि पूर्ण शक्तियों (से भरपूर है)। आहाहा!

एक तो विचार ऐसा आया था। यह जीवत्वशक्ति चलती है न? भाई! फिर उसकी कल अन्दर दूसरी धुन चली थी कि सर्व और पूर्ण ऐसी जीवशक्ति से मैं भरपूर हूँ। सर्व और पूर्ण ऐसी चितिशक्ति से मैं भरपूर हूँ। सर्व और पूर्ण ऐसी दर्शनशक्ति से भरपूर हूँ। एक-एक शक्ति पर सर्व और पूर्ण ऐसे दो शब्द लगाकर ४७ शक्ति में (उतारा था)। आहाहा!

मुमुक्षु : पूर्ण शक्ति से भरपूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण है। जीवत्वशक्ति पहली ली न? यह कहा था न? दूसरी गाथा है न? **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** वहाँ से शुरु किया है। मैं समयसार कहूँगा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **'वक्ष्यामि'** वहाँ से दूसरी गाथा से शुरु किया। **'जीवो'** आहाहा! वहाँ से शुरु किया। **'जीवो'** यह जीवत्वशक्ति इसमें से निकाली है। यह ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य प्राण से जीवे, उसे जीव कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह शरीर, वाणी, मन सब परमाणु बिखर जाएँगे, भगवान! यह तेरी चीज़ नहीं है। पुण्य-पाप के भाव भी तुझमें नहीं रहते। वह तेरी चीज़ नहीं है। तेरी चीज़ होवे, वह भिन्न नहीं पड़ती और भिन्न पड़े, वह तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तो वहाँ कहा, जीवो। जीवत्वशक्ति। पहली चली न? नौ तो अपने चली है। यह सर्वदर्शी तक चली है। सर्वज्ञ (शक्ति) बाकी है। आहाहा!

जीवत्वशक्ति, ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य के प्राण सब प्रकार से पूर्ण से भरपूर भगवान है। आहाहा! ऐसे जीव पर दृष्टि करने से वह सत्यार्थ वस्तु है, भूतार्थ वस्तु है, सत्साहेब है। कबीर में साहेब-साहेब करते हैं न? वह साहेब यह सत्साहेब है। समझ में आया? आहाहा! कबीर एक बार कपड़े बुनते थे। कबीर बुनकर थे न। बुनकर समझते हो? यह कपड़े बुननेवाले। एक व्यक्ति आया। आदमी पर लक्ष्य न करके वे तो कपड़े बुनने में रहे। उस आदमी ने पूछा कि कबीरसाहेब! आप हमारे पर ध्यान नहीं देते। आपका ध्यान इसमें है, बुनने और बुनने में आपका ध्यान है। हम दो घण्टे से बैठे हैं, वहाँ आपका

ध्यान नहीं है। हमारे सामने देखते भी नहीं। आपने परमात्मा का ध्यान तो कहा। फिर उन्होंने जवाब दिया। हमारे वहाँ स्थानकवासी में जैन समाचारपत्र आता था, 'वाडीलाल मोतीलाल' का। (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष की बात है। हम तो दुकान में वह समाचारपत्र मँगाते थे। हम तो निर्वृा भगत थे। सब लोग काम करें, मैं बैठता था। उस समाचारपत्र में आया था। कबीर ने उसे जवाब दिया। 'धुन रे धुनिया अपनी धुन, जाकी धुन में पाप न पुण्य।' ञ्चया कहा? 'धुन रे धुनिया...' धुन लगा दे धुनिया। 'धुन रे धुनिया अपनी धुन, जाकी धुन में पाप न पुण्य।' उन्हें यह दृष्टि नहीं थी तो भी ऐसी बात करते थे। यह तो जैन परमेश्वर की चीज़ पूरी अलग है। दुनिया में कहीं नहीं है।

वे भी ऐसा कहते थे अरे! धुनिया-धुन लगानेवाले! 'धुन रे धुनिया अपनी धुन,...' अपनी धुन लगा दे। पुण्य और पाप की तेरी धुन छोड़ दे। आहाहा! 'धुन रे धुनिया...' ऐई! धुन के धुनिया! धुन लगानेवाले धुनी, धुन लगानेवाले धुनी और धनी... 'धुन रे धुनिया अपनी धुन' भगवान शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! उसकी धुन लगा। धुनिया! तेरी धुन वहाँ लगा दे। आहाहा! कि जिसकी धुन में 'पाप न पुण्य।' उसमें पाप-पुण्य है नहीं। यह कबीर जैसे ऐसा कहते हैं। वे तो अन्यमति थे। उन्हें तो सर्वज्ञ ने कहा, उस आत्मा की खबर भी नहीं थी। आहाहा! वह तो एक सर्वव्यापक ईश्वर है, ऐसा मानते थे। सब देखा है न?

हमारे वहाँ पालेज में कबीर के साधु आते थे। हम सुनने जाते थे। मूर्ति को न माने न? हम पहले स्थानकवासी, इसलिए मूर्ति को नहीं मानते। कबीर का (भक्त) जवान लड़का भी आया था। बहुत वैरागी, हों! तंव की खबर नहीं परन्तु वैराग्य की ऐसी बात करे... ऐसी बात करे... तो हम तो जाते हुए पालेज में बाहर बड़ा जीन है। उस जीन में गये थे। हम तो रात्रि में चले जाते थे। रात्रि ११ बजे से १२ बजे तक सुनते। वैराग्य की बात चले न, आत्मा की बात करे परन्तु सर्वज्ञ कहे, वह बात है नहीं। वह भी ऐसा कहे कि अरे...! धुनिया! धुन लगानेवाले... आहाहा! अपने यहाँ आया है न? हिन्दी में आया। ध्रुव ध्येय। भाई ने पढ़ा? तेरह बोल आये हैं। हिन्दी में पहले पृष्ठ पर है।

मुमुक्षु : आत्मधर्म में।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मधर्म में। वह कहीं होगा।

ध्येय की धुन में धर्मी जीव ध्येय की धखती धुनी को धीरज से... आया। देखो! हिन्दी में आया है। पहले गुजराती में आया था। यह अभी फाल्गुन महीने में बनाया। हमारे हीरालालजी हैं न? यह हीरालालजी है। जानते हो? कुचामन में इनका मकान है।

मुमुक्षु : भावनगर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगर। अभी इन्होंने अस्सी हजार निकाले हैं न? अपने ञ्चया...

मुमुक्षु : वीतराग सत् साहित्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें अस्सी हजार दिये। यह बैठे। विकास के पास बैठे हैं। तेरे पास नहीं बैठे? अस्सी हजार दिये और एक लाख दूसरे ने दिये। एक चिमनभाई हैं न यहाँ? उनका लड़का शान्तिलाल झवेरी ने लाख दिये हैं। अभी दो-ढाई लाख हुए हैं। पैसे की कीमत कहाँ है!

मुमुक्षु : दोनों धर्मात्मा हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उनके शुभभाव की बात है। अस्सी हजार एक ने दिये हैं और एक लाख इन्होंने दिये हैं। विहार करके वहाँ उनके मकान में गये थे। परन्तु एक दिन व्याक्ख्यान हुआ। स्वागत हुआ, रात्रिचर्चा हुई। परन्तु रात्रि में बुखार बहुत आया। साढ़े तीन-चार डिग्री, एकदम बुखार। फिर व्याक्ख्यान बन्द हुआ। फिर यह बनाया थोड़ा।

'ध्रुव धाम के ध्येय के ध्यान की...' ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द जो यह सत्यार्थ कहते हैं, भूतार्थ कहते हैं, वह ध्रुव। ११ वीं गाथा में आया न? **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** भूतार्थ-सत्यार्थ भगवान त्रिकाल सत्स्वरूप प्रभु को ध्रुव कहते हैं। ध्रुवधाम—वह ध्रुव का धाम है। ध्यान में उसे ध्येय बना। धगधगती ध्वनि को धगधगती एकाग्रता की धुनी अन्दर लगा दे। धैर्य से... लो! धीरज से... आया था न। कौन था? धीरुभाई। कौन धीरुभाई? श्रोफ-श्रोफ, हाँ। धैर्य से, धीरज से... धीरज से... यह हिन्दी शद्भद है। गुजराती थोड़ा दूसरा होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। धैर्य से क्या शब्द है। धधकती। हमारे गुजराती में। 'धैर्य

से धधकती (धुनी धखावनार) धर्म का धारक धर्मी धन्य है।' आहाहा? वह यह श्लोक है।

'परात्मनोः विशेषम् जानाति' जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! **द्रव्यकर्मपिण्ड...** द्रव्यकर्म पिण्ड-जड़ पुद्गल। पुद्गल से लिया है परन्तु अन्दर भावकर्म भी साथ में ले लेना। **शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका...** भगवान तो शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु है। यह कर्मपिण्ड और पुण्य-पाप के भाव कर्मपिण्ड में जाते हैं। समझ में आया? और **शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका भिन्नपना अनुभवता है।** आहाहा! पुण्य-पाप के भाव से शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा भिन्न है, ऐसा जिसे अनुभव होता है, वह सम्यग्दृष्टि है। इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! इसका नाम धर्म का पहला सोपान। छहढाला में आता है न? 'मोक्षमहल की पहली सीढ़ी।' यह छहढाला में आता है। आहाहा!

कहते हैं कि आहाहा! यह राग और पुण्य-पाप तथा शुद्धचैतन्यमात्र का भिन्नपना है। भिन्नपना किस प्रकार होता है? आहाहा! कि पुण्य-पाप के भाव का लक्ष्य और रुचि है, उसे छोड़ दे और पीछे भगवान आनन्दकन्द विराजमान है, वहाँ दृष्टि लगा। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वीतराग का मार्ग तो ऐसा है। अपूर्व बात है।

मुमुक्षु : निराली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निराली बात है। सत्य बात है। सब सेठिया भी अब रस लेते हैं न! यह तो निराली बात है, नाथ! क्या कहे? आहाहा!

चैतन्य हीरा। जैसे हीरा को पासा होते हैं, वैसे चैतन्य हीरा में अनन्त शक्ति के पासा अन्दर पड़े हैं। ऐसे चैतन्य को पहले ज्ञान में निर्णय तो करे, ज्ञान में तो निश्चित करे, निर्धार तो करे कि मैं शुद्ध चैतन्य हूँ और रागादि पर है, उसका भेद करना, इसका नाम भेदज्ञान और धर्म है। जिससे भेद करना है, उससे धर्म होगा? क्या कहा यह? कि शुभ-अशुभभाव से शुद्ध चैतन्य को भिन्न करना है। अब भिन्न करना है, उस चीज़ से यहाँ धर्म भिन्न होगा? उस चीज़ से भिन्न करना है और उस चीज़ से धर्म होगा? आहाहा! ऐसी बात! क्या है? भाई! बहुत फेरफार हो गया। आहाहा! वीतराग... वीतराग आनन्द का नाथ प्रभु! आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से रुचि हटाकर... आहाहा!

आनन्दघनजी में एक बात आती है। श्वेताम्बर में एक आनन्दघनजी हुए हैं। उन्होंने थोड़ी बात की थी।

'आशा औरन की क्या कीजे। आशा....' आशा समझते हो ?

आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजै।

आशा औरन की क्या कीजे....।

आहाहा! बाद की एक लाईन भूल गये। सब पढ़ा हुआ बहुत है न। बाद की कोई लाईन बोलते थे। 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे...'

मुमुक्षु : कूकर आशाधारी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी।'

यह कुत्ता-कुत्ता होता है न ? वह दस बजे ठीक दरवाजा बन्द हो तो भी बैठता है। जैसे कुत्ता 'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी।' इसी प्रकार आत्मा अनादि से पुण्य और पाप तथा उसके फल में कुत्ते की तरह भटकता है। आहाहा!

'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी। आनन्दघन प्रभु....' ऐसा कुछ शब्द है। भूल गये। पहले सब कण्ठस्थ किया था। यह आनन्दघन प्रभु स्वाद के रसिया हैं, उसे छोड़ दे, कहते हैं। पर का रस छोड़ दे। आहाहा! अब पहलू बदल दे। थकान लगती है न ? ऐसे सोये हों, थकान लगे फिर ऐसे करवट बदलते हैं। उसी प्रकार पुण्य-पाप के प्रेम की रुचि का पहलू बदल डाल, प्रभु! बहुत सोया। अनन्त काल में चैतन्य को भूलकर पुण्य-पाप में सोया है। आहाहा! तो एक बार तो रस ले, प्रभु! आहाहा! निर्विकल्प। पुण्य-पाप के राग से भिन्न भगवान ऐसी निर्विकल्प चीज़ है, निर्विकल्प रस पीजे। आहाहा! समझ में आया ? इसका नाम सम्यग्दर्शन है। अभी क्या रीति है, इस विधि की खबर नहीं होती, वह कब समकित पावे ? आहाहा! समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं कि **द्रव्यकर्मपिण्ड शुद्ध चैतन्यमात्र, उनका भिन्नपना...** विशेष है न ? **'विशेषं'** दोनों में विशेष जाने। दोनों एक नहीं हैं। पुण्य-पाप के भाव और

चैतन्यस्वरूप, दोनों की विशेषता-भिन्नता जाने। आहाहा! कर्ता-कर्म में आता है न? कर्ता-कर्म की पहली गाथा में। ६९-७० में। दोनों को विशेष जाने। आस्रव और स्वभाव को विशेष-भिन्न जानता है। आहाहा! यह पुण्य और पाप दोनों आस्रव हैं। आस्रव अर्थात्? जैसे नाव में छिद्र हो तो पानी अन्दर भरता है; उसी प्रकार पुण्य-पाप के भाव छिद्र हैं, उनसे कर्म आते हैं। समझ में आया? उसमें धर्म नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान!

यहाँ यह कहते हैं। दोनों को विशेष अनुभवता है। आहाहा! विशेष भिन्नपना अनुभवता है। शुद्ध चैतन्य में उसका भिन्नपना। अर्थात् कहीं राग का अनुभव अन्दर नहीं है। उस राग से भिन्न पड़ा तो आत्मा के अनुभव का भिन्नरूप से अनुभव हुआ। साथ में राग आया नहीं। राग से भिन्न करके आत्मा में दृष्टि लगायी तो राग आया नहीं। राग से भिन्न अपना अनुभव हुआ। समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन और भेदज्ञान है। त्रिकाली भगवान का सत्यदर्शन, सत्य वस्तु पूर्णानन्द के दर्शन हुए, ज्ञान में ज्ञेय करके प्रतीति हुई। पहले तो पर्याय में ज्ञेय हुआ तो प्रतीति हुई। ऐसा अनुभवता है।

कैसा करके अनुभवता है? 'ज्ञानात् विवेचकत्या' सम्यग्ज्ञान द्वारा... देखो! भाषा यहाँ से शुरु की है। आहाहा! [**विवेचकतया**] **लक्षणभेद कर। 'विवेचकतया'** है न? दोनों के लक्षण भिन्न है। पुण्य-पाप का लक्षण बन्ध का लक्षण है। भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उनका **'विवेचकतया' लक्षणभेद कर।** दोनों के लक्षण भिन्न हैं। **उसका विवरण - शुद्ध चैतन्यमात्र जीव का लक्षण,...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रकाशस्वरूप, वह जीव का लक्षण। उस लक्षण से जीव ज्ञात होता है और **अचेतनपना पुद्गल का लक्षण;...** आहाहा! यह कर्म जड़ है, अचेतन है और पुण्य-पाप भी निश्चय से अचेतन है। आहाहा! दोनों के लक्षण भिन्न जानकर, **इससे जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न है...** इसलिए जीव और पुद्गल भिन्न है। दोनों के लक्षण भिन्न है न? इस कारण से दोनों के लक्षण भिन्न और इस कारण से दोनों पदार्थ भिन्न हैं। पुण्य, पाप और आत्मा दोनों भिन्न हैं। **ऐसा भेद भेदज्ञान कहना।** उसे भेदज्ञान कहते हैं। **दृष्टान्त कहते हैं-** विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक २३-०८-१९७७
कलश-५९-६०, प्रवचन-७४

(चैतन्यमात्र जीव का लक्षण) और पुण्य-पाप का अचेतन लक्षण। दोनों के भिन्न लक्षण से दोनों को भिन्न पहिचानना। यह बात है। आहाहा! है ? यहाँ तक आया है। **शुद्ध चैतन्यमात्र जीव का लक्षण, अचेतनपना पुद्गल का लक्षण; इससे जीव पुद्गल भिन्न-भिन्न है, ऐसा भेद भेदज्ञान कहना।** उसको भेदज्ञान कहते हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो भिन्न है। यहाँ कर्ताकर्म अधिकार है न ? आत्मा की पर्याय में यदि दोष न हो, तो उसकी दशा में दोष न हो तो आनन्द का अनुभव होना चाहिए। न्याय समझ में आता है ? आत्मा वस्तु है, वस्तु-पदार्थ, उसकी दशा में यदि दोष न हो, विकार न हो, तब तो उसके स्थान में वास्तविक स्वरूप तो सच्चिदानन्द प्रभु है, तो उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होना चाहिए। परन्तु दोष तो है। शरीर, वाणी, मन नहीं, अन्दर दोष। पुण्य और पाप, राग और द्वेष के भाव, वह दोष है। दोष है तो दोष निकालना है। है, उसे निकालना है न! न हो, उसे कहाँ से निकाले ? समझ में आया ? कहते हैं कि चैतन्य लक्षण से भगवान आत्मा और पुण्य-पाप का अचेतन लक्षण है क्योंकि राग दोष है, वह अपने को नहीं जानता और ज्ञान / चैतन्य को नहीं जानता परन्तु चैतन्य द्वारा जानने में आता है, इस कारण से वह अचेतन है। न्याय से समझ में आता है ? आहाहा! तो कहते हैं कि दो का भेदज्ञान करना। अब दृष्टान्त। दृष्टान्त नहीं आया था। कल यहाँ तक आया था।

दृष्टान्त कहते हैं-'वाः-पयसोः हंस इव' [वाः] पानी [पयसोः] दूध [हंस इव] हंस के समान। आहाहा! जैसे पानी और दूध एक स्थान में-एक क्षेत्र में दिखता है, तो भी हंस की चोंच का स्वभाव ऐसा है, हंस की चोंच का स्वभाव ऐसा है कि उसमें चोंच डालने से पानी और दूध भिन्न हो जाते हैं। उसकी चोंच में... चाँच समझे ? चोंच। उसमें खटाई होती है तो दूध और जल दोनों एक स्थान में होवें तो चोंच डालने से पानी और दूध भिन्न पड़ जाते हैं **कि जिस प्रकार हंस दूध पानी भिन्न-भिन्न करता है,...** आहाहा!

उस प्रकार जो कोई जीव-पुद्गल को भिन्न -भिन्न अनुभवता है। चैतन्यस्वरूप

भगवान और रागादि दोष है, वे भिन्न हैं। जैसे दूध में पानी भिन्न है, वैसे भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में पुण्य-पाप के दोष पानी की भाँति भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? **जिस प्रकार हंस दूध पानी भिन्न-भिन्न करता है,...** आहाहा! उसी प्रकार परलक्ष्यी पुण्य और पाप के भाव हैं, वे अचेतन लक्षण हैं, पानी के समान हैं और भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप सत्-चिद् और ज्ञान। सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्दस्वरूप जिसका है। आहाहा! समझ में आया?

आनन्दघनजी की भक्ति में आता है 'अवधु अपना स्वरूप जब देखा...' अपना स्वरूप राग-द्वेष और पुण्य-पाप से भिन्न है। 'अवधु अपना रूप जब देखा, कौण माँगेगा लेखा। अवधु अपना रूप जब देखा। कर्ता कौण करनी? कर्ता कौण फुणी करनी? कौण माँगेगा लेखा?' समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आनन्दघनजी श्वेताम्बर में हुए हैं परन्तु थोड़ी बात उन्होंने की है।

यहाँ यह बात कहते हैं कि जब भगवान आत्मा... आहाहा! ज्ञानलक्षण से लक्षित और पुण्य और पाप के भाव अचेतन लक्षण से बन्ध लक्षित है। दो का भेदज्ञान करने से... आहाहा! राग के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर, दोष के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर निर्दोष भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पर दृष्टि करने से स्वरूप का अनुभव होता है और उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

उन्होंने तो यह कहा कि 'अवधु अपना स्वरूप जब देखा।' कर्ता कौन? करनी कौन? राग का कर्ता और राग मेरी क्रिया, यह उसमें है ही कहाँ? समझ में आया? कर्ताकर्म अधिकार है न? आहाहा! समझ में आया? कर्ता कौन? 'कौण फुणी करनी?' राग का कर्ता और राग मेरी क्रिया, यह कहाँ रहा? आहाहा!

मुमुक्षु : तो क्या रह गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञातादृष्टा आत्मा रह गया। सेठ स्पष्टीकरण कराते हैं। यह हमारे दो सेठ हैं न। यह सर्राफ है, यह भी सर्राफ है। यहाँ तो आत्मा का भान करे, वे सब सेठ हैं। बाकी सब हेठ हैं। ऐई! धन्नालालजी! आहाहा! दृष्टान्त तो... है। आहाहा!

प्रभु चैतन्य लक्षण से लक्षित, जानन लक्षण से ज्ञात होता है और रागादि विकल्प

दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम, वे अचेतन लक्षण हैं। क्योंकि उनमें चेतनपने के अंश का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा राग से जब भिन्न पड़ता है; जैसे हंस दूध में चोंच डालने पर पानी और दूध भिन्न हो जाते हैं, वैसे अपने भेदज्ञान द्वारा... आहाहा! पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग की ओर का लक्ष्य छोड़कर राग से भिन्न—अधिक चैतन्यस्वरूप भिन्न है, उस पर दृष्टि जाने से उसे आनन्द का अनुभव होता है। जो आनन्दस्वरूप में है, प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, परन्तु उस आनन्द का अनुभव क्यों नहीं? कि पुण्य-पाप के परिणाम मेरा कर्तव्य है और मेरा कार्य है, इस दृष्टि में रुक गया। समझ में आया? अपनी चीज़ राग से भिन्न चिदानन्द प्रभु है, ऐसी दृष्टि बिना इसे आनन्द का स्वाद नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

आनन्दघनजी की एक बात याद आ गयी। 'गगन मण्डल में अधबीच कुँआ वहाँ है अमी का वासा।' गगन मण्डल में अध बीच कुँआ, वहाँ है अमी का वासा। सुगुरा होवे सो भर-भर पीवे, नगुरा जावे प्यासा। अवधु सो जोगी गुरु मेरा। अवधु सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे निवेड़ा। अवधु सो जोगी गुरु मेरा। गगन मण्डल में अधबीच कुँआ... अध बीच में कुँआ—आत्मा। 'वहाँ अमी का वासा।'

वहाँ अन्दर में आनन्दस्वरूप का वास है। समझ में आया? वह हंस की तरह भिन्न करता है तो आनन्द का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। वहाँ सुगुरा हो, सुगुरु अर्थात् गुरु उसे बता दे कि प्रभु! यह पुण्य-पाप के भाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि है, वह होता है तेरी पर्याय में, परन्तु वह दोष है। आहाहा! उससे भिन्न आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! उसका भेदज्ञान करके तू चैतन्य का अनुभव कर, तब तुझे राग का कर्तापना मिट जाएगा। समझ में आया? आहाहा!

'कर्ता कौण कौण फुणी करणी कौन माँगेगा लेखा?' कौन लेखा माँगे? जब अपना आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से, दोष से भिन्न जाना, वे सब लेखा अन्दर में आ गये। समझ में आया? आहाहा! तीसरा शब्द कहा था, 'गगन मण्डल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया।' भगवान की वाणी निकली। गगन-आकाश में ॐ ध्वनि उठी।

'गगन मण्डल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया। छाछ में जगत भरमाया। अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा।' 'माखन था सो रे विरला रे पाया...' भगवान की वाणी-ॐध्वनि निकली, कान में पड़ी। परन्तु मक्खन तो विरला पाया। राग से भिन्न पड़कर अपने आनन्द का अनुभव करे, वह मक्खन है। अज्ञानी छाछ में... छाछ समझते हो? मट्ठा। 'छाछ में जग भरमाया।' यह पुण्य और पाप की क्रिया, दया, दान, व्रत, भक्ति की क्रिया मट्ठा है-छाछ है। छाछ में जगत भरमाया। आहाहा! समझ में आया? राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, अपवास और तप.... आहाहा! यह तो सब विकल्प-राग है, भगवान! समझ में आया? इस राग में जगत भरमाया। 'छाछ में जगत भरमाया।' 'माखन था सो विरला पाया।' राग से भिन्न मेरी चीज़ है। आहाहा! शरीर से तो भिन्न है। यह तो मिट्टी है, जड़ है, धूल है। आहाहा! श्मशान की राख होगी। इसी भव में अग्नि लगायेंगे न? श्मशान में अग्नि सुलगाते हैं न? यह तो मिट्टी है। आहाहा! 'खार जले ज्यों लकड़ी... खार।' जैसे लकड़ी जले, वैसे हड्डियाँ जलेंगी। जला डालेंगे और घास। बाल हो ऐसे-ऐसे माँग पाड़ी हो, काले... तेल... तेल।

मुमुक्षु : ....रखना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। इसे किसलिए रखे? शरीर तो जड़-मिट्टी है न! उसका तो कर्ता नहीं। उसकी तो बात यहाँ है ही नहीं।

मुमुक्षु : शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर से धर्म तीन काल में नहीं होता। आहाहा! शरीर से जड़ की क्रिया होती है। यहाँ उसकी बात तो दूर रखो। यहाँ तो अन्दर में पुण्य के भाव, उसका कर्ता माने तो अज्ञानी-मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मणिलालभाई! बात ऐसी है, बापू! आहाहा! जैसे हंस चोंच में खटाई के कारण पानी और दूध भिन्न करता है, उसी प्रकार भगवान का स्वभाव शुद्ध चैतन्य पर दृष्टि होने से राग और आत्मा भिन्न हो जाते हैं। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। अभी तो सब बड़ी गड़बड़ चली है। शुभभाव मोक्ष का मार्ग है, ऐसा आया है न? मक्खनलालजी का। कैलाशचन्दजी कहते हैं, शुभभाव हेय है। तो मक्खनलालजी कहते हैं शुभभाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। तब कैलाशचन्दजी ने

कहा कि शुभभाव को हेय तो कुन्दकुन्दाचार्य मानते हैं, तो क्या वे मिथ्यादृष्टि हैं ?

मुमुक्षु : दोनो झगड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों झगड़ते हैं। भाई ठीक कहते हैं। दो पण्डित-पण्डित झगड़ते हैं। अभी झगड़ने का आया ? इतने वर्ष से क्या करते थे तुम ? यहाँ की बात बहुत चर्चित हुई कि शुभभाव को धर्म नहीं कहते। समझ में आया ? उसमें झगड़ा शुरु हुआ।

अरे ! प्रभु ! यहाँ तो कहते हैं कि राग और चैतन्य दोनों भिन्न चीज़ है। नवर्तव है या नहीं ? तो राग, वह पुण्यर्तव है और राग, वह पापर्तव हेय है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग का राग, वह पापर्तव है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव पुण्यर्तव है। दोनों र्तव हैं, वह ज्ञायकर्तव से भिन्न है। नौ है या नहीं ? तो ज्ञायक भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपी इस पुण्य-पाप के राग से भिन्न र्तव है, तो है—ऐसा जब भेदज्ञान किया तो उसे चैतन्यलक्षण से लक्षित आत्मा का अनुभव हुआ। राग भिन्न पड़ गया। भिन्न राग के कर्ता ज्ञानी नहीं होते। राग होता है, उसके ज्ञाता रहते हैं, यह भी व्यवहार है। आहाहा ! ज्ञाता होने की पर्याय राग है, इसलिए होती है - ऐसा भी नहीं है। क्या कहा यह ? राग है, वह अपना कर्तव्य तो नहीं परन्तु राग को जानना, वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो अपनी पर्याय में उस समय में अपने ज्ञान का ज्ञान होता है और राग का ज्ञान अपने स्वभाव से अपने से होता है। राग है, तो यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई, राग के ज्ञान की पर्याय हुई - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! आहाहा !

कर्ताकर्म अधिकार, इस जैनदर्शन के सिवाय ऐसी चीज़ कहीं नहीं है। कोई ईश्वर को कर्ता माने, कोई शरीर की क्रिया का कर्ता माने और कोई यह पुण्य दया, दान, व्रत की क्रिया का कर्ता माने, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। तब कहे कि ज्ञानी को राग आता है न ? हो, परन्तु राग से मेरी चीज़ भिन्न है तो राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से और राग के सम्बन्ध से नहीं परन्तु राग का ज्ञान अपने में अपने से होता है। वेणीप्रसादजी ! यह सब समझना पड़ेगा। गप्प नहीं चलेगी। भाई कहते थे कि बहुत थोड़ा प्रयत्न करते हैं। विशेष करना चाहिए। यह तो हित की बात है, भगवान ! आहाहा ! अरेरे ! ऐसा अवसर कब मिले ? भाई ! आहाहा !

चैतन्य हीरा आनन्दकन्द से भरपूर... आहाहा! बहुत बार दृष्टान्त देते हैं। नहीं? नारियल का। नारियल-नारियल-श्रीफल होता है न? उस श्रीफल के ऊपर की छाल भिन्न है और काचली होती है न काचली? उसे हिन्दी में क्या कहते हैं? नरेटी। वह नरेटी भिन्न है और नरेटी के अन्दर लाल छाल होती है, वह भी भिन्न है। खोपरापाक बनाते हैं, तब वह लाल छाल निकाल डालते हैं और फिर जो श्रीफल अन्दर है, वह सेर-डेढ़े सेर श्वेत-सफेद मीठा होता है, वह श्रीफल है।

उसी प्रकार यह शरीर, वह छाल है। अन्दर पुण्य-पाप के भाव से बँधा हुआ कर्म जो है, वह कर्म-नरेटी जड़ है। और नरेटी की ओर का शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, दया-दान के भाव वे लाल छाल हैं। लाल छल के पीछे स्वेत-सफेद, सफेद अर्थात् शुद्ध और आनन्दगोला, शुद्ध आनन्दगोला आत्मा अन्दर स्थित है। आहाहा! समझ में आया? इस दृष्टान्त से समझ में आता है न, भाई! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! वहाँ भी हमने कहा था। दूसरा एक शब्द कहा है। 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी वसुधा दूध जमाया, सौ रे सुणो भाई वलोणु वलोवे तो अमृत कोई पाये, अबधु सो जोगी गुरु मेरा।' क्या कहा? गगन मण्डल में भगवान की वाणी निकली। 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी वसुधा दूध...' वसुधा अर्थात् पृथ्वी पर वाणी खिरी, मनुष्य के कान में पड़ी। 'सौ रे सुणो भाई वलोणु वलोवे तो...' यह वलोणु नहीं विलोते? मक्खन निकालते हैं या नहीं? मक्खन निकालते हैं... 'सौ रे सुणो भाई वलोणु वलोवे तो र्तव अमृत कोई पाये।'

मुमुक्षु : मक्खन करे सो पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खन करे सो पावे। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर से सिद्ध हुई है। यह कहीं कल्पित बात नहीं है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है। उस वाणी का सार यह है कि तेरी चीज़ में आनन्द भरा है, भगवान! अतीन्द्रिय आनन्द-अमृत। आहाहा!

हिरण की नाभि में कस्तूरी है। हिरण को कस्तूरी की कीमत नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान (भरे हैं)। मृग जैसे

मनुष्य पुण्य-पाप के प्रेम में अन्दर कस्तूरी को देखते नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अब ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को यह एकान्त है... एकान्त है... भाई ! एकान्त ही है, सुन न ! अपने आत्मा को राग और पुण्य की क्रिया से भिन्न जानकर अनुभव करना, वही धर्म है। बाकी सब शून्य है। समझ में आया ? यह लाख व्रत, तप, भक्ति और पूजा करे, वह सब राग है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि वलोणु-वलोणु समझते हो न ? छाछ में से मक्खन निकालते हैं न ? इसी प्रकार आत्मा को राग से भिन्न वलोणु करनेवाला आत्मा, आत्मा के मक्खन को प्राप्त करता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

कोई जीव-पुद्गल को भिन्न-भिन्न अनुभवता है। है ? **'स हि जानीत एव किञ्चनापि न करोति'** आहाहा ! **वह जीव ज्ञायक तो है,...** जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला वह मैं हूँ, रागादि मैं नहीं। आहाहा ! अब शुभयोग को धर्म-मोक्षमार्ग कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि शुभयोग, वह राग है। उससे भिन्न मेरी चीज़ ज्ञायक है। राग से आत्मा को लाभ होवे तो राग अपना हो गया। समझ में आया ? जिससे लाभ माने, वह अपनी चीज़ हुई। राग अपनी चीज़ है ही नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, भाई !

ज्ञायक तो है, परमाणुमात्र भी करता तो नहीं है। है ? आहाहा ! भगवान आत्मा सर्व देह में भिन्न विराजता है, प्रभु ! उसे जहाँ राग से भिन्न करके देखा तो वह ज्ञायक है। जाननेवाला रहा, जानने में आनन्द आया, परन्तु राग का वह कर्ता नहीं है। आहाहा ! शुभराग का भी कर्ता नहीं है। यहाँ कहते हैं कि शुभराग मोक्ष का मार्ग है। अब कहाँ मेल करना ? नन्दकिशोरजी ! वह कहते हैं कि शुभराग मोक्ष का मार्ग है। देखो ! मक्खनलालजी ऐसा कहते हैं। अरे ! प्रभु ! क्या करता है, भाई ! शुभराग का कर्ता होना, वह मिथ्यादृष्टि है। तब राग से भिन्न होकर अपने चैतन्य का भान हुआ तो किंचित् भी राग का कर्ता नहीं रहता। क्या कहा ? देखो !

'सः हि जानीत एव किञ्चनापि न करोति' आहाहा ! **'सः हि' वह जीव ज्ञायक तो है, परमाणुमात्र भी करता तो नहीं है।** आहाहा ! यहाँ परमाणु का क्या अर्थ लेना ? बाहर के रजकण पॉईन्ट है, वह तो जड़ हैं, परन्तु राग का कण है, उस परमाणुमात्र

का भी कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है। मार्ग ही ऐसा है, प्रभु! परन्तु लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय है। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् आरोपित उपचार। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा मनुष्यभव अनन्त काल में मिला, उसमें भगवान की वाणी सुनने को मिली, तो इस समय में यह कार्य नहीं करे तो भगवान! कब करेगा? आहाहा! समझ में आया? करनेयोग्य तो यह है। बाकी राग का करना तो मरना है। कहो, धन्नालालजी! आहाहा! है?

परमाणुमात्र भी करता तो नहीं है। कैसा है ज्ञानी जीव? 'स सदा अचलं चैतन्यधातुं अधिरूढ:' आहाहा! अज्ञानी अनादि से पुण्य-पाप के भाव में आरूढ़ था। शुभ-अशुभभाव में आरूढ़ था। जैसे ऊँट पर या घोड़े पर आरूढ़ होते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव पर आरूढ़ था। आहाहा! वह (अब) राग से भिन्न अपने चैतन्य में आरूढ़ हुआ। आहाहा! भाषा तो समझ में आवे ऐसी है। हमारी हिन्दी कहीं तुक्कहारे जैसी नहीं है, यह तो हिन्दी चले, ऐसी हिन्दी है। समझ में आया? गुजराती में चले, उसमें तो बहुत स्पष्ट आता है। हिन्दी में कोई-कोई भाषा अन्दर... आहाहा!

कहे, प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरे निहाल होने का रास्ता यह है। है? उस राग का कर्तापना छोड़कर मेरा चैतन्यस्वरूप राग से भिन्न है, ऐसे चैतन्यस्वरूप में आरूढ़ होना, वह निहाल होने का रास्ता है। राग में आरूढ़ होवे तो चार गति का दु:ख मिलना है। आहाहा! समझ में आया?

'स सदा अचलं' वह सदानिश्चल चैतन्य धातुमय... भगवान आत्मा... जैसे सोना धातु है, ऐसे यह चैतन्यधातु है। भगवान ने चैतन्यधातु धारी है। राग को धारा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा ने चैतन्यधातु धार रखी है। आहाहा! चेतना स्वभाव धार रखा है। ऐसी चैतन्यधातु... आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो, देखो! ओहोहो! अमृत परोसा है।

श्रीमद् में आता है, 'जो स्वरूप समझे बिना...' पहली गाथा है।

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।
समझाया उन पद नमुँ श्री सद्गुरु भगवन्त।
रे गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत बरसा रे पंचम काल में
जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।

समझाया... फिर मैंने तो अन्दर निश्चय से (ऐसा किया)। समझाया उन पद नमुँ। वहाँ तो गुरु के ऊपर लिया है। 'समझाया उन पद नमुँ श्री सद्गुरु भगवन्त। रे गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत बरसा रे पंचम काल में...' आहाहा! आत्मा राग से भिन्न हुआ, वहाँ आत्मा में अमृत बरसा। आहाहा! ऐसी चीज़ है, भाई! तेरी धूल-बूल कहीं रह गयी। पैसा और यह करोड़ और दो करोड़ को... ऐई! पोपटभाई! यह करोड़पति सेठिया बैठे। पैसे के पति! करोड़पति कहते हैं न? लखपति और करोड़पति और हजारपति और... अरे! भगवान!

मुमुक्षु : उद्योगपति।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्योगपति कहते हैं। बड़ा व्यापार बढ़ाया हो न। नवनीतभाई और ये सब बड़े उद्योगपति। अमुक उद्योगपति यह शाहूजी। शान्तिप्रसाद। कौन उद्योगपति? भगवान! राग का उद्योग करना, वह भी कर्ता अज्ञान है, तो पर का उद्योग करना, वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्मा...** धातुमय आत्मा शब्द है। चैतन्यधातुमय, चैतन्य से भरपूर ऐसा आत्मा। वह तो चैतन्यमय आत्मा भगवान है। राग और पुण्य, दया, दानमय आत्मा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर ठीक हो तो उसका अभिमान, वाणी ठीक हो तो उसका अभिमान, पैसा ठीक हो तो उसका अभिमान। आहाहा! कहाँ तेरा अभिमान गया? प्रभु! तू चैतन्य में आरूढ़ न होकर (पर का) अभिमान करता है कि यह मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा!

कोई ऐसा कहते हैं कि पर्याय में अशुद्धता थी ही नहीं, अनादि से शुद्ध पर्याय है, ऐसा नहीं है। चेतनद्रव्य वस्तु से शुद्ध है परन्तु पर्याय में अनादि से शुद्धता है, ऐसा नहीं है। यदि अनादि से शुद्धता होवे तो आनन्द का वेदन होना चाहिए। अशुद्धता तो अनादि से है। आहाहा! वस्तु शुद्ध अनादि से है, वैसे पर्याय में-हालत में अशुद्धता भी अनादि से है। कि

जो अशुद्धता दुःख का कारण है। आहाहा! समझ में आया? और कोई ऐसा कहे कि आत्मा द्रव्य से और पर्याय से शुद्ध अनादि से है (तो) ऐसा नहीं है। समझ में आया? द्रव्य से शुद्ध है, पर्याय से अशुद्ध है। अथवा कोई ऐसा कहे, अभी तो मक्खनलालजी ऐसा कहते हैं। तुक्हारे रतनलालजी कहते थे। रतनलालजी तो कहते थे कि पर्याय अशुद्ध होवे तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। बिलकुल खोटी बात है।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में कहीं ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वहाँ पर्याय की बात है। आठवीं गाथा है न, शुभ-अशुभ तन्मय होती है पर्याय, द्रव्य नहीं।

मुमुक्षु : वह द्रव्य को बना देती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न, सब खबर है। अभी मक्खनलालजी ने भी ऐसा कहा कि पर्याय में जब पुण्य-पाप की अशुद्धता हो तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। अरे! भगवान! द्रव्य शुद्ध वस्तु तो अनादि से है। उसकी दशा में भूल है। वस्तु में भूल नहीं, तथा दशा में भूल है तो वस्तु भूलरूप हो जाए, ऐसा नहीं है। यदि वस्तु भूलरूप हो जाए, अशुद्ध हो जाए तो शुद्धता कहाँ से आयेगी? शुद्धता का नाश करके यदि द्रव्य अशुद्ध हो जाए तो शुद्धता कहाँ से आयेगी? न्याय समझे? लॉजिक से-न्याय से समझना चाहिए। परमात्मा का मार्ग लॉजिक-युक्ति-न्याय से है। नी धातु है। नी धातु में ज्ञान को ले जाना—सत्य की ओर ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **सदानिश्चल चैतन्य धातुमय...** देखा! यह तो सदा निश्चल चैतन्यधातु है। द्रव्य कभी अशुद्ध हुआ ही नहीं। पर्याय में अशुद्धता है। संसार, वह पर्याय में है। मोक्षमार्ग भी पर्याय में है और सिद्धपद भी पर्याय में है। द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! अरे रे! भगवान के मार्ग में ऐसी गड़बड़ चले! ऐसा कठोर काल, भाई! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **सदानिश्चल...** शब्द पड़ा है। **वह सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्मा के स्वरूप में दृढ़ता से रहा है।** दृढ़ता से रहता है, वह पर्याय है। **सदानिश्चल चैतन्य धातुमय आत्मा...** यह त्रिकाली वस्तु। अशुद्धता का भेद किया, पश्चात् उसमें-स्वरूप में दृढ़ता से रहा है। चैतन्यधातु भगवान आत्मा में दृढ़ता से अन्दर रहा, वह पर्याय

है। जो अशुद्धता थी, उससे भिन्न होकर शुद्ध चैतन्यधातु में लीन हुआ। लीन हुआ, वह शुद्ध पर्याय है। वस्तु शुद्ध त्रिकाल है। आहाहा! लॉजिक से, न्याय से और युक्ति से सत्य बैठना चाहिए न? ऐसे का ऐसा माने, वह कोई चीज़ नहीं है।

अन्दर ज्ञान में उसका भास होना चाहिए। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। भावभासन। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने ऐसा लिया है। भावभासन। भाव का ज्ञानभासन (अर्थात्) यह ऐसा है, ऐसा ज्ञान में भासित होना चाहिए। भाव के भासन बिना तेरी चीज़ क्या है? आहाहा! समझ में आया? यह ५९ कलश हुआ।

कलश-६०

(मन्दाक्रान्ता)

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम्।।१५-६०।।

खण्डान्वय सहित अर्थ- 'ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति' [ज्ञानात् एव] शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तु को अनुभवन करते ही [स्वरस] चेतनस्वरूप, उससे [विकसत्] प्रकाशमान है [नित्य] अविनश्वर ऐसा जो [चैतन्यधातोः] शुद्ध जीवस्वरूप का (और) [क्रोधादेश्च] जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम का [भिदा] भिन्नपना [प्रभवति] होता है। भावार्थ इस प्रकार है, कि साम्प्रत (-वर्तमान में) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है, सो तो ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है; सो ज्ञान भिन्न, क्रोध भिन्न - ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है। उत्तर इस प्रकार है कि साँचा ही कठिन है, पर (परन्तु) वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है। कैसा है भिदा (-भिन्नपना)? 'कर्तृभावं भिन्दती' [कर्तृभावं] कर्म का कर्ता जीव ऐसी भ्रान्ति, उसको [भिन्दती] मूल से दूर करता है। दृष्टान्त कहते हैं-

'एव ज्वलनपयसो: औष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानात् उल्लसति' [एव] जिस प्रकार [ज्वलन] अग्नि [पयसो:] पानी, उनका [औष्ण्य] उष्णपना [शैत्य] शीतपना, उनका [व्यवस्था] भेद [ज्ञानात्] निजस्वरूपग्राही ज्ञान के द्वारा [उल्लसति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि संयोग से पानी ताता (उष्ण) किया जाता है, फिर 'ताता पानी' ऐसा कहा जाता है, तथापि स्वभाव विचारने पर उष्णपना अग्नि का है, पानी तो स्वभाव से शीला (ठण्डा) है, ऐसा भेदज्ञान विचारने पर उपजता है। और दृष्टान्त – 'एव लवणस्वादभेदव्युदास: ज्ञानात् उल्लसति' [एव] जिस प्रकार [लवण] खारा रस, उसका [स्वादभेद] व्यंजन से भिन्नपने के द्वारा खारा लवण का स्वभाव ऐसा जानपना, उससे [व्युदास:] व्यंजन खारा, ऐसा कहा जाता था, जाना जाता था, सो छूटा। (ऐसा) [ज्ञानात्] निज स्वरूप का जानपना उसके द्वारा [उल्लसति] प्रगट होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार लवण के संयोग से व्यंजन सम्भारते हैं तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है; स्वरूप विचारने पर खारा लवण, व्यंजन जैसा है वैसा ही है।।१५–६०।।

कलश - ६० पर प्रवचन

६० में भी एक अद्भुतता है। ६० वाँ श्लोक है।

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदास:।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो:
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम्।।१५–६०।।

आहाहा! ओहोहो! सन्तों ने तो ढ़िढोरा पीटकर जगाया है। जाग रे जाग, नाथ! आनन्द का कन्द प्रभु ज्ञया राग में सो रहा है? आहाहा! समझ में आया? सच्चिदानन्द प्रभु अनादि से राग में सो रहा है। अपनी जागृतदशा में तू सो गया है। अब कहते हैं कि एक बार पुण्य-पाप के भाव में सो जा—उन्हें छोड़ दे और जागृत चैतन्यधातु में आ जा। समझ में आया? कितने ही कहते हैं कि समाज में ऐसी सूक्ष्म बात नहीं कहना। सूक्ष्म तो यथार्थ वस्तु है। द्रव्यानुयोग का मूल रहस्य तो सभा में (प्रगट) होना चाहिए, ऐसा पाठ

मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा! अरे! ऐसा जीवन कब आयेगा? बापू! भाई! ऐसी वाणी मिलना मुश्किल हो गयी है। आहाहा! और सत्य बात आयी तो दृष्टि में विरोध आया। विरोध करता है। भगवान! तेरी चीज़ तो यह है। देखो!

'ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति' शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तु को अनुभवन करते ही... आहाहा! भगवान शुद्धस्वरूपमात्र वस्तु का अनुभव करते ही। अशुद्धता के परिणाम का लक्ष्य और आश्रय छोड़कर, दूसरे प्रकार से कहें तो पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्य-वस्तुबुद्धि अन्दर कर। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! यह तो वास्तविक तंव, यथार्थ तंव है। लोगों ने तो कल्पना से कुछ का कुछ (कर डाला)। समझ में आया? आहाहा!

शुद्ध स्वरूपमात्र... शब्द पड़ा है। देखा! **'ज्ञानात् एव' 'ज्ञानात् एव'** आहाहा! **शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तु को अनुभवन करते ही [स्वरस] चेतनस्वरूप, उससे... 'स्वरस'** अपना चैतन्यरस, अपना आनन्दरस है, उससे **प्रकाशमान है...** आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यधातु नित्य आनन्दरस से भरपूर है। राग की कर्तृत्वबुद्धि छोड़कर **'ज्ञानात्'**-ज्ञान में जाने से तुझे चैतन्य स्वरस, जैसा आनन्दरस है, वैसा पर्याय में आनन्दरस तुझे आयेगा। आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम चैतन्य का अनुभव है। राग और पुण्य-पाप का अनुभव वह तो दुःखरूप और क्लेश है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में कहा है। क्लेश। क्रियाकाण्ड से क्लेश करो तो करो परन्तु ज्ञान से मुक्ति होगी, इस क्लेश से मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है। समझ में आया? तब (कोई कहे) प्रभु का मार्ग तो अनेकान्त है न? व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है, इसका नाम अनेकान्त है? ऐसा नहीं है, भगवान! तुझे खबर नहीं है।

स्वरूप **'ज्ञानात्' 'ज्ञानात्'** है न? **अनुभवन करते ही चेतनस्वरूप, उससे प्रकाशमान है...** आहाहा! एकान्त ऐसी चीज़ है। राग से प्रकाशमान नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? आहाहा! नियमसार की दूसरी गाथा में तो ऐसा कहा कि अपना स्वरूप, निश्चय स्वरूप की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह निरपेक्ष है। उसे कोई व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! शुद्ध चैतन्य **'ज्ञानात्'** ऐसा

आया न ? **'ज्ञानात्'** प्रकाशमान है। आहाहा! यह तो अपना चैतन्यस्वभाव ज्ञान से प्रकाशमान है। राग से जो प्रसिद्धि थी, वह अज्ञान था। आहाहा! और राग पर दृष्टि थी, इसलिए उसे राग का अस्तित्व ही भासित होता था। राग पर दृष्टि थी। पुण्य, दया, दान, विकल्प पर दृष्टि थी तो अस्तित्व में राग ही भासित होता था, परन्तु यह बड़ा अस्तित्व भगवान अन्दर स्थित है। **'ज्ञानात्'** आनन्दकन्द भगवान स्थित है, उससे प्रकाशमान है। आहाहा! सूक्ष्म लगे परन्तु वस्तु यह है।

अनन्त काल में किया नहीं। अनन्त काल में द्रव्यलिंगी दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ। द्रव्यलिंग धारण करके पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। वह सब राग, दुःख है। आहाहा! समझ में आया ? यह आया न ? छहढाला में आया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ ञ्चया हुआ ? कि द्रव्यलिंग धारण किया, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, उसमें सुख नहीं आया। वह तो दुःख है, ऐसा कहते हैं। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो पंच महाव्रत के परिणाम में सुख नहीं है, वह तो दुःख है। आहाहा! उस राग का कर्ता होना, वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। महाव्रत के परिणाम, वह शुभराग है और उसका कर्ता होना, उसने ज्ञायक को विकारी बना दिया। विकार का कर्ता होता है तो सब शक्ति जो शुद्ध चैतन्य है, उस आत्मा को उसने श्रद्धा में विकारी बना दिया। श्रद्धा में, हों! वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! समझ में आया ?

शुद्ध स्वरूपमात्र वस्तु को अनुभवन करते ही चेतनस्वरूप, उससे प्रकाशमान है, अविनश्वर ऐसा जो शुद्ध जीवस्वरूप का (और) जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम का भिन्नपना होता है। आहाहा! है ? जितना अशुद्धपना। अकेले कर्म से भिन्न, ऐसा नहीं, यह तो विशेष स्पष्ट कर दिया। अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम... आहाहा! शुभ-अशुभराग दोनों अशुद्धचेतना है। आहाहा! वह कर्मचेतना है। पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह कर्मचेतना के भाव हैं। वह ज्ञानचेतना के भाव नहीं हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग! कठिन पड़ता है, इसलिए झूठा लेना, ऐसा कुछ है ? आहाहा!

अशुद्ध चेतनारूप... भाषा देखो! कर्म से हुआ, वह तो अशुद्ध चेतनारूप रागादि

परिणाम है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह अशुद्धचेतनारूप परिणाम, रागादि परिणाम है। आहाहा! समझ में आया? इसमें दो बोल ऐसे आयेंगे। यह श्लोक राजमलजी ने बहुत अलौकिक किये हैं। बाद में आयेगा। अन्तिम शब्दों में आयेगा। **'ज्ञानात्'** आहाहा! है न अन्त में? दूसरी लाईन **'ज्ञानात्' निजस्वरूपग्राही ज्ञान के द्वारा प्रगट होता है।** आहाहा! यह क्या कहा? कि अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा राग से भिन्न हुआ तो अपना ज्ञान हुआ। उस ज्ञान में, पानी गर्म है, उसका ज्ञान निजस्वरूपग्राही को उष्णता का सच्चा ज्ञान होता है। पानी उष्ण है और स्वभाव शीतल है, ऐसा ज्ञान निजस्वरूपग्राही ज्ञानी को उसका सच्चा ज्ञान होता है। अन्दर है?

मुमुक्षु : वस्तुग्राही...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे व्यवहार का ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? है? भाई! नीचे है, देखो! है?

निजस्वरूपग्राही ज्ञान के द्वारा... नीचे लाईन है। अन्तर है? अन्तिम दो लाईन, उसमें है। मर्मग्राही अर्थ किया है। यह पानी ठण्डा है और गर्म है, इसका सच्चा ज्ञान किसे होता है? कि जिसे अपना ज्ञान हुआ, उसे उसका व्यवहार से ज्ञान होता है। समझ में आया? पानी ठण्डा है और वर्तमान में गर्म है, उसका सच्चा ज्ञान किसे होता है? जिसे निजस्वरूपग्राही ज्ञान हुआ, उसे व्यवहार का ऐसा ज्ञान होता है। आहाहा! वैसे तो पानी गर्म है और ठण्डा है, ऐसा तो लोग मानते हैं। ऐसा नहीं है। समझ में आया? जैसे राग से भिन्न होकर अपने ज्ञायक का ज्ञान किया तो उस स्वरूप का ग्राही ज्ञान जो हुआ, वह ज्ञान पानी ठण्डा है और पर्याय में अग्नि से गर्म हुआ है, ऐसा ज्ञान, जिसे स्वरूप का ज्ञान हुआ है, उसे यह व्यवहारज्ञान होता है। समझ में आया? ऐसी बात है। राजमलजी ने कही है। **'ज्ञानात्'** शब्द है न? आहाहा! आगे लेंगे।

शुद्ध जीवस्वरूप का (और)... क्रोध शब्द प्रयोग किया है न? **'क्रोधादेः' जितने अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम का...** शब्द लिया है। **'क्रोधादेः'** शब्द का अर्थ... है? बीच में है। अपने अभी बीच का चलता है न? **'क्रोधादेः'** क्यों (कहा)? कि समस्त **अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम का भिन्नपना होता है।** क्यों?—कि

अशुद्ध चेतना परिणाम का जिसे प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। समझ में आया? यह आनन्दघनजी कहते हैं। आनन्दघनजी है न? उसमें यह आया है। और अपने यहाँ आया है। वहाँ ऐसा आया है। 'संभव ... लई प्रभु सेवक ... सेवन कारण प्रथम भूमिका अभय अद्वेष खेद।' लम्बी बात है। २४ लाईनों का है। १०८ पद है। उन्होंने थोड़ी बात की परन्तु यह बात है, ऐसी तो नहीं। उसमें उन्होंने ऐसा कहा। समझ में आया? द्वेष अरोचकभाव। जिसे पुण्य के परिणाम में प्रेम है, उसे आत्मा में द्वेषभाव है। अरोचक है—आत्मा की रुचि का अरोचक है। रुचि नहीं। समझ में आया? अरे! ऐसी बात। व्रत, तप, भक्ति आदि शुभराग का जिसे प्रेम है, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष और अरुचि है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। और जिसे स्वभाव के प्रति रुचि तथा आश्रय है, उसे राग की रुचि नहीं है। समझ में आया? एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। राग में भी प्रेम रहे और आत्मा में प्रेम हो जाए, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। राग का भी प्रेम... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का भी प्रेम और भगवान आत्मा की भी रुचि, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया?

शुद्ध जीवस्वरूप... से विरुद्ध। आहाहा! क्रोध कहा। अशुद्ध—राग का प्रेम है, उसे स्वभाव के प्रति क्रोध है। समझ में आया? सूक्ष्म बात, भगवान! आहाहा! जिसका प्रेम पर में घुस गया—स्त्री का प्रेम, पैसे का प्रेम, राग का प्रेम, पुण्य का प्रेम है... आहाहा! उसे आत्मा के प्रति क्रोध है, आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! राग के रागी भगवान आत्मा के द्वेषी हैं। गजब बात, बापू! लोगों को कठिन पड़ता है। परन्तु श्चया हो? बापू! मार्ग तो यह है, प्रभु! आहाहा!

अशुद्ध चेतनारूप... भाषा ऐसी ली है न? जड़ की पर्याय नहीं। **अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणाम का भिन्नपना होता है।** आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है, कि साम्प्रत (–वर्तमान में) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है,...** देखो! भाषा ली। पर्याय में रागादिरूप है। नहीं है, ऐसा नहीं है। है, पर्याय में रागादिरूप परिणमा है। कर्म के कारण नहीं। आहाहा! है? **साम्प्रत (–वर्तमान में) जीवद्रव्य रागादि अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है,...** पर्याय में अशुद्ध परिणमन है। कोई कहे कि पर्याय शुद्ध है। तब तो आनन्द

आना चाहिए। वह तो आनन्दकन्द प्रभु है। दु:ख का वेदन है, वहाँ आनन्द का वेदन नहीं। आहाहा! यह पुण्य और पाप का वेदन है, वह तो अशुद्ध दु:ख वेदन है। उस दु:खरूप पर्याय में-अवस्था में परिणमित है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म पड़े। ऐसा मार्ग है न, भाई! आहाहा!

अशुद्ध चेतनारूप परिणमा है, सो तो ऐसा प्रतिभासता है कि ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है;... ऐसा उसे देखता है। क्या? आत्मा विकाररूप परिणमा है, ऐसा दिखता है। स्वरूप विकार (रूप नहीं हुआ) परन्तु भासित होता है कि विकाररूप आत्मा हो गया। पर्याय में विकार है तो आत्मा भी विकाररूप हो गया, ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। समझ में आया? द्रव्य जो वस्तु है, वह तो त्रिकाल शुद्ध है, त्रिकाली शुद्ध है। निगोद की पर्याय में भी द्रव्य तो शुद्ध ही है। यह तो पहले आया था न। परमात्मप्रकाश में बन्ध अधिकार में आया था। सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में, सर्व जीव सक्मूर्ण सुख से, आनन्द से भरपूर हैं, ऐसी भावना सर्व जीवों को करना चाहिए। आहाहा! सर्व क्षेत्र में, सर्व काल में, सर्व जीव सक्मूर्ण स्वभाव से भरपूर हैं। शक्ति है, स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है;...** भगवान आत्मा भूल से... 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' अपनी चीज़ को भूलकर हैरान हो गया। किसी कर्म ने हैरान किया है या ईश्वर ने (हैरान) किया है, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **ज्ञान क्रोधरूप परिणमा है; सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न, ऐसा अनुभवना अति ही कठिन है।** आहाहा! है? आहाहा! क्यों? कि आत्मा शुद्ध चैतन्यघन होने पर भी उसकी वर्तमान हालत-दशा में विकाररूप परिणमा है। इसलिए विकार से आत्मा को भिन्न करना कठिन है। समझ में आया? आहाहा!

अति ही कठिन है। उत्तर इस प्रकार है कि साँचा ही कठिन है,... बराबर कठिन है। क्योंकि पर्याय में विकार है; वस्तु में नहीं, परन्तु अवस्था में विकार-दोष है। अत: दोष निकालने का उपदेश करते हैं न? यदि दोष न हो तो दोष को निकालना, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? वीतराग का उपदेश ऐसा आता है कि दोष को निकालो। उसका अर्थ क्या हुआ? कि दोष तो पर्याय में है। अनादि से है। निकालना कठिन है परन्तु तो भी अनादि से है। यह विशेष व्याक्या आयेगी.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)